❀ श्री वीतरागाय नमः ❀

श्री-यतिवृषभाचार्य-विरचिता

तिलोय-पण्णत्ती

(त्रिलोकप्रज्ञप्तिः)

(जैन–लोकज्ञान–सिद्धान्तविषयक-प्राचीन प्राकृतग्रन्थ)

प्राचीन कानडी प्रतियों के आधार पर प्रथम बार सम्पादित

[प्रथम खण्ड]

卐

टीकाकर्त्री :

आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी

卐

सम्पादक :

डॉ० चेतनप्रकाश पाटनी

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

卐

प्रकाशक :

प्रकाशन विभाग, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

श्री यतिवृषभाचार्य विरचिता

तिलोयपण्णत्ती-प्रथम खण्ड

(प्रथम तीन महाधिकार)

❖

पुरोवाक् :

डॉ० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, सागर (म. प्र.)

❖

भाषा टीका :

आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी

❖

सम्पादन :

डॉ० चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर (राज०)

❖

प्रकाशक :

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

❖

प्राप्ति स्थान :

केन्द्रीय साहित्य भण्डार

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

१०/३१ नई धान मण्डी, कोटा (राज०)

❖

मूल्य :

इकहत्तर रुपया, ७१) रु०

❖

प्रथम संस्करण :

ई० सन् १९८४] वीर निर्वाण संवत् २५१० [वि० सं० २०४०

❖

मुद्रक :

पांचूलाल जैन

कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज–किशनगढ़ (राज०)

परम पूज्य तपस्वी आचार्यप्रवर

श्री १०८ श्री शिवसागरजी महाराज

तपस्तपति यो नित्य, कृशागो गुणपीनकः ।
शिवसिन्धुगुरुं वन्दे, भव्यजीव हितंकरम् ।।

जन्म :	क्षुल्लकदीक्षा :	मुनिदीक्षा :	समाधि :
वि. सं. १९५८	वि. सं. २००१	वि. सं. २००६	फाल्गुन अमावस्या
अड़ग्राम (महाराष्ट्र)	सिद्धवरकूट	नागौर (राज०)	वि. सं. २०२५ श्रीमहावीरजी

त्रिलोकाकृति
आरण
अच्युत
प्राणत
शतार
सहस्रार
शुक्र
महाशुक्र
कापिष्ठ
ब्रह्मोत्तर
सानत्कुमार
माहेन्द्र
सौधर्म
ऐशान
शर्करा प्रभा
तम प्रभा
महातम प्रभा
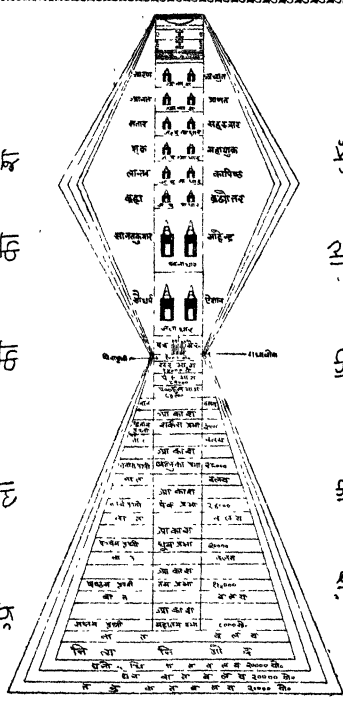
समर्पण

जिन्होंने असंयमरूपी कीचड़ में फंसी हुई मेरी आत्मा को

अपनी उदार एवं वात्सल्यवृत्तिरूपी डोर से बाहर

निकालकर विशुद्ध किया तथा रत्नत्रय का

बीजारोपण कर मोक्षमार्ग पर

चलने की अपूर्व शक्ति प्रदान की

उन्हीं परमोपकारी

दीक्षा गुरु

परम श्रद्धेय

प्रातः स्मरणीय ज्ञानेन्द्रचन्द्र

चारित्रचूडामणि दि० जैनाचार्य

श्री १०८ स्व० शिवसागरजी महाराज की

पन्द्रहवीं पुण्यतिथि के अवसर पर आपके ही

पट्टाधीशाचार्य परम तपस्वी जगद्वन्द्य चारित्र शिरोमणि

प० पू० धर्मदिवाकर प्रशममूर्ति आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी

महाराज के पुनीत कर-कमलों में अनन्य श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक

सादर समर्पित

—आर्यिका विशुद्धमती

तिलोयपण्णत्ती : प्रथम खण्ड
श्री १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज
मुनिदीक्षा
आचार्यपद
श्री महावीरजी
महाराष्ट्र
राजस्थान
राजस्थान

पुरोवाक्

श्री यतिवृषभाचार्य द्वारा विरचित 'तिलोय पण्णत्ती' ग्रंथ जैन वाङ्मय के अन्तर्गत करणानुयोग का प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें लोक प्ररूपणा के साथ अनेक प्रमेयों का दिग्दर्शन उपलब्ध है। राजवार्तिक, हरिवंश पुराण, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति तथा सिद्धान्तसार दीपक आदि ग्रंथों का यह मूल स्रोत कहा जाता है। इसका पहली बार प्रकाशन डा० हीरालालजी, डा० ए० एन० उपाध्ये के संपादकत्व में पं० बालचन्द्रजी शास्त्री कृत हिन्दी अनुवाद के साथ जीवराज ग्रन्थमाला सोलापुर से हुआ था, जो अब अप्राप्य है। इस संस्करण में गणित सम्बन्धी कुछ संदर्भ अस्पष्ट रह गये थे जिन्हें इस सस्करण में टीकाकर्त्री श्री १०५ आर्यिका विशुद्धमतीजी ने अनेक प्राचीन प्रतियों के आधार पर स्पष्ट किया है।

त्रिलोकसार तथा सिद्धान्तसार दीपक की टीका करने के पश्चात् आपने 'तिलोय पण्णत्ती' को प्राचीन प्रतियों के आधार से संशोधित कर हिन्दी अनुवाद से युक्त किया है तथा प्रसङ्गानुसार आगत अनेक आकृतियों, संदृष्टियों एवं विशेषार्थों से अलंकृत किया है, यह प्रसन्नता की बात है।

संपूर्ण ग्रन्थ नौ अधिकारों में विभाजित है जिनमें से प्रारम्भिक तीन अधिकारों का यह प्रथम भाग प्रकाशित किया जा रहा है। चतुर्थ अधिकार को अनुवाद के साथ द्वितीय भाग और शेष अधिकारों को अनुवाद के साथ तृतीय भाग के रूप में प्रकाशित करने की योजना है। पूज्य माताजी श्री विशुद्धमतीजी अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग वाली आर्यिका हैं। इनका समग्र समय स्वाध्याय और तत्त्व चिन्तन में व्यतीत होता है। तपश्चरण के प्रभाव से इनके क्षयोपशम में आश्चर्यकारक वृद्धि हुई है। इसी क्षयोपशम के कारण आप इन गहन ग्रंथों की टीका करने में सक्षम हो सकी हैं।

श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी ने ग्रन्थ का संपादन बहुत परिश्रम से किया है तथा प्रस्तावना में सम्बद्ध समस्त विषयों की पर्याप्त जानकारी दी है। गणित के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० लक्ष्मीचन्द्रजी ने 'तिलोय पण्णत्ती और उसका गणित' शीर्षक अपने लेख में गणित की विविध धाराओं को स्पष्ट किया है। माताजी ने अपने 'आद्यमिताक्षर' में ग्रन्थ के उपोद्घात का पूर्ण विवरण दिया है। भारतवर्षीय दि० जैन महासभा के उत्साही-कर्मठ अध्यक्ष श्री निर्मलकुमारजी सेठी ने महासभा के प्रकाशन विभाग द्वारा इस महान् ग्रंथ का प्रकाशन कर प्रकाशन विभाग को गौरवान्वित किया है।

ग्रंथ के संपादक श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी, दिवंगत पूज्य मुनिराज श्री १०८ समतासागरजी के सुपुत्र हैं तथा उन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप मे अपार समता तथा श्रुताराधना की अपूर्व अभिरुचि (लगन) प्राप्त हुई है। टीकाकर्त्री माताजी प्रारम्भ में भले ही मेरी शिष्या रही हों पर अब तो मैं उनमें अपने आपको पढ़ा देने की क्षमता देख रहा हूं। टीकाकर्त्री माताजी और संपादक श्री चेतन प्रकाशजी पाटनी के स्वस्थ दीर्घजीवन की कामना करता हुआ अपना पुरोवाक् समाप्त करता हूं।

विनीत :
पन्नालाल साहित्याचार्य
सागर

अपनी बात

जीवन में परिस्थितिजन्य अनुकूलता-प्रतिकूलता तो चलती ही रहती है परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उनका अधिकाधिक सदुपयोग कर लेना विशिष्ट प्रतिभाओं की ही विशेषता है। 'तिलोयपण्णत्ती' के प्रस्तुत संस्करण को अपने वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने वाली विदुषी आर्यिका पूज्य १०५ श्री विशुद्धमती माताजी भी उन्हीं प्रतिभाओं में से एक हैं। जून १९८१ में सीढ़ियों से गिर जाने के कारण आपको उदयपुर में ठहरना पड़ा और तभी ति० प० की टीका का काम प्रारम्भ हुआ। काम सहज नहीं था परन्तु बुद्धि और श्रम मिलकर क्या नहीं कर सकते। साधन और सहयोग संकेत मिलते ही जुटने लगे। अनेक हस्तलिखित प्रतियां तथा उनकी फोटो स्टेट कॉपियाँ मंगवाने की व्यवस्था की गई। कन्नड़ की प्राचीन प्रतियों को भी पाठभेद व लिप्यन्तरण के माध्यम से प्राप्त किया गया। डा० उदयचन्दजी जैन (सहायक आचार्य, जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्व-विद्यालय, उदयपुर) से प्रतियों के पाठभेद ग्रहण करने में तथा प्राकृतभाषा एवं व्याकरण सम्बन्धी संशोधनों में सहयोग मिला। इस प्रकार प्रथम चार महाधिकारों की पाण्डुलिपि तैयार करने में ही अब तक लगभग १३,०००) रुपये व्यय हो चुके हैं। 'सेठी ट्रस्ट' लखनऊ से यह आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ और महासभा ने इसके प्रकाशन का उत्तरदायित्व वहन किया। श्रीमान् नीरजजी और निर्मल जी जैन ने सतना से प्रेसकापी हेतु न केवल कागज भेजा अपितु वे कई बार प्रत्यक्ष रूप से भी और पत्रों के माध्यम से भी सतत प्रेरणात्मक सहयोग देते रहे। डा० चेतनप्रकाशजी पाटनी ने सम्पादन का गुरुतर भार संभाला और अनेक रूपों में उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। यह सब पूज्य माताजी के पुरुषार्थ का ही सुपरिणाम है। पूज्य माताजी 'यथानाम तथा गुण' के अनुसार विशुद्धमति को धारण करने वाली हैं तभी तो गणित के इस जटिल ग्रंथ का प्रस्तुत सरल रूप हमें प्राप्त हो सका है।

पाँवों में चोट लगने के बाद से पूज्य माताजी प्रायः स्वस्थ नहीं रहतीं तथापि अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग प्रवृत्ति से कभी विरत नहीं होतीं। सतत परिश्रम करते रहना आपकी अनुपम विशेषता है। आज से ८ वर्ष पूर्व मैं माताजी के सम्पर्क में आया था और यह मेरा सौभाग्य है कि तबसे मुझे पूज्य माताजी का अनवरत सान्निध्य प्राप्त रहा है। माताजी की श्रमशीलता का अनुमान मुझ जैसा कोई उनके निकट रहने वाला व्यक्ति ही कर सकता है। आज उपलब्ध सभी साधनों के बावजूद

माताजी सम्पूर्ण लेखनकार्य स्वयं अपने हाथ से ही करती हैं—न कभी एक अक्षर टाइप करवाती हैं और न किसी से लिखवाती हैं। सम्पूर्ण संशोधन-परिष्कारों को भी फिर हाथ से ही लिखकर संयुक्त करती हैं। मैं प्रायः सोचा करता हूं कि धन्य हैं ये जो (आहार में) इतना अल्प लेकर भी कितना अधिक दे रही हैं। इनकी यह देन चिरकाल तक समाज को समुपलब्ध रहेगी। इस महान् कृति की टीका के अतिरिक्त पूर्व में आप 'त्रिलोकसार' और 'सिद्धान्तसार दीपक' जैसे बृहत्काय ग्रंथों की टीका भी कर चुकी हैं और लगभग १०-१२ सम्पादित एवं मौलिक लघु कृतियां भी आपने प्रस्तुत की हैं।

मैं एक अल्पज्ञ श्रावक हूं—अधिक पढ़ा लिखा भी नहीं हूं किन्तु पूर्व पुण्योदय से जो मुझे यह पवित्र समागम प्राप्त हुआ है इसे मैं साक्षात् सरस्वती का ही समागम समझता हूं। जिन ग्रंथों के नाम भी मैंने कभी नहीं सुने थे उनकी सेवा का सुअवसर मुझे पूज्य माताजी के माध्यम से प्राप्त हो रहा है, यह मेरे महान् पुण्य का फल तो है ही किन्तु इसमें आपका अनुग्रहपूर्ण वात्सल्य भी कम नहीं।

जैसे काष्ठ में लगी लोहे की कील स्वयं भी तर जाती है और दूसरों को भी तरने में सहायक होती है, उसी प्रकार सतत ज्ञानाराधना में संलग्न पूज्य माताजी भी मेरी दृष्टि में तरण-तारण हैं। आपके सान्निध्य से मैं भी ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय का सामर्थ्य प्राप्त करूं, यही भावना है।

मैं पूज्य माताजी के स्वस्थ एवं दीर्घजीवन की कामना करता हूं।

विनीत—
ब्र० कजोड़ीमल कामदार, जोबनेर

ग्राद्यमिताक्षर

जैनधर्म सम्यक् श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र परक धर्म है इस धर्म के प्रणेता अरहंत-देव हैं। जो वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते हैं। इनकी दिव्य वाणी से प्रवाहित तत्त्वों की संज्ञा आगम है। इन्हीं समीचीन तत्त्वों के स्वरूप का प्रसार-प्रचार एवं आचरण करने वाले आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी सच्चे गुरु हैं।

वर्तमान में जितना भी आगम उपलब्ध है वह सब हमारे निर्ग्रन्थ गुरुओं की अनुकम्पा एवं धर्म वात्सल्य का ही फल है। यह आगम प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के नाम से चार भेदों में विभाजित है।

'त्रिलोकसार' ग्रंथ के संस्कृत टीकाकार श्रीमन्माधवचन्द्राचार्य त्रैविद्य देव ने करणानुयोग के विषय में कहा है कि—"तदर्थ-ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न-पापवर्ज्य-भीरुगुरु-पर्वक्रमेणाव्युच्छिन्नतया प्रवर्त-मानमविनष्ट-सूत्रार्थत्वेन केवलज्ञान-समानं करणानुयोग-नामानं परमागमं ...."। अर्थात् जिस अर्थका निरूपण श्री वीतराग सर्वज्ञ वर्धमान स्वामी ने किया था। उसी अर्थ के विद्यमान रहने से वह करणानुयोग परमागम केवलज्ञान के समान है।

आचार्य यतिवृषभ ने भी तिलोय पण्णत्ती के प्रथमाधिकार की गाथा ८६–८७ में कहा है कि—"पवाह-रूवत्तणेण....... आइरियअणुक्कमाआदं तिलोयपण्णत्ति अहं वोच्छामि........"। अर्थात् आचार्य-परम्परा से प्रवाह रूप में आये हुए 'त्रिलोक प्रज्ञप्ति' शास्त्र को मैं कहता हूं। इसी प्रकार प्रथमाधिकार की गाथा १४८ में भी कहा है कि—"भणामो णिस्संदं दिट्ठिवादादो" अर्थात् मैं वैसा ही वर्णन करता हूं, जैसा कि दृष्टिवाद अंग से निकला है।

आचार्यों की इस वाणी से ग्रन्थ की प्रामाणिकता निर्विवाद सिद्ध है।

बीजारोपण—सन् १९७२ सं० २०२९ आसोज कृ० १३ गुरुवार को अजमेर नगर स्थित छोटे धड़ा की नशियाँ में त्रिलोकसार ग्रंथ की टीका प्रारम्भ कर सं० २०३० ज्येष्ठ शुक्ला शुक्रवार को जयपुर खानियाँ में पूर्ण हो चुकी थी। ग्रंथ का विमोचन भी सन् १९७४ में हो चुका था। पश्चात् सन् १९७५ के जून माह में परम पूज्य परमोपकारी शिक्षा गुरु आ० क० १०८ श्री श्रुतसागरजी एवं प० पू० परम श्रद्धेय विद्यागुरु १०८ श्री अजितसागर म० जी के सान्निध्य में तिलोयपण्णत्ती

ग्रन्थराज का स्वाध्याय प्रारम्भ किया किन्तु १५० गाथा के बाद जगह जगह शंकाएँ उत्पन्न होने लगीं तथा उनके समाधान न होने के कारण स्वाध्याय में नीरसता आ गई। फलस्वरूप आत्मा में निरन्तर यही खरोंच लगती रहती कि त्रिलोकसार जैसे ग्रन्थ की टीका करने के बाद तिलोय प० का प्रमेय ज्ञेय नहीं बन पा रहा........।

उसी वर्ष (सन् १९७५ में) सवाईमाधोपुर में ससंघ वर्षायोग हो रहा था। करणानुयोग के प्रकाण्ड विद्वान सिद्धान्त भूषण स्व० पं० रतनचन्दजी मुख्तार सहारनपुर वाले सिद्धांतसार दीपक की पाण्डुलिपि देखने हेतु आये। हृदय स्थित शल्य की चर्चा पण्डितजी से की। आपने प्रथमाधिकार की गाथा नं० १४०, १४५-४७, १६३, १६८, १६६, १७८-७९, १८०, १८१, १८४ से १६१, १६६-६७, २०० से २१२, २१४ से २३४, २३८ से २६६ तक का विषय स्पष्ट कर समझा दिया जिसे मैंने व्यवस्थित कर आकृतियों सहित नोट कर लिया। इसके पश्चात् सन् १९८१ तक इसकी कोई चर्चा नहीं उठी। कभी कभी मन में अवश्य यह बात उठती रहती कि यदि ये ८३ गाथाएं प्रकाशित हो जावें तो स्वाध्याय प्रेमियों को प्रचुर लाभ हो सकता है। यह बात सन् १९७७ में जीवराज ग्रंथमाला को भी लिखाई थी कि यदि आप तिलोयपण्णत्ती का पुन: प्रकाशन करावें तो प्रथमाधिकार की कुछ गाथाओं का गणित हम उसमें देना चाहते हैं।

अंकुरारोपण—श्रीमान् धर्मनिष्ठ मोहनलालजी शांतिलालजी भोजन ने उदयपुर में स्वद्रव्य से श्री महावीर जिन मन्दिर का निर्माण कराया था। जिसकी प्रतिष्ठा हेतु वे मुझे उदयपुर लाये। सन् १९८१ में प्रतिष्ठा कार्य विशाल संघ के सान्निध्य में सानन्द सम्पन्न हुआ। पश्चात् वर्षायोग के लिए अन्यत्र विहार होने वाला था किन्तु अनायास सीढ़ियों से गिर जाने के कारण दोनों पैरों की हड्डियों में खराबी हो गई और चातुर्मास ससंघ उदयपुर ही हुआ। एक दिन तिलोयपण्णत्ती की पुरानी फाइल अनायास हाथ में आ गई। उन गाथाओं को देखकर विकल्प उठा कि जैसे अचानक पैर पंगु हो गये हैं उसी प्रकार एक दिन ये प्राण पखेरु उड़ जावेंगे और यह फाइल बन्द ही पड़ी रहेगी। अतः इन गाथाओं सहित प्रथमाधिकार के गणित का कुछ विशेष खुलासा कर प्रकाशित करा देना चाहिए। उसी समय श्रीमान् पं० पन्नालालजी को सागर पत्र दिलाया। श्री पण्डित सा० का प्रेरणाप्रद उत्तर आया कि आपको पूरे ग्रन्थ की टीका करनी है। श्री धर्मचन्द्रजी शास्त्री भी पीछे पड़ गये। इसी बीच श्री निर्मलकुमारजी सेठी संघ के दर्शनार्थ यहाँ आये। आप से मेरा परिचय प्रथम ही था। दो-ढ़ाई घण्टे अनेक महत्त्व पूर्ण चर्चाएं हुईं। इसी बीच आपने कहा कि इस समय आपका लेखन कार्य क्या चल रहा है। मैंने कहा लेखन कार्य प्रारम्भ करने की प्रेरणा बहुत प्राप्त हो रही है किन्तु कार्य प्रारम्भ करने का भाव नहीं है। कारण पूछे जाने पर मैंने कहा कि ग्रन्थ लेखनादि के कार्यों में संलग्न रहना साधु का परम कर्तव्य है किन्तु उसकी व्यवस्था आदि के व्यय की जो आकुलता एवं याचना

आदि की प्रवृत्ति होती है उसे देखते हुए तो शास्त्र नही लिखना ही सर्वोत्तम है। यथार्थ में इस प्रक्रिया से साधु को बहुत दोष लगता है यह बात ध्यान में आते ही आपने तुरन्त आश्वासन दिया कि आप टीका का कार्य प्रारम्भ कीजिए लेखन कार्य के सिवा आपको अन्य किसी प्रकार की चिन्ता करने का अवसर प्राप्त नही होगा।

इसी बीच परम पूज्य प्रातः स्मरणीय १०८ श्री सन्मतिसागर म० जी ने यम सल्लेखना धारण कर ली। क्रमशः आहार का त्याग करते हुए मात्र जल पर आ चुके थे। शरीर की स्थिति अत्यन्त कमजोर हो चुकी थी। मेरे मन में अनायास ही भाव जागृत हुए कि यदि तिलोयपण्णत्ती की टीका करनी ही है तो पूज्य महाराज श्री से आशीर्वाद लेकर आपके जीवन काल में ही कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। किन्तु दूसरी ओर आगम की आज्ञा सामने थी कि "यदि संघ में कोई भी साधु समाधिस्थ हो तो सिद्धान्त ग्रन्थो का पठन-पाठन एवं लेखनादि कार्य नहीं करना चाहिए"। इस प्रकार के द्वन्द्व में झूलता हुआ मेरा मन महाराज श्री से आशीर्वाद लेने वाले लोभ का संवरण नहीं कर सका और सं० २०३८ मार्गशीर्ष कृष्णा ११ रविवार को हस्त नक्षत्र के उदित रहते ग्रंथ प्रारम्भ करने का निश्चय किया तथा प्रातःकाल जाकर महाराज श्री से आशीर्वाद की याचना की। उस समय महाराज श्री का शरीर बहुत कमजोर हो चुका था। जीवन केवल तीन दिन का अवशेष था फिर भी धन्य है आपका साहस और धैर्य। तुरन्त उठ कर बैठ गये, उस समय मुखारविन्द से प्रफुल्लता टपक रही थी, हृदय वात्सल्य रस से उछल रहा था, वाणी से अमृत झर रहा था, उस अनुपम पुण्य वेला में आपने क्या क्या दिया और मैंने क्या लिया यह लिखा नही जा सकता किन्तु इतना अवश्य है कि यदि वह समय मैं चूक जाती तो इतने उदारता पूर्ण आशीर्वाद से जीवनपर्यन्त वञ्चित रह जाती तब शायद यह ग्रन्थ हो भी नही पाता। पश्चात् विद्यागुरु १०८ श्री अजितसागर म० जी से आशीर्वाद लेकर हूमड़ों के नोहरे में भगवान् जिनेन्द्रदेव के समीप बैठकर ग्रंथ का शुभारम्भ किया।

उस समय धन लग्न का उदय था। लाभ भवन का स्वामी शुक्र लग्न में और लग्नेश गुरु तथा कार्येश बुध लाभ भवन में बैठकर विद्या भवन को पूर्ण रूपेण देख रहे थे। गुरु पराक्रम और सप्तम भवन को पूर्ण देख रहा था। कन्या राशिस्थ शनि और चन्द्र दशम में, मंगल नवम में और सूर्य अष्टम भवन में स्थित थे। इस प्रकार दि० २२-११-१९८१ को ग्रन्थ प्रारम्भ किया और २५-११-८२ बुधवार को णमोकार मन्त्र का उच्चारण करते हुए परमोपकारी महाराज श्री स्वर्ग पधार गये।

तुषारपात—दिनांक ९-१-८२ को प्रथमाधिकार पूर्ण हो चुका था किन्तु इसकी गाथा १३८, १४१-४२, २०८ और २१७ के विषयों का समुचित संदर्भ नहीं बैठा गा० २३४ का प्रारम्भ तो 'तं' पद से हुआ था। अर्थात् इसको ३५ से गुणा करके.......। किस संख्या को ३५ से गुणित करना है यह बात गा० में स्पष्ट नहीं थी। दि० १६-२-८२ को दूसरा अधिकार पूर्ण हो गया किन्तु इसमें भी गाथा

गं० ८५, ८६, ६५, १६५, २०२ और २८८ की संदृष्टियों का भाव समझ में नहीं आया, फिर भी कार्य प्रगति पर रहा और २०-३-८२ को तीसरा अधिकार भी पूर्ण हो गया किन्तु इसमें भी गा० २५, २६, २७ आदि के अर्थ पूर्ण रूपेण बुद्धिगत नही हुए।

इतना होते हुए भी कार्य चालू रहा क्योंकि प्रारम्भ में ही यह निर्णय ले लिया था कि पूर्व सम्पादक द्वय एवं हिन्दी कर्ता विद्वानों के अपूर्व श्रम के फल को सुरक्षित रखने के लिए ग्रन्थ का मात्र गणित भाग स्पष्ट करना है। अन्य किन्ही विषयों को स्पर्श नही करना। इसी भावना के साथ चतुर्थाधिकार प्रारम्भ किया जिसमें गा० ५७ और ६४ तो प्रश्न चिह्न युक्त थी ही किन्तु गणित की दृष्टि से गा० ६१ के बाद निश्चित ही एक गाथा छूटी हुई ज्ञात हुई। इसी बीच हस्तलिखित प्रतियां एकत्रित करने की बहुत चेष्टा की किन्तु कही से भी सफलता प्राप्त नहीं हुई, तब यही भाव उत्पन्न हुआ कि इस प्रकार अशुद्ध कृति लिखने से कोई लाभ नही। अन्ततोगत्वा अनिश्चित समय के लिए टीका का कार्य बन्द कर दिया।

प्रगति का पुरुषार्थ—उत्तर भारत के प्रायः सभी प्रमुख शास्त्र भण्डारों से हस्तलिखित प्रतियों की याचना की। जिनमे मात्र श्री महावीरप्रसाद विश्वम्बरदासजी सर्राफ चांदनी चौक दिल्ली, श्रीमान् कस्तूरचन्द्रजी काशलीवाल जयपुर और श्री रतनलालजी सा० व्यवस्थापक श्री १००८ शान्तिनाथ दि० जैन खंडेलवाल पंचायती दीवान मन्दिर कामा (भरतपुर) के सौजन्य से (१ + २ + १ =) चार प्रतियां प्राप्त हुईं। शपथ स्वीकार कर लेने के बाद भी जब अन्य कही से सफलता नही मिली तब उज्जैन और ब्यावर की प्रतियों से केवल चतुर्थाधिकार की फोटो कॉपी करवाई गई। इस प्रकार कुछ प्रतिया प्राप्त अवश्य हुईं किन्तु वे सब मुद्रित प्रति के सदृश एक ही परम्परा की लिखी हुई थी। यहा तक कि पूर्व सम्पादकों को प्राप्त हुई बम्बई की प्रति ही उज्जैन की प्रति है और इसी की प्रतिलिपि कामा की प्रति है, मात्र प्रतिलिपि के लेखनकाल में अन्तर है। इस कारण कुछ पाठ भेदों के सिवा गाथाए आदि प्राप्त न होने से गणितादि की गुत्थियां ज्यों की त्यों उलझी ही रही।

उस समय परम पूज्य आचार्यवर्य १०८ विमलसागरजी म० और प० पूज्य १०८ श्री विद्यानन्दजी महाराज दक्षिण प्रान्त में ही विराज रहे थे। इन युगल गुरुराजों को पत्र लिखे कि मूलबिद्री के शास्त्र भण्डार से कन्नड़ की प्रति प्राप्त कराने की कृपा कीजिए। महाराज श्री ने तुरन्त श्री भट्टारकजी को पत्र लिखवा दिया और उदयपुर से भी श्रीमान् पं० प्यारेलालजी कोठड़िया ने पत्र दिया। जिसका उत्तर पं देवकुमारजी शास्त्री (वीरवाणी भवन, मूल बिद्री) ने दिनांक २१-४-१९८२ को दिया कि यहां तिलोयपण्णत्ती की दो ताड़पत्रीय प्राचीन प्रतिया मौजूद हैं। उनमें से एक प्रति मूलमात्र है और पूर्ण है। दूसरी प्रति में टीका भी है लेकिन उसमें अन्तिम भाग नहीं है पर संख्या की

संदृष्टियां वगैरह साफ हैं" इत्यादि। टीका की बात सुनते ही मन-मयूर नाच उठा। उसके लिए प्रयास भी बहुत किए। किन्तु अन्त में ज्ञात हुआ कि टीका नहीं है।

इसी बीच (सन् १९८२ के मई या जून में) ज्ञानयोगी भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी (मूलविद्री) उदयपुर आए। चर्चा हुई और आपने प्रतिलिपि भेजने का विशेष आश्वासन भी दिया किन्तु अन्त में वहां से चतुर्थाधिकार की गाथा सं० २२३८ पर्यन्त मात्र पाठभेद ही आए। साथ में सूचना प्राप्त हुई कि 'आगे के पत्र नहीं हैं'। एक अन्य प्रति की खोज की गई जिसमें चतुर्थाधिकार की गाथा सं० २५२७ से प्रारम्भ होकर पांचवें अधिकार की गाथा सं० २८० तक के पाठभेदों के साथ (चौथा अधिकार भी पूरा नहीं हुआ, उसमें २८९ गाथाओं के पाठभेद नहीं आए।) दिनांक २५-२-८३ को सूचना प्राप्त हुई कि ग्रन्थ यहां तक आकर अधूरा रह गया है अब आगे कोई पत्र नहीं हैं। इस सूचना ने हृदय को कितनी पीड़ा पहुंचाई इसको अभिव्यञ्जना कराने में यह जड़ लेखनी असमर्थ है।

संशोधन—मूलविद्री से प्राप्त पाठभेदों से पूर्व लिखित तीनों अधिकारों का संशोधन कर अर्थात् पाठभेदों के माध्यम से यथोचित परिवर्तन एवं परिवर्धन कर प्रेसकॉपी दिनांक १०-६-८३ को प्रेस में भेज दी और यह निर्णय ले लिया कि इन तीन अधिकारों का ही प्रकाशन होगा, क्योंकि पूरी गाथाओं के पाठ भेद न आने के कारण चतुर्थाधिकार शुद्ध हो ही नहीं सकता।

यहां अशोकनगरस्थ समाधिस्थल पर श्री १००८ शान्तिनाथ जिनालय का निर्माण दि० जैन समाज की ओर से कराया गया था। पुण्ययोग से मन्दिरजी की प्रतिष्ठा हेतु कर्मयोगी भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी जैनविद्री वाले मई मास १९८३ में यहां पधारे। ग्रन्थ के विषय में विशेष चर्चा हुई। आपने विश्वासपूर्वक आश्वासन दिया कि हमारे यहां एक ही प्रति है और पूर्ण है किन्तु अभी वहां कोई उभय भाषाविज्ञ विद्वान नहीं है। जिसकी व्यवस्था मैं वहां पहुंचते ही करूंगा और ग्रन्थ का कार्य पूर्ण करने का प्रयास करूंगा।

आप कर्मनिष्ठ, सत्यभाषी, गम्भीर और शान्त प्रकृति के हैं। अपने वचनानुसार सितम्बर माह (१९८३) के प्रथम सप्ताह में ही प्रथमाधिकार की लिप्यन्तरण गाथायें आ गई और तबसे आज पर्यंत यह कार्य अनवरत चालू है। गाथाएँ आने के तुरन्त बाद प्रेस से प्रेसकॉपी मंगाकर उन्हें पुनः संशोधित किया और इस टीका का मूलाधार इसी प्रति को बनाया। इसप्रकार जैनविद्री से सं० १२९६ की प्राचीन कन्नडप्रति की देवनागरी प्रतिलिपि प्राप्त हो जाने से और उसमें नवीन अनेक गाथाएँ, पाठभेद और शुद्ध संदृष्टियाँ आदि प्राप्त हो जाने से विषय एवं भाषा आदि में स्वयमेव परिवर्तन/परिवर्धन आदि हो गया, जिसके फलस्वरूप ग्रन्थ का नवीनीकरण जैसा ही हो गया है।

अन्तर्वेदना—हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त करने में कितना संक्लेश और उनके पाठों एवं गाथाओं आदि का चयन करने में कितना श्रम हुआ है, इसका वेदन सम्पादक समाज तो मेरे लिखे

बिना ही अनुभव कर लेगी क्योंकि वह भुक्तभोगी है और अन्य भव्यजन लिख देने पर भी उसका अनुभव नहीं कर सकेंगे क्योंकि—

न हि वन्ध्या विजानाति पर-प्रसव-वेदनाम् ।

कार्यक्षेत्र—वीरप्रसविनी झीलों की नगरी उदयपुर अपने नगर-उपनगरों में स्थित लगभग पन्द्रह-सोलह जिनालयों से एवं देव-शास्त्र-गुरु भक्त और धर्म-निष्ठ समाज से गौरवान्वित है। नगर के मध्य मण्डी की नाल में स्थित १००८ श्री पार्श्वनाथ दि० जैन खण्डेलवाल मन्दिर इस ग्रन्थ का रचना क्षेत्र रहा है। यह स्थान सभी साधन सुविधाओं से युक्त है। यहीं बैठकर ग्रन्थ के तीन महाधिकार पूर्ण होकर प्रथम खण्ड के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं और चतुर्थ महाधिकार का ३ कार्य पूर्ण हो चुका है।

सम्बल—इस भव्य जिनालय में स्थित भूगर्भ प्राप्त, श्याम वर्ण, खड्गासन, लगभग ३' उत्तुंग, अतिशयवान् अति मनोज्ञ १००८ श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनेन्द्र की चरण रज एवं हृदयस्थित आपकी अनुपम भक्ति, आगमनिष्ठा और परम पूज्य परम श्रद्धेय साधु परमेष्ठियों का शुभाशीर्वाद रूप वरद हस्त ही मेरा सबल सम्बल रहा है। क्योंकि जैसे लकड़ी के आधार बिना अंधा व्यक्ति चल नहीं सकता वैसे ही देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति बिना मैं यह महान् कार्य नहीं कर सकती थी। ऐसे तारण-तरण देव, शास्त्र, गुरु को मेरा कोटिशः त्रिकाल नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

आधार—प्रो० आदिनाथ उपाध्याय एवं प्रो० हीरालालजी द्वारा सम्पादित, पं० बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री द्वारा हिन्दी भाषानुवादित एवं **जीवराज ग्रन्थमाला से प्रकाशित तिलोयपण्णत्ती और जैनबिद्री स्थित जैन मठ की कन्नड प्रति से की हुई देवनागरी लिपि** ही इस ग्रन्थ की आधारशिला है। कार्य के प्रारम्भ में तो मूलबिद्री की कन्नड प्रति के पाठभेदों का ही आधार था किन्तु यह प्रति अधूरी ही प्राप्त हुई।

यदि मुद्रित प्रति न होती तो मैं अल्पमति इसकी हिन्दी टीका कर ही नहीं सकती थी और यदि कन्नड प्रतियां प्राप्त न होती तो पाठों की शुद्धता, विषयों की संबद्धता तथा ग्रंथ की प्रामाणिकता आदि अनेक विशेषतायें ग्रन्थ को प्राप्त नहीं हो सकती थी।

सहयोग—नींव के पत्थर सदृश सर्व प्रथम सहयोग उदयपुर की उन भोली भाली माता-बहिनों का है जो तीन वर्ष के दीर्घकाल से संयम और ज्ञानाराधन के कारणभूत आहारादि दान प्रवृत्ति में वात्सल्य पूर्वक तत्पर रहीं हैं।

श्री ज्ञानयोगी भट्टारक चारुकीर्तिजी एवं पं० श्री देवकुमार शास्त्री, मूलबिद्री तथा श्री कर्मयोगी भट्टारक चारुकीर्तिजी एवं पं० श्री देवकुमारजी शास्त्री, जैनबिद्री का प्रमुख सहयोग प्राप्त हुआ। प्राचीन कन्नड की देवनागरी लिपि देकर इस ग्रन्थ को शुद्ध बनाने का पूर्ण श्रेय आपको ही है।

तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ प्राकृत भाषा में है और यहां प्राकृत भाषाविज्ञ **डा० कमलचन्द्रजी सोगाणी, डा० प्रेमसुमनजी जैन और डा० उदयचन्द्रजी जैन** उच्चकोटि के विद्वान हैं। समय-समय पर आपके सुझाव आदि बराबर प्राप्त होते रहे हैं। प्रतियों के मिलान एवं पाठों के चयन आदि में **डा० उदयचन्द्रजी** का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है।

सम्पादक श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी सौम्य मुद्रा, सरल हृदय, संयमित जीवन और समीचीन ज्ञान भण्डार के धनी हैं। सम्पादन-कार्य के अतिरिक्त समय-समय पर आपका बहुत सहयोग प्राप्त होता रहा है। आपकी कार्यक्षमता बहुत कुछ अंशों में श्री रतनचन्द्रजी मुख्तार के रिक्त स्थान की पूर्ति में सक्षम सिद्ध हुई है।

पूर्व अवस्था के विद्यागुरु, अनेक ग्रन्थों के टीकाकार, सरल प्रकृति, सौम्याकृति, अपूर्व विद्वत्ता से परिपूर्ण, विद्वच्छिरोमणि वयोवृद्ध **पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य** की सत्प्रेरणा मुझे निरन्तर मिलती रही है और भविष्य में भी दीर्घकाल पर्यंत मिलती रहे, ऐसी भावना है।

श्रीमान् उदारचेत्ता दानशील **श्री निर्मलकुमारजी सेठी** इस ज्ञानयज्ञ के प्रमुख यजमान हैं। वे धर्मकार्यों में इसी प्रकार अग्रसर रह कर धर्म-उद्योत करने में निरन्तर प्रयत्नशील बने रहें।

श्रीमान् कजोड़ीमलजी कामदार, श्री धर्मचन्द्रजी शास्त्री, श्रीमान् मीरजजी, ब्र० चंचलबाई, ब्र० कुमारी पंकज, प्रेस मालिक श्री पांचूलालजी, श्री विमलप्रकाशजी ड्राफ्ट्स मेन अजमेर, श्री **रमेशचन्दजी मेहता उदयपुर और मुनिभक्त दि० जैन समाज उदयपुर** का पूर्ण सहयोग प्राप्त होने से ही आज यह ग्रन्थ नवीन परिधान में प्रकाशित हो पाया है।

आशीर्वाद—इस सम्यग्ज्ञान रूपी महायज्ञ में तन, मन एवं धन आदि से जिन-जिन भव्य जीवों ने किञ्चित् भी सहयोग दिया है वे सब परम्पराय शीघ्र ही विशुद्ध ज्ञान को प्राप्त करें। यही मेरा आशीर्वाद है।

अन्तिम—मुझे प्राकृत भाषा का किञ्चित् भी ज्ञान नहीं है। बुद्धि अल्प होनेसे विषयज्ञान भी न्यूनतम है। स्मरण शक्ति और शारीरिक शक्ति क्षीण होती जा रही है। इस कारण स्वर, व्यंजन, पद, अर्थ एवं गणित आदि की भूल हो जाना स्वाभाविक है क्योंकि—'को न विमुह्यति शास्त्र-समुद्रे'। अतः परम पूज्य गुरुजनों से इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूं। विद्वज्जन ग्रन्थ को शुद्ध करके ही अर्थ ग्रहण करें।

इत्यलम्। भद्रं भूयात्।

—आर्यिका विशुद्धमती
दिनांक ७-२-१९८४

सं० २०४०
बसन्त पंचमी

परम पूज्य १०५ आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी

(संक्षिप्त परिचय)

❖

गृहस्थाश्रम का नाम	:	श्री सुमित्राबाई
जन्मस्थान	:	रीठी (जबलपुर) म० प्र०
पिता	:	श्रीमान् सिं० लक्ष्मणलालजी
माता	:	सौ० मथुराबाई
भाई	:	श्री नीरज जैन (गोमटेशगाथा के लेखक)
	:	श्री निर्मल जैन, मु० सतना (म० प्र०)
जाति	:	गोलापूर्व
जन्मतिथि	:	सं० १९८६ चैत्र शुक्ला तृतीया शुक्रवार, दि० १२-४-१९२९ ई०
लौकिकशिक्षा	:	साहित्यरत्न एवं विद्यालंकार, दो वर्षीय शिक्षकीय ट्रेनिंग।
धार्मिक शिक्षा	:	धर्म विषय में शास्त्री
धार्मिक शिक्षा गुरु	:	विद्वद्शिरोमणि डॉ० पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर—म० प्र० (राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)
कार्यकाल	:	श्री दिगम्बर जैन महिलाश्रम (विधवाश्रम) का सुचारु रीत्या संचालन करते हुए प्रधानाध्यापिका के पद पर करीब १२ वर्ष पर्यन्त कार्य किया एवं अपने सद्प्रयत्नों से संस्था में १००८ श्री पार्श्वनाथ चैत्यालय की स्थापना करवाई।
वैराग्य का कारण	:	परम पूज्य परम श्रद्धेय आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज के सन् १९६२ सागर (म० प्र०) चातुर्मास में आपकी परम निरपेक्षवृत्ति और परम शान्त स्वभाव का आकर्षण एवं संघस्थ प० पू० प्रखर वक्ता १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज के मार्मिक सम्बोधन।
आर्यिका दीक्षा गुरु	:	परम पूज्य तपस्वी, अध्यात्मवेत्ता, चारित्रशिरोमणि, दिगम्बराचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज।
शिक्षागुरु	:	परम पूज्य सिद्धान्तवेत्ता आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज।
विद्यागुरु	:	परम पूज्य अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी १०८ श्री अजितसागरजी महाराज।
दीक्षास्थल	:	श्री अतिशयक्षेत्र पपौराजी (म० प्र०)

दीक्षादिवस : सं० २०२१ श्रावण शुक्ला सप्तमी; दि० १४ अगस्त १९६४ ई०

वर्षायोग : पपौरा, श्री अतिशयक्षेत्र श्रीमहावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़, टोडारायसिंह, भिण्डर, उदयपुर, अजमेर, निवाई, रेनवाल (किशनगढ़), सवाईमाधोपुर, सीकर, रेनवाल (किशनगढ़), निवाई, निवाई, टोडारायसिंह, उदयपुर, उदयपुर, उदयपुर।

साहित्य सृजन :

टीकाएँ :

१. श्रीमद् सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार की सचित्र हिन्दी टीका।

२. भट्टारक सकलकीर्तिविरचित सिद्धान्तसार दीपक अपरनाम त्रैलोक्यसार दीपक की हिन्दी टीका।

३. परमपूज्य यतिवृषभाचार्य विरचित तिलोयपण्णत्ती की सचित्र हिन्दी टीका।

मौलिक रचनाएँ :

१. श्रुतनिकुंज के किंचित् प्रसून (व्यवहार रत्नत्रय की उपयोगिता)

२. गुरु गौरव

३. श्रावक सोपान और बारह भावना।

संकलन : १. शिवसागर स्मारिका २. आत्मप्रसून

सम्पादन : १. समाधिदीपक २. श्रमणचर्या ३. दीपावली पूजन विधि ४. श्रावक सुमन संचय।

विशेष धर्मप्रभावना : (१) आपकी प्रखर और मधुर वाणी से प्रभावित होकर श्री दिगम्बर जैन समाज, जोबनेर (जयपुर) ने श्री शान्तिवीर गुरुकुल को स्थायित्व प्रदान करने हेतु श्री दिगम्बर जैन महावीर चैत्यालय का नवीन निर्माण कराया एवं आपके सान्निध्य में ही वेदी प्रतिष्ठा कराई। (२) जन-धन एवं आवागमन आदि अन्य साधन विहीन अलयारी ग्राम स्थित जिनमन्दिर का जीर्णोद्धार; २½ फुट ऊँची १००८ श्री चन्द्रप्रभ भगवान की नवीन प्रतिमा तथा संगमरमर की नवीन वेदी की प्राप्ति एवं वेदीप्रतिष्ठा आपके ही सद्प्रयत्नों का फल है। (३) इसीप्रकार अनेक स्थानों पर कलशारोहण महोत्सव हुए, जैन पाठशालाएं खोली गईं; श्री दिगम्बर जैन धर्मशाला टोडारायसिंह का नवीनीकरण भी आपकी ही सद्प्रेरणा का फल है।

संयमदान : श्री ब्र० सूरजबाई मु० इ्योढ़ी (जयपुर) की क्षुल्लिका दीक्षा; श्री ब्र० मनफूलबाई मातेश्वरी श्री गुलाबचन्दजी कपूरचन्दजी सर्राफ टोडारायसिंह को आठवीं प्रतिमा एवं श्री कजोड़ीमल कामदार (जोबनेर) आदि को दूसरी प्रतिमा के व्रत आपके करकमलों से प्रदान किए गए।

—कजोड़ीमल कामदार (जोबनेर वाले)

प्रकाशकीय

जदिवसह कृत तिलोयपण्णत्ती प्राकृत भाषा में जैन करणानुयोग का एक प्राचीन ग्रंथ है। प्रसंगवश इसमें जैन सिद्धान्त, इतिहास व पुराण सम्बन्धी भी बहुत सी सामग्री उपलब्ध होती है। मुख्यतः इसमें तीन लोक का वर्णन है। जैन धर्म और जैन वाङ्मय के इतिहास का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए लोक विवरण सम्बन्धी ग्रथ भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने कोई भी अन्य ग्रन्थ हो सकते हैं। 'तिलोयपण्णत्ती' इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसका प्रथम प्रकाशन जीवराज ग्रन्थमाला, सोलापुर से डा. हीरालाल जैन व डा. ए. एन. उपाध्ये के सम्पादकत्व में पं० बालचन्दजी शास्त्रीकृत हिन्दी अनुवाद के साथ हुआ था जो अब अप्राप्य है। गणित सम्बन्धी जटिलता के कारण इस संस्करण में कुछ सन्दर्भ अस्पष्ट रह गये थे। प्रथमाधिकार के स्वाध्याय के दौरान ही टीकाकर्त्री पूज्य माताजी विशुद्धमतीजी को इस अस्पष्टता की प्रतीति हुई जिसे उन्होंने स्व० पं० रतनचन्दजी मुख्तार, सहारनपुर वालों से समझा। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी पूज्य माताजी इससे पूर्व 'त्रिलोकसार' व 'सिद्धांतसार दीपक' जैसे लोक विवरण सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रथों की हिन्दी टीका कर चुकी थी। उदयपुर में, उन्होने इस प्राचीन ग्रंथ की अन्य हस्तलिखित प्रतियों को आधार बनाकर पाठ संशोधन किया और विषय को चित्रों व संदृष्टियो के माध्यम मे सुबोध बना कर भाषा टीका की।

सयोग से, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मलकुमारजी सेठी पूज्य माताजी के दर्शनार्थ उदयपुर पधारे। ग्रन्थ के प्रकाशन की चर्चा चली तो माननीय सेठीजी ने इसे महासभा से प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकार कर लिया। महासभा का प्रकाशन विभाग अभी दो-तीन वर्षों से ही सक्रिय हुआ है और 'तिलोयपण्णत्ती' जैसे ऐतिहासिक महत्त्व के प्राचीन ग्रन्थ का प्रकाशन कर अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता है। महासभा सच्चे देव शास्त्र गुरु में अटूट निष्ठा रखने वाले दिगम्बर जैन समाज की लगभग ९० वर्षों से सक्रिय रहने वाली एक प्राचीन संस्था है जिसके कार्यकलापों की जानकारी इसके मुखपत्र "जैन गजट" के माध्यम से पाठकों को मिलती रहती है। श्री सेठीजी ने १९८१ में महासभा की अध्यक्षता ग्रहण की थी तबसे आपके मार्गदर्शन में यह संस्था निरन्तर अपने उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्णतः प्रयत्नशील है।

श्री सेठीजी ने न केवल ग्रन्थ के प्रकाशन की स्वीकृति ही दी है अपितु पारमार्थिक कार्यों के लिए निर्मित अपने 'सेठी ट्रस्ट' से इसके प्रकाशन के लिए उदारतापूर्वक अर्थ सहयोग भी प्रदान किया है, एतदर्थ महासभा का प्रकाशन विभाग आपका अतिशय आभार मानता है और यही कामना करता

है कि देव शास्त्र गुरु में आपकी भक्ति निरन्तर वृद्धिगत हो। अनेक समितियों, संस्थाओं व क्षेत्रों को आपका उदार संरक्षण प्राप्त है। श्रावकोचित आपकी सभी प्रवृत्तियाँ सराहनीय एवं अनुमोदनीय हैं।

'तिलोयपण्णत्ती' ग्रन्थ नौ अधिकारों का विशालकाय ग्रंथ है। आपके हाथों में तीन अधिकारों का यह पहला खण्ड देते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता है। दूसरा और तीसरा खण्ड भी निकट भविष्य में हम उदार दातारों के सहयोग से आपके स्वाध्यायार्थ प्रस्तुत कर सकेंगे, ऐसी आशा है।

ग्रंथ प्रकाशन एक महदनुष्ठान है जिसमें अनेक लोगों का सहयोग सम्प्राप्त होता है। महासभा का प्रकाशन विभाग अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी प. पू. १०५ आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी के चरणों में शतशः नमोस्तु निवेदन करता है जिनके ज्ञान का सुफल इस नवीन हिन्दी टीका के माध्यम से हमें प्राप्त हुआ है। आशा है, पू. माताजी की ज्ञानाराधना शीघ्र ही हमें दूसरा व तीसरा खण्ड भी प्रकाशित करने का गौरव प्रदान करेगी।

महासभा का प्रकाशन विभाग ग्रन्थ के सम्पादक डा. चेतनप्रकाशजी पाटनी, गणित के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो. लक्ष्मीचंदजी जैन और पुरोवाक् लेखक—जैन जगत् के वयोवृद्ध संयमी विद्वान् पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य का भी अतिशय कृतज्ञ है जिनके सहयोग से प्रस्तुत संस्करण अपना वर्तमान रूप पा सका है। लेखन, सम्पादन, संशोधन कार्यों के अतिरिक्त भी ग्रंथ प्रकाशन के अनेक कार्य बच रहते हैं वे भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होते। समस्त पत्राचार पू. माताजी के संघस्थ ब्र० कजोड़ीमलजी कामदार ने किया है और वे ग्रन्थ सृजन में आने वाली तात्कालिक कठिनाइयों का भी निवारण करते रहे हैं। श्री सेठीजी से सम्पर्क कर प्रेस को कागज आदि पहुंचाने की व्यवस्था के गुरु भार का निर्वाह ब्र० धर्मचंदजी जैन शास्त्री ने किया है। महासभा का प्रकाशन विभाग इन दोनों महानुभावों का आभारी है। गणितीय जटिल ग्रंथ के सुरुचिपूर्ण मुद्रण के लिए मुद्रक श्री पाँचूलालजी जैन कमल प्रिन्टर्स भी धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है, महासभा का यह गौरवपूर्ण प्रकाशन वीतराग की वाणी के सम्यक् प्रचार में कृतकार्य होगा। इति शुभम्

राजकुमार सेठी
मंत्री : प्रकाशन विभाग
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

❖

प्रस्तावना

तिलोयपण्णत्ती : प्रथम खण्ड

(प्रथम तीन महाधिकार)

१. ग्रन्थ-परिचय :

समग्र जैन वाङ्मय प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग और द्रव्यानुयोग रूप से चार अनुयोगों में व्यवस्थित है। करणानुयोग के अन्तर्गत जीव और कर्म विषयक साहित्य तथा भूगोल-खगोल विषयक साहित्य गर्भित है। वैदिक वाङ्मय और बौद्ध वाङ्मय में भी लोक रचना से सम्बन्धित बातों का समावेश तो है परन्तु जैसे स्वतन्त्र ग्रंथ जैन परम्परा में उपलब्ध हैं वैसे उन परम्पराओं में नहीं देखे जाते।

तिलोयपण्णत्ती (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) करणानुयोग के अन्तर्गत लोकविषयक साहित्य की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। यह प्राकृत भाषा में लिखी गई है। यद्यपि इसका प्रधान विषय लोक-रचना का स्वरूप वर्णन है तथापि प्रसंगवश धर्म, संस्कृति व पुराण-इतिहास से सम्बन्धित अनेक बातों का वर्णन इसमें उपलब्ध है।

ग्रंथकर्त्ता यतिवृषभ ने इस रचना में परम्परागत प्राचीन ज्ञान का संग्रह किया है न कि किसी नवीन विषय का। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही ग्रंथकार ने लिखा है—

मंगलपहुदिच्छक्कं वक्खाणिय विविह-गंथ-जुत्तीहिं।
जिणवरमुहणिक्कंतं गणहरदेवेहिं गथित पदमालं ॥८५॥

सासद-पदमावण्णं पवाह-रूवत्तणेण-दोसेहिं।
णिस्सेसेहि विमुक्कं आइरिय-अणुक्कमाआदं ॥८६॥

भव्व-जणाणंदयरं वोच्छामि अहं तिलोयपण्णत्तिं।
णिब्भर-भत्ति-पसादिद-वर-गुरु-चलणाणुभावेण ॥८७॥

रचनाकार ने कई स्थानों पर यह भी स्वीकार किया है कि इस विषय का विवरण और उपदेश उन्हें परम्परा से गुरु द्वारा प्राप्त नहीं हुआ है अथवा नष्ट हो गया है। इसप्रकार यतिवृषभाचार्य प्राचीन सम्माननीय ग्रंथकार हैं। धवलाकार ने तिलोयपण्णत्ती के अनेक उद्धरण अपनी टीका में उद्धृत किए हैं। आचार्य यतिवृषभ ने एकाधिकबार यह उल्लेख किया है कि 'ऐसा दृष्टिवाद अंग में

निर्दिष्ट है। इय दिट्ठं दिट्ठिवादम्हि (१/६६), 'वास उदयं भणामो णिस्संदं दिट्ठि-वादादो' (१/१४८)। यह उल्लेख दर्शाता है कि ग्रंथ का स्रोत दृष्टिवाद नामक अंग है। गौतम गणधर ने तीर्थङ्कर महावीर की दिव्यध्वनि सुनकर द्वादशांग रूप जिनवाणी की रचना की थी। इसमें दृष्टिवाद नामका बारहवाँ अंग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विशाल था। इस अंग के ५ भेद हैं १. परिकर्म, २. सूत्र, ३. प्रथमानुयोग, ४. पूर्वगत और ५. चूलिका। परिकर्म के भी ५ भेद हैं—१. व्याख्याप्रज्ञप्ति, २. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, ३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४. सूर्यप्रज्ञप्ति और ५. चन्द्रप्रज्ञप्ति। ये सब ग्रंथ आज लुप्त हैं। इनके आधार पर रचित ग्रंथ इनके अभाव की आंशिक पूर्ति अवश्य करते हैं। तिलोयपण्णत्ती ऐसा ही ग्रन्थ है, बाद के अनेक ग्रन्थ इसके आधार से बने प्रतीत होते हैं। डा० हीरालाल जैन के अनुसार "इसकी प्राचीनता के कारण यह अर्धमागधी श्रुतांग ग्रंथों के साथ तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने योग्य है और अन्तत: भारतीय पुरातत्त्व, धर्म एवं भाषा के अध्येताओं के लिए इस ग्रंथ के विविध विषय और इसकी प्राकृत भाषा रोचकता से रहित नहीं है।"

सम्पूर्ण ग्रंथ को रचयिता आचार्य ने योजनापूर्वक नौ महाधिकारों में सँवारा है—

सामण्णजगसरूवं[1] तम्मि ठियं [2]णारयाणलोयं च।
भावण[3]-णर[4]-तिरियाणं,[5] वेंतर[6]-जोइसिय[7]-कप्पवासीणं[8] ॥८८॥

सिद्धाणं[9] लोगो त्ति य, अहियारे पयद-दिट्ठ-णव भेए।
तम्मि णिबद्धे जीवे, पसिद्ध-वर-वण्णणा-सहिए ॥८९॥

वोच्छामि सयलभेदे, भव्वजणाणंद-पसर-संजणणं।
जिणमुहकमलविणिग्गिय - तिलोयपण्णत्ति-णामाए ॥९०॥

उपर्युक्त नौ महाधिकारों मे अनेक अवान्तर अधिकार हैं। अधिकांश ग्रन्थ पद्यमय है किन्तु गद्यखण्ड भी आये हैं। प्रारम्भिक मंगलाचरण में पंचपरमेष्ठी का स्तवन हुआ है परन्तु सिद्धों का स्तवन पहले है, अरहन्तों का बाद में। फिर पहले महाधिकार के अन्त से प्रारम्भ कर प्रत्येक महाधिकार के आदि और अन्त में क्रमश: एक-एक तीर्थंकर को नमस्कार किया गया है और अर से वर्धमान तक तीर्थंकरों को अन्तिम महाधिकार के अन्त में नमस्कार किया गया है।

इस ग्रंथ का पहली बार सम्पादन दो भागों में प्रो० हीरालाल जैन व प्रो० ए. एन. उपाध्ये द्वारा १९४३ व १९५१ में सम्पन्न हुआ था। पं० बालचन्द्रजी सिद्धान्त शास्त्री का मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद भी इसमें है। इसका प्रकाशन जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर से जीवराज जैन ग्रंथमाला के प्रथम ग्रंथ के रूप में हुआ था। उस समय सम्पादकद्वय को उत्तर भारत की दो ही महत्त्वपूर्ण प्रतियां सुलभ हुई थी अत: उन्हींके आधार पर तथा अपनी तीक्ष्ण मेधा शक्ति के बल पर उन्होंने यह

दुष्कर कार्य सम्पन्न किया था। वे कोटि-कोटि बधाई के पात्र हैं। इन मुद्रित प्रतियों के होने से हमें वर्तमान संस्करण को प्रस्तुत करने में भरपूर सहायता प्राप्त हुई है, हम उनके अत्यन्त ऋणी हैं। इन मुद्रित प्रतियों में सम्पूर्ण ग्रन्थ का स्थूल रूप इस प्रकार है—

क्रम सं.	विषय	अन्तराधिकार	कुल पद्य	गद्य	गाथा के अतिरिक्त छंद	मंगलाचरण
१.	प्रस्तावना व लोक का सामान्य निरूपण	×	२८३	गद्य		पंचपरमेष्ठी/आदि०
२.	नारकलोक	१५ अधि०	३६७	×	४ इन्द्रवज्रा १ स्वागता	अजित/सम्भव०
३.	भवनवासीलोक	२४ अधि०	२४३	×	२ इन्द्रवज्रा ४ उपजाति	अभिनंदन/सुमति
४.	मनुष्यलोक	१६ अधि०	२९६१	गद्य	७इ.व ,२दोधक २व ति,१शा.वि	पद्मप्रभ/सुपार्श्व
५.	तिर्यग्लोक	१६ अधि०	३२१	गद्य	—	चन्द्रप्रभ/पुष्पदन्त
६.	व्यन्तरलोक	१७ अधि०	१०३	×	—	शीतल/श्रेयांस
७.	ज्योतिर्लोक	१७ अधि०	६१९	गद्य	—	वासुपूज्य/विमल
८.	देवलोक	२१ अधि०	७०३	गद्य	१ शार्दूल वि०	अनन्त/धर्मनाथ
९.	सिद्धलोक	५ अधि०	७७	×	१ मालिनी	शांति,कुन्थु/अर से वर्ध.

अपनी सीमाओं के बावजूद इसके प्रथम सम्पादकों ने जो श्रम किया है वह नूनमेव स्तुत्य है। सम्भव पाठ, विचारणीय स्थल आदि की योजना कर मूल पाठ को उन्होंने अधिकाधिक शुद्ध करने का प्रयास किया है। उनकी निष्ठा और श्रम की जितनी सराहना की जाए कम है।

२. टीका व सम्पादन का उपक्रम :

आर्यारत्न १०५ श्री विशुद्धमती माताजी अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी विदुषी साध्वी हैं। आपने त्रिलोकसार (नेमिचन्द्राचार्यकृत) और सिद्धान्तसार दीपक (भट्टारक सकलकीर्ति) जैसे महत्त्वपूर्ण विशालकाय ग्रन्थों की विस्तृत हिन्दी टीका प्रस्तुत की है। ये दोनों ग्रंथ क्रमशः भगवान महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण वर्ष और बाहुबली सहस्राब्दी प्रतिष्ठापना-महामस्तकाभिषेक महोत्सव वर्ष के

पुण्य प्रसंगों पर प्रकाशित होकर विद्वद्जनों में समादरणीय हुए हैं। इन ग्रंथों की तैयारियों में कई बार तिलोयपण्णत्ती का अवलोकन करना होता था क्योंकि विषय की समानता है और साथ ही तिलोयपण्णत्ती प्राचीन ग्रन्थ भी है। 'सिद्धांतसारदीपक' के प्रकाशन के बाद माताजी की यह भावना बनी कि तिलोयपण्णत्ती की अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ जुटा कर एक प्रामाणिक संस्करण विस्तृत हिन्दी टीका सहित प्रकाशित किया जाए। आप तभी से अपने संकल्प को मूर्त रूप देने में जुट गईं और अनेक स्थानों से आपने हस्तलिखित प्रतियां भी मँगवा लीं। पर प्रतियों के मिलान करने से ज्ञात हुआ कि उत्तर भारत की लगभग सभी प्रतियां एकसी हैं। जो कमियाँ, दिल्ली और बम्बई की प्रतियों में हैं वे ही लगभग सब में हैं। अतः कुछ विशेष लाभ नहीं दिखाई दिया। अब दक्षिण भारत में प्रतियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की गई। संयोग से मूडबद्री मठ के भट्टारक स्वामी ज्ञानयोगी चारुकीर्तिजी का आगमन हुआ। वे उदयपुर माताजी के दर्शनार्थ भी पधारे। माताजी ने तिलोयपण्णत्ती के सम्बन्ध में चर्चा की तो वे बोले कि मूडबद्री मे श्रीमती रमारानी जैन शोध संस्थान में प्रतियाँ हैं पर वे कन्नड़ लिपि में हैं अतः वहीं एक विद्वान बैठाकर पाठान्तर भेजने की व्यवस्था करनी होगी। वहाँ जाकर उन्होंने पाठभेद भिजवाये भी परन्तु ज्ञात हुआ कि वहाँ की दोनों प्रतियाँ अपूर्ण हैं। इन पाठान्तरों में कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, कुछ छूटी हुई गाथाएं भी इनमें मिली हैं अतः बड़ी व्यग्रता थी कि कोई पूर्ण प्रति मिल जाए। खोज के प्रयत्न चलते रहे तभी अशोकनगर उदयपुर में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर श्रवणबेलगोला मठ के भट्टारक स्वामी कर्मयोगी चारुकीर्तिजी पधारे। उन्होंने बताया कि वहां एक पूर्ण प्रति है, शीघ्र ही लिप्यन्तरण मँगाने की योजना बनी और वहाँ एक विद्वान रख कर लिप्यन्तरण मँगाया गया, यह प्रति काफी शुद्ध, विश्वसनीय और प्राचीन है। फलतः इसी प्रति को प्रस्तुत संस्करण की आधार प्रति बनाया गया है। यों अन्य सभी प्रतियों के पाठ भेद टिप्पण में दिये हैं।

तिलोयपण्णत्ती विशालकाय ग्रंथ है। पहले यह छोटे टाइप में दो भागों में छपा है। परंतु विस्तृत हिंदी टीका एवं चित्रों के कारण इसकी स्थूलता बहुत बढ़ गई है अतः अब इसे तीन खण्डों में प्रकाशित करने की योजना बनी है। प्रस्तुत कृति (तीन महाधिकारों का) प्रथम खंड है। दूसरे खंड में केवल चौथा अधिकार—लगभग ३००० गाथाओं का होगा। तीसरे अर्थात् अंतिम खंड में शेष पांच अधिकार रहेंगे।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा इसके प्रकाशन का व्ययभार वहन कर रही है, एतदर्थ हम महासभा के अतीव आभारी हैं।

पूज्य माताजी का संकल्प आज मूर्त हो रहा है, यह हमारे लिये अत्यंत प्रसन्नता का विषय है। पूर्णतया समालोचक दृष्टि से सम्पादित तो नहीं किंतु अधिकाधिक प्रामाणिकता पूर्वक सम्पादित

संस्करण प्रकाशित करने का हमारा लक्ष्य आज पूरा हो रहा है, यह आत्मसंतोष मेरे लिए महार्घ है ।

३. हस्तलिखित प्रतियों का परिचय :

तिलोयपण्णत्ती का प्रस्तुत संस्करण निम्नलिखित प्रतियों के आधार से तैयार किया गया है—

[१] द—दिल्ली से प्राप्त होने के कारण इस प्रति का नाम 'द' प्रति है। इसके मुखपृष्ठ पर 'श्री दिगम्बर जैन सरस्वती भण्डार धर्मपुरा, दिल्ली (लाला हरसुखराय सुगनचंदजी) न० आ ८ (क) श्री नवामंदिरजी' अंकित है। यह १२"×५" आकार की है। कुल २०४ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में १४ पंक्तिया हैं और प्रति पंक्ति में ५० से ५२ वर्ण है। पूरी प्रति काली स्याही से लिखी गई है। प्रत्येक पृष्ठ का अलकरण है। एक ओर पृष्ठ के मध्यभाग में लाल रंग का एक वृत्त है, दूसरी ओर तीन वृत्त। एक स्थान पर मध्य में १६ गाथाये छूट गई हैं जो अन्त में एक स्वतन्त्र पत्र पर लिख दी गई हैं; साथ में यह टिप्पण है—'इति गाहा १६ त्रैलोक्यप्रज्ञप्तौ पश्चात् प्रक्षिप्ता ।" सम्पूर्ण प्रति बहुत सावधानी से लिखी हुई मालूम होती है तो भी अनेक लिपिदोष तो मिलते ही हैं। देखने में यह प्रति बम्बई की प्रति से प्राचीन मालूम पड़ती है।

आरम्भ में मङ्गल चिह्न के बाद प्रति इस प्रकार प्रारम्भ होती है—ॐ नमः सिद्धेभ्यः। प्रति के अन्त में लिपिकार की प्रशस्ति इस प्रकार है—

प्रशस्तिः स्वस्ति श्री सं० १५१७ वर्षे मार्गं सुदि ५ भौमवारे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनदिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीशुभचन्द्रदेवाः तत्पट्टालङ्कारभट्टारकश्रीजिनचन्द्रदेवाः । मु० श्रीमदनकीर्नि तच्छिष्य ब्रह्मनरस्यंघकस्य खंडेलवालान्वये पाटणीगोत्रे सं० वी धू भार्या बहुश्री तत्पुत्र सा० निहुणा भार्या तिहुणश्री सुपुत्राः देवगुरुचरणकमलसंसेवनमधुकराः द्वादशव्रतप्रतिपालनतत्पराः सा० महिराजभ्रातृभ्यौ राजसुपुत्रजालप। महिराजभार्या महणश्रीभ्यौ राजभार्याभ्यौ श्री सहिते त्पः एतद ग्रन्थं त्रैलोक्यप्रज्ञप्तिसिद्धान्तं लिखाप्य ब्र० नरस्यंघकृते कर्मक्षयनिमित्तेः प्रदत्तं ।।छ।।

यावज्जिनेन्द्रधर्मोऽयं लोलोकेस्मिन् प्रवर्तते ।
यावत्सुरनदीवाहास्तावन्नन्दतु पुस्तकः ।।१।।

इदं पुस्तकं चिर नंद्यात् ।।छ।। शुभमस्तु ।। लिखितं पं० नरसिंहेन ।।छ।। श्रीझुंझुणुपुरे लिखितमेतत्पुस्तकम् ।।छ।।

(पूर्व सम्पादन भी इसी प्रति से हुआ था ।)

[२] क—कामां (भरतपुर) राजस्थान से प्राप्त होने के कारण इस प्रति का नाम 'क' प्रति है। यह कामां के श्री १००८ शान्तिनाथ दिगम्बर जैन खण्डेलवाल पंचायती दीवान मन्दिर से प्राप्त हुई है। यह १२३/४"×७" आकार की है और इसके कुल पत्रों की संख्या ३१६ है। प्रत्येक पत्र में १३ पंक्तियां हैं। प्रति पंक्ति में ३७ से ४० वर्ण हैं। लेखन में काली व लाल स्याही का प्रयोग किया गया है। पानी एवं नमी का असर पत्रों पर हुआ दिखाई देता है तथापि प्रति पूर्णतः सुरक्षित और अच्छी स्थिति में है।

यह बम्बई प्रति की नकल ज्ञात होती है, क्योंकि वही प्रशस्ति ज्यों की त्यों लिखी गई है। लिपिकाल का अन्तर है—

"संवत् १८१४ वर्षे मित्ती माघ शुक्ला नवम्यां गुरुवारे। इदं पुस्तकं लिपीकृतं कामावतीनगर-मध्ये। शूतं भूयात् ।। श्रीः ।।

❀ ❀ ❀

[३] ठ—इस प्रति का नाम 'ठ' प्रति है। यह डॉ० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल के सौजन्य से श्री दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, मन्दिरजी ठोलियान, जयपुर से प्राप्त हुई है। इसके वेष्टन पर 'नं० ३३२, श्री त्रिलोकप्रज्ञप्ति प्राकृत' अंकित है। प्रति १२३/४"×५" आकार की है। कुल पत्र संख्या २८३ है परन्तु पत्र संख्या ८८ से १०३ और १५१ से २५० प्रति में उपलब्ध नहीं हैं।

पत्र संख्या १ से ८६ तक की लिपि एक सी है। पत्र ८७ एक ओर ही लिखा गया है। दूसरी ओर बिल्कुल खाली है। इसके हाशिए में बाये कोने में १०३ संख्या अंकित है और दायें कोने में नीचे हाशिए में संख्या ८७ अंकित है। यह पृष्ठ अलिखित है।

पत्र संख्या १०४ से १५० और २५१ से २८३ तक के पत्रों की लिपि भी भिन्न भिन्न है। इस प्रकार इस प्रति में तीन लिपियां हैं। प्रति अच्छी दशा में है। कागज भी मोटा और अच्छा है। पत्र संख्या १०४ से १५० तक के हाशिये में बायीं तरफ ऊपर 'त्रिलोक प्रज्ञप्ति' लिखा गया है। शेष पत्रों में नही लिखा गया है।

इसका लिपि काल ठीक तरह से नहीं पढ़ा जाता। उसे काट कर अस्पष्ट कर दिया है, वह १८३० भी पढ़ा जा सकता है और १८३१ भी। प्रशस्ति भी अपूर्ण है—

संवत् १८३१ चतुर्दशीतिथौ रविवासरे....................................

तैलाद्रक्षेद्जलाद्रक्षेत्, रक्षेद् शिथिलबन्धनात् ।
मूर्खहस्ते न दातव्या, एवं वदति पुस्तगा ।।छ।। श्री ......श्री ....
श्री ....श्री.... ....श्री...........श्री...........श्री ....श्री.......... ।

❀ ❀ ❀

[४] ज—इस प्रति का नाम 'ज' प्रति है। यह भी डॉ० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल के सौजन्य से श्री दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, मन्दिरजी ठोलियान, जयपुर से प्राप्त हुई है। इसका आकार १३"×५" है। इसमें कुल २०६ पत्र हैं। १८ वें क्रम के दो पत्र हैं और २१ वाँ पत्र नहीं है अतः गाथा संख्या २२६ से २७२ (प्रथम अधिकार) तक नही है। पृष्ठ २२ तक की लिपि एकसी है, फिर भिन्नता है। पत्र संख्या १८२ भी नही है जबकि १८५ संख्या वाले दो पत्र हैं।

इस प्रति में प्रशस्ति पत्र नहीं है।

❀ ❀ ❀

[५] य—इस प्रति का नाम 'य' प्रति है। यह श्री दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, ब्यावर से प्राप्त हुई है। वहाँ इसका वि० नं० १०३६ और जन० नं०..........अंकित है। यह ११½"×६¾" आकार की है। कुल पत्र २४६ हैं। प्रत्येक पत्र में बारह पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति में ३८-३९ अक्षर हैं। पत्रों की दशा ठीक है, अक्षर सुपाठ्य हैं एवं सुन्दरतापूर्वक लिखे गए हैं। 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' से ग्रन्थ का प्रारम्भ हुआ है। अन्त में प्रशस्ति इस प्रकार लिखी गई है—

संवत् १७४५ वर्षे शाके १६१० प्रवर्त्तमाने आषाढ़ वदि ५ पंचमी श्रीशुक्रवासरे। सग्गाम-पुरेमथेनविद्याविनोदेनालेखि प्रतिरियं समाप्ता। पं० श्रीबिहारीदासशिष्य घासीरामदयाराम पठनार्थम्।

श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन झालरापाटन इत्यस्यार्थ पन्नालाल सोनीत्यस्य प्रबन्धेन लेखक नेमिचन्द्र माले श्रीपालवासिनालेखि त्रिलोकसार प्रशस्तिरियम्। विक्रमार्के १९९४ तमे वर्षे वैशाखकृष्णपक्षे सप्तम्यां तिथौ रविवासरे।

(फोटो कापी करा कर इसका मात्र चतुर्थाधिकार मंगाया गया है)

यहाँ तिलोयपण्णत्ति की एक अन्य हस्तलिखित प्रति और भी है जिसका वि० नं० ३८९ और जन० नं० ४११ है। इसमें ५१८ पत्र हैं। पत्र का आकार ११"×४" है। प्रत्येक पत्र में ९ पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति में ३१-३२ अक्षर। पत्र जीर्ण हैं अक्षर विशेषसुपाठ्य नहीं हैं। 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' से ग्रन्थ का लेखन प्रारम्भ हुआ है और अन्त में लिखा है—

संवत् १७४५ वर्षे शाके १६१० प्रवर्त्तमाने आषाढ़ वदि ५ पंचमी श्री शुक्रवासरे। संग्रामपुरे मथेन विद्याविनोदेनालेखि प्रतिरियं समाप्ता।

पं० श्री बिहारीलालशिष्य बासीरामदयारामपठनार्थम्। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु।

उपर्युक्त प्रति इसी प्रति की प्रतिलिपि है।

[६] ब—बम्बई से प्राप्त होने के कारण इस प्रति का नाम 'ब' प्रति है। श्री ऐलक पन्नालाल जैन सरस्वती भवन सुखानन्द धर्मशाला बम्बई के संग्रह की है। यह प्रति देवनागरीलिपि में देशी पुष्ट कागज पर काली स्याही से लिखी गई है। प्रारम्भिक व समाप्तिसूचक शब्दों, दण्डों, संख्याओं, हाशिए की रेखाओं तथा यत्र-तत्र अधिकारशीर्षकों के लिए लाल स्याही का भी उपयोग किया गया है। प्रति सुरक्षित है और हस्तलिपि सर्वत्र एकसी है।

यह प्रति लगभग ६" चौड़ी, १२½" लम्बी तथा लगभग २½" मोटी है। कुल पत्रों की संख्या ३३९ है। प्रथम और अन्तिम पृष्ठ कोरे हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १० पंक्तियां हैं और प्रतिपंक्ति में लगभग ४०–४५ अक्षर हैं। हाशिए पर शीर्षक है—त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति। मंगलचिह्न के पश्चात् प्रति के प्रारम्भिक शब्द हैं—ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ३३३ वें पत्र पर अन्तिम पुष्पिका है-तिलोयपण्णत्ती समत्ता। इसके बाद संस्कृत के विविध छन्दों में रचित १२४ श्लोकों की एक लम्बी प्रशस्ति है जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

इति सूरि श्रीजिनचन्द्रान्तेवासिना पण्डितमेधाविना विरचिता प्रशस्ता प्रशस्तिः समाप्ता। संवत् १८०३ का मिती आसोजवदि १ लिखितं मया सागरश्री सवाईजयपुरनगरे। श्रीरस्तुः॥कल्यां॥

इसके बाद किसी दूसरे या हलके हाथ से लिखा हुआ वाक्य इस प्रकार है—'पोथी त्रैलोक्य-प्रज्ञप्ति की भट्टारकजी ने साधन करवी नै दीनी दुसरी प्रति मीती श्रावण सुदि १३ संवत् १६५६।

इस प्रति के प्रथम ८ पत्रों के हाशिए पर कुछ शब्दों व पंक्तिखंडों की संस्कृत छाया है। ५ वें पत्र पर टिप्पण में त्रैलोक्यदीपक से एक पद्य उद्धृत है। आदि के कुछ पत्र शेष पत्रों की अपेक्षा अधिक मलिन हैं।

लिपि की काफी त्रुटियां हैं प्रति में। गद्य भाग का और गाथाओं का भी पाठ बहुत भ्रष्ट है। कुछ गद्यभाग में गणनांक लिखे हैं मानों वे गाथायें हों।

(पूर्व सम्पादन भी इसी प्रति से हुआ था।)

[७] उ—उज्जैन से प्राप्त होने के कारण इस प्रति का नाम 'उ' प्रति है। इसके मात्र चतुर्थ अधिकार की फोटो कॉपी कराई गई थी। इसका आकार १३½"×८½" है। प्रत्येक पत्र में

१० पंक्तियां और प्रत्येक पंक्ति में ४४—४५ वर्ण हैं। काली स्याही का प्रयोग किया गया है। प्रति पूर्णतः सुरक्षित और अच्छी दशा में है।

यह बम्बई प्रति की ही नकल है क्योंकि वही प्रशस्ति ज्यों की त्यों लिखी गई है। लिपिकाल का भी अन्तर नहीं दिया गया है।

मूड़बिद्री की प्रतियाँ :

ज्ञानयोगी स्वस्तिश्री भट्टारक चारुकीर्ति पण्डिताचार्यवर्य स्वामीजी के सौजन्य से श्रीमती रमारानी जैन शोधसंस्थान, श्री दिगम्बर जैन मठ, मूड़बिद्री से हमें तिलोयपण्णत्ती की हस्तलिखित कानड़ी प्रतियों से पं० देवकुमारजी जैन शास्त्री ने पाठान्तर भिजवाए थे। उन प्रतियों का परिचय भी उन्होंने लिख भेजा है, जो इस प्रकार है—

कन्नड़प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थसूची पृ० सं० १७०—१७१

विषय : लोकविज्ञान

ग्रन्थ सं० ४६८ :

(१) तिलोयपण्णत्ति : [त्रिलोक प्रज्ञप्ति]—आचार्य यतिवृषभ। पत्र सं० १५१। प्रतिपत्र पंक्ति—८। अक्षर प्रतिपंक्ति ६६। लिपि-कन्नड। भाषा-प्राकृत। विषय लोकविज्ञान। अपूर्ण प्रति। शुद्ध है; जीर्णदशा है। इसमें संदृष्टियाँ बहुत सुन्दर एवं स्पष्ट हैं। टीका नहीं है।

ॐ नमः सिद्धमर्हतम् ।। श्री सरस्वत्यै नमः ।। श्री गणेशाय नमः ।। श्री निर्ग्रन्थविशाल-कीर्तिमुनये नमः ।। इस प्रकार के मंगलाचरण से ग्रन्थारम्भ होता है।

इस प्रति के उपलब्ध सभी ताड़पत्रों के पाठभेद भेजने के बाद पण्डितजी ने लिखा है—"यहां तक मुद्रित (शोलापुर) तिलोयपण्णत्ति भाग १ का पाठान्तर कार्य समाप्त होता है। मुद्रित तिलोयपण्णत्ति भाग—२ में ताड़पत्र प्रति पूर्ण नहीं है, केवल नं० १६ से ४३ तक २५ ताड़पत्र मात्र मिलते हैं। शायद बाकी ताड़पत्र लुप्त, खण्डित या अन्य ग्रन्थों के साथ मिल गये हों। यह खोज करने की चीज है।"

ग्रन्थ सं० ६४३ :

(२) तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) : आचार्य यतिवृषभ। पत्र संख्या ८८। पंक्तिप्रतिपत्र ७। अक्षर प्रतिपंक्ति ४०। लिपि कन्नड़। भाषा प्राकृत। तिलोयपण्णत्ति का एक विभाग मात्र इसमें है। शुद्ध एवं सामान्य प्रति है। इसमें भी संदृष्टियां हैं।

जैनबद्री (श्रवणबेलगोला) से प्राप्त प्रति का परिचय :

कर्मयोगी स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति स्वामीजी महाराज के सौजन्य से श्रवणबेलगोला के श्रीमठ के ग्रन्थ भण्डार में उपलब्ध तिलोयपण्णत्ती की एक मात्र पूर्ण प्रति का देवनागरी लिप्यन्तरण श्रीमान् पं० एस० बी० देवकुमार शास्त्री के माध्यम से हमें प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत संस्करण की आधार प्रति यही है। प्रति प्रायः शुद्ध है और संदृष्टियों से परिपूर्ण है। इस प्रति का पण्डितजी द्वारा प्रेषित परिचय इस प्रकार है—

श्रवणबेलगोला के श्रीमठ के ग्रन्थ भण्डार में यह प्रति एक ही है। ग्रन्थ ताड़पत्रों का है; इसमें अक्षरों को सूचीविशेष से उकेरा न जाकर स्याही से लिख दिया गया है। सीधे पंक्तिवार अक्षर लिखे गए हैं। अक्षर सुन्दर हैं। कुछ अक्षरों को समान रूप से थोड़ा सा अन्तर रखकर लिखा गया है। उस अन्तर को ठीक-ठीक समझने में बड़ी कठिनाई होती है।

ताड़पत्र की इस प्रति में कुल पत्रसंख्या १७४ हैं। प्रति पूर्ण है। कहीं-कहीं पत्रों को अगल-बगल में कीड़ों ने खा लिया है या पत्र भी टूट गए हैं। सात पत्रों में क्रमसंख्या नहीं है। उस जगह को कीड़ों ने खा लिया है। पत्र तो मौजूद हैं; उन पत्रों की संख्या है—१०१, १०९, १३६, १३७, १४६, १५५ और १५६। एक पत्र में बीच का ½ भाग बचा है। पत्रों की लम्बाई १८ इंच और चौड़ाई ३½ इंच है। प्रत्येक पत्र में ९ या १० पंक्तियाँ हैं। प्रत्येक पंक्ति में ७७-७८ अक्षर हैं। एक पत्र में करीब ४६ गाथायें हैं।

कन्नड़ से देवनागरी में लिप्यन्तरण करते हुए लिप्यन्तरकर्त्ता उक्त पण्डितजी को कई कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी हैं। कतिपय कठिनाइयों का उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है—

१. 'च' और 'व' को एक सा लिखते हैं, सूक्ष्म अन्तर रहता है; इसके निश्चय में कष्ट होता है।

२. ह्रस्व और ईत्व का कुछ फरक नहीं करते; ऐसी जगह ह्रस्व दीर्घ का निश्चय करना कठिन होता है।

३. संयुक्ताक्षर लिखना हो तो जिस अक्षर का द्वित्व करना हो तो उस अक्षर के पीछे शून्य लगा देते हैं; उदाहरणार्थ 'सम्मा' लिखना हो तो 'संमा' ऐसा लिख देते हैं। जहाँ 'संमा' ही पढ़ना हो तो कैसे लिखा जाए, इसकी प्रत्येक 'व्यवस्था' ताड़पत्र की लिखावट में नहीं है। जहाँ 'वंसाए' लिखा हो वहाँ 'वस्साए' क्यों न पढ़ा जाए इसकी भी अलग कोई व्यवस्था नहीं है।

४. मूल प्रति में किसी भी गाथा की संख्या नहीं दी गई है।

जैनबद्री की ताड़पत्रीय प्रति के पत्र सं० ४ का फोटो :
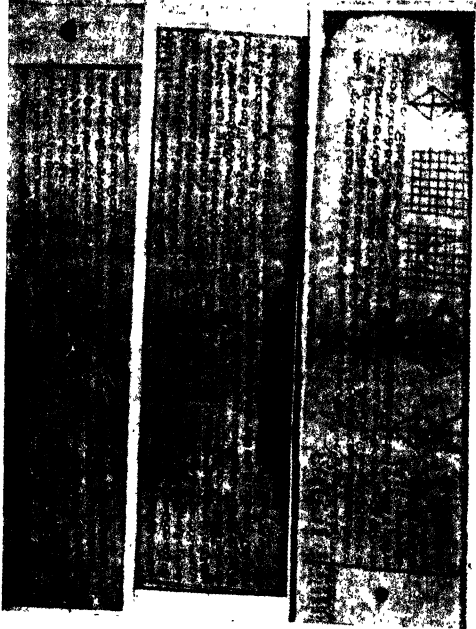
सभी ताड़पत्र १८" लम्बे और ३¼" चौड़े हैं। ताड़पत्र संख्या ४ की तीन टुकड़ों में ली हुई फोटो ऊपर मुद्रित है। ताड़पत्र को मध्य के हिस्से में कीड़ों ने खा लिया है। परन्तु लिपि, संदृष्टि और चित्र सब कुछ स्पष्ट है।

प्रति के अन्तिम पत्र का पाठ इसप्रकार है—

पचमह जिणवरवसहं गणहरवसहं तहेव गुणहरवसहं ।
दुसहपरिसहवसहं, जदिवसहं धम्मसुत्तपाठर वसहं ॥

एवमाइरियपरंपरागय तिलोयपण्णत्तीए सिद्धलोय सरू (व) णिरूवण पण्णत्ती णाम णवमो महाहियारो समत्तो । ꣼꣼꣼꣼

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया ।
भणिदंगं ....वरं सोहंतु बहुस्सुदाइरिया ॥१॥

चुण्णिसरूवं अट्ठं करणसरूवपमाण किं जं तं ।
अट्ठसहस्सपमाणं, तिलोयपण्णत्तिणामाये ॥ २ ॥ ꣼꣼꣼

अट्ठमयं चणट्ठ-अट्ठमयं, विट्ठ सयलपरमट्ठं ।
णिट्ठुरवयणविमुक्कं, णमामि अमरकित्तिमुणिं ॥३॥

वीरमुहकमलणिग्गह, णिहलामलसुदसमुद्दवड्ढवलं ।
ससधरकरकिरणाभं, णमामि तं अमरकित्तिमुणिं ॥४॥

पंचमहव्वयपुण्णं तिसल्लविरदं तिगुत्तिजुत्तं च ।
सुयसागरपारंगद सुरकित्तिमुणिंदमभिवंदे ॥ ५ ॥

दुद्धरकुम्मतकद्दम सोसणतरणिं समत्तसत्तविदं ।
सरणं वजामि बहुदुक्खसलिलपूरिद संसार समुद्दवुड्डणभएण ॥६॥

मिच्छत्त तिमिर भाणुं विगसिदवरभव्व कमल मंडलियं ।
सुद्धोपयोगजुत्तं, सुरकित्तिमुणीसरं वंदे ॥ ७ ॥

सिरिमदुअखंडिदवियहाखंडलमंडलियमणिमउडमरीचिपिंजरियणवणवरुप्पवरमेसरमुहपदुमविणिग्गद-ससमंगिणीपरवाविपावपमूलं कसवसण सकिलपक्खालिद कम्ममलपंकेहिं । णिखिल सत्थ साणोपलकसणसेमुसीमुत्तिल-पुण्हूवपुरोहिद गव्वेहिं । दुव्वारवादिपरिसववलेवपव्वयपाडणपगडिदसहावसव्वेहिं । उदारदारोदरदरिणिवेसिदवासामि-सुणपिसाची वस गदासेस पुरुस परिसदुपरिवेसिद पुरुसतमामासमासिदमिच्छावादांधकारणिद्दहरणसहस्सकिरणेहिं । रायरायगुरुमंडलाइरिय महावादवादीसर सकल विद्दज्जण-चक्कवट्टि वादिंदविसालकित्तियति.........................
सिरिमदमरकित्तिवदीसरपियसिस्सभडारगधम्मभूसणेहिं ।

परिपाणपेसलं विमलमुत्ताफलसारिच्छ अक्खरेहिं सगवरस १२६६ विम रवणाणुसंवच्छर भद्दपसुद्द ५ सो दिसे सुरताण पातसहो.....................

विजयरज्जे ओडगे अमहापुरे अणंतसंसारविच्छेदणकर अणंततित्थयपादमूले
अणवरद अप्पणाणत्थं लिखिदमिदं तिलोयपण्णत्तीणाम परमागमं महामुणिसेव्वमाणं समत्तो ॥ ꣼꣼

……………लं सुबोधकमलं सव्वंगवीचीचयं,
गंभीरं णिखिलट्ठपत्तलिकलितं सव्वासु हंसाकुलं ।
पव्वइसीलरुइट्ठ णयणकलाट्ठाणप्पियजीया—
इकुप्पाविलपवुढिहणप्पं जेण्णागमव्वं सरो ॥ ८ ॥
जिणं णुद …………… सयं धणुप्पमाणो सुद्धफलिहमयं ।
हरिपुरणाहं तं संसारविसमविसरुक्खमूल उम्मडणमिडणवंदप्पहं वंदे ॥९॥

हरिहरहिरण्यगर्भसंत्रासितमदनमदगजकुंकुशस्तवनकृतार्थीकृतसकलविनेयजनाय हरि………………नमः ॥

श्रीमानस्ति समस्तदोषरहित प्रख्यातलोकत्रया—
धीशार्च्चित पादपद्मयुगलः सज्ञानतेजोनिधिः ।
दुर्वारस्मरगर्वपर्वतपविर्भिव्याहृनंघुभ्रमत्—
सत्योद्धारणधीरजैकविपणो सो सन्मतीशो जिनः ॥१०॥
सकलजगदानंदकर अभिनन्दनं णमः ॥

(यहीं ग्रन्थ का अन्त हुआ है ।)

४. सम्पादन विधि :

किसी भी प्राचीन रचना का हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर सम्पादन करना कोई आसान काम नहीं है । मुद्रित प्रति सामने होते हुए भी कई बार पाठान्तरों से निर्णय लेने में बहुत श्रम और समय लगाना पड़ा है इसमें, नतमस्तक हूं तिलोयपण्णत्ती के प्रथम सम्पादकों की बुद्धि एवं निष्ठा के समक्ष । सोचता हूं उन्हें कितना अपार अथक परिश्रम करना पडा होगा । क्योंकि एक तो इसका विषय ही जटिल है, दूसरे उनके सामने तो हस्तलिखित प्रतियों की सामग्री भी कोई बहुत सन्तोष-जनक नहीं थी । उन्हें किसी टीका, छाया अथवा टिप्पण की भी सहायता सुलभ नहीं थी । मुझे तो हिन्दी अनुवाद, सम्भवपाठ, विचारणीय स्थल आदि से पूरा मार्गदर्शन मिला है ।

प्रस्तुत संस्करण का मूलाधार श्रवणबेलगोला की ताड़पत्रीय कानड़ी प्रतिलिपि है । लिप्यन्तरण श्री एस० बी० देवकुमार शास्त्री ने भिजवाए हैं । उसी के आधार पर सारा सम्पादन हुआ है । मूड़बिद्री की प्रति भी लगभग इस प्रति जैसी ही है, इसके पाठान्तर श्री देवकुमारजी शास्त्री ने भिजवाए थे ।

तिलोयपण्णत्ती एक महत्त्वपूर्ण धर्मग्रन्थ है और इसके अधिकांश पाठक भी धार्मिक रुचि सम्पन्न श्रावक श्राविका होंगे या फिर स्वाध्यायशील मुनि आर्यिका आदि । इन्हें ग्रन्थ के विषय में अधिक रुचि होगी, वे भाषा की उलझन में नहीं पड़ना चाहेंगे, यही सोचकर विषय के अनुरूप सार्थक पाठ

ही स्वीकार करने की दृष्टि रही है सर्वत्र। प्रतियों के पाठान्तर टिप्पण में अंकित कर दिए हैं। क्योंकि हिन्दी टीका के विशेषार्थ में तो सही पाठ या संशोधित पाठ की ही संगति बैठती है, विकृत पाठ की नहीं। कहीं कहीं सब प्रतियों में एकसा विकृत पाठ होते हुए भी गाथा में शुद्ध पाठ ही रखा गया है।

गणित और विषय के अनुसार जो संदृष्टियां शुद्ध हैं उन्हें ही मूल में ग्रहण किया गया है, विकृत पाठ टिप्पणी में दे दिये हैं।

पाठालोचन और पाठसंशोधन के नियमों के अनुसार ऐसा करना यद्यपि अनुचित है तथापि व्यावहारिक दृष्टि से इसे अतीव उपयोगी जानकर अपनाया गया है।

कानड़ी लिपि से लिप्यन्तरणकर्ता को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, उनका उल्लेख प्रति के परिचय में किया गया है; हमारे समक्ष तो उनकी ताजा लिखी देवनागरी लिपि ही थी।

प्राकृत भाषा प्रभेदपूर्ण है और इसका व्याकरण भी विकसनशील रहा है अतः बदलते हुए नियमों के आधार पर संशोधन न कर प्राचीन शुद्ध रूप को ही रखने का प्रयास किया है। इस कार्य में श्री हरगोविन्द शास्त्री कृत पाइअसद्दमहण्णवो से पर्याप्त सहायता मिली है। यथासम्भव प्रतियों का शुद्ध पाठ ही संरक्षित हुआ है।

प्रथमबार सम्पादित प्रति में सम्पादकद्वय ने जो सम्भवनीय पाठ सुझाए थे उनमें से कुछ ताड़पत्रीय कानड़ी प्रतियों में ज्यों के त्यों मिल गए हैं। वे तो स्वीकार्य हुए ही हैं। जिनगाथाओं के छूटने का संकेत सम्पादक द्वय ने किया है, वे भी इन कानड़ी प्रतियों में मिली हैं और उनसे अर्थ प्रवाह की संगति बैठी है। प्रस्तुत संस्करण में अब कल्पित, सम्भवनीय या विचारणीय स्थल अत्यल्प रह गए हैं तथापि यह दृढ़तापूर्वक नहीं कहा जा सकता कि व्यवस्थित पाठ ही ग्रन्थ का शुद्ध और अन्तिम रूप है। उपलब्ध पाठों के आधार पर अर्थ की संगति को देखते हुए शुद्ध पाठ रखना ही बुद्धि का प्रयास रहा है। आशा है, भाषा शास्त्री और पाठ विवेचक अपने नियम की शिथिलता देख कोसेंगे नहीं अपितु व्यावहारिक उपयोगिता देख उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे।

५. प्रस्तुत संस्करण की विशेषताएँ :

तिलोयपण्णत्ती के प्रथम तीन अधिकारों का यह पहला खण्ड है। इसमें केवल मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद ही नहीं है अपितु विषय सम्बन्धी विशेष विवरण की जहां भी आवश्यकता पड़ी है वह विस्तारपूर्वक विशेषार्थ में दिया गया है। गणित सम्बन्धी प्रमेयों को, जहां भी जटिलता दिखाई दी है

पूर्णतः हल करके रखा गया है। संदृष्टियों का भी पूरा खुलासा किया गया है। इस संस्करण में मूल संदृष्टियों की संख्या हिन्दी अर्थ के बाद अंकों में नहीं दी गई है किन्तु उन संख्याओं को तालिकाओं में दर्शाया गया है। एक अन्य विशेषता यह भी है कि चित्रों और तालिकाओं-सारणियों के माध्यम से विषय को सरलतापूर्वक ग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया गया है। पहले अधिकार में ५० चित्र हैं, दूसरे में दो और तीसरे में एक, इस प्रकार कुल ५३ चित्र हैं।

पहले अधिकार में पूर्व प्रकाशित संस्करण में २८३ गाथायें थी। इसमें तीन नयी गाथाएँ या छूटी हुई गाथाएँ (सं० २०६, २१६, २३७) जुड़ जाने से अब २८६ गाथायें हो गई हैं। इसी प्रकार दूसरे महाधिकार में ३६७ गाथाओं की अपेक्षा ३७१ (१६४, ३३१, ३३२, ३६५ जुड़ी हैं) और तीसरे महाधिकार में २४३ गाथाओं की अपेक्षा २५४ गाथाएँ हो गई हैं। तीसरे अधिकार में नई जुड़ी गाथाओं की संख्या इस प्रकार है—१०७, १८६, १८७, २०२, २२२ से २२७ और २३२-३३। इस प्रकार कुल १६ गाथाओं के जुड़ने से तीनों अधिकारों की कुल गाथाएँ ८९३ से बढ़ कर ९१२ हो गई हैं।

प्रस्तुत संस्करण में प्रत्येक गाथा के विषय को निर्दिष्ट करने के लिए उपशीर्षकों की योजना की गई है और एतद् अनुसार ही विस्तृत विषयानुक्रमणिका तैयार की गई है।

(क) प्रथम महाधिकार :

विस्तृत प्रस्तावनापूर्वक लोक का सामान्य निरूपण करने वाला प्रथम महाधिकार पाँच गाथाओं के द्वारा पंच परमेष्ठियों की वन्दना से प्रारम्भ होता है किन्तु यहां अरहन्तों के पहले सिद्धों को नमस्कार किया गया है, यह विशेषता है। छठी गाथा में ग्रंथ रचना की प्रतिज्ञा है और ७ से ८१ गाथाओं में मंगल, निमित्त, हेतु, प्रमाण, नाम और कर्त्ता की अपेक्षा विशद प्ररूपणा की गई है। यह प्रकरण श्री वीरसेन स्वामिकृत षट्खण्डागम की धवला टीका (पु० १ पृ० ८-७१) से काफी मिलता जुलता है किन्तु जिस गाथा से इसका निर्देश किया है वह गाथा तिलोयपण्णत्ती से भिन्न है—

> मंगल-णिमित्त-हेऊ परिमाणं णाम तह य कत्तारं।
> वागरिय छप्पि पच्छा, वक्खाणउ सत्थमाइरियो ।।धवला पु० १/पृ० ७

गाथा ८२-८३ में ज्ञान को प्रमाण, ज्ञाता के अभिप्राय को नय और जीवादि पदार्थों के संव्यवहार के उपाय को निक्षेप कहा है। गाथा ८५-८७ में ग्रंथ प्रतिपादन की प्रतिज्ञा कर ८८-९० में ग्रन्थ के नव अधिकारों के नाम निर्दिष्ट किये गये हैं।

गाथा ६१ से १०१ तक उपमा प्रमाण के भेद प्रभेदों से प्रारम्भ कर पल्य, स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणु आदि के स्वरूप का कथन किया गया है। अनन्तर १०२ से १३३ गाथा तक कहा गया है कि अनन्तानन्त परमाणुओं का उवसन्नासन्न स्कन्ध, आठ उवसन्नासन्नों का सन्नासन्न, आठ सन्नासन्नों का त्रुटिरेणु, आठ त्रुटिरेणुओं का त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओं का रथरेणु, आठ रथरेणुओं का उत्तमभोगभूमिजबालाग्र, इसी प्रकार उत्तरोत्तर आठ-आठ गुणित मध्यभोगभूमिजबालाग्र, जघन्यभोगभूमिजबालाग्र, कर्मभूमिजबालाग्र, लीख, जूं, जौ और उत्सेधांगुल होता है। पाँच सौ उत्सेधांगुलों का एक प्रमाणांगुल होता है। भरतऐरावत क्षेत्र में भिन्न-भिन्न काल में होने वाले मनुष्यों का अंगुल आत्मांगुल कहा जाता है। इनमें उत्सेधांगुल से नर-नारकादि के शरीर की ऊँचाई और चतुर्निकाय देवों के भवन व नगरादि का प्रमाण जाना जाता है। द्वीप-समुद्र, शैल, वेदी, नदी, कुण्ड, जगती एवं क्षेत्रों के विस्तारादि का प्रमाण प्रमाणांगुल से ज्ञात होता है। भृंगार, कलश, दर्पण, भेरी, हल, मूसल, सिंहासन एवं मनुष्यों के निवासस्थान व नगरादि तथा उद्यान आदि के विस्तारादि का प्रमाण आत्मांगुल से बतलाया जाता है। योजन का प्रमाण इस प्रकार है—६ अंगुलो का पाद, २ पादों का वितस्ति, २ वितस्तियों का हाथ, २ हाथ का रिक्कु, २ रिक्कुओं का धनुष, २००० धनुष का कोस और ४ कोस का एक योजन होता है।

उपर्युक्त वर्णन करने के बाद ग्रन्थकार अपने प्रकृतविषय—लोक के सामान्य स्वरूप—का कथन करते हैं। अनादिनिधन व छह द्रव्यों से व्याप्त लोक—अधः मध्य और ऊर्ध्व के भेद से विभक्त है। ग्रंथकार ने इनका आकार-प्रकार, विस्तार, क्षेत्रफल व घनफल आदि विस्तृत रूप में वर्णित किया है। अधोलोक का आकार वेत्रासन के समान, मध्यलोक का आकार, खड़े किये हुये मृदंग के ऊर्ध्वभाग के समान और ऊर्ध्वलोक का आकार खड़े किये हुए मृदग के समान है। (गा. १३०–१३८)। आगे तीनों लोकों में से प्रत्येक के सामान्य, दो चतुरस्र (ऊर्ध्वायत और तिर्यगायत), यव, मुरज, यवमध्य, मन्दर, दूष्य और गिरिकटक ये आठ-आठ भेद करके उनका पृथक्-पृथक् घनफल निकाल कर बतलाया है। यह सम्पूर्ण विषय जटिल गणित से सम्बद्ध है जिसका पूर्ण खुलासा प्रस्तुत संस्करण में विदुषी टीकाकर्त्री माताजी ने चित्रों के माध्यम से किया है। रुचिशील पाठक के लिए अब यह जटिल नहीं रह गया है। गाथा ६१ की संदृष्टि (≡ १६ ख ख ख) को विशेषार्थ में पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया है।

महाधिकार के अन्त में तीन वातवलयों का आकार और भिन्न-भिन्न स्थानों पर उनकी मोटाई का प्रमाण (२७१—२८५) बतलाया गया है। अन्त में तीन गद्य खण्ड हैं। प्रथम गद्यखण्ड लोक के पर्यन्तभागों में स्थित वातवलयों का क्षेत्र प्रमाण बताता है। दूसरे गद्यखण्ड में आठ पृथिवियों के नीचे स्थित वातक्षेत्रों का घनफल निकाला गया है। तीसरे गद्यखण्ड में आठ पृथिवियों

का घनफल बतलाया है। वातवलयों की मोटाई दर्शाने के लिए ग्रंथकार ने 'लोकविभाग' ग्रंथ से एक पाठान्तर (गा. २८४) भी उद्धृत किया है। अन्त में कहा है कि वातरुद्ध क्षेत्र और आठ पृथिवियों के घनफल को सम्मिलित कर उसे सम्पूर्ण लोक में से निकाल देने पर शुद्ध आकाश का प्रमाण प्राप्त होता है। मंगलाचरणपूर्वक ग्रन्थ का अंत होता है।

इस अधिकार में ७ करण सूत्रों (गा. ११७, १६५, १७६, १७७, १८१, १९३, १९४) का उल्लेख हुआ है तथा गा. १९८-९९ और २६४-६६ के भावों को संक्षेप में व्यक्त करने वाली दो सारणियां बनाई गई हैं।

मूलबिद्री और जैनबद्री में उपलब्ध ताड़पत्रीय प्रतियों में गाथा १३८ के बाद दो गाथाएँ और मिलती हैं किंतु इनका प्रसंग बुद्धिगम्य न होने से इनका उल्लेख अध्याय के अन्तर्गत नहीं किया गया है। गाथाएँ इस प्रकार हैं—

> वासुच्छेहायामं, सेढि-पमाणेण ठावये खेत्तं ।
> तं मज्झे बहुलादो, एक्कपदेसेण गेण्हिदो पदरं ॥ ☰
> गहिदूण घवट्ठावि य रज्जू सेढिस्स सत्त भागोत्ति ।
> तस्स य वासायामो कायव्वा सत्त खंडाणि ॥

(ख) द्वितीय महाधिकार :

नारकलोक नामके इस महाधिकार में कुल ३७१ पद्य हैं। गद्य-भाग नहीं है। चार इन्द्रवज्रा और एक स्वागता छन्द है शेष ३६६ गाथाएँ हैं। मंगलाचरण में अजितनाथ भगवान को नमस्कार कर ग्रंथकार ने आगे की चार गाथाओं मे पन्द्रह अन्तराधिकारों का निर्देश किया है।

पूर्वप्रकाशित संस्करण से इस अधिकार में चार गाथाएँ विशेष हैं जो द और ब प्रतियों में नहीं हैं। ग्रंथकार के निर्देशानुसार १५ वें अन्तराधिकार मे नारक जीवों में योनियों की प्ररूपणा वर्णित है, यह गाथा छूट गई थी। कानड़ी प्रतियों में यह उपलब्ध हुई है (गाथा सं० ३६५)। इसी प्रकार नरक के दुःखों के वर्णन में भी गाथा सं० ३३१ और ३३२ विशेष मिली हैं।

पूर्व प्रकाशित संस्करण के पृ. ८२ पर मुद्रित गाथा १८८ में अर्ध योजन के छह भागों में से एक भाग कम श्रेणीबद्ध बिलों का परस्थान अन्तराल कहा गया है। जो गणित की दृष्टि से वैसा नहीं है। कन्नड़ प्रति के पाठ भेद से प्रस्तुत संस्करण के पृ० २०८ पर इसे सही रूप में रखा गया है। छठी पृथ्वी के प्रकीर्णक बिलों के अन्तराल का कथन करने वाली गाथा भी पूर्व संस्करण में नहीं थी, वह भी कानड़ी प्रतियों में मिली है। (गाथा सं० १९४)। इस प्रकार कमियों की पूर्ति होकर यह अधिकार

अब पूर्ण हुआ ऐसा माना जा सकता है। पूर्वमुद्रित संस्करण में गाथा ३४५ का हिन्दी अनुवाद करते हुए अनुवादक महोदय ने लिखा है कि—"रत्नप्रभा पृथिवी से लेकर अन्तिम पृथिवी पर्यन्त अत्यन्त सड़ा, अशुभ और उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा ग्लानिकर अन्न आहार होता है।" यह अर्थ ग्राह्य नहीं हो सकता क्योंकि नरकों में अन्नाहार है ही नहीं। प्रस्तुत संस्करण में टीकाकर्त्री माताजी ने इसका अर्थ 'अन्य प्रकार का ही आहार' (गाथा ३४८) किया है। यह संगत भी है। पूज्य माताजी ने ७ सारणियों और दो चित्रों के माध्यम से इस अधिकार को और सुबोध बनाया है।

ग्रन्थकर्त्ता आचार्य ने पूरी योजनापूर्वक इस अधिकार का गठन किया है। गाथा ६-७ में त्रसनाली का निर्देश है। गाथा ७-८ में प्रकारान्तर से उपपाद और मारणान्तिक समुद्घात में परिणत त्रस और लोकपूरण समुद्घातगत केवलियों की अपेक्षा समस्तलोक को ही त्रसनाली कहा है। गाथा ९ से १९५ तक नारकियों के निवास क्षेत्र—सातों पृथिवियों में स्थित इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों के नाम, विन्यास, संख्या, विस्तार, बाहल्य एवं स्वस्थान-परस्थान रूप अन्तराल का प्रमाण निरूपित है। गाथा १९६-२०२ में नारकियों की संख्या, २०३-२१६ में उनकी आयु, २१७-२७१ में उनका उत्सेध तथा गाथा २७२ में उनके अवधिज्ञान का प्रमाण कहा है। गाथा २७३-२८४ में नारकी जीवों में सम्भव गुणस्थानादि बीस प्ररूपणाओं का निर्देश है। गाथा २८५-२८७ में नरकों में उत्पद्यमान जीवों की व्यवस्था, गाथा २८८ में जन्म-मरण के अन्तराल का प्रमाण, गाथा २८९ में एक समय में जन्म-मरण करने वालों का प्रमाण, गाथा २९०-२९३ में नरक से निकले हुए जीवों की उत्पत्ति का कथन, गाथा २९४-३०२ में नरकायु के बन्धक परिणामों का कथन और गा० ३०३ से ३१३ तक नारकियों की जन्मभूमियों का वर्णन है।

गाथा ३१४ से ३६१ तक नरकों के घोर दुःखों का वर्णन है।

गाथा ३६२-६४ में नरकों में सम्यक्त्वग्रहण के कारणों का निर्देश है और गाथा ३६५ में नारकियों की योनियों का कथन है। अन्तिम मंगलाचरण से पूर्व के पांच छन्दों में यह बताया गया है कि जो जीव मद्य-मांस का सेवन करते हैं, शिकार करते हैं, असत्य वचन बोलते हैं, चोरी करते हैं, परधनहरण करते हैं, रात दिन विषय सेवन करते हैं, निर्लज्जतापूर्वक परदारासक्त होते हैं, दूसरों को ठगते हैं वे तीव्र दुःख को उत्पन्न करने वाले नरकों में जाकर महान् कष्ट सहते हैं।

अंतिम गाथा में भगवान सम्भवनाथ को नमस्कार किया गया है।

(ग) तृतीय महाधिकार :

भवनवासी लोकस्वरूप निरूपण प्रज्ञप्ति नामक तीसरे महाधिकार में पूर्व प्रकाशित संस्करण में कुल २४३ पद्य हैं। गाथा संख्या २४ से २७ तक गाथाओं का पाठ इस प्रकार है—

अप्पमहड्ढियमज्झिममावणदेवाण होंति भवणाणि ।
दुगबादालसहस्सा लक्खमधोधो खिदीय गंतूण ॥२४॥
२००० / ४२००० / १०००००

अप्पमहड्ढियमज्झिममावणदेवाण वासवित्थारो ।
समचउरस्सा भवणा वज्जामयदारसज्जिया सव्वे ॥२५॥

बहलत्तो तिसयाणि संखासंखेज्ज जोयणा वासे ।
संखेज्जरुंदभवणेसु भवणदेवा वसंति संखेज्जा ॥२६॥

संखातीदा सेयं छत्तीससुरा य होदि संखेज्जा (?)
भवणसरूवा एदे वित्थारा होइ जाणिज्जो ॥२७॥

। भवणवण्णणं सम्मत्तं ।

कन्नड़ की ताड़पत्रीय प्रतियों में इस पाठ की संरचना इस प्रकार है जो पूर्णतः सही है और इसमें भ्रान्ति (?) की सम्भावना भी नहीं है । हाँ, इस पाठ से एक गाथा अवश्य कम हो गई है ।

अप्प-महड्ढिय-मज्झिम-भावण-देवाण होंति भवणाणि ।
दुग-बादाल-सहस्सा लक्खमधोधो खिदीए गंतूणं ॥२४॥
२००० / ४२००० / १०००००

॥ अप्पमहड्ढिय-मज्झिम-भावण-देवाण-णिवास-खेत्तं समत्तं ॥९॥

समचउरस्सा भवणा वज्जमया-दार-वज्जिया सव्वे ।
बहलत्ते ति-सयाणि संखासंखेज्ज-जोयणा वासे ॥२५॥

संखेज्ज-रुंद-भवणेसु भवणदेवा वसंति संखेज्जा ।
संखातीदा वासे अच्छंती सुरा असंखेज्जा ॥२६॥

भवणसरूवं समत्तं ॥१०॥

इस प्रकार कुल २४२ गाथाएँ रह गई हैं । ताड़पत्रीय प्रतियों में १२ गाथाएँ नवीन मिली हैं अतः प्रस्तुत संस्करण में इस अधिकार में २४२+१२=२५४ गाथाएँ हुई हैं ।

विशेष ध्यान रखने योग्य :

यों तो इस अधिकार में कुल २५४ गाथाएँ ही हैं। परन्तु भूल से 'गाथा सं. ६४' क्रम में अंकित होने से रह गई है अर्थात् गाथा संख्या ६३ के बाद गाथा संख्या ६५ अंकित कर दिया गया है (गाथा नहीं छूटी है केवल क्रम संख्या ६४ छूट गई है।) और यह भूल अधिकार के अन्त तक चलती रही है जिससे २५४ गाथाओं के स्थान पर कुल गाथाएँ २५५ अंकित हुई है। इसी क्रम संख्या को मानने से सारे सन्दर्भ आदि भी इसी प्रकार दिए गये हैं। अतः पाठकों से अनुरोध है कि वे इस भूल को ध्यान में रखते हुए गाथा सं० ६३ को ही ६३-६४ समझें ताकि अन्य सन्दर्भों में भ्रान्ति न हो तथापि अधिकार में कुल २५४ गाथायें ही मानें।

इस बड़ी भूल के लिए हम विशेष क्षमाप्रार्थी है।

इस तीसरे महाधिकार में कुल २५५ पद्य हैं। इनमें दो इन्द्रवज्रा (छ. सं. २४०, २५३) और ४ उपजाति (२१८-१९, २४१, २५४) तथा शेष गाथा छन्द हैं। पूर्व प्रकाशित (सोलापुर) प्रति के तीसरे अधिकार से प्रस्तुत संस्करण के इस तीसरे अधिकार में गाथा सं० १०७, १८६-१८७, २०२, २२२ से २२७ तथा २३२-२३३ इस प्रकार कुल १२ गाथाएं नवीन हैं जिनसे प्रसंगानुकूल विषय की पूर्ति हुई है और प्रवाह अवरुद्ध होने से बचा है। गाथा सं० १८६ और १८७ केवल मूल-बिद्री की प्रति में मिली हैं अन्य प्रतियों में नहीं हैं। टीकाकर्त्री माताजी ने इस अधिकार को एक चित्र और ७ सारणियों / तालिकाओं से अलंकृत किया है। गाथा सं. ३६ में कल्पवृक्षों को जीवों की उत्पत्ति एवं विनाश का कारण कहा है, यह मन्तव्य बड़े प्रयत्न से ही समझ में आया है।

इस महाधिकार में २४ अन्तराधिकार हैं। अधिकार के आरम्भ में (गाथा १) अभिनन्दन स्वामी को नमस्कार किया गया है और अन्त में (गाथा २५५) सुमतिनाथ स्वामी को। गाथा २ से ६ में चौबीस अधिकारों का नाम निर्देश किया गया है। गाथा ७-८ में भवनवासियों के निवासक्षेत्र, गा. ९ में उनके भेद, गाथा १० में उनके चिह्न, ११-१२ में भवनों की संख्या, १३ में इन्द्रसंख्या व १४-१६ में उनके नाम, १७-१९ में दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रों का विभाग, २०-२३ में भवनों का वर्णन २४ में अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक व मध्यमऋद्धिधारक देवों के भवनों का विस्तार, २५-२६ में भवनों का विस्तार एवं उनमे निवास करने वाले देवों का प्रमाण, २७-३८ में वेदी, ३९-४१ में कूट, ४२-५४ में जिनभवन, ५५-६१ में प्रासाद, ६२ से १४३ में इंद्रों की विभूति, १४४ में संख्या, १४५-१७६ में

आयु, १७७ में शरीरोत्सेध, १७८-१८३ में उनके अवधिज्ञान के क्षेत्र का प्रमाण, १८४ से १९६ में भवनवासियों के गुणस्थानादिकों का वर्णन, १९७ में एक समय में उत्पत्ति व मरण का प्रमाण, १९८-२०० में आगतिनिर्देश व २०१ से २५० में भवनवासी देवों की आयु के बन्धयोग्य परिणामों का विस्तृत वर्णन हुआ है।

भवनवासी देव देवियों के शरीर एवं स्वभावादि का निरूपण करते हुए आचार्यश्री यतिवृषभ जी ने लिखा है कि "वे सब देव स्वर्ण के समान, मल के संसर्ग से रहित, निर्मलकान्ति के धारक, सुगन्धित निश्वास से संयुक्त, अनुपम रूपरेखा वाले, समचतुरस्र शरीर संस्थान वाले लक्षणों और व्यंजनों से युक्त, पूर्ण चन्द्रसदृश सुन्दर महाकान्ति वाले और नित्य ही (युवा) कुमार रहते हैं, वैसी ही उनकी देवियां होती हैं। (१२६-१२७)

"वे देव-देवियां रोग एवं जरा से विहीन, अनुपम बलवीर्य से परिपूर्ण, किंचित् लालिमायुक्त हाथ पैरों सहित, कदलीघात से रहित, उत्कृष्ट रत्नो के मुकुट को धारण करने वाले। उत्तमोत्तम विविध प्रकार के आभूषणों से शोभायमान, मांस-हड्डी-मेद-लोहू-मज्जा वसा और शुक्र आदि धातुओं से विहीन, हाथों के नख एवं बालों से रहित, अनुपम लावण्य तथा दीप्ति से परिपूर्ण और अनेक प्रकार के हाव भावों में आसक्त रहते हैं।" (१२८-१३०)

आयुबन्धक परिणामों के सम्बन्ध मे लिखा है कि—"ज्ञान और चारित्र में दृढ़ शका सहित, संक्लेश परिणामों वाले तथा मिथ्यात्वभाव से युक्त कोई जीव भवनवासी देवों सम्बन्धी आयु को बांधते हैं। दोषपूर्ण चारित्रवाले, उन्मार्गगामी, निदानभावों से युक्त, पापासक्त, कामिनी के विरह रूपी ज्वर से जर्जरित, कलहप्रिय संज्ञी असंज्ञी जीव मिथ्यात्वभाव से संयुक्त होकर भवनवासी देवो मे उत्पन्न होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव इन देवों में कदापि उत्पन्न नही होता। असत्यभाषी, हास्यप्रिय एव कामासक्त जीव कन्दर्प देवों में उत्पन्न होते हैं। भूतिकर्म, मन्त्राभियोग और कौतूहलादि से संयुक्त तथा लोगों की वंचना करने मे प्रवृत्त जीव वाहन देवों में उत्पन्न होते हैं। तीर्थंकर, संघ, प्रतिमा एवं आगमग्रन्थादिक के विषय में प्रतिकूल, दुर्विनयी तथा प्रलाप करने वाले जीव किल्विषिक देवों में उत्पन्न होते हैं। उन्मार्गोपदेशक, जिनेन्द्रोपदिष्ट मार्ग के विरोधी और मोहमुग्ध जीव सम्मोह जाति के देवों में उत्पन्न होते हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ में आसक्त, क्रूराचारी तथा वैरभाव से संयुक्त जीव असुरों में उत्पन्न होते हे। (२०१-२१०)

जन्म के अन्तर्मुहूर्त बाद ही छह पर्याप्तियों से पूर्ण होकर अपने अल्प विभंगज्ञान से वहां उत्पन्न होने के कारण का विचार करते हैं और पूर्वकाल के मिथ्यात्व, क्रोधमानमायालोभ रूप कषायों में प्रवृत्ति तथा क्षणिक सुखों की आसक्ति के कारण देशचारित्र और सकलचारित्र के परित्याग

रूप प्राप्त हुई अपनी तुच्छ देवपर्याय के लिए पश्चात्ताप करते हैं। (२११-२२२) तत्काल मिथ्यात्व भाव का त्याग कर सम्यक्त्वी होकर महाविशुद्धिपूर्वक जिनपूजा का उद्योग करते हैं। (२२३-२२५) स्नान करके (२२६), आभूषणादि (२२७) से सज्जित होकर व्यवसायपुर में प्रविष्ट होते हैं और पूजा व अभिषेक के योग्य द्रव्य लेकर देवदेवियों के साथ जिनभवन को जाते हैं। (२२८-२९)। वहाँ पहुंच कर देवियों के साथ विनीत भाव से प्रदक्षिणापूर्वक जिनप्रतिमाओं का दर्शन कर जय-जय शब्द करते हैं, स्तोत्र पढ़ते हैं और मन्त्रोच्चारणपूर्वक जिनाभिषेक करते हैं। (२३०-२३३)

अभिषेक के बाद उत्तम पटह, शङ्ख, मृदंग, घण्टा एवं काहलादि बजाते हुए (गा० २३४) वे दिव्य देव झारी, कलश, दर्पण, तीनछत्र और चामरादि से, उत्तम जलधाराओं से, सुगन्धित गोशीर मलयचन्दन और केशर के पंकों से, अखण्डित तन्दुलों से, पुष्पमालाओं से, दिव्य नैवेद्यों से उज्ज्वल रत्नमयी दीपकों से, धूप से और पके हुए कटहल, केला, दाडिम एव दाख आदि फलों से (अष्ट द्रव्य से) जिन पूजा करते हैं। (२३५-२३८) पूजा के अन्त में अप्सराओं से संयुक्त होकर नाटक करते हैं और फिर निजभवनों में जाकर अनेक सुखों का उपभोग करते हैं (२३९-२५०)।

अविरत सम्यग्दृष्टि देव तो समस्त कर्मों के क्षय करने मे अद्वितीय कारण समझ कर नित्य ही अनन्तगुनी विशुद्धिपूर्वक जिनपूजा करते हैं किन्तु मिथ्यादृष्टि देव भी पुराने देवों के उपदेश से जिनप्रतिमाओं को कुलाधिदेवता मान कर नित्य ही नियम से भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करते हैं। (२४०-२४१)

गाथा २५१-२५२ में आचार्यश्री ने भवनवासियों में सम्यक्त्वग्रहण के कारणों का निर्देश किया है और गा० २५३-५४ में भवनवासियों में उत्पत्ति के कारण बतलाते हुए लिखा है—"जो कोई अज्ञान तप से युक्त होकर शरीर में नाना प्रकार के कष्ट उत्पन्न करते हैं तथा जो पापी सम्यग्ज्ञान से युक्त तप को ग्रहण करके भी दुष्ट विषयों में आसक्त होकर जला करते हैं, वे सब विशुद्ध लेश्याओं से पूर्व में देवायु बाँधकर पश्चात् क्रोधादि कषायों द्वारा उस आयु का घात करते हुए सम्यक्त्वरूप सम्पत्ति से मन को हटा कर भवनवासियों में उत्पन्न होते हैं।" (गा० ५३-५४)

गाथा २५५ में सुमतिनाथ भगवान को नमस्कार कर अधिकार की समाप्ति की गई है।

६. करण-सूत्र :

प्रथम अधिकार	द्वितीय अधिकार	तृतीय अधिकार
तक्खय वड्ढिपमाणं १७७/४८	चयदलहदसंकलिदं ८५/१६७	गच्छसमे गुणयारे ८०/२८७
तक्खय वड्ढिपमाणं १९४/६०	चयहदमिच्छूणपदं ६४/१५८	
भुजपडिभुजमिलिदद्धं १८१/५२	चयहदमिट्ठाधियपद ७०/१६१	
भूमीअ मुहं सोहिय १७६/४८	दुचयहदं संकलिदं ८६/१६८	
भूमीए मुहं सोहिय १९३/६०	पददलहदवेकपदा ८४/१६६	
मुह-भू-समासमद्धिय १६५/४३	पददलहिदसंकलिदं ८३/१६६	
समवट्टवासवग्गे ११७/२५	पदवग्गं चयपहदं ७६/१६३	
	पदवग्गं पदरहिदं ८१/१६५	

७. प्रस्तुत संस्करण में प्रयुक्त विविध महत्त्वपूर्ण संकेत :

– = श्रेणी	प=पल्योपम	इ=इन्द्रक
= = प्रतर	सा=सागरोपम	सेढ़ी=श्रेणीबद्ध
≡ = त्रिलोक	सू=सूच्यंगुल	प्र०=प्रकीर्णक
१६ = सम्पूर्ण जीवराशि	प्र=प्रतरांगुल	मु=मुहूर्त
१६ ख=सम्पूर्ण पुद्गल	घ=घनांगुल	दि=दिन
(की परमाणु) राशि	ज=जगच्छ्रेणी	मा=माह
१६ ख ख=सम्पूर्ण काल	लोय प=लोकप्रतर	
(की समय) राशि	भू=भूमि	
१६ ख ख ख=सम्पूर्ण आकाश	को=कोस	
(की प्रदेश) राशि	दं=दण्ड	
ऽ० = ३ शून्य ०००	से=शेष	
७=संख्यात	ह=हस्त	
रि=असंख्यात	अं=अंगुल	
जौ=योजन	ध=धनुष	
| वर्गमूल (गाथा २/२८९) १९६-२०२		
७ रज्जु		
$^{1}{}_{2}$ = कुछ कम (गा० २/१९६)		

८. पाठान्तर :

※ वातवलयों की मोटाई	१/२८४/११६ (लोकविभाग)
※ शर्कराप्रभादि पृथिवियों का बाहल्य	२/२३/१४५

९. चित्र विवरण

क्र० सं०	विषय	अधिकार	गाथा सं०	पृष्ठ संख्या
१	लोक की ग्राकृति	१	१३७-१३८	३३
२	ग्रधोलोक की ग्राकृति	१	१३९	३४
३	लोक का उत्सेध ग्रौर विस्तार	१	१४१-१४३	३५
४	लोकरूप क्षेत्र की मोटाई	१	१४५-१४७	३७
५	लोक की उत्तरदक्षिण मोटाई, पूर्वपश्चिम चौड़ाई और ऊँचाई	१	१४९-१५०	३८
६	ऊर्ध्वलोक के आकार को ग्रधोलोक के सदृश वेत्रासनाकार करना	१	१६९	४५
७	सात पृथ्वियों के व्यास एवं घनफल	१	१७९	५०
८	पूर्व पश्चिम से ग्रधोलोक की आकृति	१	१८०	५१
९	ग्रधोलोक की ऊँचाई की ग्राकृति	१	१८०	५२
१०	ग्रधोलोक में स्तम्भ-बाह्य छोटी भुजायें	१	१८४	५५
११	ऊर्ध्वलोक के दस क्षेत्रों (के व्यास) की ग्राकृति	१	१९६-१९७	६२
१२	ऊर्ध्वलोक के स्तम्भों की ग्राकृति	१	२००	६४
१३	ऊर्ध्वलोक की ग्राठ क्षुद्र भुजाग्रों की आकृति	१	२०३-२०७	६७
१४	सामान्य लोक का घनफल	१	२१७	७३

क्र० सं०	विषय	अधिकार	गाथा सं०	पृष्ठ संख्या
१५	लोक का आयत चौरस क्षेत्र	१	२१७	७३
१६	लोक का तिर्यगायत क्षेत्र	१	२१७	७४
१७	लोक में यवमुरजाकृति	१	२१८-२२०	७५
१८	लोक में यवमध्यक्षेत्र की आकृति	१	२२१	७७
१९	लोक में मन्दरमेरु की आकृति	१	२२२	७८
२०	लोक की दूष्याकार रचना	१	२३४	८४
२१	लोक में गिरिकटक की आकृति	१	२३६	८६
२२	सामान्य अधोलोक एवं ऊर्द्धायत अधोलोक	१	२३८	८८
२३	तिर्यगायत अधोलोक	१	२३८	८९
२४	अधोलोक की यवमुरजाकृति	१	२३९	९०
२५	यवमध्य अधोलोक	१	२४०	९१
२६	मन्दरमेरु अधोलोक की आकृति	१	२४३-४४	९४
२७	दूष्य अधोलोक	१	२५०-५१	९७
२८	गिरिकटक अधोलोक	१	२५०-५१	९९
२९	ऊर्ध्वलोक सामान्य	१	२५४	१०१
३०	ऊर्ध्वायत चतुरस्रक्षेत्र	१	२५४	१०२
३१	तिर्यगायत चतुरस्रक्षेत्र	१	२५५-५६	१०३
३२	यवमुरज ऊर्ध्वलोक	१	२५५-५६	१०४
३३	यवमध्य ऊर्ध्वलोक	१	२५७	१०५
३४	मन्दरमेरु ऊर्ध्वलोक की आकृति	१	२५७	१०६
३५	दूष्य ऊर्ध्वलोक	१	२६६	११०
३६	गिरिकटक ऊर्ध्वलोक	१	२६९	१११
३७	लोक के सम्पूर्ण वातवलय	१	२७६	११५
३८	लोक के नीचे तीनों पवनों से अवरुद्ध क्षेत्र	१	—	१२०
३९	अधोलोक के पार्श्वभागों का घनफल	१	—	१२१-१२३

क्रम सं०	विषय	अधिकार	गाथा सं०	पृष्ठ संख्या
४०	लोक के शिखर पर वायुरुद्ध क्षेत्र का घनफल	१	—	१२६
४१	लोकस्थित आठों पृथिवियों के वायुमण्डल	१	—	१३२
४२	लोक का सम्पूर्ण घनफल	१	—	१३७
४३	लोक के शुद्धाकाश का प्रमाण	१	—	१३८
४४	सीमन्त इंद्रक व विक्रांत इंद्रक	२	३८	१५१
४५	चैत्यवृक्षों का विस्तार	३	३१	२७४

विविध तालिकायें :

	विषय	पृ०	अधिकार/गाथा
१	सौधर्म स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त क्षेत्रों का घनफल	पृ० ६३	१/१९८-१९९
२	मन्दर ऊर्ध्वलोक का घनफल	पृ० १०९	१/२६४-२६६
३	नरक-पृथिवियों की प्रभा, बाहुल्य एवं बिल संख्या	पृ० १४६	२/९,२१-२३,२७
४	सर्व पृथिवियों के प्रकीर्णक बिलों का प्रमाण	१७२	२/९४
५	सर्व पृथिवियों के इन्द्रकों का विस्तार	१९४-१९५	२/१०८-१५६
६	इंद्रक, श्रेणी बद्ध और प्रकीर्णक बिलों के बाहुल्य का प्रमाण	१९६-१९७	२/१५७-१५८
७	इन्द्रक, श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक बिलों का स्वस्थान, परस्थान अन्तराल	२१३	२/१६४-१९५
८	सातों नरकों के प्रत्येक पटल की जघन्य-उत्कृष्ट आयु का विवरण	२२१-२२२	२/२०३-२१६
९	सातों नरकों के प्रत्येक पटल स्थित नारकियों के शरीर के उत्सेध का विवरण	२३८-२३९	२/२१७-२७१
१०	भवनवासी देवों के कुल, चिह्न, भवन सं. आदि का विवरण	२७१	३/९-२१
११	भवनवासी इन्द्रों के परिवार-देवों की संख्या	२८५	३/६२-७६
१२	भवनवासी इन्द्रों के अनीक देवों का प्रमाण	२९०	२/८१-८९
१३	भवनवासी इन्द्रों की देवियों का प्रमाण	२९४	३/९०-९९
१४	भवनवासी इंद्रों के परिवार देवों की देवियों का प्रमाण	२९७	३/१००-१०८

	विषय	पृ०	अधिकार/गाथा
१५	भवनवासी देवों के आहार एवं श्वासोच्छ्वास का अन्तराल तथा चैत्यवृक्षादि का विवरण	३०५	३/१११-१३७
१६	भवनवासी इन्द्रों की (सपरिवार) आयु के प्रमाण का विवरण	३१२-१३	३/१४४-१६०

११. आभार :

'तिलोयपण्णत्ती' जैसे विशालकाय ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना में अनेक महानुभावों का हमें भरपूर सहयोग और प्रोत्साहन मिला है। प्रथम खण्ड के प्रकाशनावसर पर उन सबका कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना मेरा नैतिक कर्त्तव्य है।

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज एवं आचार्य कल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज के आशीर्वचन इस सम्पूर्ण महदनुष्ठान में मुझे प्रेरित करते रहे हैं; मैं इन साधु-पुंगवों के चरणों में सविनय सादर नमोस्तु निवेदन करता हुआ उनके दीर्घ नीरोग जीवन की कामना करता हूं।

पूज्य भट्टारक द्वय—मूड़बिद्री मठ और श्रवणबेलगोला मठ—को भी सादर वन्दना निवेदित करता हूं जिनके सौजन्य से हमें क्रमशः पाठान्तर और लिप्यन्तरण प्राप्त हो सके ताड़पत्रीय कानड़ी प्रतियों से पाठान्तर व लिप्यन्तरण भेजने वाले पण्डित द्वय श्री देवकुमारजी शास्त्री, मूड़बिद्री व श्री एस. बी. देवकुमारजी शास्त्री, श्रवणबेलगोला का भी मैं अत्यन्त आभारी हूं; उनके सहयोग के बिना तो प्रस्तुत संस्करण को यह रूप कदापि मिल ही नही सकता था।

अन्य हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त करने में डॉ० कस्तूरचदजी कासलीवाल (जयपुर), श्री रतनलालजी कामा (भरतपुर), पं० अरुणकुमारजी शास्त्री (ब्यावर) श्री हरिचन्दजी (उज्जैन) और श्री बिशम्बरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ (दिल्ली) का सहयोग हमें प्राप्त हुआ। मैं इन सब महानुभावों का आभारी हूं।

आदरणीय ब्र० कजोड़ीमलजी कामदार (जोबनेर) पूज्य माताजी के साथ संघ में ही रहते है। ग्रन्थ के बीजारोपण से लेकर इसके वर्तमानरूप में प्रस्तुतीकरण की अवधि में आपने धैर्यपूर्वक सभी व्यवस्थाएँ जुटाकर मेरे भार को काफी हल्का किया है। मैं आपके इस उदार सहयोग के लिए आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूं।

ग्रन्थ का पुरोवाक् समाज के वयोवृद्ध विद्वान् श्रद्धेय डॉ. पन्नालालजी सा. साहित्याचार्य ने लिखकर मुझ पर जो अनुग्रह किया है, इसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं। पूज्य पण्डितजी की विद्वत्ता और सरलता से मैं अभिभूत हूं, मैं उनके दीर्घायुष्य की कामना करता हूं।

प्रो० लक्ष्मीचन्द्रजी जैन, प्राचार्य शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म. प्र.) ने 'तिलोयपण्णत्ती का गणित' विषय लिख भेजा है, एतदर्थ मैं उनका हार्दिक आभार मानता हूं। प्रोफेसर सा० जैन गणित के विशेषज्ञ हैं। जैनागम में आपकी अटूट आस्था है।

हस्तलिखित प्रतियों से पाठ का मिलान करने में और निर्णय लेने में हमें डॉ० उदयचन्दजी जैन, प्राध्यापक प्राकृत विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर का भी प्रभूत सहयोग प्राप्त हुआ है। मैं उन्हें हार्दिक साधुवाद देता हूं।

प्रस्तुत संस्करण में मुद्रित चित्रों की रचना श्री विमलप्रकाशजी अजमेर और श्री रमेशचन्द्र मेहता उदयपुर ने की है। वे धन्यवाद के पात्र हैं।

विशेषार्थपूर्वक ग्रंथ की सरल एवं सुबोध हिंदी टीका करने का श्रम तो पूज्य माताजी १०५ श्री विशुद्धमतीजी ने किया ही है साथ ही इस प्रकाशन-अनुष्ठान के संचालन का गुरुतर भार भी उन्हीने वहन किया है। उनका धैर्य, कष्टसहिष्णुता, त्याग-तप और निष्ठा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। गत दो-ढ़ाई वर्षों से वे ही इस महदनुष्ठान को पूर्ण करने में जुटी हैं, अनेक व्यवधानों के बाद यह प्रथम खण्ड (प्रथम तीन अधिकार) आज आपके हाथों में देकर हमें गौरव का अनुभव हो रहा है। दूसरा खण्ड (चतुर्थ अधिकार) भी प्रेस मे जाने को तैयार है; यदि अनुकूलता रही तो दूसरा और तीसरा दोनों खण्ड अगले दो वर्ष में प्रस्तुत कर सकेंगे। पूज्य माताजी ने इस ग्रंथ के सम्पादन का गुरुतर उत्तरदायित्व मुझे सौंप कर मुझ पर जो अनुग्रह किया है और मुझे जिनवाणी की सेवा का जो अवसर दिया है, उसके लिए मैं पू० आर्यिका श्री का चिरकृतज्ञ हूं। सततस्वाध्यायशीला पूज्य माताजी अध्ययन-अध्यापन में ही अपने समय का सदुपयोग करती हैं। यद्यपि अब आपका स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहता है तथापि आप अपने कर्त्तव्यों में सदैव दृढ़तापूर्वक संलग्न रहती हैं। पूज्य माताजी का रत्नत्रय कुशल रहे और स्वास्थ्य भी अनुकूल बने ताकि वे जिनवाणी के हार्द को अधिकाधिक सुबोध रीति से प्रस्तुत कर सकें–यही कामना करता हूं। पूज्य माताजी के चरणों में शतशः वन्दामि निवेदन करता हूं।

ग्रन्थ के प्रकाशन का उत्तरदायित्व श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ने वहन किया है एतदर्थ मैं महासभा के प्रकाशन विभाग एवं विशेष रूप से महासभाध्यक्ष श्री निर्मलकुमारजी सेठी को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

ग्रन्थ का मुद्रण कमल प्रिन्टर्स मदनगंज–किशनगढ़ में हुआ है। दूरस्थ होने के कारण प्रूफ मैं स्वयं नहीं देख सका हूं अतः यत्किंचित् भूलें रह गई हैं। पाठकों से अनुरोध है कि वे स्वाध्याय से पूर्व शुद्धिपत्र के अनुसार आवश्यक संशोधन अवश्य कर लें।

गणितीय ग्रंथों का मुद्रण वस्तुतः जटिल कार्य है। अनेक तालिकायें, आकृतियां, जोड़-बाकी-गुणा-भाग तथा बटा-बटी की विशिष्ट संख्यायें आदि सभी इस ग्रंथ में हैं। प्रेस मालिक श्री पांचूलालजी धर्मनिष्ठ सुश्रावक हैं। उन्हें अनेक ग्रंथों के मुद्रण का अनुभव है। उन्होंने इस ग्रन्थ के मुद्रण में पूरी रुचि लेकर इसे बहुत ही सुन्दरतापूर्वक आपके हाथों में प्रेषित किया है। एतदर्थ वे अतिशय धन्यवाद के पात्र हैं।

वस्तुतः अपने वर्तमान रूप में तिलोयपण्णत्ती (प्रथम खण्ड) की जो कुछ उपलब्धि है, वह सब इन्हीं श्रमशील पुण्यात्माओं की है। मैं इन सबका अत्यन्त आभारी हूं।

सुधी गुणग्राही विद्वानों से अपनी भूलों के लिये क्षमा चाहता हूं।

इत्यलम्

बसन्त पंचमी, वि. स. २०१०
श्री पार्श्वनाथ जैन मन्दिर
शास्त्री नगर जोधपुर (राज०)

विनीत—
चेतनप्रकाश पाटनी
सम्पादक
दिनांक ७ फरवरी ८४

तिलोयपण्णत्ती और उसका गणित

(लेखक : लक्ष्मीचन्द्र जैन, प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय)
छिंदवाड़ा (म० प्र०)

आचार्य यतिवृषभ द्वारा रचित तिलोयपण्णत्ती करणानुयोग विषयक महान् ग्रन्थ है जो प्राकृत भाषा में है। यह त्रिलोकवर्ती विश्व-रचना का सार रूप से गणितनिबद्ध दर्शन कराने वाला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसका प्रथम बार सम्पादन दो भागों में प्रोफेसर हीरालाल जैन, प्रोफेसर ए. एन. उपाध्ये तथा पंडित बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री द्वारा १९४३ एवं १९५१ में सम्पन्न हुआ था। पूज्य आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी कृत हिन्दी टीका सहित अब इसका द्वितीय बार सम्पादन हो रहा है जो अपने आपमें एक महान् कार्य है, जिसमें विगत सम्पादित ग्रंथों का परिशोधन एवं विश्लेषण तथा अन्य उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों द्वारा मिलान किया जाकर एक नवीन, परम्परागत रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ का विशेष महत्त्व इसलिए है कि कर्मसिद्धान्त एवं अध्यात्म-सिद्धान्त-विषयक ग्रन्थों में प्रवेश करने हेतु इस ग्रंथ का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। कर्म परमाणुओं द्वारा आत्मा के परिणामों का दिग्दर्शन जिस गणित द्वारा प्रबोधित किया जाता है, उस गणित की रूपरेखा का विशेष दूरी तक इस ग्रंथ में परिचय कराया गया है। इसप्रकार यह ग्रंथ अनेक ग्रन्थों को भलीभांति समझने हेतु सुदृढ़ आधार बनता है।

यतिवृषभाचार्य की दो कृतियाँ निर्विवाद रूप से प्रसिद्ध मानी गई हैं जो क्रमशः कसायपाहुड-सुत्त पर रचित चूर्णिसूत्र और तिलोयपण्णत्ती हैं। आचार्य आर्यमंक्षु एवं आचार्य नागहस्ति जो "महा-कम्मपयडि पाहुड" के ज्ञाता थे उनसे यतिवृषभाचार्य ने कसायपाहुड के सूत्रों का व्याख्यान ग्रहण किया था, जो 'पेज्जदोसपाहुड' के नाम से भी प्रसिद्ध था। आचार्य वीरसेन ने इन उपदेशों को प्रवाहक्रम से आये घोषित किया है तथा प्रवाह्यमान भी कहकर यथार्थ तथ्य रूप उल्लेखित किया है। आगे उन्होंने आचार्य आर्यमंक्षु के उपदेश को 'अपवाइज्जमाण' और आचार्य नागहस्ति के उपदेश को 'पवाइज्जंत' कहा है।

तिलोयपण्णत्ती के रचयिता यतिवृषभाचार्य कितने प्रकांड विद्वान् थे यह चूर्णिसूत्रों तथा तिलोयपण्णत्ती की रचना-शैली से स्पष्ट हो जाता है। रचनाएँ वृत्तिसूत्र तथा चूर्णिसूत्र में हुआ

करती थीं। वृत्तिसूत्र के शब्दों की रचना संक्षिप्त तथा सूत्रगत अशेष अर्थ संग्रह सहित होती थी। चूर्णिसूत्र की रचना भी संक्षिप्त शब्दावलीयुक्त, महान् अर्थगर्भित, हेतु निपात एवं उपसर्ग से युक्त, गम्भीर, अनेक पदसमन्वित, अव्यवच्छिन्न, धारा-प्रवाही हुआ करती थी। इसप्रकार तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि से निस्सृत बीजपदों को उद्घाटित करने में चूर्णिपद समर्थ कहलाता था। चूर्णिपद के बीजसूत्र विवृत्यात्मक सूत्र-रूप होते थे तथा तथ्यों को उद्घोषित करने वाले होते थे। इन सूत्रों द्वारा यतिवृषभाचार्य ने आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार इन पांच उपक्रमों द्वारा अर्थ को प्रकट किया है। इसप्रकार उनकी शैली विभाषा सूत्र सहित, अवयवार्थ वाली एवं पदच्छेद पूर्वक व्याख्यान वाली है।

ऐसे कर्म-ग्रंथ के सार्वजनीन हित में प्रयुक्त होने हेतु उसका आधारभूत ग्रन्थ भी तिलोयपण्णत्ती रूप में रचा। इस ग्रन्थ में नौ अधिकार हैं: सामान्य लोक स्वरूप, नारकलोक, भवनवासीलोक, मनुष्यलोक, तिर्यग्लोक, व्यन्तरलोक, ज्योतिर्लोक, देवलोक और सिद्धलोक। इसप्रकार गणितीय, सुव्यवस्थित, संख्यात्मक विवरण संकेत एवं संदृष्टियों सहित इस सरल, लोकोपयोगी तथा लोकोत्तरोपयोगी ग्रन्थ की रचना अधिकांशरूप से पद्यात्मक तथा कहीं कहीं गद्य खण्ड, स्फुटशब्द या वाक्य रूप भी है। इसमें छन्दों का भी उपयोग हुआ है जो इन्द्रवज्रा, स्वागता, उपजाति, दोधक, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, गाथा, मालिनी नाम से ज्ञात हैं।

इस ग्रन्थ में ग्रंथकार ने कहीं आचार्य परम्परा से प्राप्त और कहीं गुरुपदेश से प्राप्त ज्ञान का उल्लेख किया है। जिन ग्रंथों का उन्होंने उल्लेख किया है: आग्रायणी, परिकर्म, लोक विभाग, लोक विनिश्चय: वे अभी उपलब्ध नहीं हैं। इन ग्रन्थों में भी तिलोयपण्णत्ती के समान करणानुयोग की सामग्री रही होगी। करणानुयोग-सम्बन्धी सामग्री जिसमें गणित सूत्रों का बाहुल्य होता है अर्धमागधी आगम विषयक सूर्यप्रज्ञप्ति (बम्बई १९१९), चन्द्रप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (बम्बई १९२०) में भी मिलती है। साथ ही अन्य ग्रन्थों: लोक विभाग, तत्वार्थराजवार्तिक, धवला जयधवला टीका, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति संग्रह, त्रिलोकसार, त्रिलोकदीपिका (सिद्धातसार दीपक) में भी करणानुयोग विषयकगणितीय सामग्री उपलब्ध है। सिद्धान्तसार दीपक ग्रंथ तथा त्रिलोकसार ग्रन्थ का अभिनवावधि में सम्पादन श्री आर्यिका विशुद्धमतीमाताजी ने अपार परिश्रम के पश्चात् विशुद्धरूप में किया है। डा० किरफेल द्वारा रचित डाइ कास्मोग्राफी डेर इंडेर (बान, लाइयजिग, १९२०) भी इस संबंध में दृष्टव्य है।

यतिवृषभाचार्य के ग्रन्थ का रचनाकाल निर्णय विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से अलग अलग किया है। डा० हीरालाल जैन तथा डा० ए० एन० उपाध्ये ने उनका काल ईस्वी सन् ४७३ से लेकर ६०९ के मध्य निर्णीत किया है। यही काल निर्णय डेविड पिंगरी ने माना है। फिर भी इन

विद्वानों ने स्वीकार किया है कि अभी भी इस काल निर्णय को निश्चित नहीं कहा जा सकता है और आगे सुदृढ़ प्रमाण मिलने पर इसे निश्चित किया जाये। आचार्य शिवार्य, वट्टकेर, कुन्दकुन्द आदि ग्रंथरचयिताओं के वर्ग में यतिवृषभ आचार्य आते हैं जिनका ग्रंथ आगमानुसारी ग्रंथ समूह में आता है जो पाटलीपुत्र में संग्रहीत आगम के कुछ आचार्यों द्वारा अप्रामाणिक एवं त्याज्य माने जाने के पश्चात् आचार्य परम्परा के ज्ञानाधार से स्मृतिपूर्वक लेख रूप में संग्रहीत किये गये। उनकी पूर्ववर्ती रचनाएँ क्रमशः अग्गायणिय, दिट्ठिवाद, परिकम्म, मूलायार, लोयविणिच्छय लोय विभाग लोगाइणि; रही हैं।

१. गणित-परिचय :

सन् १९५२ के लगभग डा० हीरालाल जैन द्वारा मुझे तिलोयपण्णत्ती के दोनों भागों के गणित संबंधी प्रबन्ध को तैयार करने के लिए कहा गया था। इन पर 'तिलोयपण्णत्ती का गणित' प्रबन्ध तैयार कर 'जम्बूदीवपण्णत्तीसंगहो' में १९५८ में प्रकाशित किया गया। उसमें कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं जिन्हे सुधार कर यह प्रायः १०५ पृष्ठों का लेख वितरित किया गया था। वह लेख सुविस्तृत था तथा तुलनात्मक एवं शोधात्मक था। यहाँ केवल रूपरेखायुक्त गणित का परिचय पर्याप्त होगा।

तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ में जो सूत्रबद्ध प्ररूपण है उसमें परिणाम तथा गणितीय (करण) सूत्र दिये गये हैं तथा उनका विभिन्न स्थलों में प्रयोग भी दिया गया है। ये सूत्र ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। आगम-परम्परा-प्रवाह में आया हुआ यह गणितीय विषय अनेक वर्ष पूर्व का प्रतीत होता है। क्रियात्मक एवं रैखिकीय, अंकगणितीय एवं बीजगणितीय प्रतीक भी इस ग्रन्थ में स्फुट रूप से उपलब्ध हैं जिनमे से कुछ, हो सकता है, नेमिचद्राचार्य के ग्रन्थों की टीकाएँ बनने के पश्चात् जोड़ा गया हो।

सिंहावलोकन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि जो गणित इस ग्रन्थ में वर्णित है वह सामान्य लोकप्रचलित गणित न होकर लोकोत्तर विषय प्रतिपादन हेतु विशिष्ट सिद्धान्तों को आधार लेकर प्रतिपादित किया गया है। यथा : संख्याओं के निरूपण में संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त प्रकार वाली संख्याएँ–राशियों का प्रतिनिधित्व करने हेतु निष्पन्न की गई हैं। उनके दायरे निश्चित किये गये हैं, उन्हें विभिन्न प्रकारों में उत्पन्न करने हेतु विधियाँ दी गई हैं, और उन्हें संख्यात से यथार्थ असंख्यात रूप में लाने हेतु असंख्यातात्मक राशियों-संख्याओं को युक्त किया गया है। इसीप्रकार असंख्यात से यथार्थ अनन्तरूप में लाने के लिए संख्याओं को अनन्तात्मक राशियों से युक्त किया गया है। यह संख्याप्रमाण है। इसीप्रकार उपमा प्रमाण द्वारा राशियों के परिमाण का बोध किया गया है।

जिसप्रकार असंख्यात एवं अनन्त रूप राशियाँ उत्पन्न की गईं, जिनका दर्शन क्रमशः अवधिज्ञानी और केवलज्ञानी को होता है, उसीप्रकार उपमा प्रमाण में आने वाली प्रतिनिधि राशियाँ, अंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर, लोक, पल्य और सागर में प्रदेश राशियों और समय राशियों को निरूपित करती हैं जो द्रव्य प्रमाणानुगम में अनेक प्रकार की राशियों की सदस्य संख्या को बतलाती हैं। इसप्रकार प्रकृति में त्रिलोक में पायी जाने वाली अस्तिरूप राशियों का बोध इन रचनात्मक संख्याप्रमाण एवं उपमाप्रमाण द्वारा दिया जाता है। इसीप्रकार अल्पबहुत्व एवं धाराओं द्वारा राशि की सही सही स्थिति का बोध दिया जाता है।

उपमा प्रमाण के आधारभूत प्रदेश और समय हैं। प्रदेश की परिभाषा परमाणु के आधार पर है। अभेद्य पुद्गल परमाणु जितना आकाश व्याप्त करता है उतने आकाशप्रमाण को प्रदेश कहते हैं। इसप्रकार अगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल में प्रदेश संख्या निश्चित की गई है। इसीप्रकार जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और घन लोक में प्रदेश संख्या निश्चित है। पल्य और सागर में जो समयराशि निश्चित की गई है, वह समय भी परिभाषित किया गया है। परमाणु जितने काल में मंद गति से एक प्रदेश का प्रतिक्रमण करता है अथवा जितने काल में तीव्र गति से जगच्छ्रेणी तय करता है वह समय कहलाता है। जिसप्रकार परमाणु अविभाजित है वैसे ही प्रदेश एवं समय की इकाई अविभाजित है।

आकाश में प्रदेशबद्ध श्रेणिया मानकर जीव एव पुद्गलों की ऋजु एव विग्रह गति बतलाई गई है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में अकलकाचार्य ने निरूपण किया है कि चार समय से पहिले ही मोड़े वाली गति होनी है, क्योंकि लोक में ऐसा कोई स्थान नहीं है जिसमें तीन मोडे से अधिक मोड़े लेना पड़े। जैसे षष्टिक चांवल साठ दिन में नियम से पक जाते हैं उसी प्रकार विग्रहगति भी तीन समय में समाप्त हो जाती है। (तत्वा. वा. २, २८, १)।

अंक गणना में शून्य का उपयोग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ तिलोयपण्णत्ती (गाथा ३१२, चतुर्थ महाधिकार) में अचलात्म नामक काल को एक संकेतना द्वारा दर्शाया गया है। यह मान है $(८४)^{३१} \times (१०)^{९०}$ प्रमाण वर्ष। अर्थात् ८४ में ८४ का ३१ बार गुणन और १० का १० में ९० बार गुणन। यहीं वर्गितसंवर्गित प्रक्रिया का भी उपयोग किया गया है। जैसे यदि २ को तीन बार वर्गितसंवर्गित किया जाये तो $(२५६)^{२५६}$ अर्थात २५६ में २५६ का २५६ बार गुणन करने पर यह राशि उत्पन्न होगी।

जहा वर्गणसवर्गण से राशि पर प्रक्रिया करने पर इष्ट बड़ी राशि उत्पन्न कर ली जाती है वहीं अर्द्धच्छेद एवं वर्गशलाका निकालने की प्रक्रिया से इष्ट छोटी राशि उत्पन्न कर ली जाती है। एक

ओर संश्लेषण दृष्टिगत होता है दूसरी ओर विश्लेषण। इस प्रकार की प्रक्रियाओं का उपयोग इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अर्द्धच्छेद प्रक्रिया से गुणन को योग में तथा भाग को घटाने में बदल दिया जाता है। वर्गण की प्रक्रिया भी गुणन में बदल जाती है। इस प्रकार धाराओं में आने वाली विभिन्न राशियों के बीच अर्द्धच्छेद एवं वर्गशलाका विधियों द्वारा एवं वर्गण विधियों द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

अंकगणित में ही समान्तर और गुणोत्तर श्रेणियों के योग निकालने के तिलोयपण्णत्ती में अनेक प्रकरण आये हैं। इस ग्रंथ में कुछ और नवीन प्रकार की श्रेणियों का संकलन किया गया है। दूसरे महाधिकार में गाथा २७ से लेकर गाथा १०४ तक नारक बिलों के सम्बन्ध में श्रेणिसंकलन है। उसी प्रकार पांचवें महाधिकार में द्वीप समुद्रों के क्षेत्रफलों का अल्पबहुत्व संकलन रूप में वर्णित किया गया है। श्रेणियों को इतने विस्तृत रूप में वर्णन करने का श्रेय जैनाचार्यों को दिया जाना चाहिए। पुन: इस प्रकार की प्ररूपणा सीधी अस्तित्व पूर्ण राशियों से सम्बन्ध रखती थी जिनका बोध इन संश्लेषण एवं विश्लेषण विधियों से होता था।

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि उपमा प्रमाण में एक सूच्यंगुल में स्थित प्रदेशों की संख्या उतनी ही मानी गयी जितनी पल्य की समय राशि को अद्धापल्य की समय राशि के अर्द्धच्छेद बार स्वयं से स्वयं को गुणित किया जाये। प्रतीकों में

$$(\text{अंगुल}) = (\text{पल्य})^{[\text{अद्धापल्य के अर्द्धच्छेद}]}$$

साथ ही यह भी महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि एक प्रदेश में अनन्त परमाणुओं को समाविष्ट करने की अवगाहन शक्ति आकाश में है और यही एक दूसरे में प्रविष्ट होने की क्षमता परमाणुओं में भी है।

समान्तर श्रेणियों और गुणोत्तर श्रेणियों का उपयोग तिलोयपण्णत्ती में तो आया ही है, साथ ही कर्म-ग्रन्थों में तो आत्मा के परिणाम और कर्मपुद्गलों के समूह के यथोचित प्रतिपादन में इन श्रेणियों का विशाल रूप में उपयोग हुआ है। श्रेणियों का आविष्कार कब, क्यों और क्या अभिप्राय लेकर हुआ, इसका उत्तर जैन ग्रन्थों द्वारा भलीभांति दिया जा सकता है। विश्व की दूसरी सभ्यताओं में इनके अध्ययन का उदय किस प्रकार हुआ तथा एशिया में भी इनका अध्ययन का मूल स्रोतादि क्या था, यह शोध का विषय बन गया है। अर्द्धच्छेद और वर्गशलाकाओं का धाराओं में उपयोग भी विश्लेषण विधियों में से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विधि है जिसका उपयोग आज लागएरिथ के रूप में विश्लेषण तथा प्रयोगात्मक विधियों में अत्यधिक बढ़ गया है। आधार दो को जैनाचार्यों ने

अर्द्धच्छेद अथवा "लागएरिथ्म टू दा बेस टू' मानकर कर्म सिद्धान्तादि में गणनाओं को सरलतम बना दिया था वैसे ही आज काम्प्यूटरों में भी दो को आधार चुना गया है। ताकि पूर्णांकों में परिणाम राशि की सार्थकता को प्रतिबोधित कर सकें।

तिलोयपण्णत्ती में बीजरूप प्रतीकों का कहीं-कही उपयोग हुआ है। रिण के लिये उसके संक्षेप रूप को कहीं-कहीं लिया गया दृष्टिगत होता है, जैसे रिण के लिये 'रि'। मूल के लिए 'मू'। रिण के लिये ˙। जगच्छ्रेणी के लिए आड़ी लकीर '—'। जगत्प्रतर के लिये दो आड़ी क्षैतिज लकीरें "=" । घन लोक के लिए तीन आड़ी लकीरें "≡"। रज्जु के लिए 'र', पल्य के लिये 'प', सूच्यंगुल के लिये '२', आवलि के लिए भी '२' लिया गया। नेमिचन्द्राचार्य के ग्रंथों की टीकाओं मे विशेष रूप से संदृष्टियों को विकसित किया गया जो उनके बाद ही माधवचन्द्र त्रैविद्याचार्य एवं चामुण्डराय के प्रयासों से फलीभूत हुआ होगा, ऐसा अनुमान है।

जहाँ तक मापिकी एवं ज्यामिति विधियों का प्रश्न है, इन्हें करणानुयोग ग्रन्थों में जम्बूद्वीपादि के वृत्त रूप क्षेत्रों के क्षेत्रफल, धनुष, जीवा, बाण, पार्श्वभुजा, तथा उनके अल्पबहुत्व निकालने के लिये प्रयुक्त किया गया। तिलोयपण्णत्ती में उपर्युक्त के सिवाय लोक को वेष्टित करने वाले विभिन्न स्थलों पर स्थित वातवलयों के आयतन भी निकाले गये हैं जो स्फान सदृश आकृतियों, क्षेत्रों एवं आयतनों से युक्त हैं। इनमें आकृतियों का टापालाजिकल डिफार्मेशन कर घनादिरूप में लाकर घनफल आदि निकाला गया है, अतएव विधि के इतिहास की दृष्टि से यह प्रयास महत्त्वपूर्ण है।

व्यास द्वारा वृत्त की परिधि निकालने की विधियाँ भी विश्व में कई सभ्यता वाले देशों में पाई जाती हैं। तिलोयपण्णत्ती जैसे करणानुयोग के ग्रंथों में $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ का मान स्थूल रूप से ३ तथा सूक्ष्म रूप से $\sqrt{१०}$ दिया गया है। वीरसेनाचार्य ने धवला ग्रन्थ में एक और मान दिया है जिसे उन्होंने सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कहा है और वह वास्तव में ठीक भी है। वह चीन में भी प्रयुक्त होता था : $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{३५५}{११३} = ३.१४१५९३$: किन्तु वीरसेनाचार्य ने जो संस्कृत श्लोक उद्धृत किया है उसमें १६ अधिक जोडकर लिखा जाने से वह अशुद्ध हो गया है :

$$\frac{१६\,(\text{व्यास}) + १६}{११३} + ३\,(\text{व्यास}) = \text{परिधि}$$

जो कुछ हो यह तथ्य चीन और भारत से गणितीय सम्बन्ध की परम्परा को जोड़ता प्रतीत होता है। प्रदेश और परमाणु की धारणाएँ यूनान से संबंध जोड़ती हैं तथा गणित के आधार पर अहिंसा

का प्रचार यूनान के पिथेगोरस की स्मृति ताजी करती है।* ज्यामिति में अनुपात सिद्धान्त का तिलोयपण्णत्ती में विशेष प्रयोग हुआ है। लोकाकाश का घनफल निकालने की प्रक्रिया को विस्तृत किया गया है और भिन्न-भिन्न रूप की आकृतियां लोक के घनफल के समान लेकर छोटी आकृतियों से उन्हें पूरित कर घनफल की उनमें समानता दिखलाई गई है। इस प्रकार लोक को प्रदेशों से पूरित कर, छोटी आकृतियों से पूरित कर जो विधियां जैनाचार्यों ने प्रयुक्त की हैं वे गणितीय इतिहास में अपना विशेष स्थान रखेंगी।

जहां तक ज्योतिर्लोक विज्ञान की विधियां हैं वे तिलोयपण्णत्ती अथवा अन्य करणानुयोग ग्रन्थों में एक सी हैं। समस्त आकाश को गगनखण्डों में विभाजित कर मुहूर्तों में ज्योतिर्बिम्बों की स्थिति, गति, सापेक्ष गति, वीथियां आदि निर्धारित की गयीं। इनमे योजन का भी उपयोग हुआ। योजन शब्द कोई रहस्यमय योजना से सम्बन्धित प्रतीत होता है। ऐसा ही चीन में "ली" शब्द से अभिप्राय निकलता है। अंगुल के माप के आधार पर योजन लिया गया, और अंगुल के तीन प्रकार होने के कारण योजन के भी तीन प्रकार हो गये होंगे। सूर्य, चन्द्र एव ग्रहों के भ्रमण में दैनिक एवं वार्षिक गति को मिला लिया गया। इससे उनकी वास्तविक वीथियां वृत्ताकार न होकर समापन एवं असमापन कुंतल रूप में प्रकट हुईं। जहा तक ग्रहों और सूर्य चन्द्रमा की पृथ्वीतल से दूरी का संबंध है, उनमें प्रयुक्त योजन का अभिप्राय वह नहीं है जैसा कि हम साधारणतः सोचते हैं और जमीन के ऊपर की ऊँचाई चन्द्र, सूर्य की ले लेते हैं। वे उक्त ग्रहों को पारस्परिक कोणीय दूरियों के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए प्रतीत होते हैं। इस विषय पर शोध लगातार चल रही है। यह भी जानना आवश्यक है कि इस प्रकार योजन माप में चित्रातल से जो दूरी ग्रह आदि की निकाली गयी वह विधि क्या थी और उसका आधार क्या था। क्या यह दूरी छायामाप से ही निकाली जाती थी अथवा इसका और कोई आधार था? सज्जनसिंह लिश्क एव एस. डी. शर्मा ने इस विधि पर शोध निबन्ध दिये है जिनसे उनकी मान्यता यह स्पष्ट होती है कि ये ऊँचाईयाँ सूर्य पथ से उनकी कोणीय दूरियां बतलाती होंगी। किन्तु यह मान्यता केवल चन्द्रमा के लिये अनुमानतः सही उतरती है।

योजन के विभिन्न प्रकार होने के साथ ही एक समस्या और रह जाती है। वह है रज्जु के माप को निर्धारित करने की। इसके लिए रज्जु के अर्द्धच्छेद लिए जाते हैं और इस संख्या का संबंध चन्द्रपरिवारादि ज्योतिर्बिम्ब राशि से जोड़ा गया है। इसमें प्रमाणांगुल भी शामिल होते हैं जिनकी प्रदेशसंख्या का मान पल्य समयराशि से स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार रज्जु का मान

---

*देखिये, "तिलोयपण्णत्ती का गणित" जम्बूदीवपण्णत्तीसंगहो, शोलापुर, १९५८ (प्रस्तावना) १-१०५ तथा देखिये "गणितसार संग्रह", शोलापुर, १९६३ (प्रस्तावना)

निश्चित किया जा सकता है। चन्द्रमादि बिम्बों को गोलार्द्ध रूप माना गया है जो वैज्ञानिक मान्यता से मिलता है क्योंकि आधुनिक यन्त्रों से प्रतीत होता है कि चन्द्रमादि सर्वदा पृथ्वी की ओर केवल वही अर्द्ध मुख रखते हुए विचरण करते हैं। उष्णतर किरणों और शीतल किरणों का क्या अभिप्राय हो सकता है, अभी तक स्पष्ट प्रतीत नहीं हुआ है। ग्रहों का गमन सम्बन्धी ज्ञान का कालवश विनष्ट होना बतलाया गया है। पर यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र बिम्बों के गमन एकीकृत विधि से वीथियों के रूप में तथा मुहूर्त में योजन एवं गगनखण्डों के माध्यम से दर्शाये गये होंगे जो यूनान की प्राचीन विधियों तथा भारत की तत्कालीन वृत्त वीथियों के आधार पर पुनः स्थापित किये जा सकते हैं ऐसा अनुमान है।

पंडित नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य जैन ज्योतिष के सम्बन्ध मे कुछ निष्कर्षों पर शोधानुसार पहुंचे थे जो निम्नलिखित हैं : ❀

(क) पञ्चवर्षात्मक युग का सर्व प्रथम उल्लेख जैन ज्योतिष ग्रंथों में उपलब्ध होना।❀

(ख) अवम-तिथि क्षय संबंधी प्रक्रिया का विकास जैनाचार्यों द्वारा स्वतन्त्र रूप से किया जाना।

(ग) जैन मान्यता की नक्षत्रात्मक ध्रुवराशि का वेदांग ज्योतिष में वर्णित दिवसात्मक ध्रुवराशि से सूक्ष्म होना तथा उसका उत्तरकालीन राशि के विकास में सम्भवतः सहायक होना।

(घ) पर्व और तिथियों में नक्षत्र लाने की विकसित जैन प्रक्रिया, जैनेतर ग्रंथों में छठी शती के बाद दृष्टिगत होना।

(ङ) जैन ज्योतिष में सम्वत्सर सम्बन्धी प्रक्रिया में मौलिकता होना।❀

❀देखिये "वर्णी अभिनन्दन ग्रंथ" सागर मे प्रकाशित लेख, "भारतीय ज्योतिष का पोषक जैन–ज्योतिष" १९६२, पृष्ठ ४७८–४८४, उनका एक और लेख "ग्रीक–पूर्व जैन ज्योतिष विचारधारा" ब्र. चंदाबाई अभिनन्दन ग्रंथ, आरा, १९५४, पृष्ठ ४६२–४६६ मे दृष्टव्य है।

❀वेदांग ज्योतिष मे भी पञ्चवर्षात्मक युग का पंचाग बनता है, पर जो विस्तृत गगनखण्डों, वीथियों एवं योजनो मे गमन सम्बन्धी सामग्री जैन करणानुयोग के ग्रन्थों मे उपलब्ध है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

❀अयन के कारण विषुवांश में अन्तर आता है जिससे ऋतुएँ अपना समय धीरे–धीरे बदलती जाती हैं। अयन के कारण होने वाले परिवर्तन को जैनाचार्यों ने संभवतः देखा होगा और अपना नया पंचांग विकसित किया होगा। वेदांग ज्योतिष में माघशुक्ल प्रथम को सूर्य नक्षत्र धनिष्ठा और चन्द्र नक्षत्र को भी धनिष्ठा लिया गया है जब कि सूर्य उत्तरापथ पर रहता था। किंतु जैन पंचांग (तिलोयपण्णत्ती आदि) में जब सूर्य उत्तरापथ पर होता था तब माघ कृष्णा सप्तमी को सूर्य अभिजित् नक्षत्र में और चन्द्रमा हस्त नक्षत्र में रहता था। अयन का ३६०° का परिवर्तन प्राय: २६००० वर्षों मे होता दृष्टिगत हुआ है।

(च) दिनमान प्रमाण सम्बन्धी प्रक्रिया में, पितामह सिद्धांत का जैन प्रक्रिया से प्रभावित प्रतीत होना ।

(छ) छाया माप द्वारा समय निरूपण का विकसित रूप इष्ट काल, मयाति आदि होना ।

इनके अतिरिक्त आतप और तम क्षेत्र का दर्शाये रूप में प्रकट करना किस प्रक्षेप के आधार पर किया गया है और सूर्य, चन्द्र के रूप और प्रतिरूप का उपयोग किस आधार पर हुआ है इस सम्बन्धी शोध चल रही है । चक्षुस्पर्शध्वान पर भी अभी कुछ नहीं कहा जा सकता है जब तक कि उसकी प्रायोगिक विज्ञान से तुलना न कर ली जाये ।

पूज्य आर्यिका विशुद्धमतीजी ने असीम परिश्रम कर चित्र सहित अनेक गणितीय प्रकरणों का निरूपण ग्रंथ की टीका करते हुए कर दिया है । अतएव संक्षेप में विभिन्न गाथाओं में आये हुए प्रकरणों के सूत्रों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण गणितीय विवरण देना उपयुक्त होगा ।

२. तिलोयपण्णत्ती के कतिपय गणितीय प्रकरण :

(प्रथम महाधिकार)

गाथा १/९१ अनन्त अलोकाकाश के बहुमध्यभाग में स्थित, जीवादि पांच द्रव्यों मे व्याप्त और जगश्रेणि के घन प्रमाण यह लोकाकाश है ।

≡ १६ ख ख ख

उपर्युक्त निरूपण में ≡ जगश्रेणि के घन का प्रतीक है जो लोकाकाश है । १६ जीवराशि की प्रचलित संदृष्टि है । इसीप्रकार १६ से अनन्तगुनी १६ ख पुद्गल परमाणु राशि की संदृष्टि है और इससे अनन्तगुणी १६ ख ख भूत वर्तमान भविष्य त्रिकाल गत समय राशि है । इस समय राशि से अनन्त गुनी १६ ख ख ख अनन्त आकाशगत प्रदेश राशि की संदृष्टि मानी गयी है जो अनन्त अलोकाकाश की भी प्रतीक मानी जा सकती है क्योंकि इसकी तुलना में ≡ लोकाकाश प्रदेश राशि नगण्य है । इसप्रकार उक्त संदृष्टि चरितार्थ होती है ।

गाथा १/९३–१३०

आठ उपमा प्रमाणों की संदृष्टियाँ

प० १ । सा० २ । सू० ३ । प्र० ४ । घ० ५ । ज० ६ । लोक प्र० ७ । लो० ८ ।।

दी गयी हैं जो पल्य सागरादि के प्रथम अक्षर रूप हैं ।

व्यवहार पल्य से संख्या का प्रमाण, उद्धारपल्य से द्वीप समुद्रादि का प्रमाण और अद्धापल्य से कर्मों की स्थिति का प्रमाण लगाया जाता है। यहाँ गाथा १०२ आदि निम्न माप निरूपण किया गया है जो अंगुल और अंततः योजन को उत्पन्न करता है :—

अनन्तानन्त परमाणु द्रव्य राशि	= १ उवसन्नासन्न स्कन्ध
८ उवसन्नासन्न स्कन्ध	= १ सन्नासन्न स्कन्ध
८ सन्नासन्न स्कन्ध	= १ त्रुटिरेणु स्कन्ध
८ त्रुटिरेणु स्कन्ध	= १ त्रसरेणु स्कन्ध
८ त्रसरेणु स्कन्ध	= १ रथरेणु स्कन्ध
८ रथरेणु स्कन्ध	= १ उत्तम भोगभूमि का बालाग्र
८ उत्तमभोग भूमि बालाग्र	= १ मध्यम भोगभूमि बालाग्र
८ मध्यम भोगभूमि बालाग्र	= १ जघन्य भोगभूमि बालाग्र
८ जघन्य भोगभूमि बालाग्र	= १ कर्मभूमि बालाग्र
८ कर्मभूमि बालाग्र	= १ लीक
८ लीकें	= १ जूं
८ जूं	= १ जौ
८ जौ	= १ अंगुल

उपर्युक्त परिभाषा से प्राप्त अंगुल, सूच्यंगुल कहलाता है जिसकी संदृष्टि २ का अंक मानी गयी है। इस अंगुल को उत्सेध अंगुल भी कहते हैं जिससे देव मनुष्यादि के शरीर की ऊँचाई, देवों के निवासस्थान व नगरादि का प्रमाण जाना जाता है। पांच सौ उत्सेधांगुल प्रमाण अवसर्पिणी काल के प्रथम भरत चक्रवर्ती का एक अंगुल होता है जिसे प्रमाणांगुल कहते हैं जिससे द्वीप समुद्रादि का प्रमाण होता है। स्व स्व काल के भरत ऐरावत क्षेत्र में मनुष्यों के अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं जिससे झारीकलशादि की संख्या का प्रमाण होता है। प्रश्न यहाँ आर्यिकाश्री विशुद्धमतीजी ने उठाया कि तिलोयपण्णत्ती में जो द्वीप समुद्रादि के प्रमाण योजनों और अंगुल आदि मे दिये गये हैं उससे नीचे की इकाइयों में परिवर्तन कैसे किया जाय क्योंकि वे प्रमाणांगुल के आधार पर योजनादि लिये गये हैं और उक्त योजन से जो अंगुल उत्पन्न हो उसमें क्या ५०० का गुणनकर नीचे को इकाइयां प्राप्त की जाएँ? वास्तव में जहाँ जिस अंगुल की आवश्यकता हो, उसे ही लेकर निम्नलिखित प्रमाणों का उपयोग किया जाना चाहिये :

६ अंगुल=१ पाद; २ पाद=१ वितस्ति; २ वितस्ति=१ हाथ; २ हाथ=१ रिक्कू; २ रिक्कू=१ दण्ड; १ दण्ड या ४ हाथ=१ धनुष=१ मूसल=१ नाली;

२००० धनुष या २००० नाली = १ कोश; ४ कोश = १ योजन।

अतएव जिसप्रकार का अंगुल चुना जावेगा, स्वमेव उस प्रकार का योजन उत्पन्न होगा। प्रमाण अंगुल किये जाने पर प्रमाण योजन और उत्सेध अंगुल किये जाने पर उत्सेध योजन प्राप्त होगा।

योजन को प्रमाण लेकर व्यवहार पल्योपम का वर्षों में मान प्राप्त हो जाता है। इस हेतु गड्ढे में रोमों की संख्या $= \frac{१९}{२४} (४)^{३} (२०००)^{३} (४)^{३} (२४)^{३} (५००)^{३} (८)^{२१}$ प्राप्त होती है। यह व्यवहार पल्य के रोमों की संख्या है जिसमें १०० का गुणन करने पर व्यवहार पल्योपम काल राशि वर्षों में प्राप्त हो जाती है। तत्पश्चात्—

उद्धार पल्य राशि = व्यवहार पल्य राशि × असंख्यात करोड़ वर्ष समय राशि

यह समय राशि ही उद्धारपल्योपम काल कहलाती है। इस उद्धारपल्य राशि से द्वीपसमुद्रों का प्रमाण जाना जाता है।

अद्धापल्य राशि = उद्धारपल्य राशि × असंख्यात वर्ष समय राशि

यह समय राशि ही अद्धा-पल्योपम काल राशि कहलाती है। इस अद्धापल्य राशि से नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों की आयु तथा कर्मों की स्थिति का प्रमाण ज्ञातव्य है।

१० कोड़ाकोड़ी व्यवहार पल्य	=	१ व्यवहार सागरोपम
१० कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्य	=	१ उद्धार सागरोपम
१० कोड़ाकोड़ी अद्धा पल्य	=	१ अद्धा सागरोपम

गाथा १/१३१, १३२

सूच्यंगुल में जो प्रदेश राशि होती है उसकी संख्या निकालने के लिए पहिले अद्धा पल्य के अर्द्धच्छेद निकालते हैं और उन्हें शलाका रूप स्थापित कर एक एक शलाका के प्रति पल्य को रखकर आपस में गुणित करते हैं। जो राशि इस प्रकार उत्पन्न होती है वह सूच्यंगुल राशि है :

$$\text{सूच्यंगुल} = [\text{पल्य}]^{(\text{पल्य के अर्द्धच्छेद})}$$

इसी प्रकार

$$\text{जगच्छ्रेणी} = [\text{घनांगुल}]^{\frac{(\text{पल्य के अर्द्धच्छेद})}{\text{असंख्यात}}}$$

यहाँ सूच्यंगुल राशि की संदृष्टि २ और जगच्छ्रेणी की संदृष्टि "—" है।

इसी प्रकार

प्रतरांगुल $=$ (सूच्यंगुल राशि)^{२}, संदृष्टि ४

घनांगुल $=$ (सूच्यंगुल राशि)^{३}, संदृष्टि ६

जगप्रतर $=$ (जगश्रेणि राशि)^{२}, संदृष्टि '$=$'

घनलोक $=$ (जगश्रेणि राशि)^{३}, संदृष्टि '$\equiv$'

राजु $=$ (जगश्रेणि $\div$ ७), संदृष्टि '७'

ये सभी प्रदेश राशियां हैं और इनका सम्बन्ध पल्योपमादि समय राशियों से स्थापित किया गया है।

गाथा १/१६५

इस गाथा में अधोलोक का घनफल निकालने के लिये सूत्र दिया गया है, जो वेत्रासन सदृश है।

$$\text{घनफल वेत्रासन} = \left[\frac{\text{मुख} + \text{भूमि}}{२} \times \text{वेध}\right]$$

यहां वेध का अर्थ ऊँचाई है।

गाथा १/१६६

अधोलोक का घनफल $= \frac{४}{७} \times$ पूर्ण लोक का घनफल

अर्द्ध अधोलोक का घनफल $= \frac{३}{७} \times$ पूर्ण लोक का घनफल

गाथा १/१७६-१७७ : इस गाथा में समानुपाती भाग निकालने का सूत्र दिया गया है।
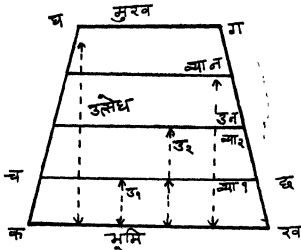
$$\text{वृद्धि} = \frac{\text{भूमि} - \text{मुख}}{\text{उत्सेध}}$$

यहां उ उत्सेध का प्रतीक और व्या व्यास का प्रतीक है।

$$\text{भूमि} - \left[\frac{\text{भूमि} - \text{मुख}}{\text{उत्सेध}}\right] उ_{१} = व्या_{१}$$

$$\text{भूमि} - \left[\frac{\text{भूमि} - \text{मुख}}{\text{उत्सेध}}\right] उ_{२} = व्या_{२}$$

$$\text{भूमि} - \left[\frac{\text{भूमि} - \text{मुख}}{\text{उत्सेध}}\right] उ_{न} = व्या_{न}$$

इसी प्रकार ह्रानि का सूत्र प्राप्त करते हैं।

गाथा १/१८१

इस गाथा में दो सूत्र दिये गये हैं।

$\frac{\text{भुजा} + \text{प्रतिभुजा}}{२}$ = व्यास; व्यास × ऊँचाई × मोटाई = समकोण त्रिकोण क्षेत्र का घनफल

$\frac{\text{व्यास}}{२}$ × लम्ब बाहु × मोटाई = लम्ब बाहुयुक्त क्षेत्र का घनफल

गाथा १/२१६ आदि :

सम्पूर्ण लोक को आठ प्रकार की आकृतियों में निदर्शित किया गया है। इसमें प्रयुक्त सूत्र निम्न प्रकार हैं। सभी आकृतियों के घनफल जगश्रेणी के घन प्रमाण हैं।

(१) सामान्यलोक = जगश्रेणि के घन प्रमाण यह आकृति पूर्व में ही दी जा चुकी है जो सामान्यत: मान्य रूप है।

(२) ऊर्ध्व आयत चतुरस्र : जगश्रेणी के घन प्रमाण यह आकृति घनाकार होना चाहिए जिसकी लंबाई, चौड़ाई एवं ऊँचाई समानरूप से जगश्रेणी या ७ राजू हों। इस प्रकार इसका घनफल

= लंबाई × चौड़ाई × ऊँचाई = ७ × ७ × ७ घन राजू = ३४३ घन राजू

(३) तिर्यक् आयत चतुरस्र : जगश्रेणी के घन प्रमाण इस आकृति में सभी विमाएँ समान नहीं हैं, अतएव घनायत रूप इसका घनफल

= १४ × $\frac{७}{२}$ × ७ घन राजू = ३४७ घन राजू

(४) यवमुरज क्षेत्र : यह क्षेत्र मुरज और यवों के द्वारा दर्शाया गया है।

मुरज आकृति बीच में $\frac{७}{२}$ राजू तथा अंत में १ राजू १ राजू है।

अतएव उसका क्षेत्रफल $\left(\frac{\frac{७}{२}+१}{२}\right)$ × १४ वर्ग राजू है, क्योंकि इसकी ऊँचाई १४ राजू है। यहां मुखभूमि योग दले वाला ही सूत्र लगाया गया है।

अतः मुरज आकृति का क्षेत्रफल = $\left(\frac{\frac{७}{२}+१}{२}\right)$ × १४ वर्ग राजू = $\frac{६३}{२}$ वर्ग राजू

मुरज आकृति का घनफल = क्षेत्रफल × गहराई = $\frac{६३}{२}$ × ७ घन राजू

= $\frac{४४१}{२}$ घन राजू

शेष क्षेत्र में यव आकृतियां २५ समाती हैं।

एक यव का क्षेत्रफल $=\left(\frac{१}{२}\text{राजू} \div २\right) \times \frac{१४}{५}$ वर्ग राजू $= \frac{७}{१०}$ वर्ग राजू

एक यव का घनफल $= \frac{७}{१०} \times ७$ घन राजू $= \frac{४९}{१०}$ घन राजू अथवा $\frac{\equiv}{७०}$

२५ यवों का घन $= \frac{४९}{१०} \times २५$ घन राजू अथवा २५ $\frac{\equiv}{७०}$

(५) यव मध्य क्षेत्र—बाहल्य ७ राजू वाली यह आकृति आधे मुरज के समान होती है। इसमें मुख १ राजू भूमि पुनः ७ राजू है जैसा कि यवमुरज क्षेत्र होता है, किन्तु इसमें मुरज न डालकर केवल अर्द्ध यवों से पूरित करते हैं। इसप्रकार इसमें ३५ अर्द्ध यव इस यवमध्य क्षेत्र में समाते हैं।

एक अर्द्ध यव का क्षेत्रफल $= \frac{१}{२} \times \frac{१४}{५}$ वर्गराजू $= \frac{७}{५}$ वर्गराजू

एक अर्द्ध यव का घनफल $= \frac{७}{५} \times ७$ घनराजू $= \frac{४९}{५}$ घनराजू

इसप्रकार ३५ अर्द्ध यवों का घनफल $= \frac{४९}{५} \times ३५$ घनराजू $=$ ३४३ घनराजू

इसप्रकार यव मध्य क्षेत्र का घनफल ३४३ घनराजू होता है। संदृष्टि में $\frac{\equiv}{३५}$ एक अर्द्ध यव का घनफल है। $\equiv|\equiv$ संदृष्टि का अर्थ है कि १४ राजू उत्सेध को पाँच बराबर भागों में बांटा जाये।

(६) मन्दराकार क्षेत्र : उपरोक्त आकृतियों के ही समान आकृति लोक की लेते हैं जहां भूमि ६ राजू, मुख १ राजू, ऊँचाई १४ राजू, और मोटाई ७ राजू लेते हैं। समानुपात के सिद्धान्त पर विभिन्न उत्सेधों पर व्यास निकालकर 'मुह भूमि जोगदले' सूत्र से विभिन्न निर्मित क्षेत्रों के घनफल निकालकर जोड़ देने पर सम्पूर्ण लोक का घनफल ३४३ घनराजू प्राप्त करते हैं। इसे सविस्तार ग्रंथ में देखें, क्योंकि बचने वाली शेष आकृतियों को जोड़कर पुनः घनफल निकालने की प्रक्रिया अपनाई जाती है।

(७) दूष्य क्षेत्र : उपरोक्त आकृतियों के ही समान लोक की आकृति लेते हैं जहाँ भूमि ६ राजू, मुख १ राजू, ऊँचाई १४ राजू लेते हैं तथा बाहल्य ७ राजू है। इसमें से मध्य में २½ यव निकालते हैं जो मध्य में १ राजू चौड़ाई वाले होते हैं। बाहर ½ राजू भूमि तथा ½ राजू मुख वाले दो क्षेत्र निकालते हैं। बीच में यव निकल जाने के पश्चात् शेष क्षेत्रों का घनफल भी निकाला जा सकता है। इसप्रकार बाहरी दोनों प्रवण क्षेत्रों का घनफल = १८ घनराजू।

भीतरी दीर्घ दोनों प्रवण क्षेत्रों का घनफल=$१३७\frac{१}{५}$ घनराजू

भीतरी लघु दोनों प्रवण क्षेत्रों का घनफल=$५८\frac{४}{५}$ घनराजू

$२\frac{१}{२}$ यव क्षेत्रों का घनफल=४९ घनराजू

कुल घनफल लोक का इसप्रकार ३४३ घनराजू प्राप्त होता है।

(८) गिरिकटक क्षेत्र : यह क्षेत्र यवमध्य क्षेत्र जैसा ही माना जा सकता है जिसमें २० गिरियां हैं शेष उल्टी गिरियां हैं। इस प्रकार कुल गिरिकटक क्षेत्र मिश्र घनफल से बना है। इसप्रकार दोनों क्षेत्रों में विशेष अंतर दिखाई नहीं दिया है।

२० गिरियों का घनफल=$\frac{४९}{५}$×२०=१९६ घन राजू

शेष १५ गिरियों का घनफल=$\frac{४९}{५}$×१५=१४७ घन राजू

इस प्रकार मिश्र घनफल ३४३ घन राजू प्राप्त होता है।

गाथा १/२७० आदि

वातवलयों द्वारा वेष्टित लोक का विवरण इन गाथाओं में है, जहां विभिन्न आकृतियों वाले वातवलयों के घनफल निकाले गये हैं। ये या तो संक्षेभ के समच्छिन्नक हैं, आयतज हैं, समान्तरानीक हैं जिनमें पारम्परिक सूत्रों का उपयोग किया जाता है। संदृष्टियां अपने आप में स्पष्ट हैं। वातावरुद्ध क्षेत्र और आठ भूमियों के घनफल को मिलाकर उसे सम्पूर्ण लोक में से घटाने पर अवशिष्ट शुद्ध आकाश के प्रतीक रूप में ही उस संदृष्टि को माना जा सकता है। वर्ग राजुओं में योजन का गुणन बतलाकर घनफल निकाला गया है—उन्हें संदृष्टि रूप में जगप्रतर से योजनों द्वारा गुणित बतलाया गया है।

द्वितीय महाधिकार :

गाथा २/५८

इस गाथा में श्रेणि व्यवहार गणित का उपयोग है जिसे समान्तर श्रेढि भी कहते हैं। मानलो प्रथम पाथड़े में बिलों की कुल संख्या a हो और तब प्रत्येक द्वितीयादि पाथड़े में क्रमशः उत्तरोत्तर हानि d हो तो n वें पाथड़े में कुछ बिलों की संख्या प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सूत्र है :

इष्ट nवें पाथड़े में कुल बिलों की संख्या={ a—(n १) d }

यहाँ a=३८९, d=८ और n=४ है, .: चौथे पाथड़े में श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या {३८९—(४—१)८}=३६५ होती है ।

गाथा २/५९

ग्रन्थकार ने n वें पाथडे में इन्द्रक सहित श्रेणिबद्ध बिलों की संख्या निकालने के लिये सूत्र दिया है : इष्ट पाथड़े में इन्द्रक सहित श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या=

$$\left(\frac{a-५}{d}+१-n\right)d+५$$

गाथा २/६० : यदि प्रथम पाथड़े में इन्द्रक सहित श्रेणिबद्ध बिलों की संख्या a और n वें पाथड़े में a n मान ली जाये तो n का मान निकालने के लिए सूत्र निम्नलिखित है—

$$n=\left[\frac{a-५}{d}-\frac{an-५}{d}\right]$$

गाथा २/६१ : श्रेणी व्यवहार गणित में, किसी श्रेणी में प्रथम स्थान में जो प्रमाण रहता है उसे आदि, मुख (वदन) अथवा प्रभव कहते हैं । अनेक स्थानों में समान रूप से होने वाली वृद्धि या हानि के प्रमाण को चय या उत्तर कहते हैं । ऐसी वृद्धि हानि वाले स्थानों को गच्छ या पद कहते हैं । उपरोक्त को क्रमश: first term, Common difference, number of terms कहते हैं ।

गाथा २/६४ : संकलित धन को निकालने के लिए सूत्र दिया गया है ।

मान लो कुल धन S हो, प्रथमपद a हो, चय d हो, गच्छ n हो तो सूत्र इच्छित श्रेढि में संकलित धन को प्राप्त कराता है :

$$S=[\,(n-\text{इच्छा})d+(\text{इच्छा}-१)d+(a.२)\,]\frac{n}{२}$$

इच्छा का मान १. २ आदि हो सकता है ।

गाथा २/६५ : इसी प्रकार संकलित धन निकालने का दूसरा सूत्र इस प्रकार है :

$$S=\left[\left\{\left(\frac{n-१}{२}\right)^{२}+\left(\frac{n-१}{२}\right)\right\}d+५\right]n$$

यह समीकरण उपरोक्त सभी श्रेणियों के लिये साधारण है ।

उपर्युक्त में संख्या ५ महातमः प्रभा के बिलों से सम्बन्धित होना चाहिए । ५ को अंतिम पद माना जा सकता है ।

अन्तिम पद $= a - (४९ - १)\ d$

यदि a का मान ३८९ और d का मान ८ हो तो

अन्तिम पद = ३८९—(४९—१) ८=५ होता है।

गाथा २/६९ : सम्पूर्ण पृथ्वियों इन्द्रक सहित श्रेणिबद्ध बिलों के प्रमाण को निकालने के लिये आदि ५, चय ८, और गच्छ का प्रमाण ४९ है।

गाथा २/७० : यहां सात पृथ्वियां हैं जिनमें श्रेणियों की संख्या ७ है। अंतिम श्रेणि में एक ही पद ५ है। इन सभी का संकलित धन प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित सूत्र ग्रंथकार ने दिया है :

$$S_1 = \frac{N}{2} [(N + ७) D - (७ + १) D + २ A]$$

$$= \frac{N}{2} [२ A + (N - १) D]$$

यहां इष्ट ७ है। A, D, N, क्रमशः आदि, चय और गच्छ हैं।

गाथा २/७१ : उपरोक्त के लिए दूसरा सूत्र निम्न प्रकार दिया गया है—

$$S_1 = [\frac{N-१}{२} \times D + A] N$$

$$= \frac{N}{2} [२ A + (N - १) D]$$

गाथा २/७४ : यहां भी साधारण सूत्र दिया है—

$$S_2 = \frac{[n^2 . d] + (२ n . d) - nd}{२}$$

$$= \frac{n}{2} [(n - १) d + २d]$$

गाथा २/८१

इंद्रकों रहित बिलों (श्रेणीबद्ध बिलों) की समस्त पृथ्वियों में कुल संख्या निकालने के लिए सूत्र दिया गया है। यहाँ आदि ५ नहीं होकर ४ है क्योंकि महातमः प्रभा में केवल एक इन्द्रक और चार श्रेणिबद्ध बिल हैं। यही आदि, अथवा A है; गच्छ N या ४९ है, प्रचय D या ८ है।

सूत्र—

$$S_1 = \frac{(N^2 - N) D + (N.A.)}{२} + (\frac{A}{२} . N)$$

$$= \frac{N}{२} [२ A + (N - १) D]$$

गाथा २/८२-८३ :

यहाँ आदि A को निकालने हेतु सूत्र दिया है

$$A = \left[S_1 \div \frac{n}{2} \right] + \frac{(D.\ ७) - [७ - १ + N]D}{२}$$

इसे साधित करने पर पूर्व जैसा सूत्र प्राप्त हो जाता है।

यहाँ इष्ट पृथ्वी ७ वीं है, जिसका आदि निकालना इष्ट था।

७ के स्थान पर और कोई भी इच्छा राशि हो सकती है।

गाथा २/८४ :

चय अर्थात् D को निकालने के लिए ग्रंथकार ने सूत्र दिया है—

$$D = S_1 \div \left([N - १] \frac{n}{2} \right) - \left(A \div \frac{N - १}{२} \right)$$

गाथा २/८५ : ग्रन्थकार ने रत्नप्रभा प्रथम पृथ्वी के संकलित धन (श्रेणि बद्ध बिलों की कुल संख्या) को लेकर पद १३ को निकालने हेतु निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया है, जहाँ $n = १३$, $S_1 = ४४२०$, $d = ८$ और $a = २९२$ आदि है।

$$n = \left\{ \sqrt{\left(S_1 . \frac{d}{२}\right) + \left(\frac{a - \frac{d}{२}}{२}\right)^2} - \frac{\left(a - \frac{d}{२}\right)}{२} \right\} \div \frac{d}{२}$$

इसे भी साधित करने पर पूर्ववत् समीकरण प्राप्त होता है।

गाथा २/८६ :

उपर्युक्त के लिए दूसरा सूत्र भी निम्नलिखित रूप में दिया गया है

$$n = \left\{ \sqrt{(२.d.S_1) + \left(a - \frac{d}{2}\right)^2} - \left(a - \frac{d}{2}\right) \right\} \div d$$

इसे साधित करने पर पूर्ववत् समीकरण प्राप्त होता है।

गाथा २/१०५ : यहां प्रचय अथवा d को निकालने का सूत्र दिया है जब अंतिम पद मानलो l हो :

$$d = \frac{a - l}{(n - १)}$$

प्रथम बिल से यदि nवें बिल का विस्तार प्राप्त करना हो तो सूत्र यह है :

$$a_n = a-(n-१)\,d,$$

यदि अंतिम बिल से nवें बिल का विस्तार प्राप्त करना हो तो सूत्र यह है :

$$b_n = b+(n-१)\,d,$$

जहां a_n और b_n उन nवें बिलों के विस्तारों के प्रतीक हैं। यहां विस्तार का अर्थ व्यास किया जा सकता है।

गाथा २/१५७ : इन बिलों की गहराई (बाहल्य) समान्तर श्रेणी में है। कुल पृथ्वियां ७ हैं। यदि nवी पृथ्वीं के इन्द्रक का बाहल्य निकालना हो तो सूत्र यह है—

nवी पृथ्वी के इन्द्रक का बाहल्य= $\frac{(n+१)\,३}{(७-१)}$

nवीं पृथ्वी के श्रेणिबद्ध बिलों का बाहल्य= $\frac{(n+१)\times ४}{(७-१)}$

इसी प्रकार, n वीं पृथ्वी के प्रकीर्णक बिलों का बाहल्य= $\frac{(n+१)\,७}{(७-१)}$

गाथा २/१५८ : दूसरी विधि से बिलों का बाहल्य निकालने हेतु ग्रंथकार ने आदि के प्रमाण क्रमश: ६, ८ और १४ लिये हैं। यहां भी पृथ्वियों की संख्या ७ है। यदि n वीं पृथ्वी के इन्द्रक का बाहल्य निकालना हो तो सूत्र निम्नलिखित है :

n वीं पृथ्वी के इद्रक का बाहल्य= $\frac{(६+n.\,\text{[illegible]})}{(७-१)}$

यहां ६ को आदि लिखें तो दक्षिण पक्ष= $\left(\frac{a+n.\,\text{[illegible]}}{७-१}\right)$ होता है।

प्रकीर्णक बिलों के लिए भी यही नियम है।

गाथ २/१६६ : यहां घर्मा या रत्नप्रभा के नारकियों की संख्या निकालने के लिए जगश्रेणी और घनांगुल का उपयोग हुआ है। घनांगुल को ६ और सूच्यंगुल को २ लेकर घर्मा पृथ्वी के नारकियों की संख्या :

$$= \text{जगश्रेणी} \times (\text{कुछ कम}) \sqrt{\sqrt{६}} = \text{जगश्रेणी} \times \left[\text{कुछ कम}\ \sqrt[४]{(२)^३}\,\right]$$

तृतीय महाधिकार :

गाथा ३/८० : इस गाथा में गुण संकलित धन अथवा गुणोत्तर श्रेणी के योग का सूत्र दिया गया है।

गच्छ = ७, मुख = ४०००, गुणकार (Common ratio) का प्रमाण २ है।

मानलो S_n को n पदों का योग माना जाये जब कि प्रथम पद और गुणकार r हो तब

$S_n = \{$ (r. r. r. . . . n पदों तक) — १ $\} \div (r-1) \times a$

अथवा $S_n = \frac{(r^n - 1)a}{r - 1}$

विषयानुक्रम

विषय	गाथा/पृ० सं०
प्रथम महाधिकार	[गा० १-२८६] (१—१३८ पृ०)
मङ्गल	(गा० १ । ३१)
मङ्गलाचरण : सिद्ध स्तवन	१ । १
अरहन्त स्तवन	२ । १
आचार्य स्तवन	३ । १
उपाध्याय स्तवन	४ । २
साधु स्तवन	५ । २
ग्रन्थरचना प्रतिज्ञा	६ । २
ग्रन्थारम्भ में करणीय छह कार्य	७ । २
मगल के पर्यायवाचक शब्द	८ । ३
मंगल शब्द की निरुक्ति	९ । ३
मंगल के भेद	१० । ३
द्रव्यमल और भावमल	११-१३ । ३
मंगल शब्द की सार्थकता	१४ । ४
मंगलाचरण की सार्थकता	१५-१७ । ४
मगलाचरण के नामादिक छह भेद	१८ । ५
नाम मगल	१९ । ५
स्थापना व द्रव्यमंगल	२० । ५
क्षेत्रमंगल	२१-२३ । ५-६
काल मंगल	२४-२६ । ६
भाव मंगल	२७ । ७
मंगलाचरण के आदिमध्य और अन्त भेद	२८ । ७
आदि मध्य और अन्त मंगल की सार्थकता	२९ । ७
जिननाम ग्रहण का फल	३० । ७
ग्रथ में मंगल का प्रयोजन	३१ । ७
ग्रन्थावतारनिमित्त (गा० ३२-३४)	८
ग्रन्थावतार हेतु (गा० ३५-५२)	८-१२
हेतु एवं उसके भेद	३५ । ८
प्रत्यक्ष हेतु	३६-३८ । ९
परोक्ष हेतु एवं अभ्युदय सुख	३९-४१ । ९
राजा का लक्षण	४२ । १०
अठारह श्रेणियों के नाम	४३-४४ । १०
अधिराज एवं महाराज का लक्षण	४५ । १०
अर्धमण्डलीक एवं मण्डलीक का लक्षण	४६ । ११
महामण्डलीक एवं अर्धचक्री का लक्षण	४७ । ११
चक्रवर्ती और तीर्थंकर का लक्षण	४८ । ११
मोक्षसुख	४९ । ११
श्रुतज्ञान की भावना का फल	५० । १२
परमागम पढ़ने का फल	५१ । १२

विषय	गाथा/पृ० सं०
आर्षवचनों के अभ्यास का फल	५२ । १२
प्रमाण (गा० ५३) १२	
श्रुत का प्रमाण	५३ । १२
नाम (गा० ५४) १३	
ग्रन्थनाम कथन	५४ । १३
कर्त्ता (गा० ५५-८४) १३ । १८	
कर्ता के भेद	५५ । १३
द्रव्यापेक्षा अर्थागम के कर्ता	५६-६४ । १३
क्षेत्रापेक्षा अर्थकर्ता	६५ । १५
पंचशैल	६६-६७ । १५
काल की अपेक्षा अर्थकर्त्ता एव धर्मतीर्थ की उत्पत्ति	६८-७० । १५
भाव की अपेक्षा अर्थकर्ता	७१-७५ । १६
गौतम गणधर द्वारा श्रुत रचना	७६-७९ । १७
कर्त्ता के तीन भेद	८० । १७
सूत्र की प्रमाणता	८१ । १८
नय, प्रमाण और निक्षेप के बिना अर्थ निरीक्षण करने का फल	८२ । १८
प्रमाण एवं नयादि का लक्षण	८३ । १८
रत्नत्रय का कारण	८४ । १८
ग्रन्थ प्रतिपादन की प्रतिज्ञा	८५-८७ । १९
ग्रंथ के नव अधिकारो के नाम	८८-९० । १९
परिभाषा (गा० ९१-१३२) २०-३०	
लोकाकाश का लक्षण	९१-९२ । २०
उपमा प्रमाण के भेद	९३ । २१
पल्य के भेद एवं उनके विषयों का निर्देश	९४-२१
स्कन्ध, देश, प्रदेश एवं परमाणु का स्वरूप	९५-२१
परमाणु का स्वरूप	९६-९८ । २१
परमाणु का पुद्गलत्व	९९ । २२
परमाणु पुद्गल ही है	१०० । २२
नय-अपेक्षा परमाणु का स्वरूप	१०१ । २२
उवसन्नासन्न स्कन्ध का लक्षण	१०२ । २३
सन्नासन्न से अंगुल पर्यन्त के लक्षण	१०३-१०६ । २३
अंगुल के भेद एवं उत्सेधांगुल का लक्षण	१०७ । २३
प्रमाणागुल का लक्षण	१०८ । २४
आत्मांगुल का लक्षण	१०९ । २४
उत्सेधागुल द्वारा माप करने योग्य वस्तुएँ	११० । २४
प्रमाणागुल से मापने योग्य पदार्थ	१११ । २४
आत्मागुल से मापने योग्य पदार्थ	११२-१३ । २५
पाद से कोस पर्यन्त की परिभाषाये	११४-१५ । २५
योजन का माप	११६ । २५
गोलक्षेत्र की परिधि का प्रमाण, क्षेत्रफल एवं घनफल	११७-११८ । २५
व्यवहार पल्य के रोमों की संख्या निकालने का विधान तथा उनका प्रमाण	११९-२४ । २६
व्यवहार पल्य का लक्षण	१२५ । २८
उद्धार पल्य का प्रमाण	१२६-१२७ । २८
अद्धार या अद्धापल्य के लक्षण	१२८-२९ । २९
व्यवहार, उद्धार एवं अद्धा सागरोपमों के लक्षण	१३० । २९

विषय	गाथा/पृ० सं०
सुच्यंगुल और जगच्छ्रेणी के लक्षण	१३१ । ३०
सुच्यंगुल आदि का तथा राजू का लक्षण	१३२ । ३०
सामान्य लोक स्वरूप (गा. १३३-२८६)	**३१-१३८**
लोक स्वरूप	१३१-१३४ । ३१
लोकाकाश एवं अलोकाकाश	१३५ । ३२
लोक के भेद	१३६ । ३२
तीन लोक की आकृति	१३७-३८ । ३२
अधोलोक का माप एवं आकार	१३९ । ३३
सम्पूर्ण लोक को वर्गाकृति में लाने का विधान एवं आकृति	१४० । ३४
लोक की डेढ़ मृदंग सदृश आकृति बनाने का विधान	१४१-४४ । ३५
सम्पूर्ण लोक को प्रतराकार रूप करने का विधान	१४५-४७ । ३६
त्रिलोक की ऊँचाई, चौड़ाई और मोटाई के वर्णन की प्रतिज्ञा	१४८ । ३७
दक्षिण उत्तर सहित लोक का प्रमाण एवं आकृति	१४९ । ३७
अधोलोक एव उर्ध्वलोक की ऊँचाई में सदृशता	१५० । ३८
तीनों लोकों की पृथक्-पृथक् ऊँचाई	१५१ । ३९
अधोलोक में स्थित पृथिवियों के नाम और उनका अवस्थान	१५२ । ३९
रत्नप्रभादि पृथिवियों के गोत्र नाम	१५३ । ४०
मध्यलोक के अधोभाग से लोक के अन्त पर्यन्त राजू विभाग	१५४-१५७ । ४०
मध्यलोक के ऊपरी भाग से अनुत्तर विमान पर्यन्त राजू विभाग	१५८-६२ । ४१
कल्प एवं कल्पातीत भूमियों का अंत	१६३ । ४२
अधोलोक के मुख और भूमि का विस्तार एवं ऊँचाई	१६४ । ४३
अधोलोक का घनफल निकालने की विधि	१६५ । ४३
पूर्ण अधोलोक एवं उसके अर्धभाग के घनफल का प्रमाण	१६६ । ४३
अधोलोक में त्रसनाली का घनफल	१६७ । ४४
त्रसनाली से रहित और उसके सहित अधोलोक का घनफल	१६८ । ४४
ऊर्ध्वलोक के आकार को अधोलोक स्वरूप करने की प्रक्रिया एवं आकृति	१६९ । ४५
ऊर्ध्वलोक के व्यास एवं ऊँचाई का प्रमाण	१७० । ४६
सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक और उसके अर्धभाग का घनफल	१७१ । ४६
ऊर्ध्वलोक में त्रसनाली का घनफल	१७२ । ४६
त्रसनाली रहित एवम् सहित ऊर्ध्वलोक का घनफल	१७३ । ४६
सम्पूर्ण लोक का घनफल एवं लोक के विस्तार कथन की प्रतिज्ञा	१७४ । ४७
अधोलोक के मुख एवं भूमिका विस्तार तथा ऊँचाई	१७५ । ४८
प्रत्येक पृथिवी के चय निकालने का विधान	१७६ । ४८

विषय	गाथा/पृ० सं०
प्रत्येक पृथिवी के व्यास का प्रमाण निकालने का विधान	१७७ ४८
अधोलोकगत सात क्षेत्रों का घनफल निकालने हेतु गुणकार एवं आकृति	१७८-७६ । ४६
पूर्व-पश्चिम से अधोलोक की ऊँचाई प्राप्त करने का विधान एवं उसकी आकृति	१८० । ५१
त्रिकोण एवं लम्बे बाहुयुक्त क्षेत्र के घनफल निकालने की विधि एवं उसका प्रमाण	१८१ । ५२
अभ्यन्तर क्षेत्रों का घनफल	१८२ । ५३
सम्पूर्ण अधोलोक का घनफल	१८३ । ५३
लघु भुजाओं के विस्तार का प्रमाण निकालने का विधान एवं आकृति	१८४ । ५४
अधोलोक का क्रमशः घनफल	१८५-१६१ । ५६
ऊर्ध्वलोक के मुख तथा भूमि का विस्तार एवं ऊँचाई	१६२ । ५९
ऊर्ध्वलोक में दस स्थानों के व्यासार्थ चय एवं गुणाकारों का प्रमाण	१६३ । ६०
व्यास का प्रमाण निकालने का विधान	१६४ । ६०
ऊर्ध्वलोक के व्यास की वृद्धि-हानि का प्रमाण	१६५ । ६१
ऊर्ध्वलोक के दस क्षेत्रों के अधोभाग का विस्तार एवं उसकी आकृति	१६६-१६७ । ६१
ऊर्ध्वलोक के दसों क्षेत्रों के घनफल का प्रमाण	१९८-१९९ । ६२
स्तम्भों की ऊंचाई एवं उसकी आकृति	२०० । ६४
स्तम्भ-अंतरित क्षेत्रों का घनफल	२०१-२०२ । ६५
ऊर्ध्वलोक में आठ क्षुद्र भुजाओं का विस्तार एवं आकृति	२०३-२०७ । ६६-६७
ऊर्ध्वलोक के ग्यारह त्रिभुज एवं चतुर्भुज क्षेत्रों का घनफल	२०८-२१३ । ६८-७०
आठ आयताकार क्षेत्रों का और त्रसनाली का घनफल	२१४ । ७१
सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक का सम्मिलित घनफल	२१५ । ७१
सम्पूर्ण लोक के आठ भेद एवं उनके नाम	२१६ । ७२
सामान्यलोक का घनफल एवं उसकी आकृति	२१७ । ७२
यव का प्रमाण, यवमुरज का घनफल एवं आकृति	२१८-२० । ७४
यव मध्यक्षेत्र का घनफल एवं उसकी आकृति	२२१ । ७६
लोक में मन्दर मेरु की ऊँचाई एवं उसकी आकृति	२२२ । ७८
अंतरवर्ती चार त्रिकोणों से चूलिका की सिद्धि एवं उसका प्रमाण	२२३-२४ । ७९
हानि वृद्धि (चय) एवं विस्तार का प्रमाण	२२५-२६ । ८०
मेरुसदृश लोक के सप्त स्थानों का विस्तार	२२७-२९ । ८०

विषय	गाथा/पृ० सं०
घनफल प्राप्त करने हेतु गुणकार एवं भागहार	२३०-३२ । ८२
सप्त स्थानों के भागहार एवं मंदरमेरु लोक का घनफल	२३३ । ८३
दूष्य लोक का घनफल और उसकी आकृति	२३४-३५ । ८४
गिरिकटक लोक का घनफल और उसकी आकृति	२३६ । ८६
अधोलोक का घनफल कहने की प्रतिज्ञा	२३७-३८ । ८७
यवमुरज अधोलोक की आकृति एवं घनफल	२३९ । ८९
यवमध्य अधोलोक का घनफल एवं आकृति	२४० । ९१
मंदरमेरु अधोलोक का घनफल और उसकी आकृति	२४१-४९ । ९२
दूष्य अधोलोक का घनफल	२५०-५१ । ९७
गिरिकटक अधोलोक का घनफल	२५२ । ९९
अधोलोक के वर्णन की समाप्ति एवं ऊर्ध्वलोक के वर्णन की सूचना	२५३ । १००
सामान्य तथा ऊर्ध्वायत चतुरस्र ऊर्ध्वलोक के घनफल एवं आकृतियाँ	२५४ । १००
तिर्यगायत चतुरस्र तथा यवमुरज ऊर्ध्वलोक एवं आकृतियाँ	२५५-५६ । १०२
यवमध्य ऊर्ध्वलोक या घनफल एवं आकृति	२५७ । १०४
मन्दरमेरु ऊर्ध्वलोक का घनफल	२५८-६६ । १०६
दूष्य क्षेत्र का घनफल एवं गिरिकटक क्षेत्र कहने की प्रतिज्ञा	२६७-६८ । ११०
गिरिकटक ऊर्ध्वलोक का घनफल	२६९ । ११२
वातवलय के आकार कहने की प्रतिज्ञा	२७० । ११२
लोक को परिवेष्टित करने वाली वायु का स्वरूप	२७१-७२ । ११३
वातवलयों के बाहल्य (मोटाई) का प्रमाण	२७३-७६ । ११३
एक राजू पर होने वाली हानि वृद्धि का प्रमाण	२७७-७८ । ११६
पार्श्वभागों में वातवलयों का बाहल्य	२७९ । ११६
वातमण्डल की मोटाई प्राप्त करने का विधान	२८० । ११७
मेरुतल से ऊपर वातवलयों की मोटाई का प्रमाण	२८१-८२ । ११८
पार्श्वभागों में तथा लोकशिखर पर पवनों की मोटाई	२८३-८४ । ११८
वायुरुद्धक्षेत्र आदि के घनफलों के निरूपण की प्रतिज्ञा	२८५ । ११९
वातावरुद्ध क्षेत्र निकालने का विधान एवं घनफल	११९
लोक के शिखर पर वायुरुद्ध क्षेत्र का घनफल	१२५
पवनों से रुद्ध समस्त क्षेत्र के घनफलों का योग	१२६

विषय	गाथा/पृ० सं०
पृथिवियों के नीचे पवन से रुद्ध क्षेत्रों का घनफल	१२७
आठों पृथिवियों के सम्पूर्ण घनफलों का योग	१३१
पृथिवियों के पृथक्-पृथक् घनफल का निर्देश	१३३
लोक के शुद्धाकाश का प्रमाण	१३७
अधिकारान्त मंगलाचरण	२८६ । १३८

द्वितीय महाधिकार [गा० १—३७१] [पृ० १३६-२६४]

विषय	गाथा/पृ० सं०
मङ्गलाचरण पूर्वक नारकलोक कथन की प्रतिज्ञा	१ । १३६
पन्द्रह अधिकारों का निर्देश	२-५ । १३६
त्रसनाली का स्वरूप एवं ऊँचाई	६-७ । १४०
सर्वलोक को त्रसनालीपने की विवक्षा	८ । १४१
१. नारकियों के निवास क्षेत्र (गा० ६-१६५)	
रत्नप्रभा पृथिवी के तीन भाग एवं उनका बाहल्य	९ । १४१
खर भाग के एवं चित्रापृथिवी के भेद	१० । १४१
चित्रा नाम की सार्थकता	११-१४ । १४२
चित्रा पृथिवी की मोटाई	१५ । १४२
अन्य पृथिवियों के नाम एवं उनका बाहल्य	१६-१८ । १४३
पंक भाग एवं अब्बहुल भाग का स्वरूप	१९ । १४३
रत्नप्रभा नाम की सार्थकता	२० । १४४
शेष छह पृथिवियों के नाम एवं उनकी सार्थकता	२१ । १४४
शर्करा आदि पृथिवियों का बाहल्य	२२ । १४४
प्रकारान्तर से पृथिवियों का बाहल्य	२३ । १४५
पृथिवियों से घनोदधि वायु की संलग्नता एवं आकार	२४-२५ । १४५
नरक बिलों का प्रमाण	२६ । १४५
पृथिवीक्रम से बिलों की संख्या	२७ । १४६
बिलों का स्थान	२८ । १४७
नरक बिलों में उष्णता का विभाग	२९ । १४७
नरक बिलो में शीतता का विभाग	३० । १४७
उष्ण एवं शीत बिलों की संख्या एवं वर्णन	३१-३५ । १४८
बिलो के भेद	३६ । १४९
इन्द्रक बिलों व श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या	३७-३९ । १५१
इन्द्रक बिलों के नाम	४०-४५ । १५१
श्रेणीबद्ध बिलों का निरूपण	४६ । १५२
घर्मादि पृथिवियों के प्रथम श्रेणीबद्ध बिलों के नाम	४७-५४ । १५३-५४
इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या	५५ । १५५
क्रमशः श्रेणीबद्ध बिलों की हानि	५६-५७ । १५५
श्रेणीबद्ध बिलों के प्रमाण निकालने की विधि	५८-५९ । १५६
इन्द्रक बिलों के प्रमाण निकालने की विधि	६० । १५७

विषय	गाथा/पृ० सं०
आदि, उत्तर और गच्छ का प्रमाण	६१ । १५७
आदि का प्रमाण	६२ । १५७
गच्छ एवं चय का प्रमाण	६३ । १५८
संकलित धन निकालने का विधान	६४-६५ । १५८-५९
समस्त पृथिवियों के इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या	६६-६८ । १६०-६१
सम्मिलित प्रमाण निकालने के लिए आदि, चय एवं गच्छ का प्रमाण	६९-७० । १६१
समस्त पृथिवियों का संकलित धन निकालने का विधान	७१-७२ । १६२
समस्त पृथिवियों के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलो की सख्या	७३ । १६२
श्रेणीबद्ध बिलो की सख्या निकालने के लिए आदि गच्छ एव चय का निर्देश	७४-७५ । १६२-१६३
श्रेणीबद्ध बिलों की सख्या निकालने का विधान	७६ । १६३
श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या	७७-७९ । १६३-१६४
सब पृथिवियों के समस्त श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या निकालने के लिए आदि, चय और गच्छ का निर्देश, विधान, संख्या	८०-८२ । १६५
आदि (मुख) निकालने की विधि	८३ । १६६
चय निकालने की विधि	८४ । १६६
दो प्रकार से गच्छ निकालने की विधि	८५-८६ । १६७-६८

विषय	गाथा/पृ० सं०
प्रत्येक पृथिवी के प्रकीर्णक बिलो का प्रमाण निकालने की विधि	८७-९४ । १६९-१७१
इन्द्रादिक बिलों का विस्तार	९५ । १७२
संख्यात एवं असंख्यात योजन विस्तार वाले बिलों का प्रमाण	९६-९९ । १७२-७४
सर्व बिलों का तिरछे रूप मे जघन्य एवं उत्कृष्ट अतराल	१००-१०१ । १७४-१७५
प्रकीर्णक बिलों में संख्यात एव असंख्यात योजन विस्तृत बिलों का विभाग	१०२-१०३ । १७५-७६
संख्यात एवं असख्यात योजन विस्तार वाले नारक बिलों में नारकियों की संख्या	१०४ । १७७
इद्रक बिलों की हानि वृद्धि का प्रमाण	१०५ १०६ । १७७
इच्छित इंद्रक के विस्तार को प्राप्त करने का विधान	१०७ । १७८
पहली पृथिवी के तेरह इंद्रको का पृथक्-पृथक् विस्तार	१०८-१२० । १७८ ८२
दूसरी पृथिवी के ग्यारह इद्रकों का पृथक्-पृथक् विस्तार	१२१-१३१ । १८२-८५
तीसरी पृथिवी के नव इंद्रको का पृथक्-पृथक् विस्तार	१३२-१४० । १८५-१८८
चौथी पृथिवी के सात इंद्रकों का पृथक्-पृथक् विस्तार	१४१-१४७ । १८८-९०
पांचवी पृथिवी के पांच इद्रकों का पृथक्-पृथक् विस्तार	१४८-१५२ । १९०-९१

विषय	गाथा/पृ० सं०
छठी पृथिवी के तीन इंद्रकों का पृथक्-पृथक् विस्तार	१५३-१५५ । १६२
सातवीं पृथिवी के अवधिस्थान इंद्रक का विस्तार	१५६ । १६३
इंद्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों के बाहल्य का प्रमाण	१५७-१५८ । १६५-६६
रत्नप्रभादि छह पृथिवियों में इंद्रकादि बिलों का स्वस्थान ऊर्ध्वग अंतराल	१५९-१६२ । १६७-१६८
सातवीं पृथिवी में इंद्रक एव श्रेणीबद्ध बिलो के अधस्तन और उपरिम पृथिवियों का बाहल्य	१६३ । १९९
पहली पृथिवी के अन्तिम और दूसरी पृथिवी के प्रथम इद्रक का परस्थान अन्तराल	१६४ । १९९
तीसरी पृथिवी से छठी पृथिवी तक परस्थान अन्तराल	१६५ । २००
छठी एवं सातवीं पृथिवी के इंद्रकों का परस्थान अन्तराल	१६६ । २००
पृथिवियों के इंद्रक बिलों का स्वस्थान-परस्थान अंतराल	१६७-१७९ । २०१-२०५
प्रथमादि नरकों में श्रेणीबद्धों का स्वस्थान अतराल	१८०-१८६ । २०५-२०८
प्रथमादि नरकों में श्रेणीबद्ध बिलों का परस्थान अंतराल	१८७-८८ । २०८-२०९
प्रकीर्णक बिलों का स्वस्थान-परस्थान अतराल	१८९-१९५ । २१०-२१३

विषय	गाथा/पृ० सं०
२. नारकियों की संख्या (गा. १९६–२०२)	
नारकियों की विभिन्न नरकों में संख्या	१९६-२०२ । २१४-२१५
३. नारकियों की आयु का प्रमाण (गा. २०३-२१६)	
पहली पृथिवी में पटल क्रम से नारकियों की आयु का प्रमाण	२०३-२०८ । २१६-१७
आयु की हानि वृद्धि का प्रमाण प्राप्त करने का विधान	२०९ । २१७
दूसरी पृथिवी मे पटल क्रम से नारकियों की आयु का प्रमाण	२१० । २१८
तीसरी पृथिवी में पटलक्रम से नारकियो की आयु का प्रमाण	२११ । २१८
चौथी पृथिवी में नारकियों की आयु का प्रमाण	२१२ । २१९
पांचवी पृथिवी में नारकियों की आयु का प्रमाण	२१३ । २१९
छठी पृथिवी मे नारकियों की आयु का प्रमाण	२१४ । २१९
सातवीं पृथिवी में नारकियों की आयु का प्रमाण	२१५ । २२०
श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक बिलों में स्थित नारकियों की आयु	२१६ । २२०
४. नारकियों के शरीर का उत्सेध (गा. २१७-२७१)	
पहली पृथिवी में पटलक्रम से नारकियों के शरीर का उत्सेध	२१७-२३१ । २२३-२२६
दूसरी पृथिवी में पटलक्रम से नारकियों के शरीर का उत्सेध	२३२-२४२ । २२७-२२९

विषय	गाथा/पृ० सं०
तीसरी पृथिवी में उत्सेध की हानि-वृद्धि का प्रमाण व उत्सेध	२४३-२५२ । २२६-२३२
चौथी पृथिवी में उत्सेध की हानि-वृद्धि का प्रमाण व उत्सेध	२५३-२६० । २३२-२३४
पांचवी पृथिवी में उत्सेध की हानि-वृद्धि का प्रमाण व उत्सेध	२६१-२६५ । २३४-२३५
छठी पृथिवी में उत्सेध की हानि-वृद्धि का प्रमाण व उत्सेध	२६६-२६६ । २३५-३६
सातवी पृथिवी में उत्सेध की हानि-वृद्धि का प्रमाण व उत्सेध	२७० । २३६
श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों के नारकियों का उत्सेध	२७१ । २३७
५. नारकियों के अवधिज्ञान का प्रमाण	(गा. २७२) २४०
६. नारकियों में बीस प्ररूपणाओं का निर्देश	(गा. २७३-२८४)
नारकी जीवों में गुणस्थान	२७४ । २४०
उपरितन गुणस्थानों का निषेध	२७५-७६ । २४१
जीवसमास और पर्याप्तियां	२७७ । २४१
प्राण और संज्ञाएं	२७८ । २४१
चौदह मार्गणाएं	२७६-२८३ । २४१-४२
उपयोग	२८४ । २४३
७. उत्पद्यमान जीवों की व्यवस्था	(गा. २८५-२८७)
नरकों में उत्पन्न होने वाले जीवों का निरूपण	२८५-२८६ । २४३
नरकों में निरन्तर उत्पत्ति का प्रमाण	२८७ । २४३
८. जन्म-मरण के अंतराल का प्रमाण	(गा. २८८) २४४
९. एक समय में जन्म-मरण करने वालों का प्रमाण	(गा. २८९) २४५
१०. नरक से निकले हुए जीवों की उत्पत्ति का कथन	(गा. २९०-२९३) २४५-२४६
११. नरकायु के बन्धक परिणामों का कथन	(गा. २९४-३०२)
नरकायु के बन्धक परिणाम	२९४ । २४६
अशुभ लेश्याओं का परिणाम	२९५ । २४७
अशुभलेश्यायुक्त जीवों के लक्षण	२९६-३०२ । २४७-२४८
१२. नारकियों की जन्मभूमियों का वर्णन	(गा. ३०३-३१३)
नरकों में जन्मभूमियों के आकारादि	३०३-३०८ । २४८-२४९
नरकों में दुर्गन्ध	३०९ । २५०
जन्मभूमियों का विस्तार	३१० । २५०
जन्मभूमियों की ऊँचाई एवं आकार	३११ । २५०
जन्मभूमियों के द्वारकोण एवं दरवाजे	३१२-१३ । २५१
१३. नरकों के दुःखों का वर्णन	(गा. ३१४-३६१)
सातों पृथिवियों के दुःखों का कथन	३१४-३४८ । ३५१-२५८
प्रत्येक पृथिवी के आहार की गन्धशक्ति का प्रमाण	३४९ । २५९
असुरकुमार देवों में उत्पन्न होने के कारण	३५० । २५९

विषय	गाथा/पृ० सं०
असुरकुमार देवों की जातियां एवं उनके कार्य	३५१-३५३ । २५९-६०
नरकों में दुःख भोगने की अवधि	३५४-३५७ । २६०
नरकों में उत्पन्न होने के अन्य भी कारण	३५८-३६१ । २६१
१४. नरकों में सम्यक्त्व ग्रहण के कारण (गा. ३६२-६४) २६२	
१५. नारकियों की योनियों का कथन (गा. ३६५) २६३	
नरकगति की उत्पत्ति के कारण	३६६-३७० । २६३-२६४
अधिकारान्त मङ्गलाचरण	३७१ । १६४

तृतीय महाधिकार [गा. १—२५५] [पृ २६५—३३५]

विषय	गाथा/पृ० सं०
मङ्गलाचरण	१ । २६५
भावनलोक निरूपण में चौबीस अधिकारों का निर्देश	२-६ । २६५
१. भवनवासी देवों का निवास क्षेत्र ७-८ । २६६	
२. भवनवासी देवों के भेद ९ । २६६	
३. भवनवासियों के चिह्न १० । २६७	
४. भवनवासी देवों की भवन-संख्या ११-१२ । २६७	
५. भवनवासी देवों में इन्द्रसंख्या १३ । २६८	
६. भवनवासी इन्द्रों के नाम १४-१६ । २६८	
७. दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रों का विभाग १७-१९ । २६९	
८. भवनों का वर्णन (गा० २०-२३)	
भवन संख्या	२०-२१ । २७०
निवास स्थानों के भेद एवं स्वरूप	२२-२३ । २७२
९. अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और मध्यम ऋद्धि-धारक देवों के भवनों के स्थान २४ । २७२	
१० भवनों का विस्तारादि एवं उनमें निवास करने वाले देवों का प्रमाण २५-२६ । २७३	
११. वेदियों का वर्णन (गा. २७-३८)	
भवनवेदियों का स्थान, स्वरूप तथा उत्सेध आदि	२७-२९ । २७३
वेदियों के बाह्य स्थित वनों का निर्देश	३० । २७४
चैत्यवृक्षों का वर्णन	३१-३६ । २७४
चैत्यवृक्षो के मूल मे स्थित जिन-प्रतिमाएँ	३७-३८ । २७६
१२ वेदियों के मध्य में कूटों का निरूपण	३९-४१ । २७६
१३. जिनभवनों का निरूपण (गा ४२-५४)	
कूटों पर स्थित जिनभवनों का निरूपण	४२-४४ । २७७
महाध्वजाओं एवं लघुध्वजाओं की संख्या	४५ । २७८
जिनालय में वन्दनगृहों आदि का वर्णन	४६ । २७८
श्रुत आदि देवियों व यक्षों की मूर्तियों का निरूपण	४७ । २७८
अष्ट मंगलद्रव्य	४८ । २७९

विषय	गाथा/पृ० सं०
जिनालयों की शोभा का वर्णन	४६-५० । २७६
नागयक्ष युगलों से युक्त जिन-प्रतिमाएँ	५१ । २७६
जिनभवनों की संख्या	५२ । २७६
भवनवासी देव जिनेन्द्र को ही पूजते हैं	५३-५४ । २८०

१४ प्रासादों का वर्णन (गा. ५५-६१)

विषय	गाथा/पृ० सं०
कूटों के चारों ओर स्थित भवनवासी देवों के प्रासादों का निरूपण	५५-६१ । २८०-८१

१५ इन्द्रों की विभूति (गा० ६२-१४३)

विषय	गाथा/पृ० सं०
प्रत्येक इन्द्र के परिवार देव-देवियों का निरूपण	६२-७६ । २८२-८५
अनीक देवों का वर्णन	७७-८६ । २८६-२९०
भवनवासिनी देवियों का निरूपण	९०-१०९ । २९१
अप्रधान परिवार देवों का प्रमाण	११० । २९८
भवनवासी देवों का आहार और उसका काल प्रमाण	१११-११५ । २९८
भवनवासियों में उच्छ्वास के समय का निरूपण	११६-११८ । २९९
प्रतीन्द्रादिकों के उच्छ्वास का निरूपण	११९ । ३००
असुरकुमारादिकों के वर्णों का निरूपण	१२०-२२ । ३००
असुरकुमार आदि देवों का गमन	१२३-१२५ । ३०१
भवनवासी देव-देवियों के शरीर एवं स्वभावादि का निरूपण	१२६-१३० । ३०१
असुरकुमार आदिकों में प्रवीचार	१३१-३२ । ३०२
इन्द्र-प्रतीन्द्रादिकों की छत्रादि विभूतियां	१३३-३४ । ३०३
इन्द्र-प्रतीन्द्रादिकों के चिह्न	१३५ । ३०३
असुरादि कुलों के चिन्ह स्वरूप वृक्षों का निर्देश	१३६-३७ । ३०३
जिनप्रतिमाएँ व मानस्तम्भ	१३८-४१ । ३०६
चमरेन्द्रादिकों मे परस्पर ईर्षाभाव	१४२-४३ । ३०६

१६ भवनवासियों की संख्या १४४ । ३०७

१७ भवनवासियों की आयु (गा० १४५-१७६)

विषय	गाथा/पृ० सं०
भवनवासियों की आयु............	१४५-१६२ । ३०७-३१३
आयु की अपेक्षा सामर्थ्य	१६३-६६ । ३१४
आयु की अपेक्षा विक्रिया	१६७-६८ । ३१४-१५
आयु की अपेक्षा गमनागमन-शक्ति	१६९-७० । ३१५
भवनवासिनी देवियों की आयु	१७१-७५ । ३१५
भवनवासियों की जघन्य आयु	१७६ । ३१६

१८ भवनवासी देवों के शरीर का उत्सेध १७७ । ३१७

विषय	गाथा/पृ० सं०
१९. अवधिज्ञान के क्षेत्र का प्रमाण (गा० १७८-१८३)	
ऊर्ध्वदिशा में उत्कृष्ट रूप से अवधि-क्षेत्र का प्रमाण	१७८ । ३१७
अधः एवं तिर्यग्क्षेत्र में अवधिज्ञान का प्रमाण	१७९ । ३१७
क्षेत्र एवं कालापेक्षा जघन्य अवधि-ज्ञान	१८० । ३१८
असुरकुमार देवों के अवधिज्ञान का प्रमाण	१८१ । ३१८
शेष देवों के अवधिज्ञान का प्रमाण	१८२ । ३१८
अवधिक्षेत्र प्रमाण विक्रिया	१८३ । ३१८
२०. भवनवासी देवों में गुणस्थानादिक का वर्णन (गा० १८४-१९६)	
अपर्याप्त व पर्याप्त दशा में गुणस्थान	१८४-८५ । ३१९
उपरितन गुणस्थानों की विशुद्धि विनाश के फल से भवनवासियों में उत्पत्ति	१८६-८७ । ३१९
जीव समास पर्याप्ति	१८८ । ३२०
प्राण	१८९ । ३२०
संज्ञा, गति, योग, वेद कषाय, ज्ञान, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, उपयोग	१९०-९६ । ३२०-२१
२१. एक समय में उत्पत्ति एवं मरण का प्रमाण (गा १९७)	३२१
२२. भवनवासियों की आगति निर्देश (गा. १९८-२००)	३२२
२३. भवनवासी देवों की आयु के बन्ध योग्य परिणाम (गा. २०१-२५०)	
बन्धयोग्य परिणाम	२०१-२०४ । ३२२
देव दुर्गतियों में उत्पत्ति के कारण	२०५ । ३२३
कन्दर्प देवों में उत्पत्ति के कारण	२०६ । ३२३
वाहन देवों में उत्पत्ति के कारण	२०७ । ३२३
किल्विषक देवों में उत्पत्ति के कारण	२०८ । ३२४
सम्मोह देवों में उत्पत्ति के कारण	२०९ । ३२४
असुरों में उत्पन्न होने के कारण	२१० । ३२४
उत्पत्ति एवं पर्याप्ति वर्णन	२११ । ३२४
सप्तादि धातुओं व रोगादि का निषेध	२१२-१३ । ३२५
भवनवासियो में उत्पत्ति समारोह	२१४-१६ । ३२५
विभंगज्ञान उत्पत्ति	२१७ । ३२६
नवजात देवकृत पश्चात्ताप	२१८-२२२ । ३२६
सम्यक्त्वग्रहण	२२३ । ३२७
अन्य देवो को सन्तोष	२२४ । ३२७
जिनपूजा का उद्योग	२२५-२७ । ३२७
जिनाभिषेक एवं पूजन आदि	२२८-३८ । ३२८
पूजन के बाद नाटक	२२९ । ३३०
सम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि देव के पूजनपरिणाम और अंतर	२४०-४१ । ३३०
जिनपूजा के पश्चात्	२४२ । ३३१
भवनवासी देवों के सुखानुभव	२४३-२५० । ३३१-३३३
२४. सम्यक्त्व ग्रहण के कारण (गा. २५१-२५२)	
भवनवासियों में उत्पत्ति के कारण	२५३-५४ । ३३४
महाधिकारान्त मंगलाचरण	२५५ । ३३५

मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !!!

ॐकारं बिन्दुसयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः ।।

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् ।।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः । सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्द्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं **'श्रीतिलोयपण्णत्ती'** नामधेयं, एतन्मूलग्रन्थकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थ-कर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारतामासाद्य पूज्य **यतिवृषभाचार्य** विरचितम् इदं शास्त्रं । वक्तारः श्रोतारश्च सावधानतया शृण्वन्तु ।

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम् ।।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम् ।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ।।

ॐ

जदिवसह-आइरिय-विरइदा

तिलोयपण्णत्ती

पढमो महाहियारो

卐 मङ्गलाचरण (सिद्ध-स्तवन)

अट्ठ-विह-कम्म-वियला णिट्ठिय-कज्जा पणट्ठ-संसारा ।
दिट्ठ-सयलत्थ-सारा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।१।।

अर्थ :—आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित, करने योग्य कार्योंको कर चुकने वाले, संसारको नष्ट-कर देने वाले और सम्पूर्ण पदार्थोंके सारको देखने-वाले सिद्ध-परमेष्ठी मेरे लिए सिद्धि प्रदान करें ।।१।।

अरहन्त–स्तवन

घण-घाइ-कम्म-महणा तिहुवण-वर-भव्व-कमल-मत्तंडा[1] ।
अरिहा अणंत-णाणा अणुवम-सोक्खा जयंतु जए ।।२।।

अर्थ :—प्रबल घातिया कर्मोंका मन्थन करने वाले, तीन लोकके उत्कृष्ट भव्यजीवरूपी कमलोंके लिए मार्तण्ड (सूर्य), अनन्तज्ञानी और अनुपम–सुख वाले (अरहन्त भगवान्) जगमें जयवन्त होवें ।।२।।

आचार्य–स्तवन

पंच-महव्वय-तुंगा तक्कालिय-सपर-समय-सुदधारा ।
णाणागुण-गण-भरिया आइरिया मम पसीदंतु[2] ।।३।।

卐 द. ब. क. ज. ठ. ॐ नमः सिद्धेभ्यः । १ द. मातंडा । २. द. पसीयंतु ।

अर्थ :—पाँच महाव्रतोंसे उन्नत, तत्कालीन स्वसमय और परसमय स्वरूप श्रुतधारा (में निमग्न रहने) वाले और नाना-गुणोंके समूहसे परिपूरित आचार्यगण मेरे लिए आनन्द प्रदान करें ॥३॥

उपाध्याय-स्तवन

अण्णाण-घोर-तिमिरे[1] दुरंत-तीरम्हि हिंडमाणाणं ।
भवियाणुज्जोययरा[2] उवज्झया वर-मदिं वेंतु[3] ॥४॥

अर्थ :—दुर्गम-तीरवाले अज्ञानके गहन-अन्धकारमे भटकते हुए भव्य जीवोंके लिए ज्ञानरूपी प्रकाश प्रदान करनेवाले उपाध्याय-परमेष्ठी उत्कृष्ट बुद्धि प्रदान करे ॥४॥

साधु-स्तवन

थिर-धरिय-सीलमाला[4] ववगय-राया जसोह-पडहत्था ।
बहु-विणय-भूसियंगा सुहाइं[5] साहू पयच्छंतु ॥५॥

अर्थ :—शीलव्रतोंकी मालाको दृढतापूर्वक धारण-करनेवाले, रागसे रहित, यश-समूहसे परिपूर्ण और विविध प्रकारके विनयसे विभूषित अङ्गवाले साधु (परमेष्ठी) सुख प्रदान करें ॥५॥

ग्रन्थ-रचना-प्रतिज्ञा

एवं वर-पंचगुरू तियरण-सुद्धेण णमंसिऊणाहं[6] ।
भव्व-जणाण पदीवं वोच्छामि तिलोयपण्णत्तिं ॥६॥

अर्थ :—इस प्रकार मैं (यतिवृषभाचार्य) तीन-करण (मन, वचन, काय) की शुद्धि-पूर्वक श्रेष्ठ पञ्चपरमेष्ठियोंको नमस्कार करके भव्य-जनोके लिए प्रदीप-तुल्य "त्रिलोक-प्रज्ञप्ति" ग्रन्थका कथन करता हूं ॥६॥

ग्रन्थके प्रारम्भमें करने योग्य छह कार्य

मंगल-कारण-हेदू सत्थस्स पमाण-णाम कत्तारा ।
पढमं चिय कहिदव्वा एसा आइरिय-परिभासा ॥७॥

---

१ द. तिमिरं, ब. तिमिर । २. द. णुज्जोवयरा । ३. द. बिंतु । ४. ब. ज. ठ. सिलामाला । ५. द. ज. ठ. सुहाइ । ६ द. क. णमसिऊणाहं ।

अर्थ :—मङ्गल, कारण, हेतु, प्रमाण, नाम और कर्ता इन छह अधिकारोंका शास्त्रके पहले ही व्याख्यान करना चाहिए, ऐसी आचार्य की परिभाषा (पद्धति) है ॥७॥

मङ्गलके पर्यायवाचक शब्द

पुण्णं पूद-पवित्ता पसत्थ-सिव-भद्द-खेम-कल्लाणा ।
सुह-सोक्खादी सव्वे णिद्दिट्ठा मंगलस्स पज्जाया ॥८॥

अर्थ :—पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ और सौख्य इत्यादिक सब शब्द मङ्गलके ही पर्यायवाची (समानार्थक) कहे गये हैं ॥८॥

मङ्गल-शब्दकी निरुक्ति

गालयदि विणासयदे घादेदि दहेदि हंति सोधयदे ।
विद्धंसेदि मलाइं जम्हा तम्हा य मंगलं भणिदं ॥९॥

अर्थ :—क्योंकि यह मलको गलाता है, विनष्ट करता है, घातता है, दहन करता है, मारता है, शुद्ध करता है और विध्वस करता है, इसीलिए मङ्गल कहा गया है ॥९॥

मङ्गलके भेद

दोण्णि वियप्पा होंति हु मलस्स इह[1] दव्व-भाव-भेएहिं ।
दव्वमलं दुविहप्पं[2] बाहिरमब्भंतरं चेय ॥१०॥

अर्थ :—(यथार्थतः) द्रव्य और भावके भेदसे मलके दो प्रकार हैं, पुनः द्रव्यमल दो तरहका है—बाह्य और आभ्यन्तर ॥१०॥

द्रव्यमल और भावमलका वर्णन

सेद[3]-जल-रेणु-कद्दम-पहुदी बाहिर-मलं समुद्दिट्ठं ।
घण[4] दिढ-जीव-पदेसे णिबंध-रूवाइ पयडि-ठिदि-आइं ॥११॥
अणुभाग[5]-पदेसाइं चउहिं पत्तेक्क-भेज्जमाणं तु ।
णाणावरणप्पहुदी-अट्ठ-विहं कम्ममखिल-पावरयं ॥१२॥

---

१. द. ज. क. ठ. इमं । २ ज. ठ. दुवियप्पं । ३. द. ज. क. ठ. सीदजल । ४. द ज. क. ठ. पुण । ५. द. ज. क. ठ. अणुभावपदेसाई ।

अब्भंतर-दव्वमलं जीव-पदेसे णिबद्धमिदि[1] हेदो ।
भाव-मलं णादव्वं अण्णाणादंसणादि-परिणामो ॥१३॥

अर्थ :—स्वेद (पसीना), रेणु (धूलि), कर्दम (कीचड़) इत्यादि द्रव्यमल कहे गये हैं और दृढरूपसे जीवके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाहरूप बन्धको प्राप्त तथा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश, बन्धके इन चार भेदोंमें से प्रत्येक भेदको प्राप्त होने वाला ऐसा ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका सम्पूर्ण कर्मरूपी पाप-रज जो जीवके प्रदेशोंसे सम्बद्ध है, (इस हेतु से) वह (ज्ञानावरणादि कर्मरज) आभ्यन्तर द्रव्यमल है। जीवके अज्ञान, अदर्शन इत्यादिक परिणामोंको भावमल समझना चाहिए ॥११-१३॥

मङ्गल-शब्दकी सार्थकता

अहवा बहु-भेयगयं णाणावरणादि-दव्व-भाव-मल-भेदा ।
ताइं गालेइ पुढं जदो तदो मंगलं भणिदं ॥१४॥

अर्थ :—अथवा ज्ञानावरणादिक द्रव्यमलके और ज्ञानावरणादिक भाव मलके भेदसे मल के अनेक भेद हैं, उन्हें चूंकि (मङ्गल) स्पष्ट रूपसे गलाता है अर्थात् नष्ट करता है, इसलिए यह मंगल कहा गया है ॥१४॥

मंगलाचरणकी सार्थकता

अहवा मंगं[2] सोक्खं लादि हु गेण्हेदि मंगलं तम्हा ।
एदेण[3] कज्ज-सिद्धिं मंगइ गच्छेदि[4] गंथ-कत्तारो ॥१५॥

अर्थ :—यह मंग (मोद) को एव सुखको लाता है, इसलिए भी मंगल कहा जाता है। इसीके द्वारा ग्रन्थकर्ता कार्यसिद्धिको प्राप्त करता है और आनन्दको उपलब्ध करता है ॥१५॥

पुव्विलाइरिएहिं मंगं पुण्णत्थ-वाचयं भणियं ।
तं लादि हु आदत्ते जदो तदो मंगलं पवरं ॥१६॥

अर्थ :—पूर्वाचार्योंके द्वारा मंग पुण्यार्थवाचक कहा गया है, यह यथार्थमें उसी (मंगल) को लाता है एव ग्रहण कराता है, इसीलिए यह मगल श्रेष्ठ है ॥१६॥

---

१. द. ब. ज क. ठ. णिबधमिदि। २. द. क. मगल। ३ द ज क. ठ एदाण। ४. द. गत्थेदिगंथ, ब. मगलगत्थेदि।

पावं मलं त्ति भण्णइ उवयार-सरूवएण जीवाणं ।
तं गालेदि विणासं णेदि त्ति[1] भणंति मंगलं केई ॥१७॥

अर्थ :— जीवोंका पाप, उपचारसे मल कहा जाता है । मंगल उस (पाप) को गलाता है तथा विनाशको प्राप्त कराता है, इस कारण भी कुछ आचार्य इसे मंगल कहते हैं ॥१७॥

मंगलाचरणके नामादिक छह भेद

णामाणिठावणाओ दव्व-खेत्ताणि काल-भावा य ।
इय छब्भेयं भणियं मंगलमाणंद-संजणणं ॥१८॥

अर्थ :—आनन्दको उत्पन्न करनेवाला मगल नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे छह प्रकारका कहा गया है ॥१८॥

नाममगल

अरिहाणं सिद्धाणं आइरिय-उवज्झयाइ[2]-साहूणं ।
णामाइं णाम-मंगलमुद्दिट्ठं वीयराएहिं ॥१९॥

अर्थ :—वीतराग भगवान् ने अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इनके नामों को नाममङ्गल कहा है ॥१९॥

स्थापना एव द्रव्य मङ्गल

ठावण-मंगलमेदं अकट्टिमाकट्टिमाणि जिणबिंबा ।
सूरि-उवज्झय[3]-साहू-देहाणि हु दव्व-मंगलयं ॥२०॥

अर्थ :—अकृत्रिम और कृत्रिम जिनबिम्ब स्थापना मङ्गल हैं तथा आचार्य, उपाध्याय और साधुके शरीर द्रव्य–मङ्गल हैं ॥२०॥

क्षेत्रमङ्गल

गुण-परिणदासणं परिणिक्कमणं केवलस्स णाणस्स ।
उप्पत्ती इय-पहुदी बहुभेयं खेत्त-मंगलयं ॥२१॥

अर्थ :—गुणपरिणत (गुणवान मनुष्यों का निवास) क्षेत्र, परिनिष्क्रमण (दीक्षा) क्षेत्र, केवलज्ञानोत्पत्ति क्षेत्र, इत्यादि रूपसे क्षेत्रमङ्गल अनेक प्रकारका है ॥२१॥

---

१ द. ज. क. ठ. णेद्देत्ति । २. उवज्झायाइ । ३. ब. उवज्झायाइ ।

एदस्स उदाहरणं पावाणयरुज्जयंत-चंपादी ।
आउट्ठ-हत्थ-पहुदी पणुवीसब्भहिय-पणसय-धणूणि ॥२२॥

देह-अवट्ठिव-केवलणाणावट्ठद्ध-गयण-देसो वा ।
सेढि[1]-घण-मेत्त अप्पप्पदेस-गद-लोय-पूरणा-पुण्णा[2] ॥२३॥

विस्साणं[3] लोयाणं होदि पदेसा वि मंगलं खेत्तं ।

अर्थ :—इस क्षेत्रमङ्गलके उदाहरण—पावानगर, ऊर्जयन्त (गिरनार) और चम्पापुर आदि हैं तथा साढे तीन हाथसे लेकर पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण शरीरमें स्थित और केवलज्ञानसे व्याप्त आकाश-प्रदेश तथा जगच्छ्रेणीके घनमात्र (लोक प्रमाण) आत्माके प्रदेशों से लोकपूरण-समुद्घात द्वारा पूरित सभी (ऊर्ध्व, मध्य एवं अधो) लोकोंके प्रदेश भी क्षेत्रमङ्गल हैं ॥२१-२३½॥

काल–मंगल

जस्सि काले केवलणाणादि-मंगलं परिणमदि ॥२४॥

परिणिक्कमणं केवलणाणुब्भव-णिव्वुदि-प्पवेसादी ।
पावमल-गालणादो पण्णत्तं काल-मंगलं एदं ॥२५॥

एवं अणेयभेयं हवेदि तं काल-मंगलं पवरं ।
जिण-महिमा-संबंधं णंदीसर-दिवस-पहुदीओ[4] ॥२६॥

अर्थ :—जिस कालमें जीव केवलज्ञानादिरूप मंगलमय पर्याय प्राप्त करता है उसको तथा परिनिष्क्रमण (दीक्षा) काल, केवलज्ञानके उद्भवका काल और निर्वृति (मोक्षके प्रवेश का) काल, इन सबको पापरूपी मलके गलानका कारण होनेसे काल–मंगल कहा गया है। इसी प्रकार जिन-महिमासे सम्बन्ध रखने वाले वे नन्दीश्वर दिवस (अष्टाह्निका पर्व) आदि भी श्रेष्ठ काल मंगल हैं ॥२३½–२६॥

भावमंगल

मंगल-पज्जाएहिं उवलक्खिय-जीव-दव्व-मेत्तं च ।
भावं मंगलमेदं पढियं[5] सत्थादि-मज्झअंतेसु ॥२७॥

---

१. द. सेढिवणमित्त अप्पपदेसजद । २. ब. पूरण पुण्ण । ३. द. ब. क. विण्णासं । ४. द. ज. क. ठ. दीव पहुदी ओ । ५. द. पढियपच्छादि, ब. पढियसत्थादि ।

अर्थ :—मंगलरूप पर्यायोंसे परिणत शुद्ध जीवद्रव्य भावमंगल है। यही भावमंगल शास्त्र के आदि, मध्य और अन्तमें पढा गया है (करना चाहिए) ॥२७॥

मंगलाचरणके आदि, मध्य और अन्त भेद

पुव्विल्लाइरिएहिं उत्तो सत्थाण मंगलं जो[1] सो ।
आइम्मि मज्झ-अवसाणएसु णियमेण कायव्वो ॥२८॥

अर्थ :—शास्त्रोके आदि, मध्य और अन्तमें मंगल अवश्य करना चाहिए, ऐसा पूर्वाचार्योंने कहा है ॥२८॥

आदि, मध्य और अन्त मंगलकी सार्थकता

पढमे मंगल-करणे[2] सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति ।
मज्झिम्मे णीविग्घं विज्जा विज्जाफलं चरिमे ॥२९॥

अर्थ :—शास्त्रके आदिमे मंगल करने पर शिष्यजन (शास्त्रके) पारगामी होते हैं, मध्यमें मंगल करने पर विद्याकी प्राप्ति निर्विघ्न होती है और अन्तमें मंगल करने पर विद्याका फल प्राप्त होता है ॥२९॥

जिननाम-ग्रहणका फल

णासदि विग्घं भेददि यंहो दुट्ठा सुरा[3] ण लंघंति ।
इट्ठो अत्थो[4] लब्भइ जिण-णामग्गहण-मेत्तेण ॥३०॥

अर्थ :—जिनेन्द्र भगवान्का नाम लेने मात्रसे विघ्न नष्ट हो जाते हैं, पाप खण्डित हो जाते हैं, दुष्ट देव (असुर) लाघते नही हैं, अर्थात् किसी प्रकारका उपद्रव नही करते और इष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है ॥३०॥

ग्रन्थमें मंगलका प्रयोजन

सत्थादि-मज्झ-अवसाणएसु जिण-थोत्त मंगलुग्घोसो ।
णासइ णिस्सेसाइं विग्घाइं रवि व्व तिमिराइं ॥३१॥

॥ इदि मंगलं गदं ॥

---

१. द. ब. संठाणमंगलं घोसो । २. द. ज. क. ठ. वयणे । ३. द. दुट्ठासुत्ताए, ब. दुट्ठासुवाए, क. ज. ठ. दुट्ठासुताए । ४. द. ब. क. ज. ठ. लद्धो ।

अर्थ :– शास्त्रके आदि, मध्य और अन्तमें जिन-स्तोत्ररूप मंगलका उच्चारण सम्पूर्ण विघ्नोंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार सूर्य अंधकारको (नष्ट कर देता है) ।।३१।।

। इस प्रकार मंगलका कथन समाप्त हुआ ।

ग्रन्थ-अवतार-निमित्त

विविह-वियप्पं लोयं बहुभेय-णयप्पमाणदो[1] भव्वा ।
जाणंति त्ति णिमित्तं कहिदं गंथावतारस्स ।।३२।।

अर्थ :—नाना भेदरूप लोकको भव्य जीव अनेक प्रकारके नय और प्रमाणोंसे जानें, यह त्रिलोकप्रज्ञप्तिरूप ग्रन्थके अवतारका निमित्त कहा गया है ।।३२।।

केवलणाण-दिवायर-किरणकलावादु एत्थ अवदारो[2] ।
गणहरदेवेहिं[3] गंथुप्पत्ति हु सोहं त्ति संजादो[4] ।।३३।।

अर्थ :—केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके समूहसे श्रुतके अर्थका अवतार हुआ तथा गणधर-देवके द्वारा ग्रन्थकी उत्पत्ति हुई । यह श्रुत कल्याणकारी है ।।३३।।

छद्दव्व-णव-पयत्थे सुदणाणं दुमणि-किरण-सत्तीए ।
देक्खंतु भव्व-जीवा अण्णाण-तमेण संछण्णा ।।३४।।

।। णिमित्तं गदं ।।

अर्थ :– अज्ञानरूपी अँधेरेसे आच्छादित हुए भव्य जीव श्रुतज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंकी शक्तिसे छह द्रव्य और नव-पदार्थोंको देखें (यही ग्रन्थावतारका निमित्त है) ।।३४।।

। इस प्रकार निमित्तका कथन समाप्त हुआ ।

हेतु एवं उसके भेद

दुविहो हवेदि हेदू तिलोयपण्णत्ति-गंथअज्झयणे[5] ।
जिणवर-वयणुद्दिट्ठो पच्चक्ख-परोक्ख-भेएहिं ।।३५।।

अर्थ :—त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थके अध्ययनमे जिनेन्द्रदेवके वचनोंसे उपदिष्ट हेतु, प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो प्रकारका है ।।३५।।

---

१. द. ब. ज. क. ठ. भेयपमाणदो । २. द. ज. क. ठ. अवहारो, ब. अवहारे । ३. द. गणधरदेहिं । ४. द. सोहंति संजादो, ब. सोहंति सो जादो । ५. ब. गंथयज्झयणो ।

प्रत्यक्ष हेतु

सक्खा-पच्चक्ख-परंपच्चक्खा दोण्णि होंति[1] पच्चक्खा ।
अण्णाणस्स विणासं णाण-दिवायरस्स उप्पत्ती ।।३६।।

देव-मणुस्सादीहिं संततमब्भच्चण-प्पयाराणि ।
पडिसमयमसंखेज्जय - गुणसेढि - कम्म - णिज्जरणं ।।३७।।

इय सक्खा-पच्चक्खं पच्चक्ख-परंपरं च णादव्वं ।
सिस्स-पडिसिस्स-पहुदीहिं सददमब्भच्चण-पयारं ।।३८।।

अर्थ :—प्रत्यक्ष हेतु, साक्षात् प्रत्यक्ष और परम्परा प्रत्यक्षके भेदसे दो प्रकारका है। अज्ञानका विनाश, ज्ञानरूपी दिवाकरकी उत्पत्ति, देव और मनुष्यादिकोंके द्वारा निरन्तर की जानेवाली विविधप्रकारकी अभ्यर्चना (पूजा) और प्रत्येक समयमें असख्यातगुणश्रेणीरूपसे होने वाली कर्मोंकी निर्जरा साक्षात् प्रत्यक्ष हेतु है। शिष्य-प्रतिशिष्य आदिके द्वारा निरन्तर अनेक प्रकारसे की जानेवाली पूजाको परम्परा प्रत्यक्ष हेतु जानना चाहिए ।।३६-३८।।

परोक्ष हेतुके भेद एवं अभ्युदय सुखका वर्णन

दो-भेदं च परोक्खं अब्भुदय-सोक्खाइं मोक्ख-सोक्खाइं ।
सादादि-विविह-सु-पसत्थ[2]-कम्म-तिव्वाणुभाग-उदएहिं ।।३९।।

इंद - पडिंद - दिगिंदय - तेत्तीसामर[3]- समाण - पहुदि - सुहं ।
राजाहिराज - महराज - अद्धमंडलिय - मंडलियाणं ।।४०।।

महमंडलियाणं अद्धचक्कि-चक्कहर-तित्थयर-सोक्खं ।।४१/१।।

अर्थ :—परोक्ष हेतु भी दो प्रकारका है, एक अभ्युदय सुख और दूसरा मोक्षसुख। सातावेदनीय आदि विविध सुप्रशस्त कर्मोंके तीव्र अनुभागके उदयसे प्राप्त हुआ इन्द्र, प्रतीन्द्र, दिगिन्द्र (लोकपाल), त्रायस्त्रिंश एवं सामानिक आदि देवोंका सुख तथा राजा, अधिराजा, महाराजा, अर्धमण्डलीक, मण्डलीक, महामण्डलीक, अर्धचक्री (नारायण-प्रतिनारायण), चक्रवर्ती और तीर्थंकर इनका सुख अभ्युदय सुख है ।।३९-४१/१।।

---

१. द. होदि। २. क. ज. ठ. सुपरसत्थ। ३. ब. तेत्तीससायरपमाण।

राजा का लक्षण

अट्ठारस-सेणाणं सामी-सेणीण[1] भत्ति-जुत्ताणं ।।४१/२।।
वर-रयण-मउडधारी सेवयमाणाण वंछिदं[2] अत्थं ।

देंता हवेदि राजा जिदसत्तू समरसंघट्टे ।।४२।।

अर्थ :—भक्ति युक्त अठारह-प्रकारकी श्रेणियोंका स्वामी, उत्कृष्ट रत्नोंके मुकुटको धारण करने वाला, सेवकजनोंको इच्छित पदार्थ प्रदान करनेवाला और समरके संघर्षमें शत्रुओंको जीतने वाला (व्यक्ति) राजा होता है ।।४१/२-४२।।

अठारह-श्रेणियोंके नाम

करि-तुरय-रहाहिवई सेणवइ पदत्ति-सेट्ठि-दंडवई ।
सुद्दक्खत्तिय-वइसा हवंति तह महयरा पवरा ।।४३।।

गणराय-मंति-तलवर-पुरोहियामत्तया महामत्ता ।
बहुविह-पइण्णया य अट्ठारस होंति सेणीओ[3] ।।४४।।

अर्थ :—हाथी, घोड़े और रथोंके अधिपति, सेनापति, पदाति (पादचारी सेना), श्रेष्ठि (सेठ), दण्डपति, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, महत्तर, प्रवर (ब्राह्मण), गणमन्त्री, राजमन्त्री, तलवर (कोतवाल), पुरोहित, अमात्य और महामात्य एव बहुत प्रकारके प्रकीर्णक, ऐसी अठारह प्रकारकी श्रेणियाँ होतीं हैं ।।४३-४४।।

अधिराज एव महाराजका लक्षण

पंचसय-राय-सामी अहिराजो होदि कित्ति-भरिद-दिसो ।
रायाण जो सहस्सं पालइ सो होदि महराजो ।।४५।।

अर्थ :—कीर्तिसे भरित दिशाओं वाला और पाँच सौ राजाओंका स्वामी अधिराजा होता है और जो एक हजार राजाओंका पालन करता है वह महाराजा है ।।४५।।

---

१. द. ब. सेणेण । २. द. ज. क ठ. वंति दह मढं, ब. वंति दह मट्ठं । ३. द. ब. ज. क. सेणोओ ।

अर्धमण्डलीक एवं मण्डलीकका लक्षण

दु-सहस्स-मउडबद्ध-भुव-वसहो[1] तत्थ अद्धमंडलिओ ।
चउ-राज-सहस्साणं अहिणाहो होइ मंडलिओ[2] ॥४६॥

अर्थ :—दो हजार मुकुटबद्ध भूपोंमें वृषभ (प्रधान) अर्धमण्डलीक तथा चार हजार राजाओं का स्वामी मण्डलीक होता है ॥४६॥

महामण्डलीक एवं अर्धचक्रीका लक्षण

महमंडलिया णामा अट्ठ-सहस्साण अहिवई ताणं ।
रायाण अद्धचक्की सामी सोलस-सहस्स-मेत्ताणं ॥४७॥

अर्थ —आठ हजार राजाओंका अधिपति महामडलीक होता है तथा सोलह हजार राजाओंका स्वामी अर्धचक्री कहलाता है ॥४७॥

चक्रवर्ती और तीर्थंकर का लक्षण

छक्खंड-भरहणाहो बत्तीस-सहस्स-मउडबद्ध-पहुदीओ ।
होदि हु सयलंचक्की तित्थयरो सयल-भुवणवई ॥४८॥

॥ अब्भुदय-सोक्खं गदं ॥

अर्थ :—छह खण्डरूप भरतक्षेत्रका स्वामी और बत्तीसहजार-मुकुटबद्ध राजाओंका तेजस्वी अधिपति सकलचक्री एव समस्त लोकोंका अधिपति तीर्थंकर होता है ॥४८॥

॥ इस प्रकार अभ्युदय सुखका कथन समाप्त हुआ ॥

मोक्षसुख

सोक्खं तित्थयराणं सिद्धाणं[3] तह य इंदियादीदं ।
अदिसयमाद-समुत्थं णिस्सेयसमणुवमं पवरं ॥४९॥

॥ मोक्ख-सोक्खं गदं ॥

---

१. द. क. ज ठ बद्धासेवसहो । २. द ब. ज. क. ठ. मंडलिय । ३. द. पवराण तह इंदियादीदं । ज. पयराणं तह य इदियादीद । ठ पयराण तह य इदियादीहिं । क. कप्पातीदाण तह य इदियादीहं ।

अर्थ :—तीर्थंकरों (अरिहन्तों) और सिद्धोंके अतीन्द्रिय, अतिशयरूप आत्मोत्पन्न, अनुपम तथा श्रेष्ठ सुखको निःश्रेयस-सुख कहते हैं ।।४९।।

।। इसप्रकार मोक्ष सुखका कथन समाप्त हुआ ।।

श्रुतज्ञानकी भावनाका फल

सुदणाण-भावणाए णाणं मत्तंड-किरण-उज्जोओ ।
चंदुज्जलं चरित्तं णियवस-चित्तं हवेदि भव्वाणं ।।५०।।

अर्थ :—श्रुतज्ञानकी भावनासे भव्य जीवोंका ज्ञान सूर्यकी किरणोंके समान उद्योतरूप अर्थात् प्रकाशमान होता है; चरित्र चन्द्रमाके समान उज्ज्वल होता है तथा चित्त अपने वशमें होता है ।।५०।।

परमागम पढ़नेका फल

कणय-धराधर-धीरं मूढ-त्तय-विरहिदं [1]हयट्ठमलं ।
जायदि पवयण-पढणे सम्मद्दंसणमणुवमाणं ।।५१।।

अर्थ :—प्रवचन (परमागम) के पढनेसे सुमेरुपर्वतके समान निश्चल; लोकमूढता, देवमूढता और गुरुमूढता, इन तीन (मूढताओं) से रहित और शंका-कांक्षा आदि आठ दोषोंसे विमुक्त अनुपम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है ।।५१।।

आर्ष वचनोंके अभ्यासका फल

सुर-खेयर-मणुवाणं लब्भंति सुहाइं आरिसब्भासा[2] ।
तत्तो णिव्वाण-सुहं णिण्णासिद दारुणट्ठमला ।।५२।।

।। एवं हेदु-गदं ।।

अर्थ :—आर्ष वचनोंके अभ्याससे देव, विद्याधर तथा मनुष्यों के सुख प्राप्त होते हैं और अन्तमें दारुण अष्ट कर्ममलसे रहित मोक्षसुखकी भी प्राप्ति होती है ।।५२।।

।। इसप्रकार हेतुका कथन समाप्त हुआ ।।

श्रुतका प्रमाण

विविहत्थेहिं अणंतं संखेज्जं अक्खराण गणणाए ।
एवं पमाणमुदिदं सिस्साणं मइ-वियासयरं ।।५३।।

।। पमाणं गदं ।।

---

१. द. हय मग्गमल । क. ज. ठ. हयग्गमलं । म. हयट्ठमयं । २. द. ब. आरिसंमासा ।

अर्थ :—श्रुत, विविध प्रकारके अर्थोंकी अपेक्षा अनन्त है और अक्षरोंकी गणनाकी अपेक्षा संख्यात है। इसप्रकार शिष्योंकी बुद्धिको विकसित करनेवाले इस श्रुतका प्रमाण कहा गया है ॥५३॥

॥ इसप्रकार प्रमाणका वर्णन हुआ ॥

ग्रन्थनाम कथन

भव्वाण जेण एसा ते-लोक्क-पयासणे परम-दीवा ।
तेण गुण-णाममुदिदं तिलोयपण्णत्ति णामेणं ॥५४॥

॥ णामं गदं ॥

अर्थ :—यह (शास्त्र) भव्य जीवोके लिए तीनों लोकोंका स्वरूप प्रकाशित करनेमें उत्कृष्ट दीपकके सदृश है, इसलिए इसका 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' यह सार्थक नाम कहा गया है ॥५४॥

॥ इसप्रकार नामका कथन पूर्ण हुआ ॥

कर्ताके भेद

कत्तारो दुवियप्पो णायव्वो अत्थ-गंथ-भेदेहिं ।
दव्वादि-चउपयारे पभासिमो अत्थ-कत्तारं[1] ॥५५॥

अर्थ :—अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ताके भेदसे कर्ता दो प्रकारके समझना चाहिए। इनमेसे द्रव्यादिक चार प्रकारसे अर्थकर्ताका हम निरूपण करते हैं ॥५५॥

द्रव्यकी अपेक्षा अर्थागमके कर्ता

सेव-रजाइ-मलेणं रत्तच्छि-कडक्ख-बाण-मोक्खेहिं ।
इय-पहुदि-देह-दोसेहिं संततमदूसिद-सरीरो (य) ॥५६॥

आदिम-संहणण-जुदो समचउरस्संग-चारु-संठाणो ।
दिव्व-वर-गंधधारी पमाण-ठिद-रोम-णह-रूवो ॥५७॥

णिब्भूसणायुहंबर-भीदी सोम्माणणादि-दिव्व-तणू ।
अट्ठब्भहिय - सहस्स - प्पमाण - वर - लक्खणोपेदो ॥५८॥

---

१. ब. ग्रन्थकत्तारो ।

चउविह-उवसग्गेहिं णिच्च-विमुक्को कसाय-परिहीणो ।
छुह-पहुदि-परिसहेहिं परिचत्तो राय-दोसेहिं ॥५९॥

जोयण-पमाण-संठिद-तिरियामर-मणुव-णिवह-पडिबोहो ।
मिदु-महुर-गभीरतरा-विसद¹-विसय-सयल-भासाहिं ॥६०॥

अट्ठरस महाभासा खुल्लयभासा वि सत्तसय-संखा ।
अक्खर-अणक्खरप्पय सण्णी-जीवाण सयल-भासाओ ॥६१॥

एदासिं भासाणं तालुव-दंतोट्ठ-कंठ-वावारं ।
परिहरिय एक्क-कालं भव्व-जणाणंद-कर-भासो ॥६२॥

भावण-वेंतर-जोइसिय-कप्पवासेहिं केसव-बलेहिं ।
विज्जाहरेहिं चक्किप्पमुहेहिं णरेहिं तिरिएहिं ॥६३॥

एदेहिं अण्णेहिं विरचिद-चरणारविंद-जुग-पूजो ।
दिट्ठ-सयलट्ठ-सारो महवीरो अत्थ-कत्तारो ॥६४॥

अर्थ :—जिनका शरीर पसीना, रज (धूलि) आदि मलसे तथा लालनेत्र और कटाक्ष-बाणोंको छोड़ना आदि शारीरिक दूषणोंसे सदा अदूषित है, जो आदिके अर्थात् वज्रर्षभनाराच संहनन और समचतुरस्र-संस्थानरूप सुन्दर आकृतिसे शोभायमान हैं, दिव्य और उत्कृष्ट सुगन्धके धारक हैं, रोम और नख प्रमाणसे स्थित (वृद्धिसे रहित) हैं, भूषण, आयुध, वस्त्र और भीतिसे रहित हैं, सुन्दर मुखादिकसे शोभायमान दिव्य-देहसे विभूषित हैं, शरीरके एकहजार-आठ उत्तम लक्षणोंसे युक्त हैं; देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतनकृत चार प्रकारके उपसर्गोंसे सदा विमुक्त हैं, कषायोंसे रहित हैं, क्षुधादिक बाईस परीषहों एवं रागद्वेषसे रहित हैं, मृदु, मधुर, अतिगम्भीर और विषयको विशद करनेवाली सम्पूर्ण भाषाओंसे एक योजन प्रमाण समवसरणसभामें स्थित तिर्यंच, देव और मनुष्योंके समूहको प्रतिबोधित करने वाले हैं, जो संज्ञी जीवों की अक्षर और अनक्षररूप अठारह महाभाषा तथा सात सौ छोटी भाषाओंमें परिणत हुई और तालु, दन्त, ओठ तथा कण्ठके हलन-चलनरूप व्यापारसे रहित होकर एक ही समयमें भव्यजनोंको आनन्द करनेवाली भाषा (दिव्यध्वनि) के स्वामी हैं; भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवोंके द्वारा तथा नारायण, बलभद्र, विद्याधर और चक्रवर्ती आदि प्रमुख मनुष्यों, तिर्यंचों एवं अन्य भी ऋषि-महर्षियोंसे जिनके चरणारविन्द युगलकी

१. ब. विसदयसमसयल ।

पूजा की गई है और जिन्होंने सम्पूर्ण पदार्थोंके सारको देख लिया है, ऐसे महावीर भगवान् (द्रव्यकी अपेक्षा) अर्थागमके कर्ता हैं ।। ५६–६४ ।।

क्षेत्रकी अपेक्षा अर्थ-कर्ता

सुर-खेयर-मरण-हरणे गुणणामे पंचसेल-णयरम्मि[1] ।
विउलम्मि पव्वदवरे वीर-जिणो अत्थ-कत्तारो ।।६५।।

अर्थ :—देव एवं विद्याधरोंके मनको मोहित करनेवाले और सार्थक नाम-वाले पचशैल (पांच पहाड़ोंसे सुशोभित) नगर (राजगृही) में, पर्वतोंमें श्रेष्ठ विपुलाचल पर श्री वीरजिनेन्द्र (क्षेत्रकी अपेक्षा) अर्थके कर्ता हुए ।।६५।।

पंचशैल

चउरस्सो पुव्वाए रिसिसेलो[2] दाहिणाए वेभारो ।
णइरिदि-दिसाए विउलो दोण्णि तिकोणट्ठिदायारा ।।६६।।

अर्थ :—(राजगृह नगरके) पूर्वमें चतुष्कोण ऋषिशैल, दक्षिणमें वैभार और नैऋत्यदिशामे विपुलाचल पर्वत हैं, ये दोनो, वैभार एवं विपुलाचल पर्वत त्रिकोण आकृतिसे युक्त है ।।६६।।

चाव-सरिच्छो छिण्णो वरुणाणिल-सोमदिस-विभागेसु ।
ईसाणाए पंडू वट्टो[3] सव्वे कुसग्ग-परियरणा ।।६७।।

अर्थ :—पश्चिम, वायव्य और सोम (उत्तर) दिशामे फैला हुआ धनुषाकार छिन्न नामका पर्वत है और ईशान दिशामें पाण्डु नामका पर्वत है। उपर्युक्त पाँचोंही पर्वत कुशाग्रोंसे वेष्टित हैं ।। ६७ ।।

कालकी अपेक्षा अर्थकर्ता एवं धर्मतीर्थकी उत्पत्ति

एत्थावसप्पिणीए चउत्थ-कालस्स चरिम-भागम्मि ।
तेत्तीस-वास-अडमास-पण्णरस-दिवस-सेसम्मि ।।६८।।

वासस्स पढम-मासे सावण-णामम्मि बहुल-पडिवाए ।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्म-तित्थस्स ।।६९।।

---

१. द. णययम्मि । २. द. ब. ज. क ठ सिरिसेलो । ३. द. ज. क. ठ. वप्पा ट्टो ।

अर्थ :—यहाँ अवसर्पिणीके चतुर्थकालके अन्तिम भागमें तैंतीस वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रहनेपर वर्षके श्रावण नामक प्रथम माहमें कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन अभिजित् नक्षत्रके उदित रहनेपर धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई ॥६८-६९॥

सावण-बहुले-पाडिव-रुद्दमुहुत्ते[1] सुहोवये[2] रविणो ।
अभिजिस्स पढम-जोए जुगस्स आवी इमस्स[3] पुढं ॥७०॥

अर्थ :—श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके दिन रुद्रमुहूर्तके रहते हुए सूर्यका शुभ उदय होनेपर अभिजित् नक्षत्रके प्रथम योगमें इस युगका प्रारम्भ हुआ, यह स्पष्ट है ॥७०॥

भावकी अपेक्षा अर्थकर्ता

णाणावरणप्पहुदी णिच्छय-ववहारपाय अतिसयए ।
संजादेण अणंतं णाणेणं दंसणेण सोक्खेणं ॥७१॥

विरिएण तहा खाइय-सम्मत्तेणं पि दाण-लाहेहिं ।
भोगोपभोग-णिच्छय-ववहारेहिं च परिपुण्णो[4] ॥७२॥

अर्थ :—ज्ञानावरणादि चार-घातियाकर्मोंके निश्चय और व्यवहाररूप विनाशके कारणोंकी प्रकर्षता होने पर उत्पन्न हुए अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य इन चार—अनन्त-चतुष्टय तथा क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग और क्षायिकउपभोग इसप्रकार नवलब्धियोंके निश्चय एवं व्यवहार स्वरूपोंसे परिपूर्ण हुए ॥७१-७२॥

दंसणमोहे णट्ठे घादि-त्तिदए चरित्त-मोहम्मि ।
सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-चरियाइ होंति खइयाइं ॥७३॥

अर्थ :—दर्शनमोह, तीन घातियाकर्म (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय) और चारित्र-मोहके नष्ट होनेपर क्रमसे सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य और चारित्र, ये पाँच क्षायिकभाव प्राप्त होते हैं ॥७३॥

जादे अणंत-णाणे णट्ठे छदुमट्ठिदियम्मि[5] णाणम्मि ।
णवविह-पवत्थसारो दिव्वझुणी कहइ सुत्तत्थं ॥७४॥

अर्थ :—अनन्तज्ञान अर्थात् केवलज्ञानकी उत्पत्ति और छद्मस्थ अवस्थामें रहनेवाले मति, श्रुत, अवधि एवं मनःपर्ययरूप चारों ज्ञानोंका अभाव होनेपर नौ प्रकारके पदार्थों (सात-तत्त्व और पुण्य-पाप) के सारको विषय करनेवाली दिव्यध्वनि सूत्रार्थको कहती है ॥७४॥

---

१. द. ब. सुद्दमुहुत्ते । २. ब. सुहोदिए, क. सुहोदए । ३. द. आवीइ यिमस्स, क. आवी यिमस्स । ४. ब. परपुण्णो । ५. द. ब. चदुमट्ठिदिदम्मि ।

अण्णेहिं अणंतेहिं गुणेहिं जुत्तो विसुद्ध-चारित्तो ।
भव-भय-भंजण-दच्छो महवीरो अत्थ-कत्तारो ।।७५।।

अर्थ :—इसके अतिरिक्त और भी अनन्तगुणोंसे युक्त, विशुद्ध चारित्रके धारक तथा संसारके भयको नष्ट करनेमें दक्ष श्रीमहावीर प्रभु (भावकी अपेक्षा) अर्थ-कर्ता हैं ।।७५।।

गौतम-गणधर द्वारा श्रुत-रचना

महवीर-भासियत्थो तस्सिं खेत्तम्मि तत्थ काले य ।
खायोवसम-विवड्ढिद-चउरमल[1]-मईहिं पुण्णेण ।।७६।।

लोयालोयाण तहा जीवाजीवाण विविह-विसयेसुं ।
संदेह-णासणत्थं उवगद-सिरि-वीर-चलणमूलेण ।।७७।।

विमले गोदम-गोत्ते जादेणं [2]इंदभूदि-णामेणं ।
चउ-वेद-पारगेणं सिस्सेण[3] विसुद्ध-सीलेणं ।।७८।।

भाव-सुदं पज्जाएहिं परिणदमयिणा[4] अ बारसंगाणं ।
चोद्दस-पुव्वाण तहा एक्क-मुहुत्तेण विरचणा विहिदा ।।७९।।

अर्थ :—भगवान् महावीरके द्वारा उपदिष्ट पदार्थस्वरूप, उसी क्षेत्र और उसीकालमें, ज्ञानावरणके विशेष क्षयोपशमसे वृद्धिको प्राप्त निर्मल चार बुद्धियों (कोष्ठ, बीज, संभिन्न-श्रोतृ और पदानुसारी) से परिपूर्ण, लाक-अलोक और जीवाजीवादि विविध विषयोंमें उत्पन्न हुए सन्देहको नष्ट करनेके लिए श्रीवीर भगवान्के चरण-मूलकी शरणमें आये हुए, निर्मल गौतमगोत्रमें उत्पन्न हुए, चारों वेदोंमें पारंगत, विशुद्ध शीलके धारक, भावश्रुतरूप पर्यायसे बुद्धिकी परिपक्वताको प्राप्त, ऐसे इन्द्रभूति नामक शिष्य अर्थात् गौतम गणधर द्वारा एक मुहूर्तमें बारह अग और चौदहपूर्वोंकी रचना रूपसे श्रुत गुंथित किया गया ।।७६-७९।।

कर्त्ताके तीन भेद

इय मूल-तंत-कत्ता सिरि-वीरो इंदभूदि-विप्प-वरो ।
उवतंते कत्तारो अणुतंते सेस-आइरिया ।।८०।।

---

१. ब. चउउर°, क. चउउर। २. ब. यंदभूदि°, क. इदिभूदि। ३. ब. मिस्सेण, क. मिणेण।
४. [परिणदमइणा य] क. मयेण एयार।

अर्थ :—इसप्रकार श्रीवीरभगवान् मूलतंत्रकर्ता, ब्राह्मणोंमे श्रेष्ठ इन्द्रभूति गणधर उपतन्त्र-कर्ता और शेष आचार्य अनुतन्त्रकर्ता हैं ।।८०।।

सूत्रकी प्रमाणता

णिण्णट्ठ-राय-दोसा महेसिणो [1]दव्व-सुद-कत्तारो ।
किं कारणं पभणिदा कहिदुं सुत्तस्स [2]पामण्णं ।।८१।।

अर्थ :—रागद्वेषसे रहित गणधरदेव द्रव्यश्रुतके कर्ता है, यह कथन यहाँ किस कारणसे किया गया है ? यह कथन सूत्रकी प्रमाणताका कथन करनेके लिए किया गया है ।।८१।।

नय प्रमाण और निक्षेपके बिना अर्थ निरीक्षण करनेका फल

जो ण पमाण-णयेहिं णिक्खेवेणं णिरक्खदे अत्थं ।
तस्साजुत्तं जुत्तं जुत्तमजुत्तं च पडिहादि ।।८२।।

अर्थ :—जो नय और प्रमाण तथा निक्षेपसे अर्थका निरीक्षण नही करता है, उसको अयुक्त पदार्थ युक्त और युक्त पदार्थ अयुक्त ही प्रतीत होता है ।।८२।।

प्रमाण एवं नयादिका लक्षण

णाणं होदि पमाणं णओ वि णादुस्स हिदय-भावत्थो[3] ।
णिक्खेओ वि उवाओ, जुत्तीए अत्थ-पडिगहणं ।।८३।।

अर्थ :—सम्यग्ज्ञानको प्रमाण और ज्ञाताके हृदयके अभिप्रायको नय कहते हैं । निक्षेप भी उपायस्वरूप हैं । युक्तिसे अर्थका प्रतिग्रहण करना चाहिए ।।८३।।

रत्नत्रयका कारण

इय णायं अवहारिय आइरिय-परंपरागदं मणसा ।
पुव्वाइरियाआराणुसरणं ति-रयण-णिमित्तं ।।८४।।

अर्थ :—इसप्रकार आचार्यपरम्परासे प्राप्त हुए न्यायको मनसे अवधारण करके पूर्व आचार्योके आचारका अनुसरण करना रत्नत्रयका कारण है ।।८४।।

---

१. द ज. क. ठ. दिव्वसुत्त° । २. क. ब ज. ब. ठ. सामण्ण । ३ ब. णउ वि णादुसहहिदय-भावत्थो, क. णउ वि णादुसहहिदयभावत्थो ।

ग्रंथ प्रतिपादनकी प्रतिज्ञा

मंगलपहुदिच्छक्कं वक्खाणिय विविह-गंथ-जुत्तीहिं ।
जिणवर-मुह-णिक्कंतं गणहर-देवेहिं [1]गथित-पदमालं ।।८५।।

सासद-पदमावण्णं पवाह-रुवत्तणेण दोसेहिं ।
णिस्सेसेहिं विमुक्कं आइरिय-अणुक्कमाआदं ।।८६।।

भव्व-जणाणंदयरं वोच्छामि अहं तिलोयपण्णत्तिं ।
णिब्भर-भत्ति-पसादिद-वर-गुरु-चलणाणुभावेण ।।८७।।

अर्थ :—विविध ग्रन्थ और युक्तियोंसे (मंगलादि छह—मंगल, कारण, हेतु, प्रमाण, नाम और कर्ता का) व्याख्यान करके जिनेन्द्र भगवानके मुखसे निकले हुए, गणधरदेवों द्वारा पदोंकी (शब्द रचना रूप) मालामें गूंथे गये, प्रवाह रूपसे शाश्वतपद (अनन्तकालीनताको) प्राप्त सम्पूर्ण दोषोंसे रहित और आचार्य-परम्परासे आये हुए तथा भव्यजनोंको आनन्ददायक 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' शास्त्रको मैं अतिशय भक्ति द्वारा प्रसादित उत्कृष्ट-गुरुके चरणोंके प्रभावसे कहता हूं ।।८५–८७।।

ग्रन्थके नव अधिकारोंके नाम

सामण्ण-जग-सरूवं तम्मि ठियं णारयाण लोयं च ।
भावण-णर-तिरियाणं वेंतर-जोइसिय-कप्पवासीणं ।।८८।।

सिद्धाणं लोगो त्ति य [2]अहियारे पयद-दिट्ठ-णव-भेए ।
तम्मि णिबद्धे जीवे पसिद्ध-वर-वण्णणा-सहिए ।।८९।।

वोच्छामि [3]सयलभेदे भव्वजणाणंद-पसर-संजणणं[4] ।
जिण-मुह-कमल-विणिग्गय-तिलोयपण्णत्ति-णामाए ।।९०।।

अर्थ :—जगतका सामान्यस्वरूप तथा उसमें स्थित नारकियोंका लोक, भवनवासी, मनुष्य, तिर्यंच, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी और सिद्धोका लोक, इसप्रकार प्रकृतमें उपलब्ध भेदरूप नौ अधिकारों तथा उस-उस लोकमे निबद्ध जीवोको, नयविशेषोका आश्रय लेकर उत्कृष्ट वर्णनासे

---

१. क. ज. ठ. गंथित। २. ब. अहिआरो, क. अहिआरे। ३. ब. सयं=नयविशेषम्, द. वोच्छामि सयलईए, क. वोच्छामि सयलईए। ४. ब. जणाणंदएसरसं।

युक्त भव्यजनोंको आनन्दके प्रसारका उत्पादक और जिनभगवान्के मुखरूपी कमलसे निर्गत यह त्रिलोकप्रज्ञप्ति नामक ग्रन्थ कहता हूं ॥८८-९०॥

लोकाकाशका लक्षण

जगसेढि-घण-पमाणो लोयायासो स-पंच-दव्व-ठिदी ।
एस अणंताणंतालोयायासस्स बहुमज्झे ॥९१॥

☰ १६ ख ख ख[1]

अर्थ :—यह लोकाकाश (☰) अनन्तानन्त अलोकाकाश (१६ ख ख ख) के बहुमध्य-भागमें जीवादि पाँच द्रव्योंसे व्याप्त और जगच्छ्रेणीके घन (३४३ घन राजू) प्रमाण है ॥९१ ।

विशेष :—इस गाथाकी संदृष्टि (☰ १६ ख ख ख) का अर्थ इसप्रकार है—

☰, का अर्थ लोककी प्रदेश-राशि एवं धर्माधर्मकी प्रदेश राशि ।

१६, सम्पूर्ण जीव राशि ।

१६ ख, सम्पूर्ण पुद्गल (की परमाणु) राशि ।

१६ ख ख, सम्पूर्ण काल (की समय) राशि ।

१६ ख ख ख, सम्पूर्ण आकाश (की प्रदेश) राशि ।

जीवा पोग्गल-धम्माधम्मा काला इमाणि दव्वाणि ।
सव्वं [2]लोयायासं [3]आधूइय पंच [4]चिट्ठंति ॥९२॥

अर्थ :—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल, ये पाँचों द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाशको व्याप्त-कर स्थित हैं ॥९२॥

एत्तो सेढिस्स घणप्पमाणाण णिण्णयत्थं परिभासा उच्चदे—

अब यहाँसे आगे श्रेणिके घन प्रमाण लोकका निर्णय करनेके लिए परिभाषाएँ अर्थात् पल्योपमादिका स्वरूप कहते हैं—

---

१. द. ब ख ख × २ । २. द. ब. क. ज. ठ. लोयायासो । ३. द. क. आउवड्ढिदि आधूइय । ४. द. ब. चरंति, क. चिरंति, ज. ठ. चिरंति ।

उपमा प्रमाणके भेद—

पल्ल-समुद्दे उवमं अंगुलयं सूइ-पदर-घरण-णामं ।
जगसेढि-लोय-पदरो अ लोओ अट्ठप्पमाणाणि ।।९३।।

प. १ । सा. २ । सू. ३ । प्र. ४ । घ. ५ । ज. ६ । लोय प. ७ । लोय ८

अर्थ :—पल्योपम, सागरोपम, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनागुल, जगच्छ्रेणी, लोक-प्रतर और लोक ये आठ उपमा प्रमाणके भेद हैं ।।९३।।

१	२	३	४	५	६	७	८
पल्य,	सागर,	सूच्यगुल,	प्रतरांगुल,	घनागुल,	जग०	लोक प्र०	लोक ।

पल्यके भेद एवं उनके विषयोंका निर्देश

ववहारुद्धारद्धा तिय-पल्ला पढमयम्मि संखाओ ।
बिदिए दीव-समुद्दा तदिए मिज्जेदि कम्म-ठिदी ।।९४।।

अर्थ :—व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य और अद्धापल्य, ये पल्यके तीन भेद हैं । इनमें प्रथम पल्यसे संख्या, द्वितीयसे द्वीप-समुद्रादिक और तृतीयसे कर्मोंकी स्थितिका प्रमाण लगाया जाता है ।।९४।।

स्कध, देश, प्रदेश एवं परमाणुका स्वरूप

खंदं सयल-समत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी होदि परमाणू ।।९५।।

अर्थ :—सब प्रकारसे समर्थ (सर्वांशपूर्ण) स्कंध, उसके अर्धभागको देश और आधेके आधे भागको प्रदेश कहते हैं । स्कंधके अविभागी (जिसके और विभाग न हो सकें ऐसे) अशको परमाणु कहते हैं ।।९५।।

परमाणुका स्वरूप

सत्थेण [1]सु-तिक्खेणं छेत्तुं भेत्तुं च जं किरण सक्को ।
जल-अणलादिहिं णासं ण एदि सो[2] होदि परमाणू ।।९६।।

अर्थ :—जो अत्यन्त तीक्ष्णशस्त्रसे भी छेदा या भेदा नहीं जा सकता, तथा जल और अग्नि आदिके द्वारा नाशको भी प्राप्त नहीं होता वह परमाणु है ।।९६।।

---

१. ब. सुतिक्खेण य च्छेत्तुं च ज किरस्सक्का । २. द. ब. सा, ब. ज. ठ. सा ।

एक्क-रस-वण्ण-गंधं दो पासा सद्द-कारणमसद्दं ।
खंदंतरिदं दव्वं तं परमाणुं भणंति बुधा ।।९७।।

अर्थ :—जिसमे (पाँच रसोंमेंसे) एक रस, (पांच वर्णोंमेंसे) एक वर्ण, (दो गंधोंमेंसे) एक गंध और (स्निग्ध-रूक्षमेसे एक तथा शीत-उष्णमेंसे एक ऐसे) दो स्पर्श (इसप्रकार कुल पांच गुण) हैं और जो स्वय शब्दरूप न होकर भी शब्दका कारण है एवं स्कन्धके अन्तर्गत है, उस द्रव्यको ज्ञानीजन परमाणु कहते हैं ।।९७।।

अंतादि-मज्झ-हीणं अपदेसं इंदिएहिं ण हि [1]गेज्झं ।
जं दव्वं अविभत्तं तं परमाणुं कहंति जिणा ।।९८।।

अर्थ :—जो द्रव्य अन्त, आदि एव मध्यसे विहीन, प्रदेशोंसे रहित (अर्थात् एक प्रदेशी हो), इन्द्रियद्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकने वाला और विभाग रहित है, उसे जिन भगवान् परमाणु कहते हैं ।।९८।।

परमाणुका पुद्गलत्व

पूरंति गलंति जदो पूरण-गलणेहिं पोग्गला तेण ।
परमाणु च्चिय जादा इय दिट्ठं दिट्ठि-वादम्हि ।।९९।।

अर्थ :—क्योंकि स्कन्धोंके समान परमाणु भी पूरते हैं और गलते हैं, इसीलिए पूरण-गलन क्रियाओंके रहनेसे वे भी पुद्गलके अन्तर्गत हैं; ऐसा दृष्टिवाद अगमे निर्दिष्ट है ।।९९।।

परमाणु पुद्गल ही है

वण्ण-रस-गंध-फासे पूरण-गलणाइ सव्व-कालम्हि ।
खंदं पिव कुणमाणा परमाणू पुग्गला [2]तम्हा ।।१००।।

अर्थ :—परमाणु स्कन्धकी तरह सब कालोंमें वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श, इन गुणोंमें पूरण-गलन किया करते हैं, इसलिए वे पुद्गल ही हैं ।।१००।।

नय-अपेक्षा परमाणुका स्वरूप

आदेस-मुत्तमुत्तो [3]धातु-चउक्कस्स कारणं जो दु[4] ।
सो णेयो परमाणू परिणाम-गुणो य खंदस्स ।।१०१।।

---

१. द. क. ज. ठ. सोज्झं । २. द. ज. ठ. तस्स । ३. द. ज. ठ. धाउ । ४ द. क. ठ. जादु ।

अर्थ :—जो नय विशेषकी अपेक्षा कथंचित् मूर्त एवं कथंचित् अमूर्त है, चार धातुरूप स्कन्धका कारण है और परिणमन-स्वभावी है, उसे परमाणु जानना चाहिए ।।१०१।।

उवसन्नासन्न स्कंधका लक्षण

परमाणूहिं अणंताणंतेहिं बहु-विहेहि-दव्वेहिं ।
[1]उवसण्णासण्णो त्ति य सो खंदो होदि णामेण ।।१०२।।

अर्थ :—नानाप्रकारके अनन्तानन्त परमाणु-द्रव्योंसे उवसन्नासन्न नामसे प्रसिद्ध एक स्कन्ध उत्पन्न होता है ।।१०२।।

सन्नासन्नसे अंगुल पर्यन्तके लक्षण

[1]उवसण्णासण्णो वि य गुणिदो अट्ठेहि होदि णामेण ।
सण्णासण्णो त्ति तदो दु इदि खंधो पमाणट्ठं ।।१०३।।
[2]अट्ठेहिं गुणिदेहिं सण्णासण्णेहिं होदि तुडिरेणू ।
तित्तिय-मेत्तहदेहिं तुडिरेणूहिं पि तसरेणू ।।१०४।।
तसरेणू रथरेणू उत्तम-भोगावणीए वालग्गं ।
मज्झिम-भोग-खिदीए वालं पि जहण्ण-भोग-खिदिवालं ।।१०५।।
कम्म-महीए वालं लिक्खं जूवं जवं च अंगुलयं ।
इगि-उत्तरा य भणिदा पुव्वेहिं अट्ठ-गुणिदेहिं ।।१०६।।

अर्थ :—उवसन्नासन्नको भी आठसे गुणित करनेपर सन्नासन्न नामका स्कन्ध होता है अर्थात् आठ उवसन्नासन्नोंका एक सन्नासन्न नामका स्कन्ध होता है। आठसे गुणित सन्नासन्नों अर्थात् आठ सन्नासन्नोंसे एक त्रुटिरेणु और इतने (आठ) ही त्रुटिरेणुओंका एक त्रसरेणु होता है। त्रसरेणुसे पूर्व पूर्व स्कन्धों द्वारा आठ आठ गुणित रथरेणु, उत्तमभोगभूमिका बालाग्र, मध्यम-भोगभूमिका बालाग्र, जघन्य-भोगभूमिका बालाग्र, कर्म-भूमिका बालाग्र, लीख, जूँ, जौ और अंगुल, ये उत्तरोत्तर स्कन्ध कहे गये हैं ।।१०३-१०६।।

अंगुलके भेद एवं उत्सेधांगुलका लक्षण

तिवियप्पमंगुलं तं उच्छेह-पमाण-अप्प-अंगुलयं ।
परिभासा-णिप्पण्णं होदि हु [3]उच्छेह-सूइ-अंगुलियं ।।१०७।।

---

१. द. ज. ठ. ओसण्णासण्णो। २. द. क. अट्टट्ठे, ज. ठ. अट्ठेदि। ३. द. ज. क. ठ. उदिसेह-सूचि अगुलय।

अर्थ :—अंगुल तीनप्रकारका है—उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल परिभाषासे सिद्ध किया गया अंगुल उत्सेधांगुल या सूच्यंगुल होता है ॥१०७॥

प्रमाणांगुलका लक्षण

तं चिय पंच सयाइं अवसप्पिणि-पढम-भरह-चक्किस्स ।
अंगुलमेक्कं चेव य तं तु पमाणंगुलं णाम ॥१०८॥

अर्थ :—पांचसौ उत्सेधांगुल प्रमाण, अवसर्पिणी कालके प्रथम चक्रवर्ती भरतके एक अंगुलका नामही प्रमाणांगुल है ॥१०८॥

आत्मांगुलका लक्षण

जस्सिं जस्सिं काले भरहेरावद-महीसु[1] जे मणुवा ।
तस्सिं तस्सिं ताणं अंगुलमादंगुलं णाम ॥१०९॥

अर्थ —जिस-जिस कालमें भरत और ऐरावतक्षेत्रमें जो-जो मनुष्य हुआ करते हैं, उस-उस कालमे उन्ही मनुष्योंके अंगुलका नाम आत्मांगुल है ॥१०९॥

उत्सेधांगुल द्वारा माप करने योग्य वस्तुएँ

उस्सेहअंगुलेणं सुराण-णर-तिरिय-णारयाणं च ।
[2]उस्सेहस्स-पमाणं चउदेव-णिगेद-णयराणं[3] ॥११०॥

अर्थ :—उत्सेधांगुलसे देव, मनुष्य, तिर्यंच एवं नारकियोंके शरीरकी ऊँचाईका प्रमाण और चारोंप्रकारके देवोंके निवास स्थान एवं नगरादिकका प्रमाण जाना जाता है ॥११०॥

प्रमाणांगुलसे मापने योग्य पदार्थ

दीवोवहि-सेलाणं वेदीण णदीण कुण्ड-जगदीणं ।
[4]वस्साणं च पमाणं होदि पमाणंगुलेणेव ॥१११॥

अर्थ :—द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड, सरोवर, जगती और भरतादिक क्षेत्रका प्रमाण प्रमाणांगुलसे ही होता है ॥१११॥

---

१. ब. क. महीस । २. ब. उस्सेह अंगुलो णं । ३. ब. णिकेवणणयराणि । ४. द. ब. वंसाणं ज. क. ठ. बंसाणं ।

आत्मांगुलसे मापने योग्य पदार्थ

भिंगार-कलस-दप्पण-वेणु-पडह-जुगाण सयण-सगदाणं[1] ।
हल-मुसल-सत्ति-तोमर-सिंहासण-बाण-णालि-अक्खाणं ।।११२।।
चामर-दुंदुहि-पीढच्छत्ताणं णर-णिवास-णयराणं ।
उज्जाण-पहुदियाणं संखा आदंगुलेणेव ।।११३।।

अर्थ :—झारी, कलश, दर्पण, वेणु, भेरी, युग, शय्या, शकट (गाड़ी), हल, मूसल, शक्ति, तोमर, सिंहासन, बाण, नालि, अक्ष, चामर, दुन्दुभि, पीठ, छत्र, मनुष्योंके निवास स्थान एवं नगर और उद्यानादिकोंकी सख्या आत्मांगुलसे ही समझना चाहिए ।।११२-११३।।

पादसे कोश-पर्यंतकी परिभाषाएँ

छहि अंगुलेहि पादो बेपादेहिं विहत्थि-णामा य ।
दोण्णि विहत्थी हत्थो बेहत्थेहिं हवे रिक्कू ।।११४।।
बेरिक्कूहिं दंडो दंडसमा [2]जुगधणूणि मुसलं वा ।
तस्स तहा णाली वा दो-दंड-सहस्सयं कोसं ।।११५।।

अर्थ :—छह अंगुलोंका पाद, दो पादोंकी वितस्ति, दो वितस्तियोंका हाथ, दो हाथोंका रिक्कू, दो रिक्कुओंका दण्ड, दण्डके बराबर अर्थात् चार हाथ प्रमाणही धनुष, मूसल तथा नाली और दो हजार दण्ड या धनुषका एक कोस होता है ।।११४-११५।।

योजनका माप

चउ-कोसेहिं जोयण तं चिय [3]वित्थार-गत्त-समवट्टं ।
तत्तियमेत्तं घण-फल-माणेज्जं करण-कुसलेहिं ।।११६।।

अर्थ :—चार कोसका एक योजन होता है । उतने ही अर्थात् एक योजन विस्तार वाले गोल गड्ढेका गणितशास्त्रमें निपुण पुरुषोंको घनफल ले आना चाहिए ।।११६।।

गोलक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण, क्षेत्रफल एवं घनफल

सम-वट्ट-वास-वग्गे दह-गुणिदे करणि-परिहिओ होदि ।
वित्थार-तुरिय[4]-भागे परिहि-हदे तस्स खेत्तफलं ।।११७।।

---

१. [सगडाणं] २. द. जुगधणूणि । ३. ब. वित्थारं । ४. द. ज. क. ठ. तुरिम ।

उणवीस-जोयणेसुं चउवीसेहिं तहावहरिदेसुं ।
तिविह-वियप्पे पल्ले घण-खेत्त[1]-फला हु [2]पत्तेयं ॥११८॥

$\frac{१९}{२४}$ ।

अर्थ :—समान गोल (बेलनाकार) क्षेत्रके व्यासके वर्गको दससे गुणा करके जो गुणनफल प्राप्त हो उसका वर्गमूल निकालने पर परिधिका प्रमाण निकलता है, तथा विस्तार अर्थात् व्यासके चौथे भागसे अर्थात् अर्द्ध व्यासके वर्गसे परिधिको गुणित करनेपर उसका क्षेत्रफल निकलता है। तथा उन्नीस योजनोको चौबीससे विभक्त करने पर तीन प्रकारके पल्योंमेंसे प्रत्येकका घन-क्षेत्रफल होता है ॥११७-११८॥

उदाहरण—एक योजन व्यासवाले गोलक्षेत्रका घनफल :—

१ × १ × १० = १० ; $\sqrt{१०} = \frac{१९}{६}$ परिधि; $\frac{१९}{६} \times \frac{१}{४} = \frac{१९}{२४}$ क्षेत्रफल; $\frac{१९}{२४} \times १ = \frac{१९}{२४}$ घनफल।

विशेषार्थ :—यहाँ समान गोलक्षेत्र (कुण्ड) का व्यास १ योजन है, इसका वर्ग (१यो० × १यो०) = १ वर्ग यो० हुआ। इसमें १० का गुणा करनेसे (१वर्ग यो० × १० =) १० वर्ग योजन हुए। इन १० वर्ग यो० का वर्गमूल ३$\frac{१}{६}$ ($\frac{१९}{६}$) योजन हुआ, यही परिधिका (सूक्ष्म) प्रमाण है। $\frac{१९}{६}$ यो० परिधिको व्यासके चौथाई भाग $\frac{१}{४}$ यो० से गुणा करने पर ($\frac{१९}{६} \times \frac{१}{४} =$) $\frac{१९}{२४}$ वर्ग यो० (सूक्ष्म) क्षेत्रफल हुआ। इस $\frac{१९}{२४}$ वर्ग यो० क्षेत्रफलको १ यो० गहराईसे गुणित करनेपर ($\frac{१९}{२४} \times १$ यो० =) $\frac{१९}{२४}$ घन यो० (सूक्ष्म) घनफल प्राप्त होता है ॥११७-११८॥

व्यवहार पल्यके रोमोकी सख्या निकालनेका विधान तथा उनका प्रमाण

उत्तम-भोग-खिदीए उप्पण्ण-विजुगल-रोम-कोडीओ ।
एक्कादि-सत्त-दिवसावहिम्मि च्छेत्तूण संगहियं ॥११९॥
अइवट्टेहिं तेहिं रोमग्गेहिं णिरन्तरं पढमं ।
अच्चंतं णिचिदूणं भरियव्वं जाव भूमिसमं ॥१२०॥

अर्थ :—उत्तम भोग-भूमिमें एकदिनसे लेकर सात दिनतकके उत्पन्न हुए मेढ़ेके करोड़ों रोमोंके अविभागी-खण्ड करके उन खण्डित रोमाग्रोंसे लगातार उस एक योजन विस्तार वाले प्रथम पल्य (गड्ढे) को पृथ्वीके बराबर अत्यन्त सघन भरना चाहिए ॥११९-१२०॥

---

१. [घणखेत्तफ] २. ब. पत्तेका।

दंड-पमाणंगुलए उस्सेहंगुल जवं च जूवं च ।
लिक्खं तह कादूणं वालग्गं कम्म-भूमीए ॥१२१॥
[1]अवरं-मज्झिम-उत्तम-भोग-खिदीणं च वाल-अग्गाइं ।
[2]एक्केक्कमट्ठ - घण - हद - रोमा ववहार-पल्लस्स ॥१२२॥

ऽ० । ९६ । ५०० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ।
ऽ० । ९६ । ५०० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ।
ऽ० । ९६ । ५०० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ।

[3]पल्ल रोमस्स

अर्थ :—ऊपर जो १९/२४ प्रमाण घनफल आया है, उसके दण्ड कर प्रमाणांगुल कर लेना चाहिए। पुनः प्रमाणागुलोके उत्सेधागुल करना चाहिए। पुनः जौ, जूँ, लीख, कर्मभूमिके बालाग्र, मध्यमभोगभूमिके बालाग्र, उत्तम भोगभूमिके बालाग्र, इनकी अपेक्षा प्रत्येक को आठके घनसे गुणा करनेपर व्यवहार पल्यके रोमोंकी सख्या निकल आती है ॥१२१-१२२॥ यथा—

१९/२४ × ४ × ४ × ४ × २००० × २००० × २००० × ४ × ४ × ४ × २४ × २४ × २४ × ५०० × ५०० × ५०० × ८ = ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००० ।

नोट :—मूल संदृष्टिके ऽ० का अर्थ ३ शून्य (०००) है। मूलमें तीन बार ९६, तीन बार ५०० और चौबीस बार ८ के अंक आए हैं। हिन्दी अर्थमें तीन बार ५०० और इक्कीस बार ८ के अंक रखे गये हैं, तीन बार ९६, तीन बार ८ और ९ शून्य अवशेष रहे। ९६००० को ८ से गुणित करने पर (९६००० × ८) = ७६८००० अगुल प्राप्त होते हैं, जो एक योजनके बराबर हैं। इन अगुलोंके कोस आदि बनानेपर ४ कोस, २००० धनुष, ४ हाथ और २४ अगुल होते हैं। अर्थमें तीन बार ४, तीन बार २०००, तीन बार ४ और तीन बार २४ इसीके सूचक रखे गये हैं।

विशेषार्थ :—एक योजनके चार कोस, एक कोसके २००० धनुष, एक धनुषके चार हाथ और एक हाथके २४ अंगुल होते हैं। एक योजन व्यास वाले गड्ढेका घनफल १९/२४ प्रमाण घन योजन प्राप्त हुआ है, एक प्रमाण योजनके ५०० व्यवहार योजन होते हैं। "घन राशिका गुणाकार या भागहार घनात्मक ही होता है" इस नियमके अनुसार १९/२४ को तीन बार ५०० से गुणा किया और इन व्यवहार योजनोंके रोम खण्ड बनाने हेतु तीन-तीन बार ४ कोस, २००० धनुष, ४ हाथ, २४ अंगुल एवं आठ-आठ यव, जूँ आदिके प्रमाणसे गुणा किया गया है।

---

१. ब. अवरमज्झिम°। २. द. एक्किक्क°। ३. [पल्लं]।

उपर्युक्त संदृष्टिका गुणनफल

[1]अट्ठारस ठाणेसुं सुण्णाणि दो णवेक्क दो [2]एक्को ।
पण-णव-चउक्क-सत्ता सग-सत्ता एक्क-तिय-सुण्णा ॥१२३॥

दो अट्ठ सुण्ण-तिय-णह-[3]तिय-छक्का दोण्णि-पण-चउक्काणि ।
[4]तिय एक्क चउक्काणि अंक कमेण पल्लरोमस्स ॥१२४॥

४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००० ।

अर्थ :—अन्तके स्थानोंमें १८ शून्य, दो, नौ, एक, दो, एक, पांच, नौ, चार, सात, सात, सात, एक, तीन, शून्य, दो, आठ, शून्य, तीन, शून्य, तीन, छह, दो, पांच, चार, तीन, एक और चार ये क्रमसे पल्यरोमके अंक हैं ॥१२३-१२४॥

व्यवहार पल्यका लक्षण

एक्केक्कं रोमग्गं वस्स-सदे फेडिदम्हि सो पल्लो ।
रित्तो होदि स कालो उद्धार णिमित्त-ववहारो ॥१२५॥

॥ ववहार-पल्लं ॥

अर्थ :— सौ-सौ वर्षमें एक-एक रोम-खण्डके निकालनेपर जितने समयमें वह गड्ढा खाली होता है,—उतने कालको व्यवहार-पल्योपम कहते हैं । वह व्यवहार पल्य उद्धार-पल्यका निमित्त है ॥१२५॥

॥ व्यवहार-पल्यका कथन समाप्त हुआ ॥

उद्धार पल्यका प्रमाण

ववहार-रोम-रासिं पत्तेक्कमसंख-कोडि-वस्साणं ।
समय-समं छेत्तूणं विविए पल्लम्हि भरिदम्हि ॥१२६॥

---

१. द अट्ठरसंताणे । २. द. दोणविक्कं । ३. द. तियच्छंचपदोण्णिपणचउण्णिति, क. तियच्छं-चउदोण्णिपणचउण्णिति । ४. द. ए एक्क ।

समयं पडि' एक्केक्कं बालग्गं फेडिदम्हि सो पल्लो ।
रित्तो होदि स कालो उद्धारं णाम पल्लं तु ॥१२७॥

॥ उद्धार-पल्लं ॥

अर्थ :—व्यवहारपल्यकी रोम-राशिमेंसे प्रत्येक रोम-खण्डोंके, असंख्यात करोड़ वर्षोंके जितने समय हों उतने खण्ड करके, उनसे दूसरे पल्यको भरकर पुनः एक-एक समयमें एक-एक रोम-खण्डको निकालें । इसप्रकार जितने समयमें वह दूसरा पल्य (गड्ढा) खाली होता है, उतना काल उद्धार नामके पल्यका है ॥१२६-१२७॥

॥ उद्धार-पल्यका कथन समाप्त हुआ ॥

अद्धार या अद्धापल्यके लक्षण आदि

एदेणं पल्लेणं दीव-समुद्दाण होदि परिमाणं ।
उद्धार-रोम-रासिं ²छेत्तूणमसंख-वास-समय-समं ॥१२८॥
पुव्वं व विरचिदेणं तदियं अद्धार-पल्ल-णिप्पत्ती ।
णारय-तिरिय-णराणंसुराण-कम्म-ट्ठिदी तम्हि ॥१२९॥

॥ अद्धार-पल्लं एवं पल्लं समत्तं ॥

अर्थ :—इस उद्धार-पल्यसे द्वीप और समुद्रोंका प्रमाण जाना जाता है । उद्धार-पल्यकी रोम-राशिमेंसे प्रत्येक रोम-खण्डके असंख्यात वर्षोंके समय-प्रमाण खण्ड करके तीसरे गड्ढेके भरनेपर और पहलेके समान एक-एक समयमें एक-एक रोम-खण्डको निकालनेपर जितने समयमे वह गड्ढा रिक्त होता है उतने कालको अद्धार पल्योपम कहते हैं । इस अद्धा पल्यसे नारकी, मनुष्य और देवोंकी आयु तथा कर्मोंकी स्थितिका प्रमाण (जानना चाहिए) ॥१२८-१२९॥

॥ अद्धार-पल्य समाप्त हुआ । इसप्रकार पल्य समाप्त हुआ ॥

व्यवहार, उद्धार एवं अद्धा सागरोपमोंके लक्षण

एदाणं पल्लाणं दहप्पमाणाउ कोडि-कोडीओ ।
सायर-उवमस्स पुढं एक्कस्स हवेज्ज परिमाणं ॥१३०॥

॥ सायरोपमं समत्तं ॥

---

१. ब. पडिग्गकेक्कं । २. द. छेत्तूणं संख ।

अर्थ :—इन दसकोड़ाकोड़ी पल्योंका जितना प्रमाण हो उतना पृथक्-पृथक् एक सागरोपमका प्रमाण होता है। अर्थात् दसकोडाकोड़ी व्यवहार पल्योंका एक व्यवहार-सागरोपम, दसकोड़ाकोड़ी उद्धार-पल्योंका एक उद्धार-सागरोपम और दस-कोडाकोड़ी अद्धा-पल्योंका एक अद्धा-सागरोपम होता है ॥१३०॥

॥ सागरोपमका वर्णन समाप्त हुआ ॥

सूच्यंगुल और जगच्छ्रेणीके लक्षण

अद्धार-पल्ल-छेदे तस्सासंखेज्ज-भागमेत्ते य।
पल्ल-घणंगुल-वग्गिद-संवग्गिवयम्हि सूइ-जगसेढी ॥१३१॥

सू० २ । जग०— ।

अर्थ :—अद्धापल्यके जितने अर्धच्छेद हों उतनी जगह पल्य रखकर परस्पर गुणित करनेपर सूच्यंगुल प्राप्त होता है। अर्थात्—

सूच्यगुल=[अद्धापल्य] की घात [अद्धापल्यके अर्धच्छेद], तथा अद्धापल्यकी अर्धच्छेद राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण घनांगुल रखकर उन्हें परस्परमें गुणित करनेसे जगच्छ्रेणी प्राप्त होती है। अर्थात्—

जगच्छ्रेणी=[घनांगुल] की घात (अद्धापल्यके अर्धच्छेद/असंख्यात) ॥१३१॥

सू० अ० २ जगच्छ्रेणी—

सूच्यंगुल आदिका तथा राजूका लक्षण

तं वग्गे पदरंगुल-पदराइ-घणे घणंगुलं लोयो।
जगसेढीए सत्तम-भागो रज्जू पभासंते ॥१३२॥

४ । = । ६ । ☰ । ७ ।

॥ एवं परिभासा गदा ॥

अर्थ :—उपर्युक्त सूच्यंगुलका वर्ग करनेपर प्रतरांगुल और जगच्छ्रेणीका वर्ग करनेपर जगत्प्रतर होता है। इसीप्रकार सूच्यंगुलका घन करनेपर घनांगुल और जगच्छ्रेणीका घन करनेपर लोकका प्रमाण होता है। जगच्छ्रेणीके सातवें भागप्रमाण राजूका प्रमाण कहा जाता है ॥१३२॥

प्र. अं. ४; ज प्र = ; घ. अं. ६; घ. लो. ☰ । ७ राजू है ।

।। इसप्रकार परिभाषाका कथन समाप्त हुआ ।।

विशेषार्थ :—गाथा १३१ और १३२ में सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल तथा जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और लोक एवं राजूकी परिभाषाएँ कही गई हैं । अंकसदृष्टिमें—मानलो, अद्धा-पल्यका प्रमाण १६ है । इसके अर्धच्छेद ४ हुए (विवक्षित राशिको जितनी बार आधा करते-करते एकका अक रह जाय उतने, उस राशिके अर्धच्छेद कहलाते हैं । जैसे १६ को ४ बार आधा करनेपर एक अंक रहता है, अतः १६ के ४ अर्धच्छेद हुए) । अतः चार बार पल्य (१६ × १६ × १६ × १६) का परस्पर गुणा करनेसे सूच्यंगुल (६५—अर्थात् ६५५३६) प्राप्त हुआ । इस सूच्यंगुलके वर्ग (४२=अर्थात् ६५५३६ × ६५५३६) को प्रतरांगुल तथा सूच्यंगुल के घन (६५५३६ × ६५५३६ × ६५५३६ या (६५५३६)^{२} × ६५५३६ = (६५५३६)^{३} को घनांगुल कहते हैं ।

मानलो—अद्धापल्यका प्रमाण १६, घनांगुलका प्रमाण (६५५३६)^{३} और असंख्यातका प्रमाण २ है । अतः पल्य (१६) के अर्धच्छेद ४ ÷ २ (असख्यात)=लब्ध २ आया, इसलिए दो बार घनागुलों { (६५५३६)^{३} × (६५५३६)^{३} } का परस्पर गुणा करनेसे जगच्छ्रेणी प्राप्त होती है । जगच्छ्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और जगच्छ्रेणीके घनको लोक कहते हैं । जगच्छ्रेणी (६५५३६^{४} × ६५५३६^{२}) के सातवेंभागको राजू कहते हैं । यथा—$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{७}$ = राजू ।

लोकाकाशके लक्षण

आदि-णिहणेण हीणो पयडि-सरूवेण एस संजादो ।
जीवाजीव-समिद्धो [1]सव्वण्हावलोइओ लोओ ।।१३३।।

अर्थ :—सर्वज्ञ भगवान्‌से अवलोकित यह लोक, आदि और अन्तसे रहित अर्थात् अनाद्यनन्त है, स्वभावसे ही उत्पन्न हुआ है और जीव एवं अजीव द्रव्योंसे व्याप्त है ।।१३३।।

धम्माधम्म-णिबद्धा [2]गदिरगदी जीव-पोग्गलाणं च ।
जेत्तिय-मेत्ताआसे[3] लोयाआसो स णादव्वो ।।१३४।।

अर्थ :—जितने आकाशमें धर्म और अधर्म द्रव्यके निमित्तसे होनेवाली जीव और पुद्गलोंकी गति एवं स्थिति हो, उसे लोकाकाश समझना चाहिए ।।१३४।।

---

१. द. क. ज. ठ सव्वणहावअववो, ब. सव्वणहावलोयवो । २. द. ब. गदिरागदि । ३. द. ब. क. ज. मेत्तायासो ।

लोकाकाश एवं अलोकाकाश—

लोयायास-ट्ठाणं सयं-पहाणं स-दव्व-छक्कं हु ।
सव्वमलोयायासं तं [1]सव्वासं हवे णियमा ॥१३५॥

अर्थ :—छह द्रव्योंसे सहित यह लोकाकाशका स्थान निश्चय ही स्वयंप्रधान है, इसकी सब दिशाओंमें नियमसे अलोकाकाश स्थित है ॥१३५॥

लोकके भेद

सयलो एस य लोओ णिप्पण्णो सेढि-विंद-माणेणं ।
[2]तिवियप्पो णादव्वो हेट्ठिम-मज्झिल्ल-उड्ढ-भेएण ॥१३६॥

अर्थ :—श्रेणीवृन्दके मानसे अर्थात् जगच्छ्रेणीके घनप्रमाणसे निष्पन्न हुआ यह सम्पूर्ण लोक अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोकके भेदसे तीन प्रकारका जानना चाहिए ॥१३६॥

तीन लोककी आकृति

हेट्ठिम लोयाआरो वेत्तासण-सण्णिहो सहावेण ।
मज्झिम-लोयायारो उब्भिय-मुरअद्ध-सारिच्छो ॥१३७॥

△　▽

उवरिम-लोयाआरो उब्भिय-मुरवेण होइ सरिसत्तो ।
संठाणो एदाणं लोयाणं एण्हिं साहेमि ॥१३८॥
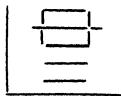
अर्थ :—इनमेंसे अधोलोककी आकृति स्वभावसे वेत्रासन सदृश और मध्यलोककी आकृति खड़े किए हुए अर्धमृदंगके ऊर्ध्वभागके सदृश है । ऊर्ध्वलोककी आकृति खड़े किए हुए मृदंगके सदृश है । अब इन तीनों लोकोंका आकार कहते हैं ॥१३७-१३८॥

---

१. ब. त संवासं ।　२ द. तिव्वियप्पो ।

विशेषार्थ :—गाथा १३७-१३८ के अनुसार लोकको आकृति निम्नांकित है :—
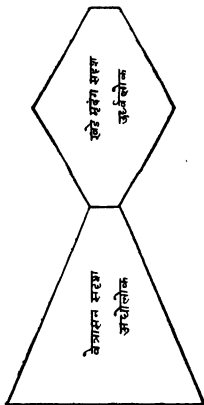
अधोलोकका माप एवं आकार

तं मज्झे मुहमेक्कं भूमि जहा होदि सत्त रज्जूवो ।
तह छिदिदम्मि मज्झे हेट्ठिम-लोयस्स आयारो ॥१३९॥

अर्थ :—उस सम्पूर्ण लोकके बीचमेंसे जिसप्रकार मुख एक राजू और भूमि सात राजू हो, इसप्रकार मध्यमें छेदनेपर अधोलोकका आकार होता है ॥१३९॥

विशेषार्थ :—सम्पूर्ण लोकमेंसे अधोलोकको इसप्रकार अलग किया गया है कि जिसका मुख एक राजू और भूमि सात राजू है । यथा—
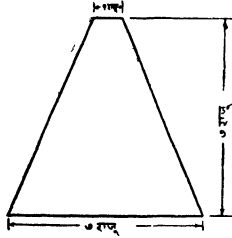
सम्पूर्ण लोकको वर्गाकार आकृतिमें लानेका विधान एवं आकृति

दोपक्ख-खेत्त-मेत्तं[1] उच्चलयंतं पुण-ट्ठवेदूणं ।
विवरीदेणं मेलिदे वासुच्छेहा सत्त रज्जूओ ॥१४०॥

अर्थ :—दोनों ओर फैले हुए क्षेत्रको उठाकर अलग रखदे, फिर विपरीतक्रमसे मिलानेपर विस्तार और उत्सेध सात-सात राजू होता है ॥१४०॥

विशेषार्थ :—लोक चौदह राजू ऊँचा है । इस ऊँचाईको ठीक बीचमेंसे काट देनेपर लोकके सामान्यत: दो भाग हो जाते हैं, इन क्षेत्रोंमेंसे अधोलोकको अलगकर उसके दोनों भागोंको और अलग किये हुए ऊर्ध्वलोकके चारों भागोंको विपरीत क्रमसे रखनेपर लोकका उत्सेध और विस्तार दोनों सात-सात राजू प्राप्त होते हैं । यथा :—

१. द. क ज. ठ. उच्चलयत ।
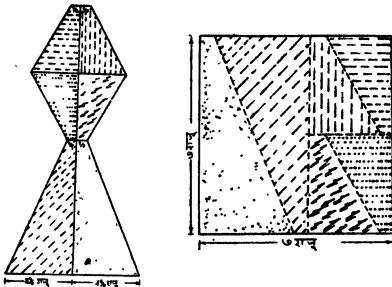
लोककी डेढ मृदग सदृश आकृति बनानेका विधान

मज्झम्हि पंच रज्जू कमसो हेट्ठोवरम्हि[1] इगि-रज्जू ।
सग रज्जू उच्छेहो होदि जहा तह य छेत्तूणं ।।१४१।।

हेट्ठोवरिदं मेलिद-खेत्तायारं तु चरिम-लोयस्स ।
एदे पुव्विल्लस्स य खेत्तोवरि ठावए पयदं ।।१४२।।

[2]उद्धिय-दिवड्ढ-मुरव-धजोवमाणो य तस्स आयारो ।
एक्कपदे [3]सग-बहलो चोद्दस-रज्जूदवो तस्स ।।१४३।।

अर्थ :—जिसप्रकार मध्यमें पांच राजू, नीचे और ऊपर क्रमशः एक राजू और ऊँचाई सात राजू हो, इसप्रकार खण्डित करनेपर नीचे और ऊपर मिले हुए क्षेत्रका आकार अन्तिम लोक अर्थात् ऊर्ध्वलोकका आकार होता है, इसको पूर्वोक्त क्षेत्र अर्थात् अधोलोकके ऊपर रखनेपर प्रकृतमें खड़े किये हुए ध्वजयुक्त डेढ़मृदंगके सदृश उस सम्पूर्ण लोकका आकार होता है । इसको एकत्र करनेपर उस लोकका बाहल्य सात राजू और ऊँचाई चौदह राजू होती है ।।१४१-१४३।।

---

१. द क वरिम्हि । २. द. उब्भियदिवड्ढमुरवद्ध । ३. द. ब सव्वहलो ।

तस्स य एक्कम्हि दए वासो पुव्वावरेण भूमि-मुहे ।
सत्तेक्क-पंच-एक्का रज्जूवो मज्झ-हाणि-चयं ॥१४४॥

अर्थ :—इस लोककी भूमि और मुखका व्यास पूर्व-पश्चिमकी अपेक्षा एक ओर क्रमशः सात, एक, पाँच और एक राजूमात्र है, तथा मध्यमें हानि-वृद्धि है ॥१४४॥

नोट :—गाथा १४१ से १४४ प्रकृत प्रसंगसे इतर है, क्योंकि गाथा १४० का सम्बन्ध गाथा १४५-१४७ से है ।

सम्पूर्ण लोकको प्रतराकार रूप करनेका विधान एवं आकृति

खे-संठिय-चउखंडं सरिसट्ठाणं [1]आइ घेत्तूणं ।
तमणुज्झोभय-पक्खे विवरीय-कमेण मेलेज्जो ॥१४५॥
[2]एवज्जिय अवसेसे खेत्ते गहिऊण पदर-परिमाणं ।
पुव्वं पिव कादूणं बहलं बहलम्मि मेलेज्जो ॥१४६॥
एव-मवसेस-खेत्तं जाव [3]समप्पेदि ताव घेत्तव्वं ।
एक्केक्क-पदर-माणं एक्केक्क-पदेस-बहलेणं ॥१४७॥

अर्थ :—आकाशमें स्थित, सदृश आकार वाले चारों-खण्डोंको ग्रहणकर उन्हे विचारपूर्वक उभय पक्षमें विपरीत क्रमसे मिलाना चाहिए । इसीप्रकार अवशेष क्षेत्रोंको ग्रहणकर और पूर्वके सदृश ही प्रतर-प्रमाण करके बाहल्यको बाहल्यमें मिलादें । जब तक इस क्रमसे अवशिष्ट क्षेत्र समाप्त नहीं हो जाता, तब तक एक-एक प्रदेशकी मोटाईसे एक-एक प्रतर-प्रमाणको ग्रहण करना चाहिए ॥१४५-१४७॥

विशेषार्थ :—१४ इंच ऊँची, ७ इंच मोटी और पूर्व-पश्चिम सात, एक, पांच और एक इंच चौड़ाई वाली मिट्टीकी एक लोकाकृति सामने रखकर उसमेंसे १४ इंच लम्बी, ७, १, ५, १ इंच चौड़ी और एक इंच मोटी एक परत छीलकर ऊँचाईकी ओरसे उसके दो-भाग कर गाथा १४० में दर्शाई हुई ७ राजू उत्सेध और ७ राजू विस्तार वाली प्रतराकृतिके रूपमें बनाकर स्थापित करें। पुनः उस लोकाकृतिमेंसे एक इंच मोटी, १४ इंच ऊँची और पूर्व विस्तार वाली दूसरी परत छीलकर उसे भी प्रतर रूप करके पूर्व-प्रतरके ऊपर स्थापित करें, पुनः इसी प्रमाण वाली तीसरी परत छीलकर उसे भी प्रतर रूप करके पूर्व स्थापित प्रतराकृतिके ऊपर ही स्थापित करें । इसप्रकार करते-

---

१. ब. अइ । २. [एवं चिय] । ३. द. ब. समं पेरि ।

करते जब सातों ही परतें प्रतराकारमें एक दूसरेपर स्थापित हो जाएँगी तब ७ इंच उत्सेध, ७ इंच विस्तार और सात इंच बाहल्यवाला एक क्षेत्र प्राप्त होगा। यह मात्र दृष्टान्त है किन्तु इसका दार्ष्टान्त भी प्रायः ऐसा ही है। यथा—१४ राजू ऊँचे, ७, १, ५, १ राजू चौड़े और ७ राजू मोटे लोककी एक-एक प्रदेश मोटाई वाली एक-एक परत छीलकर तथा उसे प्रतराकार रूपसे स्थापित करने अर्थात् बाहल्यको बाहल्यसे मिला देनेपर लोकरूप क्षेत्रकी मोटाई ७ राजू, उत्सेध ७ राजू और विस्तार ७ राजू प्राप्त होता है। यथा—
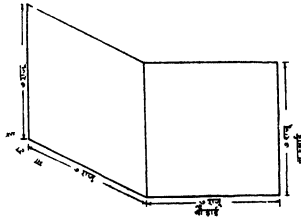
नोट :—मूल गाथा १३८ के पश्चात् दी हुई सदृष्टिका प्रयोजन विशेषार्थसे स्पष्ट होजाता है।

त्रिलोककी ऊँचाई, चौड़ाई और मोटाईके वर्णनकी प्रतिज्ञा

एदेण पयारेणं णिप्पण्णत्ति-लोय-खेत्त-दीहत्तं ।
वास-उदयं भणामो णिस्संदं दिट्ठि-वादादो ॥१४८॥

अर्थ :—इसप्रकारसे सिद्ध हुए त्रिलोकरूप क्षेत्रकी मोटाई, चौड़ाई और ऊँचाईका हम (यतिवृषभ) वैसा ही वर्णन कर रहे हैं जैसा दृष्टिवाद अंगसे निकला है ॥१४८॥

दक्षिण-उत्तर सहित लोकका प्रमाण एवं आकृति

सेढि-पमाणायामं भागेसुं दक्खिणुत्तरेसु पुढं ।
पुव्वावरेसु वासं भूमि-मुहे सत्त एक्क-पंचेक्का ॥१४९॥

— । — । ७१ । ७५ । ७१ ।

अर्थ :—दक्षिण और उत्तर भागमें लोकका आयाम जगच्छ्रेणी प्रमाण अर्थात् सात राजू है, पूर्व और पश्चिम भागमें भूमि तथा मुखका व्यास, क्रमशः सात, एक, पांच और एक राजू है।

तात्पर्य यह है कि लोककी मोटाई सर्वत्र सात राजू है और विस्तार क्रमशः अधोलोकके नीचे सात, मध्यलोकमें एक, ब्रह्मस्वर्गपर पांच और लोकके अन्तमें एक राजू है ॥१४९॥

विशेषार्थ :—लोककी उत्तर-दक्षिण मोटाई, पूर्व-पश्चिम चौड़ाई और गा० १५० के प्रथम चरणमें कही जानेवाली ऊँचाई निम्नप्रकार है—
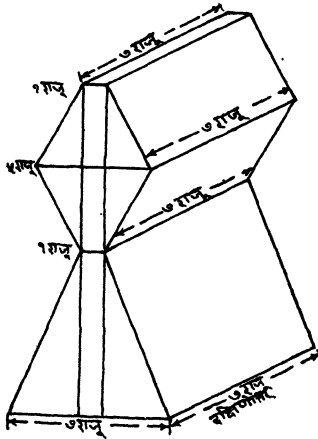
अधोलोक एवं ऊर्ध्वलोककी ऊँचाईमें सदृशता

चोद्दस-रज्जु-पमाणो उच्छेहो होदि सयल-लोयस्स ।
अद्ध-मुरज्जस्सुदवो [1]समग्ग-मुरवोदय-सरिच्छो ॥१५०॥

१४ । — । — ।

१. ब. सामग्ग ।

अर्थ :—सम्पूर्ण लोककी ऊँचाई चौदह राजू प्रमाण होती है। अर्धमृदंगकी ऊँचाई, सम्पूर्ण मृदंगकी ऊँचाईके सदृश है अर्थात् अर्धमृदंग सदृश अधोलोक जैसे सात राजू ऊँचा है, उसीप्रकार पूर्ण मृदंगके सदृश ऊर्ध्वलोकभी सात राजू ऊँचा है ॥१५०॥

तीनों लोकोंकी पृथक्-पृथक् ऊँचाई

हेट्ठिम-मज्झिम-उवरिम-लोउच्छेहो कमेण रज्जूवो ।
सत्त य जोयण-लक्खं जोयण-लक्खूण-सग-रज्जू ॥१५१॥

। ७ । जो. १००००० । ७ रिण जो. १००००० ।

अर्थ :– क्रमशः अधोलोकको ऊँचाई सात राजू, मध्यलोकको ऊँचाई एक लाख योजन और ऊर्ध्वलोकको ऊँचाई एक लाख योजन कम सात राजू है ॥१५१॥

विशेषार्थ :—अधोलोककी ऊँचाई सात राजू, मध्यलोककी ऊँचाई एक लाख योजन और ऊर्ध्वलोककी ऊँचाई एक लाख योजन कम सात राजू प्रमाण है।

अधोलोकमें स्थित पृथिवियोंके नाम एव उनका अवस्थान

इह रयण-सक्करा-वालु-पंक-धूम-तम-महातमादि-पहा ।
सुरवद्धम्मि महीओ सत्तच्चिय रज्जु-अंतरिदा[1] ॥१५२॥

अर्थ :—इन तीनों लोकोंमेंसे अर्धमृदगाकार अधोलोकमें रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा, ये सात पृथिवियाँ एक-एक राजूके अन्तरालसे हैं ॥१५२॥

विशेषार्थ :—ऊपर प्रत्येक पृथिवीके मध्यका अन्तर जो एक राजू कहा है, वह सामान्य कथन है। विशेष रूपसे विचार करनेपर पहली और दूसरी पृथिवीकी मोटाई एक राजूमें शामिल है, अतएव इन दोनों पृथिवियोंका अन्तर दो लाख बारह हजार योजन कम एक राजू होगा। इसीप्रकार आगे भी पृथिवियोंकी मोटाई, प्रत्येक राजूमें शामिल है, अतएव मोटाईका जहाँ जितना प्रमाण है उतना-उतना कम, एक-एक राजू अन्तर वहाँका जानना चाहिए।

---

१. क. ज. ठ. अंतरिदा ।

रत्नप्रभादि पृथिवियोंके गोत्र नाम

घम्मा-वंसा-मेघा-अंजरगरिट्ठाए[1] ओज्झ मघवीओ ।
माघविया इय ताणं पुढवीणं [2]गोत्त-णामाणि ॥१५३॥

अर्थ :—घर्मा, वशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी, ये इन उपर्युक्त पृथिवियोंके गोत्र नाम हैं ॥१५३॥

मध्यलोकके अधोभागसे लोकके अन्त-पर्यन्त राजू-विभाग

मज्झिम-जगस्स हेट्ठिम-भागादो णिग्गदो पढम-रज्जू ।
[3]सक्कर-पह-पुढवीए हेट्ठिम-भागम्मि णिट्ठादि ॥१५४॥

। ७ १ ।

अर्थ :—मध्यलोकके अधोभागसे प्रारम्भ होता हुआ पहला राजू शर्कराप्रभा पृथिवीके अधोभागमें समाप्त होता है ॥१५४॥

॥ राजू १ ॥

तत्तो [4]दोइद-रज्जू वालुव-पह-हेट्ठम्मि समप्पेदि ।
तह य तइज्जा रज्जू [5]पंक-पहे हेट्ठभायम्मि ॥१५५॥

। ७ २ । ७ ३ ।

अर्थ :—इसके आगे दूसरा राजू प्रारम्भ होकर बालुकाप्रभाके अधोभागमे समाप्त होता है, तथा तीसरा राजू पङ्कप्रभाके अधोभागमें समाप्त होता है ॥१५५॥

राजू २ । ३ ।

धूम-पहाए हेट्ठिम-भागम्मि समप्पदे तुरिय-रज्जू ।
तह पंचमिआ रज्जू तमप्पहा-हेट्ठिम-पएसे ॥१५६॥

। ७ ४ । ७ ५ ।

अर्थ :—इसके अनन्तर चौथा राजू धूमप्रभाके अधोभागमे और पाँचवां राजू तमःप्रभाके अधोभागमें समाप्त होता है । १५६॥

---

१. क. रिट्ठाए उज्झ, ज. ठ. द. रिट्ठा ओज्झ । २. ब. णास । ३. द. ब. क. ठ. सक्करसेह । ज. सकरसेढ । ४. ज. ठ. दुइज्ज, द. क. दोइज्ज । ५. ज. द. क. ठ. पंक पह हेट्ठस्स भागम्मि ।

महतम-पहाम हेट्ठिम-अंते ¹छट्ठो हि समप्पदे रज्जू ।
तत्तो सत्तम-रज्जू लोयस्स तलम्मि णिट्ठादि ॥१५७॥

। ज ६ । ज ७ ।

अर्थ :—पूर्वोक्त क्रमसे छठा राजू महातम:प्रभाके नीचे अन्तमें समाप्त होता है और इसके आगे सातवां राजू लोकके तलभागमें समाप्त होता है ॥१५७॥

मध्यलोकके ऊपरी भागसे अनुत्तर विमान पर्यन्त राजू विभाग

मज्झिम-जगस्स उवरिम-भागादु दिवड्ढ-रज्जु-परिमाणं ।
इगि-जोयण-लक्खूणं² सोहम्म-विमाण-धय-दंडे ॥१५८॥

र४ ३ । रि यो १००००० [3]

अर्थ :—मध्यलोकके ऊपरी भागसे सौधर्म-विमानके ध्वज-दण्ड तक एक लाख योजन कम डेढ़राजू प्रमाण ऊँचाई है ॥१५८॥

विशेषार्थ :—मध्यलोकके ऊपरी भाग (चित्रा पृथिवी) से सौधर्मविमानके ध्वजदण्ड पर्यन्त सुमेरुपर्वतकी ऊँचाई एक लाख योजन कम डेढ़ राजू प्रमाण है ।

वच्चदि दिवड्ढ-रज्जू माहिंद-सणक्कुमार-उवरिम्मि ।
णिट्ठादि-अद्ध⁴-रज्जू बम्हुत्तर-उड्ढ-भागम्मि ॥१५९॥

॥ र४ ३ । र४ ।

अर्थ :—इसके आगे डेढ़राजू, माहेन्द्र और सनत्कुमार स्वर्गके ऊपरी भागमें समाप्त होता है । अनन्तर आधा राजू ब्रह्मोत्तर स्वर्गके ऊपरी भागमें पूर्ण होता है ॥१५९॥

रा $\frac{3}{2}$ । $\frac{1}{2}$

अवसादि-अद्ध-रज्जू काविट्ठस्सोवरिट्ठ⁵-भागम्मि ।
स च्चिय महसुक्कोवरि सहसारोवरि य सच्चेव ॥१६०॥

। र४ । र४ । र४ ।

---

१. ब. क. छट्ठीहिं । २. द. लक्खोणं, क. लक्खाणं । ३. द. ब. र४ ३ । र४ ३ । ४. ब. अट्ठरज्जूबमुत्तरं । ५. क. सोवरिमद्ध ।

अर्थ :—इसके पश्चात् आधाराजू कापिष्टके ऊपरी भागमें, आधा राजू महाशुक्रके ऊपरी भागमें और आधाराजू सहस्रारके ऊपरी भागमें समाप्त होता है ।।१६०।।

। राजू $\frac{1}{2}$ । $\frac{1}{2}$ । $\frac{1}{2}$ ।

तत्तो य अद्ध-रज्जू आणव-कप्पस्स[1] उवरिम-पएसे ।
स य आरणस्स कप्पस्स उवरिम-भागम्मि [2]गेविज्जं ।।१६१।।

। १४ । १४ ।

अर्थ :—इसके अनन्तर अर्ध ($\frac{1}{2}$) राजू आनतस्वर्गके ऊपरी भागमें और अर्ध ($\frac{1}{2}$) राजू आरण स्वर्गके ऊपरी भागमें पूर्ण होता है ।।१६१।।

[3]गेवेज्ज णवाणुद्दिस पहुडीओ होंति एक्क-रज्जूवो ।
एवं उवरिम-लोए रज्जु-विभागो समुद्दिट्ठो ।।१६२।।

ऊ १

अर्थ :—तत्पश्चात् एक राजूकी ऊँचाईमे नौग्रैवेयिक, नौअनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान हैं। इसप्रकार ऊर्ध्वलोकमें राजूका विभाग कहा गया है ।।१६२।।

कल्प एवं कल्पातीत भूमियोका अन्त

णिय-णिय-चरिमिंदय-धय-दंडग्गं कप्पभूमि-अवसाणं ।
कप्पादीद-महीए विच्छेदो लोय-किचूणो[4] ।।१६३।।

अर्थ :—अपने-अपने अन्तिम इन्द्रक ध्वज-दण्डका अग्रभाग उन-उन कल्पों (स्वर्गों) का अन्त है और कल्पातीतभूमिका जो अन्त है वह लोकके अन्तसे कुछ कम है ।।१६३।।

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोक सुमेरुपर्वतकी चोटीसे एक बाल मात्रके अन्तरसे प्रारम्भ होकर लोकशिखर पर्यन्त १०००४० योजन कम ७ राजू प्रमाण है, जिसमें सर्वप्रथम ८ युगल (१६ स्वर्ग) हैं, प्रत्येक युगलोंका अन्त अपने अपने अन्तिम इन्द्रकके ध्वजदण्डके अग्रभागपर हो जाता है। इसके ऊपर अनुक्रमसे कल्पातीत विमान एवं सिद्धशिला आदि हैं। लोकशिखरसे २१ योजन ४२५ धनुष नीचे कल्पातीत भूमिका अन्त है और सिद्धलोकके मध्यकी मोटाई ८ योजन है अतः कल्पातीत भूमि

---

१. द. ब. क. कप्प सो । २. क. ब. गेवज्ज । ३. द. क. ब. ज. ठ. तत्तो उवरिम-भागे णवाणु-त्तरओ । ४. द. क. ज ठ. विच्छेदो ।

(सर्वार्थसिद्धि विमानके ध्वजदण्ड) से २९ योजन ४२५ धनुष ऊपर जाकर लोकका अन्त है; इसीलिए गाथामें कल्पातीत भूमिका अन्त लोकके अन्तसे किंचित् (२९ यो. ४२५ ध.) कम कहा है।

अधोलोकके मुख और भूमिका विस्तार एवं ऊँचाई

सेढीए सत्तंसो हेट्ठिम-लोयस्स होदि मुहवासो।
भूमी-वासो सेढी-मेत्ता[1]-अवसाण-उच्छेहो ॥१६४॥

७ | — | — |

अर्थ :—अधोलोकके मुखका विस्तार जगच्छ्रेणीका सातवाँ भाग, भूमिका विस्तार जगच्छ्रेणी प्रमाण और अधोलोकके अन्त तक ऊँचाई भी जगच्छ्रेणी प्रमाण ही है ॥१६४॥

विशेषार्थ :—अधोलोकका मुख विस्तार एक राजू, भूमि विस्तार सात राजू और ऊँचाई सात राजू प्रमाण है।

अधोलोकका घनफल निकालनेकी विधि

मुह-भू-समासमद्धिय[2] गुणिदं पुण तह य वेदेण।
घण-घणिदं णादव्वं वेत्तासण-सण्णिए खेत्ते ॥१६५॥

अर्थ :—मुख और भूमिके योगको आधा करके पुनः ऊँचाईसे गुणा करनेपर वेत्रासन सदृश लोक (अधोलोक) का क्षेत्रफल जानना चाहिए ॥१६५॥

विशेषार्थ :—अधोलोकका मुख एक राजू और भूमि सात राजू है, इन दोनोंके योगको दो से भाजित-कर ७ राजू ऊँचाईसे गुणित करनेपर अधोलोकका क्षेत्रफल प्राप्त होता है। यथा— १+७=८, ८÷२=४, ४×७ राजू ऊँचाई=२८ वर्ग राजू अधोलोकका क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

पूर्ण अधोलोक एवं उसके अर्धभागके घनफलका प्रमाण

हेट्ठिम-लोए लोओ चउ-गुणिदो सग-हिदो य विंदफलं।
तस्सद्धं[3] सयल-जगो दो-गुणिदो [4]सत्त-पविहत्तो ॥१६६॥

| ≡/७ ४ | ≡/७ २ |

---

१. द. मेत्ता अ उच्छेहो। २. द. ब. समासमद्दिय। ३. ब. तस्सद्धं सयल-जुदागो। ४. द. ब. क. ज. ठ. सत्तपरिमाणो।

अर्थ :—लोकको चारसे गुणितकर उसमें सातका भाग देनेपर अधोलोकके घनफलका प्रमाण निकलता है और सम्पूर्ण लोकको दो से गुणितकर प्राप्त गुणनफलमें सातका भाग देनेपर अधोलोक सम्बन्धी आधे क्षेत्रका घनफल होता है ।।१६६।।

विशेषार्थ :—लोकका प्रमाण ३४३ घनराजू है, अतः ३४३×४=१३७२, १३७२÷७=१९६ घनराजू अधोलोकका घनफल है ।

३४३×२=६८६, ६८६÷७=९८ घनराजू अर्ध अधोलोकका घनफल है ।

अधोलोकमें त्रसनालीका घनफल

छेत्तूणं तस-णालिं अण्णत्थं ठाविदूण विदफलं ।
आणेज्ज तप्पमाणं उणवण्णेहिं विहत्त-लोअ-समं ।।१६७।।

| ≡ / ४९ |

अर्थ :—अधोलोकमेंसे त्रसनालीको छेदकर और उसे अन्यत्र रखकर उसका घनफल निकालना चाहिए । इस घनफलका प्रमाण, लोकके प्रमाणमें उनचासका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना होता है ।।१६७।।

विशेषार्थ :—अधोलोकमे त्रसनाली एक राजू चौड़ी, एक राजू मोटी और सात राजू ऊँची है, अतः १×१×७=७ घनराजू घनफल प्राप्त हुआ जो ३४३÷४९=७ घनराजूके बराबर है ।

त्रसनालीसे रहित और उससे सहित अधोलोकका घनफल

सगवीस-गुणिद-लोओ उणवण्ण-हिदो अ सेस-खिदि-संखा ।
तस-खित्ते सम्मिलिदे चउ-गुणिदो सग-हिदो लोओ ।।१६८।।

| ≡ / ४९ २७ | ≡ / ७ ४ |[1]

अर्थ :—लोकको सत्ताईससे गुणाकर उसमें उनचासका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना त्रसनालीको छोड़ शेष अधोलोकका घनफल समझना चाहिए और लोक प्रमाणको चारसे गुणाकर

१. द. ≡ / ४९ | ≡ / २७ ४ |

उसमें सातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना त्रसनालीसे युक्त पूर्ण अधोलोकका घनफल समझना चाहिए ।।१६८।।

विशेषार्थ :—३४३ × २७ ÷ ४९ = १८९ घनफल, त्रसनालीको छोड़कर शेष अधोलोकका कहा गया है और सम्पूर्ण अधोलोकका घनफल ३४३ × ४ ÷ ७ = १९६ घनराजू कहा गया है ।

ऊर्ध्वलोकके आकारको अधोलोक स्वरूप करनेकी प्रक्रिया एवं आकृति

मुरजायारं उड्ढं खेत्तं छेत्तूण मेलिदं सयलं ।
पुव्वावरेण जायदि वेत्तासण-सरिस-संठाणं[1] ।।१६९।।

अर्थ :—मृदंगके आकारवाला सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक है । उसे छेदकर एवं मिलाकर पूर्व-पश्चिमसे वेत्रासनके सदृश अधोलोकका आकार बन जाता है ।।१६९।।

विशेषार्थ :—अधोलोकका स्वाभाविक आकार वेत्रासन सदृश अर्थात् नीचे चौड़ा और ऊपर सँकरा है, किन्तु इस गाथामें मृदंगाकार ऊर्ध्वलोकको छेदकर इस क्रमसे मिलाना चाहिए कि वह भी अधोलोकके सदृश वेत्रासनाकार बन जावे । यथा—

१. द ब. ज. क. ठ. सठाणा ।
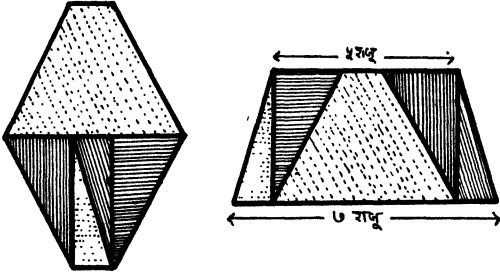
ऊर्ध्वलोकके व्यास एवं ऊँचाईका प्रमाण

सेढीए सत्त-भागो उवरिम-लोयस्स होदि मुह-वासो ।
पण-गुणिदो तब्भूमी उस्सेहो तस्स इगि-सेढी ॥१७०॥

। ७ । ७५ ।

अर्थ :—ऊर्ध्वलोकके मुखका व्यास जगच्छ्रेणीका सातवां भाग है और इससे पाँचगुणा (५ राजू) उसकी भूमिका व्यास तथा ऊँचाई एक जगच्छ्रेणी प्रमाण है ॥१७०॥

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोकके समीप एक राजू, मध्यमें ५ राजू और ऊपर एक राजू चौड़ा एवम् ७ राजू ऊँचा है ।

सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक और उसके अर्धभागका घनफल

तिय-गुणिदो सत्त-हिदो उवरिम-लोयस्स घणफलं लोओ ।
तस्सद्धे खेत्तफलं तिगुणो चोद्दस-हिदो लोओ ॥१७१॥

| $\frac{\equiv}{७}$ ३ | $\frac{\equiv}{१४}$ ३ |

अर्थ :—लोकको तीनसे गुणा करके उसमें सातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना ऊर्ध्वलोकका घनफल है और लोकको तीनसे गुणा करके उसमें चौदहका भाग देनेपर लब्धराशि प्रमाण ऊर्ध्वलोक सम्बन्धी आधे क्षेत्रका घनफल होता है ॥१७१॥

विशेषार्थ :—३४३ × ३ ÷ ७ = १४७ घन राजू ऊर्ध्वलोकका घनफल ।
३४३ × ३ ÷ १४ = ७३½ घन राजू अर्ध ऊर्ध्वलोकका घनफल ।

ऊर्ध्वलोकमें त्रसनालीका घनफल

छेत्तूणं [1]तस-णालिं [2]अण्णत्थं ठाविदूण [3]विदफलं ।
आणेज्ज तं पमाणं उणवण्णेहिं विभत्त-लोयसमं ॥१७२॥

| $\frac{\equiv}{४९}$ १ |

---

१. द. तस्सणालिं । २. द. ब. अण्णद्धं, ठ. अण्णाट्ठं । ३. द. क. ज. ठ. विदुफलं ।

अर्थ :—ऊर्ध्वलोकसे त्रसनालीको छेदकर और उसे अलग रखकर उसका घनफल निकाले। उस घनफलका प्रमाण ४६ से विभक्त लोकके बराबर होगा ॥१७२॥

३४३ − ४६ = ७ घनराजू त्रसनालीका घनफल।

त्रस नाली रहित एवम् सहित ऊर्ध्वलोकका घनफल

विसदि-गुरिणदो लोग्रो उणवण्ण-हिदो य सेस-खिदि-संखा।
तस-खेत्ते सम्मिलिदे लोग्रो ति-गुणो ग्र सत्त-हिदो ॥१७३॥

| $\frac{\equiv}{४६}$ २० | $\frac{\equiv}{७}$ ३ |

अर्थ :—लोकको बीससे गुणाकर उसमे ४६ का भाग देनेपर त्रसनालीको छोड़ बाकी ऊर्ध्वलोकका घनफल तथा लोकको तिगुणाकर उसमें सातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना त्रसनाली युक्त पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल है ॥१७३॥

विशेषार्थ :—३४३ × २० ÷ ४६ = १४० घनराजू त्रसनाली रहित ऊर्ध्वलोकका घनफल।
३४३ × ३ ÷ ७ = १४७ घनराजू त्रसनाली युक्त ऊर्ध्वलोकका घनफल।

सम्पूर्ण लोकका घनफल एवं लोकके विस्तार कथनकी प्रतिज्ञा

घरण-फलमुवरिम-हेट्ठिम-लोयाणं मेलिदम्मि सेढि-घणं।
[1]वित्थर-रुइ-बोहत्थं[2] वोच्छं णाणा-वियप्पेहिं ॥१७४॥

अर्थ :—ऊर्ध्व एवं अधोलोकके घनफलको मिला देनेपर वह श्रेणीके घनप्रमाण (लोक) होता है। अब विस्तारमें अनुराग रखनेवाले शिष्योंको समझानेके लिए अनेक विकल्पों द्वारा भी इसका कथन करता हूं ॥१७४॥

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोकका घनफल १४७ + १९६ अधोलोकका = ३४३ घनराजू सम्पूर्ण लोकका घनफल है। अथवा

७ × ७ × ७ = ३४३ घनराजू, श्रेणीका घनफल है।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. वित्थररुहि। २ क. ज. ठ. बोहित्थ।

अधोलोकके मुख एवम् भूमिका विस्तार तथा ऊँचाई

सेढीए सत्त-भागो हेट्ठिम-लोयस्स होदि मुह-वासो ।
भू-वित्थारो सेढी सेढि त्ति य [1]तस्स उच्छेहो ।।१७५।।

। ७ । — । — ।

अर्थ :—अधोलोकका मुख व्यास श्रेणीके सातवें भाग अर्थात् एक राजू और भूमि विस्तार जगच्छ्रेणी प्रमाण (७ राजू) है, तथा उसकी ऊँचाई भी जगच्छ्रेणी प्रमाण ही है ।।१७५।।

विशेषार्थ :—अधोलोकका मुख-व्यास एक राजू, भूमि सात राजू और ऊँचाई सात राजू प्रमाण है ।

प्रत्येक पृथिवीके चय निकालनेका विधान

भूमीअ मुहं सोहिय उच्छेह-हिदं मुहाउ भूमीदो ।
सव्वेसुं खेत्तेसुं पत्तेक्कं वड्ढि-हाणीओ ।।१७६।।

$\frac{६}{७}$

अर्थ :—भूमिके प्रमाणमेंसे मुखका प्रमाण घटाकर शेषमें ऊँचाईके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना सब भूमियोंमेंसे प्रत्येक पृथिवी क्षेत्रकी, मुखकी अपेक्षा वृद्धि और भूमिकी अपेक्षा हानिका प्रमाण निकलता है ।।१७६।।

विशेषार्थ :—आदि प्रमाणका नाम भूमि, अन्तप्रमाणका नाम मुख तथा क्रमसे घटनेका नाम हानिचय और क्रमसे वृद्धिका नाम वृद्धिचय है ।

मुख और भूमिमें जिसका प्रमाण अधिक हो उसमेंसे हीन प्रमाणको घटाकर ऊँचाईका भाग देनेसे भूमि और मुखकी हानिवृद्धिका चय प्राप्त होता है । यथा—भूमि ७ — १ मुख = ६ ÷ ७ ऊँचाई = $\frac{६}{७}$ वृद्धि और हानिके चयका प्रमाण हुआ ।

प्रत्येक पृथिवीके व्यासका प्रमाण निकालनेका विधान

तक्खय-वड्ढि-पमाणं णिय-णिय-उदया-हदं जइच्छाए ।
हीणब्भहिए संते [2] वासाणि हवंति भू-मुहाहिंतो ।।१७७।।

$\frac{१}{७}$ ६ । [3]

---

१. द. क. ज. ठ. सत्त । २. द. ब. सत्ते । ३. द. ब. $\frac{१}{७}$ ६ ।

अर्थ :—विवक्षित स्थानमे अपनी-अपनी ऊँचाईसे उस वृद्धि और क्षयके प्रमाणको [$\frac{६}{७}$] गुणा करके जो गुणनफल प्राप्त हो, उसको भूमिके प्रमाणमेंसे घटानेपर अथवा मुखके प्रमाणमें जोड़ देनेपर व्यासका प्रमाण निकलता है ।।१७७।।

विशेषार्थ :—कल्पना कीजिये कि यदि हमें भूमिकी अपेक्षा चतुर्थ स्थानके व्यासका प्रमाण निकालना है तो हानिका प्रमाण जो छह बटे सात [$\frac{६}{७}$] है, उसे उक्त स्थानकी ऊँचाई [३ रा०] से गुणाकर प्राप्त हुए गुणनफलको भूमिके प्रमाणमेंसे घटा देना चाहिए । इस विधिसे चतुर्थ स्थानका व्यास निकल आएगा । इसीप्रकार मुखकी अपेक्षा चतुर्थ स्थानके व्यासको निकालनेके लिए वृद्धिके प्रमाण [$\frac{६}{७}$] को उक्त स्थानकी ऊँचाई (४ राजू) से गुणा करके प्राप्त हुए गुणनफलको मुखमें जोड़ देनेपर विवक्षित स्थानके व्यासका प्रमाण निकल आएगा ।

उदाहरण—$\frac{६}{७}$ × ३ = $\frac{१८}{७}$, भूमि $\frac{४९}{७}$ — $\frac{१८}{७}$ = $\frac{३१}{७}$ भूमिकी अपेक्षा चतुर्थ स्थानका व्यास ;

$\frac{६}{७}$ × ४ = $\frac{२४}{७}$; $\frac{२४}{७}$ + मुख $\frac{७}{७}$ = $\frac{३१}{७}$ मुखकी अपेक्षा चतुर्थस्थानका व्यास ।

अधोलोकगत सातक्षेत्रोंका घनफल निकालने हेतु गुणाकार एवं आकृति

[1]उणवण्ण-भजिद-सेढी अट्ठेसु ठाणेसु[2] ठाविदूण कमे ।
[3]वासट्ठं [4]गुणआरा सत्तादि-छक्क-वड्ढि-गदा ।।१७८।।

$\frac{-}{४९}$७ । $\frac{-}{४९}$१३ । $\frac{-}{४९}$१९ । $\frac{-}{४९}$२५ । $\frac{-}{४९}$३१ । $\frac{-}{४९}$३७ । $\frac{-}{४९}$४३ । $\frac{-}{४९}$४९ ।

सत्त-घण-हरिद-लोयं सत्तेसु ठाणेसु ठाविदूण कमे ।
विदफले गुणयारा दस-पभवा छक्क-वड्ढि-गदा ।।१७९।।

$\frac{\equiv}{३४३}$ १० | $\frac{\equiv}{३४३}$ १६ | $\frac{\equiv}{३४३}$ २२ | $\frac{\equiv}{३४३}$ २८ | $\frac{\equiv}{३४३}$ ३४ | $\frac{\equiv}{३४३}$ ४० | $\frac{\equiv}{३४३}$ ४६ |

अर्थ :—श्रेणीमे उनचासका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे क्रमशः आठ जगह रखकर व्यासके निमित्त गुणा करनेके लिए आदिमें गुणाकार सात हैं । पुनः इसके आगे क्रमशः छह-छह गुणाकारकी वृद्धि होती गई है ।।१७८।।

श्रेणीप्रमाण राजू ७; यहाँ ऊपर से नीचे तक प्राप्त पृथिवियोके व्यास क्रमशः $\frac{-}{४९}$ × ७; $\frac{-}{४९}$ × १३; $\frac{-}{४९}$ × १९; $\frac{-}{४९}$ × २५; $\frac{-}{४९}$ × ३१; $\frac{-}{४९}$ × ३७; $\frac{-}{४९}$ × ४३; $\frac{-}{४९}$ × ४९ ।।१७८।।

---

१. ब. उणवणभज्जिद । २. द. ज. क. ठ. ठाणेण । ३. द. वासद्धं, म. वासत्तं । ४. ब. वासद्धं गुणआए ।

अर्थ :—सातके घन अर्थात् तीनसौ तयालीससे भाजित लोकको क्रमशः सात स्थानोंपर रखकर अधोलोकके सात क्षेत्रोंमेंसे प्रत्येक क्षेत्रके घनफलको निकालनेके लिए आदिमे गुणकार दस और फिर इसके आगे क्रमशः छह-छहकी वृद्धि होती गई है ।।१७९।।

लोकका प्रमाण ३४३; ३४३ ÷ (७)³ = १; तथा उपर्युक्त सात पृथिवियोंके घनफल क्रमशः १ × १०; १ × १६; १ × २२; १ × २८; १ × ३४, १ × ४० और १ × ४६ घन राजू प्राप्त होंगे ।।१७९।।

विशेषार्थ :—(दोनों गाथाओंका) अधोलोकमे सात पृथ्वियाँ हैं और एक भूमि क्षेत्र, लोककी अन्तिम सीमाका है, इसप्रकार आठों स्थानोंका व्यास प्राप्त करनेके लिए श्रेणी (७) में ४९ का भाग देकर अर्थात् $\frac{७}{४९}$ को क्रमशः ७, (७ + ६) = १३, (१३ + ६) = १९, (१९ + ६) = २५, (२५ + ६) = ३१, (३१ + ६) = ३७, (३७ + ६) = ४३ और (४३ + ६) = ४९ से गुणित करना चाहिए ।

उपर्युक्त आठ व्यासोंके मध्यमें ७ क्षेत्र प्राप्त होते है । इन क्षेत्रोंका घनफल निकालनेके लिए ३४३ से भाजित लोक अर्थात् ($\frac{३४३}{३४३}$) = १ को सात स्थानोंपर स्थापित कर क्रमशः १०, १६, २२, २८, ३४, ४० और ४६ से गुणा करना चाहिए यथा—

पृथ्वियोंके घनफल ·
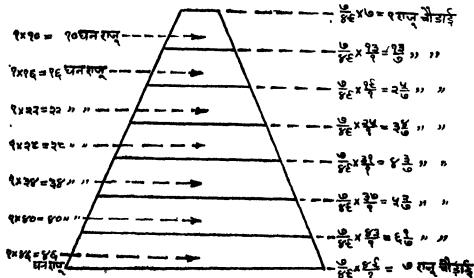
पूर्व-पश्चिमसे अधोलोककी ऊँचाई प्राप्त करनेका विधान एवं उसकी आकृति

उदओ हवेदि पुव्वावरेहिं लोयंत-उभय-पासेसु ।
ति-दु-इगि-रज्जु-पवेसे सेढी दु-ति-[1]भाग-तिद-सेढीओ ।।१८०।।

[2]
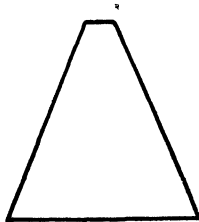
अर्थ :—पूर्व और पश्चिमसे लोकके अन्तके दोनों पार्श्वभागोंमें तीन, दो और एक राजू प्रवेश करनेपर ऊँचाई क्रमशः एक जगच्छ्रेणी, श्रेणीके तीन भागोंमेंसे दो-भाग और श्रेणीके तीन भागोंमेंसे एक भाग मात्र है ।।१८०।।

विशेषार्थ :—पूर्व दिशा सम्बन्धी लोकके अन्तिम छोरसे पश्चिमकी ओर ३ राजू जाकर यदि उस स्थानसे लोककी ऊँचाई मापी जाय तो ऊँचाइयाँ क्रमशः जगच्छ्रेणी प्रमाण अर्थात् ७ राजू, दो राजू जाकर मापी जाय तो $\frac{१४}{३}$ राजू और यदि एक राजू जाकर मापी जाय तो $\frac{७}{३}$ राजू प्राप्त होगी ।

पश्चिम दिशा सम्बन्धी लोकान्तसे पूर्वकी ओर चलने परभी लोककी यही ऊँचाइयाँ प्राप्त होंगी ।

शंका :—दो राजू आगे जाकर लोककी ऊँचाई $\frac{१४}{३}$ राजू प्राप्त होती है यह कैसे जाना जाय ?

१. [दुतिभागतिदियसेढीओ] । २. क. प्रति से ।

समाधान :—३ राजू दूरी पर जब ऊँचाई ७ राजू है, तब दो राजू दूरी पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस त्रैराशिक नियमसे जानी जाती है । यथा—
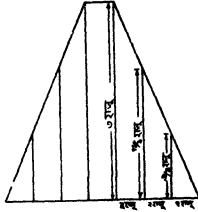
त्रिकोण एव लम्बे बाहु युक्त क्षेत्रके घनफल निकालनेकी विधि एवं उसका प्रमाण

भुज-पडिभुज-मिलिदद्धं विदफलं वासमुदय-वेद-हदं ।
[1]एक्कायवत्त-बाहू वासद्ध-हदा य वेद-हदा ॥१८१॥

अर्थ :—[१] भुजा और प्रतिभुजाको मिलाकर आधा करनेपर जो व्यास हो, उसे ऊँचाई और मोटाईसे गुणा करना चाहिए । ऐसा करनेसे त्रिकोण क्षेत्रका घनफल निकल आता है ।

[२] एक लम्बे बाहुको व्यासके आधेसे गुणाकर पुन· मोटाईसे गुणा करनेपर एक लम्बे बाहु-युक्त क्षेत्रके घनफलका प्रमाण आता है ॥१८१॥

विशेषार्थ :—गा० १८० के विशेषार्थके चित्रणमें "स" नामक विषम चतुर्भुजमें ७ राजू लम्बी रेखाका नाम भुजा और $\frac{१४}{३}$ राजू लम्बी रेखा का नाम प्रतिभुजा है । इन दोनोंका जोड़ $(\frac{७}{१}+\frac{१४}{३})=\frac{३५}{३}$ राजू है । इसको आधा करने पर $(\frac{३५}{३}\times\frac{१}{२})=\frac{३५}{६}$ राजू प्राप्त होते है । इनमे ऊँचाई और मोटाई का गुणा कर देने पर $(\frac{३५}{६}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१})=\frac{२४५}{६}$ अर्थात् ४०$\frac{५}{६}$ घन राजू "स" नामक विषम चतुर्भुजका घनफल है ।

इसीप्रकार "ब" चतुर्भुजका घनफल भी प्राप्त होगा । यथा : $\frac{१४}{३}$ राजू भुजा + $\frac{७}{३}$ राजू प्रतिभुजा = $\frac{२१}{३}$ राजू । तत्पश्चात् घनफल = $\frac{२१}{३}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{२}$ अर्थात् २४$\frac{१}{२}$ घनराजू "ब" नामक विषम चतुर्भुजका घनफल प्राप्त होता है । यही घनफल गाथा १८२ मे दर्शाया गया है ।

---

१. द. एक्कायजत्त. ज. क. ठ. एक्कायसत्त ।

"अ" क्षेत्र त्रिकोणाकार है अत: उसमें प्रतिभुजाका अभाव है। अ क्षेत्रकी भुजाकी लम्बाई $\frac{७}{३}$ राजू और क्षेत्रका व्यास एक राजू है। लम्बायमान बाहु ($\frac{७}{३}$) को व्यासके आधे ($\frac{१}{२}$) से और मोटाईसे गुणित कर देनेपर लम्बे बाहु युक्त त्रिकोण क्षेत्रका क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है। यथा : $\frac{७}{३} \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{४९}{६}$ अर्थात् $८\frac{१}{६}$ घनराजू 'अ' त्रिकोण क्षेत्रका घनफल प्राप्त हुआ। यही क्षेत्रफल गाथा १८२ मे दर्शाया गया है।

अभ्यन्तर क्षेत्रोंका घनफल

वावाल-हरिद-लोओ विंदफलं चोद्दसावहिद-लोओ ।
तब्भंतर-खेत्ताणं पण-हद-लोओ दुदाल-हिदो ॥१८२॥

$$\left| \frac{\equiv}{४२} \right| \frac{\equiv}{१४} \left| \frac{\equiv}{४२} ५ \right|$$

अर्थ :—लोकको बयालीससे भाजित करनेपर, चौदहसे भाजित करनेपर और पाँचसे गुणित एव बयालीससे भाजित करनेपर क्रमश: (अ ब स.) अभ्यन्तर क्षेत्रोंका घनफल निकलता है ॥१८२॥

विशेषार्थ :—$३४३ \div ४२ = ८\frac{१}{६}$ घनराजू 'अ' क्षेत्रका घनफल।
$३४३ \div १४ = २४\frac{१}{२}$ घनराजू 'ब' क्षेत्रका घनफल।
$३४३ \times ५ \div ४२ = ४०\frac{५}{६}$ घनराजू 'स' क्षेत्रका घनफल।

नोट :—इन तीनों घनफलोका चित्रण गाथा १८० के विशेषार्थमे और प्रक्रिया गा० १८१ के विशेषार्थमे दर्शा दी गई है।

सम्पूर्ण अधोलोकका घनफल

एदं खेत्त-पमाणं मेलिद सयलं पि दु-गुणिदं कादुं ।
मज्झिम-खेत्ते मिलिदे [1]चउ-गुणिदो सग-हिदो लोओ ॥१८३॥

$$\left| \frac{\equiv}{७} ४ \right|^{२}$$

---

१. द. ब. क. ज. ठ. चउगुणिदे सगहिदे। २. ब. $\frac{\equiv}{७} ४ \left| \dot{\equiv} \right| ७ |$

अर्थ :—उपर्युक्त घनफलोंको मिलाकर और सकलको दुगुनाकर इसमे मध्यम क्षेत्रके घनफलको जोड़ देनेपर चारसे गुणित और सातसे भाजित लोकके बराबर सम्पूर्ण अधोलोकके घनफलका प्रमाण निकल आता है ॥१८३॥

विशेषार्थ: —गा० १८० के चित्रणमें अ, ब और स नामके दो-दो क्षेत्र हैं, अत ८$\frac{1}{6}$+२४$\frac{1}{2}$+४०$\frac{5}{6}$=७३$\frac{1}{2}$ घनराजूमें २ का गुणा करनेसे (७३$\frac{1}{2}$×२)=१४७ घनराजू प्राप्त हुआ। इसमें मध्यक्षेत्र अर्थात् त्रसनालीका (७×१×७)=४९ घनराजू जोड़ देनेसे (१४७+४९)=१९६ घनराजू पूर्ण अधोलोकका घनफल प्राप्त हुआ, जो सदृष्टि रूप ३४३×४÷७ राजूके बराबर है।

लघु भुजाओंके विस्तारका प्रमाण निकालनेका विधान एव आकृति

रज्जुस्स सत्त-भागो तिय-छ-दु-पंचेक्क-चउ-सगेहिं हदा।
खुल्लय-भुजाण रुंदा वंसादी थंभ-बाहिरए ॥१८४॥

$\frac{1}{7}$३ । $\frac{1}{7}$६ । $\frac{1}{7}$२ । $\frac{1}{7}$५ । $\frac{1}{7}$१ । $\frac{1}{7}$४ । $\frac{1}{7}$७ ।

अर्थ :—राजूके सातवे भागको क्रमशः तीन, छह, दो, पाँच, एक, चार और सातसे गुणित-करनेपर वंशा आदिकमे स्तम्भोंके बाहर छोटी भुजाओंके विस्तारका प्रमाण निकलता है ॥१८४॥

विशेषार्थ :—सात राजू चौडे और सातराजू ऊँचे अधोलोकमे एक-एक राजूके अन्तरालसे जो ऊँचाई-रूप रेखाएँ डाली जाती हैं, उन्हें स्तम्भ कहते हैं। स्तम्भोंके बाहरवाली छोटी भुजाओंका प्रमाण प्राप्त करनेके लिए राजूके सातवें ($\frac{1}{7}$) भागको तीन, छह, दो, पाँच, एक, चार और सातसे गुणित करना चाहिए। इसकी सिद्धि इसप्रकार है :—

अधोलोक नीचे सात राजू और ऊपर एक राजू चौड़ा है। भूमि (७ राजू) में से मुख घटा देनेपर (७ — १=) ६ राजूकी वृद्धि प्राप्त होती है। जब ७ राजूपर ६ राजूकी वृद्धि होती है तब एक राजूपर $\frac{6}{7}$ राजूकी वृद्धि होगी। प्रथम पृथिवीकी चौड़ाई $\frac{7}{7}$ अर्थात् एक राजू और दूसरी पृथिवीकी ($\frac{7}{7}$+$\frac{6}{7}$=) $\frac{13}{7}$ राजू है। इसीप्रकार तृतीय आदि शेष पृथ्वियोंकी चौड़ाई क्रमश. $\frac{19}{7}$, $\frac{25}{7}$, $\frac{31}{7}$, $\frac{37}{7}$ और $\frac{43}{7}$ राजू है (यह चौड़ाई गा० १७८, १७९ के चित्रणमें दर्शाई गयी है), अधोलोककी भूमि अन्तमें $\frac{49}{7}$ अर्थात् सात राजू है। दूसरी और तीसरी पृथिवीके मुखोंमेंसे बीच (त्रसनाली) का एक-एक राजू कम कर देनेपर क्रमशः $\frac{6}{7}$ और $\frac{12}{7}$ राजू अवशेष रहता है, इसका आधा कर देनेपर प्रत्येक दिशामे $\frac{3}{7}$ और $\frac{6}{7}$ राजू बाहरका क्षेत्र रहता है। चौथी-पांचवीं पृथ्वियोंके मुखोंमेंसे बीचके तीन अर्थात् $\frac{21}{7}$ राजू घटा देनेपर शेष ($\frac{25}{7}$ — $\frac{21}{7}$)=$\frac{4}{7}$ और ($\frac{31}{7}$ — $\frac{21}{7}$)=$\frac{10}{7}$ राजू शेष रहता है,

इनका आधा करनेपर प्रत्येक दिशामें बाह्य छोटी भुजाका विस्तार क्रमशः $\frac{२}{७}$ और $\frac{५}{७}$ राजू रहता है। ६ ठी और ७ वीं पृथ्वियोंके मुखों तथा लोकके अन्तमेंसे पाँच-पाँच राजू निकाल देनेपर क्रमशः $(\frac{३७}{७} - \frac{३५}{७}) = \frac{२}{७}$, $(\frac{४३}{७} - \frac{३५}{७}) = \frac{८}{७}$ और $(\frac{४९}{७} - \frac{३५}{७}) = \frac{१४}{७}$ राजू अवशेष रहता है। इनमेंसे प्रत्येकका आधा करनेपर एक दिशामें बाह्य छोटी भुजाका विस्तार क्रमश $\frac{१}{७}$, $\frac{४}{७}$ और $\frac{७}{७}$ राजू प्राप्त होता है, इसीलिए इस गाथामें $\frac{१}{७}$ को तीन आदिसे गुणित करनेको कहा गया है। यथा :—
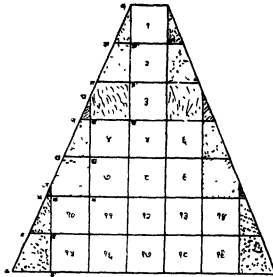
उपर्युक्त चित्रणमे :—ख खे $= \frac{३}{७}$
ग गे $= \frac{६}{७}$
च चे $= \frac{२}{७}$
छ छे $= \frac{५}{७}$
झ झे $= \frac{१}{७}$
ट टे $= \frac{४}{७}$
ठ ठे $= \frac{७}{७}$

लोयंते रज्जु-घणा पंच च्चिय अद्ध-भाग-संजुत्ता।
सत्तम-खिदि-पज्जंता अड्ढाइज्जा हवंति फुडं ॥१८५॥

| ≡ ·११ | ≡ ५ |
| ३४३। २ | ३४३। २ |

अर्थ :—लोकके अन्त तक अर्धभाग सहित पांच ($५\frac{१}{२}$) घनराजू और सातवीं पृथिवी तक ढाई घनराजू प्रमाण घनफल होता है ।।१८५।।

$$[(\frac{७}{७}+\frac{४}{७})\div२\times१\times७]=\frac{११}{२} \text{ घनराजू}; \; [(\frac{४}{७}+\frac{१}{७})\div२\times१\times७]=\frac{५}{२} \text{ घनराजू}।$$

विशेषार्थ :—गाथा १८४ के चित्रणमे ट ठ ठें टें क्षेत्रका घनफल निम्नलिखित प्रकारसे है :—

लोकके अन्तमें ठ ठें भुजाका प्रमाण $\frac{७}{७}$ राजू है और सप्तम पृथिवीपर ट टें भुजाका प्रमाण $\frac{४}{७}$ राजू है। यहाँ गा० १८१ के नियमानुसार भुजा ($\frac{७}{७}$) और प्रतिभुजा ($\frac{४}{७}$) का योग ($\frac{७}{७}+\frac{४}{७}$)=$\frac{११}{७}$ राजू होता है, इसका आधा ($\frac{११}{७}\times\frac{१}{२}$)=$\frac{११}{१४}$ हुआ। इसको एक राजू व्यास और सात राजू मोटाईसे गुणित करने पर ($\frac{११}{१४}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१}$)=$\frac{११}{२}$ अर्थात् $५\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है।

सप्तम पृथिवीपर झ ट टें झें क्षेत्रका घनफल भी इसी भाँति है—भुजा ट टें $\frac{४}{७}$ राजू है और प्रतिभुजा झ झें $\frac{१}{७}$ राजू है। इन दोनो भुजाओंका योग ($\frac{४}{७}+\frac{१}{७}$)=$\frac{५}{७}$ राजू हुआ। इसका अर्ध करनेपर ($\frac{५}{७}\times\frac{१}{२}$)=$\frac{५}{१४}$ राजू प्राप्त होता है। इसे एक राजू व्यास और ७ राजू मोटाईसे गुणित करनेपर ($\frac{५}{१४}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१}$)=$\frac{५}{२}$ अर्थात् $२\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है।

उभयेसिं परिमाणं बाहिम्मि अब्भंतरम्मि रज्जु-घणा ।
छट्ठक्खिदि-पेरंता तेरस दोरूव-परिहत्ता ।।१८६।।

$$\left| \frac{\equiv}{३४३} \; \frac{१३}{२} \right|$$

बाहिर-छब्भाएसु[1] अवणीदेसु हवेदि अवसेसं[2] ।
स-तिभाग-छक्क-मेत्तं तं चिय अब्भंतरं खेत्तं ।।१८७।।

$$\left| \frac{\equiv}{३४३} \; \frac{१}{६} \right| \left| \frac{\equiv}{३४३} \; \frac{३८}{६} \right|^{३}$$

अर्थ :—छठी पृथिवीतक बाह्य और अभ्यन्तर क्षेत्रोंका मिश्रघनफल दो से विभक्त तेरह घनराजू प्रमाण है ।।१८६।।

$$[(\frac{६}{७}+\frac{७}{७})\div२\times१\times७]=\frac{१३}{२} \text{ घनराजू}।$$

---

१. द ब. क. ज. ठ. बाहिरछब्भासेसुं । २. द. ब. अवसेसुं । ३. द. ब. $\frac{\equiv}{३४३} \left| \frac{६}{३} \right|$

अर्थ :—छठी पृथिवी तक जो बाह्य क्षेत्रका घनफल एक बटे छह ($\frac{१}{६}$) घनराजू होता है, उसे उपर्युक्त दोनों क्षेत्रोंके जोड़ रूप घनफल ($\frac{१३}{२}$ घनराजू) में से घटा देनेपर शेष एक त्रिभाग ($\frac{१}{३}$) सहित छह घनराजू प्रमाण अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल समझना चाहिए ।।१८७।।

($\frac{१}{७}$ ÷ २) × $\frac{१}{३}$ × ७ = $\frac{१}{६}$ घन रा० बाह्यक्षेत्रका घनफल ।

$\frac{१३}{२}$ — $\frac{१}{६}$ = $\frac{३८}{६}$ घनराजू अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल ।

विशेषार्थ :—छठी पृथिवी पर छ ज झ झें छें बाह्य और अभ्यन्तर क्षेत्रसे मिश्रित क्षेत्रका घनफल इसप्रकार है—

झ झे = $\frac{६}{७}$ और झे झें = $\frac{१}{७}$ है, अतः झ झें = ($\frac{६}{७}$ + $\frac{१}{७}$) = $\frac{७}{७}$ होता है । और छ छें = $\frac{६}{७}$ है, इन दोनों भुजाओंका योग ($\frac{७}{७}$ + $\frac{६}{७}$) = $\frac{१३}{७}$ राजू हुआ । इसमें पूर्वोक्त क्रिया करने पर ($\frac{१३}{७}$ × $\frac{१}{२}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{७}{७}$) = $\frac{१३}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है । इसमेंसे बाह्य त्रिकोण क्षेत्र ज झ झें का घनफल ($\frac{१}{७}$ × $\frac{१}{२}$ × $\frac{१}{३}$ ऊँ० × ७) = $\frac{१}{६}$ घनराजू घटा देनेपर छ ज झे झें छें अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल ($\frac{१३}{२}$ — $\frac{१}{६}$) = $\frac{३८}{६}$ अर्थात् ६$\frac{१}{३}$ घनराजू प्राप्त होता है ।

आहुट्ठं रज्जु-घणं धूम-पहाए समासमुद्दिट्ठं ।
पंकाए चरिमंते इगि-रज्जु-घणा ति-भागूणं ।।१८८।।

| ≡ $\frac{७}{२}$ | ≡ $\frac{२}{३}$ |
| ३४३ । | ३४३ । |

रज्जु-घणा सत्तच्चिय छब्भागूणा चउत्थ-पुढवीए ।
अब्भंतरम्मि भागे खेत्त-फलस्स-प्पमाणमिदं ।।१८९।।

| ≡ $\frac{४१}{६}$ |
| ३४३ । |

अर्थ :—धूमप्रभा पर्यन्त घनफलका जोड़ साढ़े-तीन घनराजू बतलाया गया है, और पंक-प्रभाके अन्तिम भागतक एक त्रिभाग ($\frac{१}{३}$) कम एक घनराजू प्रमाण घनफल है ।।१८८।।

[($\frac{५}{७}$ + $\frac{२}{७}$) ÷ २ × १ × ७] = $\frac{७}{२}$ घन रा० ; ($\frac{२}{७}$ ÷ २) × $\frac{१}{३}$ × ७ = $\frac{१}{३}$ घ० रा० बाह्यक्षेत्रका घनफल ।

अर्थ :—चौथी पृथिवी पर्यन्त अभ्यन्तर भागमें घनफलका प्रमाण एक बटे छह ($\frac{१}{६}$) कम सात घनराजू है ।।१८९।।

[(४/७ + ११/७) ÷ २ × १ × ७] — २/३ = ४१/६ घनराजू अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल ।

विशेषार्थ :—पाँचवी पृथिवी पर च छ छें चें क्षेत्रका घनफल इसप्रकार है—भुजा छ छें ५/७ और प्रतिभुजा च चें २/७ है, दोनोंका योग (५/७ + २/७) = ७/७ है। इसमें पूर्वोक्त क्रिया करनेपर (७/७ × १/२ × १ × ७) = ७/२ अर्थात् ३½ घनराजू घनफल पंचम पृथिवीका प्राप्त होता है।

चौथी पृथिवी पर ग घ च चें गें बाह्य और अभ्यन्तर क्षेत्रसे मिश्रित क्षेत्रका (बाह्यक्षेत्रका एवं अभ्यन्तर क्षेत्रका भिन्न-भिन्न) घनफल इसप्रकार है—च चें = २/७ और चें चें = ९/७ है, अतः (९/७ + २/७) = ११/७ भुजा है तथा ग गें = ४/७ प्रतिभुजा है। ११/७ + ४/७ = १५/७ राजू प्राप्त हुआ। १५/७ × १/२ × १ × ७ = १५/२ घनराजू बाह्याभ्यन्तर दोनोंका मिश्रघनफल होता है। इसमेंसे बाह्य त्रिकोण क्षेत्रका घनफल (२/७ × १/२ × २/३ ऊँ० × ७) = २/३ घनराजू घटा देनेपर (१५/२ — २/३) = ४१/६ घनराजू ग घ चें चें गें अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल प्राप्त होता है।

रज्जु-घणद्धं णव-हद-तदिय[1]-खिदीए दुइज्ज-भूमीए ।
होदि दिवड्ढा एदो मेलिय दुगुणं घणो कुज्जा ॥१९०॥

| ≡ ३४३ । ९/२ | ≡ ३४३ | ३/२ |

मेलिय दुगुणिदे ≡ ३४३ ६३ |

[2]तेत्तीसब्भहिय-सयं सयलं खेत्ताण सव्व-रज्जुघणा ।
ते ते सव्वे मिलिदा दोण्णि सया होंति चउ-हीणा ॥१९१॥

| ≡ ३४३ १३३ | मिलिदे ≡ ३४३ १९६ |

अर्थ :—अर्ध (१/२) घनराजूको नौ से गुणा करनेपर जो गुणनफल प्राप्त हो, उतना तीसरी पृथिवी-पर्यन्त क्षेत्रके घनफलका प्रमाण है और दूसरी पृथिवी पर्यन्त क्षेत्रका घनफल डेढ घनराजू प्रमाण है। इन सब घनफलोंकी जोडकर दोनों तरफका घनफल लानेके लिए उसे दुगुना करना चाहिए ॥१९०॥

[(१/७ + ३/७) ÷ २ × १ × ७] = १/२ घ० रा०; ३/७ ÷ २ × १ × ७ = ३/२ घनराजू ।

योग— ११/२ + ५/२ + १/६ + ३८/६ + ९/२ + २/३ + ४१/६ + ७/२ + ३/२ = १८९/६

१८९/६ × २/१ = ३७८/६ = ६३ घनराजू ।

---

१. द. ब. तदीय। २. ब. तेत्तोससब्भहियछेत्ताण। द. ज क. ठ. तेत्तीसब्भहिय सयं सयछेत्ताण।

अर्थ :—उपर्युक्त घनफलको दुगुना करनेपर दोनों (पूर्व-पश्चिम) तरफका कुल घनफल त्रेसठ घनराजू प्रमाण होता है। इसमें सब अर्थात् पूर्ण एक राजू प्रमाण विस्तार वाले समस्त (१९) क्षेत्रोंका घनफल जो एक सौ तैंतीस घनराजू है, उसे जोड़ देनेपर चार कम दो सौ अर्थात् एकसौ छयानवें घनराजू प्रमाण कुल अधोलोकका घनफल होता है ॥१९१॥

६३ + १३३ = १९६ घनराजू।

विशेषार्थ :—तीसरी पृथिवीपर ख ग गें खें क्षेत्रका घनफल—भुजा ग गें = $\frac{१}{७}+\frac{३}{७}$, ख खें प्रतिभुजा = $\frac{१}{७}$ तथा घनफल = $\frac{१}{७}\times\frac{१}{२}\times १\times ७=\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है।

दूसरी पृथिवीपर क ख खें एक त्रिकोण है। इसमे प्रतिभुजाका अभाव है। भुजा ख खें = $\frac{३}{७}$ तथा घनफल = $\frac{३}{७}\times\frac{१}{२}\times १\times ७=\frac{३}{२}$ अर्थात् $१\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है।

इन सब घनफलोको जोड़कर दोनों ओरका घनफल प्राप्त करनेके लिए उसे दुगुना करना चाहिए। यथा—

$$\frac{११}{२}+\frac{५}{२}+\frac{१}{६}+\frac{३८}{६}+\frac{७}{२}+\frac{२}{३}+\frac{४१}{६}+\frac{९}{२}+\frac{३}{२}$$

$$=\frac{३३+१५+१+३८+२१+४+४१+२७+९}{६}=\frac{१८९}{६}\times\frac{२}{१}=\frac{३७८}{६}=६३ \text{ घनराजू}$$

अर्थात् दोनों पार्श्वभागोमें बनने वाले सम्पूर्ण विषम चतुर्भुजों और त्रिकोणों का घनफल ६३ घनराजू प्रमाण है। इसमें एक राजू ऊँचे, एक राजू चौडे और सात राजू मोटे १९ क्षेत्रोंका घनफल = (१९ × १ × १ × ७) = १३३ घनराजू और जोड़ देनेपर अधोलोकका सम्पूर्ण घनफल (१३३ + ६३) = १९६ घनराजू प्राप्त हो जाता है।

ऊर्ध्वलोकके मुख तथा भूमिका विस्तार एवं ऊँचाई

एक्केक्क-रज्जु-मेत्ता उवरिम-लोयस्स होंति मुह-वासा।
हेट्ठोवरि भू-वासा पण रज्जू सेढि-अद्धमुच्छेहो ॥१९२॥

७ । ७ । भू । ७५ । २ । २ ।

अर्थ :—ऊर्ध्वलोकके अधो और ऊर्ध्व मुखका विस्तार एक-एक राजू, भूमिका विस्तार पाँच राजू और ऊँचाई (मुखसे भूमि तक) जगच्छ्रेणीके अर्धभाग अर्थात् साढे तीन राजू-मात्र है ॥१९२॥

ऊर्ध्वलोकका ऊपर एवं नीचे मुख एक राजू, भूमि पाँच राजू और उत्सेध-भूमिसे नीचे $३\frac{१}{२}$ राजू तथा ऊपर भी $३\frac{१}{२}$ राजू है।

ऊर्ध्वलोकमे दश स्थानोके व्यासार्थ चय एवं गुणकारोंका प्रमाण

भूमीए मुहं सोहिय उच्छेह-हिदं मुहादु भूमीदो ।
खय-वड्ढीण पमाणं अड-रूवं सत्त-पविहत्तं[1] ।।१९३।।

$\frac{८}{७}|$

अर्थ :—भूमिमेसे मुखके प्रमाणको घटाकर शेषमे ऊँचाईका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना प्रत्येक राजूपर मुखकी अपेक्षा वृद्धि और भूमिकी अपेक्षा हानिका प्रमाण होता है। वह प्रमाण सातसे विभक्त आठ अक मात्र अर्थात् आठ बटे सात राजू होता है ।।१९३।।

ऊर्ध्वलोकमें भूमि ५ राजू, मुख एक राजू और ऊँचाई $३\frac{१}{२}$ अर्थात् $\frac{७}{२}$ राजू है।

$५ - १ = ४$; $४ \div \frac{७}{२} = \frac{८}{७}$ राजू प्रत्येक राजू पर वृद्धि और हानिका प्रमाण।

व्यासका प्रमाण निकालनेका विधान

तक्खय-वड्ढि-पमाणं णिय-णिय-उदया-हदं जइच्छाए ।
हीणब्भहिए संते वासाणि हवंति भू-मुहाहिंतो ।।१९४।।

अर्थ :—उस क्षय और वृद्धिके प्रमाणको इच्छानुसार अपनी-अपनी ऊँचाईसे गुणा करनेपर जो कुछ गुणनफल प्राप्त हो उसे भूमिमेंसे घटा देने अथवा मुखमे जोड देनेपर विवक्षित स्थानमें व्यासका प्रमाण निकलता है ।।१९४।।

उदाहरण .—सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पका विस्तार—

ऊँचाई ३ राजू, चय $\frac{८}{७}$ राजू और मुख १ राजू है। $\frac{३}{१} \times \frac{८}{७} = \frac{२४}{७}$, तथा $\frac{२४}{७} + १ = \frac{३१}{७}$ अर्थात् $४\frac{३}{७}$ राजू दूसरे युगलका व्यास प्राप्त हुआ।

भूमि अपेक्षा—दूसरे कल्पकी नीचाई $\frac{१}{२}$ राजू, भूमि ५ और चय $\frac{८}{७}$ राजू है $\frac{१}{२} \times \frac{८}{७} = \frac{८}{१४}$। $५ - \frac{८}{१४} = \frac{६२}{१४}$ या $\frac{३१}{७}$ अर्थात् $४\frac{३}{७}$ राजू विस्तार प्राप्त हुआ।

---

१ ब. सत्तपहिहृत्थ, द. ज. क. ठ. सत्तपविहृत्थ।

ऊर्ध्वलोकके व्यासकी वृद्धि-हानिका प्रमाण

अट्ठ-गुणिवेग-सेढी उणवण्णहिदम्मि होदि जं लद्धं ।
स च्चेय[1] वड्ढि-हाणी उवरिम-लोयस्स वासाणं ।।१९५।।

४९ ८

अर्थ :—श्रेणी (७ राजू) को आठसे गुणितकर उसमे ४९ का भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना ऊर्ध्वलोकके व्यासकी वृद्धि और हानिका प्रमाण है ।।१९५।।

यथा—श्रेणी = ७ × ८ = ५६ । ५६ ÷ ४९ = $\frac{८}{७}$ राजू क्षय-वृद्धिका प्रमाण ।

ऊर्ध्वलोकके दश क्षेत्रोके अधोभागका विस्तार एव उसकी आकृति

रज्जूए सत्त-भागं दससु ट्ठाणेसु ठाविदूण तदो ।
सत्तोणवीस - इगितीस - पंचतीसेक्कतीसेहिं ।।१९६।।

[2]सत्ताहियवीसेहिं तेवीसेहिं तहोणवीसेण ।
पण्णरस वि सत्तेहिं तम्मि हदे उवरि वासाणि ।।१९७।।

। ४९ ७ । ४९ १९ । ४९ ३१ । ४९ ३५ । ४९ ३१ । ४९ २७ । ४९ २३ । ४९ १९ । ४९ १५ । ४९ ७ ।

अर्थ :—राजूके सातवे भागको क्रमश. दस स्थानोंमें रखकर उसको सात, उन्नीस, इकतीस, पैंतीस, इकतीस, सत्ताईस, तेईस, उन्नीस, पन्द्रह और सात से गुणा करनेपर ऊपरके क्षेत्रोंका व्यास निकलता है ।।१९६-१९७।।

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोकके प्रारम्भसे लोक पर्यन्त क्षेत्रके दस भाग होते हैं । उन उपरिम दस क्षेत्रोके अधोभागमें विस्तारका क्रम इसप्रकार है—

ब्रह्मलोक के समीप भूमि ५ राजू, मुख एक राजू और ऊँचाई ३$\frac{१}{२}$ राजू है तथा प्रथम युगलकी ऊँचाई १$\frac{१}{२}$ राजू है । भूमि ५ — १ मुख = ४ राजू अवशेष रहे । जबकि $\frac{७}{२}$ राजू ऊँचाई पर ४ राजूकी वृद्धि होती है, तब १$\frac{१}{२}$ राजू पर ($\frac{४}{१}\times\frac{२}{७}\times\frac{३}{२}$) = $\frac{१२}{७}$ राजू वृद्धि प्राप्त हुई । प्रारम्भमे ऊर्ध्वलोकका विस्तार एक राजू है, उसमें $\frac{१२}{७}$ राजू वृद्धि जोड़नेसे प्रथम युगलके समीपका व्यास ($\frac{७}{७}+\frac{१२}{७}$) = $\frac{१९}{७}$ राजू प्राप्त होता है । प्रथम युगलसे दूसरा युगल भी १$\frac{१}{२}$ राजू ऊँचा है अतः ($\frac{१९}{७}+\frac{१२}{७}$) = $\frac{३१}{७}$ राजू व्यास सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गके समीप है । यहाँसे ब्रह्मलोक $\frac{१}{२}$ राजू ऊँचा

---

१. ब. क. सब्वे य । २. द. क. ज. ठ सत्ताविय; ब. सत्तादिविसेहि ।

है। जबकि $\frac{७}{२}$ राजूकी ऊँचाईपर ४ राजूकी वृद्धि होती है, तब $\frac{१}{२}$ राजू पर ($\frac{४}{१}\times\frac{२}{७}\times\frac{१}{२}$) = $\frac{४}{७}$ की वृद्धि होगी। इसे $\frac{३१}{७}$ में जोड़ देनेपर ($\frac{३१}{७}+\frac{४}{७}$) = $\frac{३५}{७}$ राजू या ५ राजू व्यास तीसरे युगलके समीप प्राप्त होता है।

इसके आगे प्रत्येक युगल $\frac{१}{२}$ राजूकी ऊँचाई पर है, अतः हानिका प्रमाण भी $\frac{४}{७}$ राजू ही होगा। $\frac{३५}{७}-\frac{४}{७}=\frac{३१}{७}$ राजू व्यास लान्तव-कापिष्टके समीप $\frac{३१}{७}-\frac{४}{७}=\frac{२७}{७}$ राजू व्यास शुक्र-महाशुक्रके समीप, $\frac{२७}{७}-\frac{४}{७}=\frac{२३}{७}$ राजू व्यास सतार-सहस्रारके समीप, $\frac{२३}{७}-\frac{४}{७}=\frac{१९}{७}$ राजू व्यास आनत-प्राणतके समीप और $\frac{१९}{७}-\frac{४}{७}=\frac{१५}{७}$ राजू व्यास आरण-अच्युत युगलके समीप प्राप्त होता है।

यहाँसे लोकके अन्त तककी ऊँचाई एक राजू है। जब $\frac{७}{२}$ राजूकी ऊँचाई पर ४ राजूकी हानि है, तब एक राजूकी ऊँचाईपर ($\frac{४}{१}\times\frac{२}{७}\times\frac{१}{१}$) = $\frac{८}{७}$ राजूकी हानि प्राप्त हुई। इसे $\frac{१५}{७}$ राजूमेंसे घटाने पर ($\frac{१५}{७}-\frac{८}{७}$) = $\frac{७}{७}$ अर्थात् लोकके अन्तभागका व्यास एक राजू प्राप्त होता है। यथा—
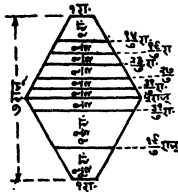
ऊर्ध्वलोकके दशों क्षेत्रोंके घनफलका प्रमाण

उणदालं पण्णत्तरि तेत्तीसं तेत्तियं च उणतीसं ।
[1]पणवीसमेक्कवीसं [2]सत्तरसं तह य बावीसं ।।१९८।।

एदाणि य पत्तेक्कं घण-रज्जूए दलेण गुणिदाणि ।
मेरु-तलादो उवरिं उवरिं जायंति विंदफला ।।१९९।।

---

१. ब. पणुवीस । २. द. ज. ठ. सत्तारस ।

≡/३४३ । ३९/२ | ≡/३४३ । ७५/२ | ≡/३४३ । ३३/२ | ≡/३४३ । ३३/२ | ≡/३४३ । २९/२ | ≡/३४३ । २५/२ | ≡/३४३ । २१/२ |

≡/३४३ । १७/२ | ≡/३४३ । २२/२ |

अर्थ :—उनतालीस, पचहत्तर, तेतीस, तेतीस, उनतीस, पच्चीस, इक्कीस, सत्तरह और बाईस, इनमेंसे प्रत्येकको घनराजूके अर्धभागसे गुणा करनेपर मेरु-तलसे ऊपर-ऊपर क्रमशः घनफलका प्रमाण आता है ।।१९८-१९९।।

उदाहरण—'मुहभूमिजोगदले' इत्यादि नियमके अनुसार सौधर्मसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त क्षेत्रोंका घनफल इसप्रकार है—

क्र.	युगलों के नाम	भूमि +	मुख =	योग ×	अर्धभाग =	फल ×	ऊँचाई ×	मोटाई =	घनफल
१	सौधर्मैशान	१९/७ +	७/७ =	२६/७ ×	१/२ =	२६/१४ ×	३/२ ×	७ =	३९/२ या १९½ घ० रा०
२	सानत्कुमार-माहेन्द्र	३१/७ +	१९/७ =	५०/७ ×	१/२ =	५०/१४ ×	३/२ ×	७ =	७५/२ या ३७½ ,, ,,
३	ब्रह्मब्रह्मोत्तर	३५/७ +	३१/७ =	६६/७ ×	१/२ =	६६/१४ ×	१/२ ×	७ =	३३/२ या १६½ ,, ,,
४	लांतव-का०	३५/७ +	३१/७ =	६६/७ ×	१/२ =	६६/१४ ×	१/२ ×	७ =	३३/२ या १६½ ,, ,,
५	शुक्र-महाशुक्र	३१/७ +	२७/७ =	५८/७ ×	१/२ =	५८/१४ ×	१/२ ×	७ =	२९/२ या १४½ ,, ,,
६	सतार-सह०	२७/७ +	२३/७ =	५०/७ ×	१/२ =	५०/१४ ×	१/२ ×	७ =	२५/२ या १२½ ,, ,,
७	आनत-प्रा०	२३/७ +	१९/७ =	४२/७ ×	१/२ =	४२/१४ ×	१/२ ×	७ =	२१/२ या १०½ ,, ,,
८	आरण-अच्युत	१९/७ +	१५/७ =	३४/७ ×	१/२ =	३४/१४ ×	१/२ ×	७ =	१७/२ या ८½ ,, ,,
९	उपरिम क्षेत्र	१५/७ +	७/७ =	२२/७ ×	१/२ =	२२/१४ ×	१ ×	७ =	२२/२ या ११ ,, ,,

घनफल योग = ३९/२ + ७५/२ + ३३/२ + ३३/२ + २९/२ + २५/२ + २१/२ + १७/२ + २२/२ = १४७ घनराजू सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल प्राप्त हुआ ।

स्तम्भोंकी ऊँचाई एवं उसकी आकृति

थंभुच्छेहा[1] पुव्वावरभाए बम्हकप्प-पणिधीसु ।
एक्क-दु-रज्जु-पवेसे हेट्ठोवरि [2]चउ-दु-गहिदे सेढी ।।२००।।

$\frac{7}{4}$ । $\frac{7}{2}$ ।

अर्थ :—ब्रह्मस्वर्गके समीप पूर्व-पश्चिम भागमें एक और दो राजू प्रवेश करनेपर क्रमशः नीचे-ऊपर चार और दो से भाजित जगच्छ्रेणी प्रमाण स्तम्भोंकी ऊँचाई है ।।२००।।

स्तम्भोत्सेध :—१ राजूके प्रवेश में $\frac{7}{4}$ राजू; दो राजूके प्रवेशमें $\frac{7}{2}$ राजू ।

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोकमें ब्रह्मस्वर्गके समीप पूर्व दिशाके लोकान्तभागसे पश्चिमकी ओर एक राजू आगे जाकर लम्बायमान (अ ब) रेखा खींचने पर उसकी ऊँचाई $\frac{7}{4}$ राजू होती है । इसी प्रकार नीचेकी ओर भी (अ स) रेखा की लम्बाई $\frac{7}{4}$ राजू प्रमाण है । उसी पूर्व दिशासे दो राजू आगे जाकर ऊपर-नीचे क ख और क ग रेखाओंकी ऊँचाई $\frac{7}{2}$ राजू प्राप्त होती है । यथा—

१. द. थंभुच्छेहो । २. द. चउदगेहि, ज. ठ. चउदगहि, ब. क. चउदुगहिदे ।
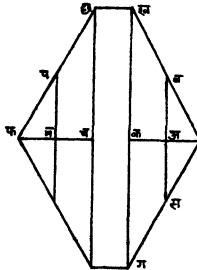
स्तम्भ-अन्तरित क्षेत्रोंका घनफल

छप्पण-हरिदो[1] लोओ [2]ठाणेसु दोसु [3]ठविय गुणिदव्वो ।
एक्क-तिएहिं एवं थंभंतरिदाण[4] विंदफलं ॥२०१॥

एवं विय[5],

विंदफलं संमेलिय चउ-गुणिदं होदि तस्स कादूण ।
मज्झिम-खेत्ते मिलिदे तिय-गुणिदो सग-हिदो लोओ ॥२०२॥

| ≡ १ / ५६ | ≡ ३ / ५६ | ≡ ३ / ७ |[6]

अर्थ :—छप्पनसे विभाजित लोक दो जगह रखकर उसे क्रमशः एक और तीनसे गुणा करनेपर स्तम्भ-अन्तरित दो क्षेत्रोंका घनफल प्राप्त होता है ॥२०१॥

इस घनफल को मिलाकर और उसको चारसे गुणाकर उसमें मध्यक्षेत्र के घनफल को मिला देने पर पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल होता है । यह घनफल तीनसे गुणित और सातसे भाजित लोकके प्रमाण है ।

$३४३ \div ५६ \times १ = ६\frac{१}{८}$; $३४३ \div ५६ \times ३ = १८\frac{३}{८}$; $३४३ \times ३ \div ७ = १४७$ घनराजू घनफल ।

विशेषार्थ :—गाथा २०० से सम्बन्धित चित्रणमें स्तम्भोंसे अन्तरित एक पार्श्वभागमें ऊपरकी ओर सर्वप्रथम प फ और म से वेष्टित त्रिकोण क्षेत्रका घनफल इसप्रकार है—

उपर्युक्त त्रिकोणमें फ म भुजा एक राजू है । इसमें प्रतिभुजा का अभाव है । इस क्षेत्रकी ऊँचाई $\frac{७}{२}$ राजू है, अतः $(१ \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{२}) = \frac{४९}{८}$ अर्थात् $६\frac{१}{८}$ घनराजू प्रथम क्षेत्रका घनफल हुआ ।

उसी पार्श्वभागमें प म च छ जो विषम-चतुर्भुज है, उसकी छ च भुजा $\frac{७}{४}$ और प म प्रतिभुजा $\frac{७}{२}$ है । $\frac{७}{४} + \frac{७}{२} = \frac{२१}{४}$ । $\frac{२१}{४} \times \frac{१}{२} \times \frac{२}{१} \times \frac{७}{२} = \frac{१४७}{८}$ अर्थात् $१८\frac{३}{८}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है । इन दोनों घनफलोंको मिलाकर योगफलको ४ से गुणित कर देना चाहिए क्योंकि ऊर्ध्वलोकके दोनों

---

१. क. ब. हरिदलोउ । ज व ठ. हरिदलोओ । २. द. ठ. ज. बाणेसु । ३. द. ब. क. ज. रविय । ४. क. पदरथं भतरिदाण । ५. द. ब. एदव्विय । ६. क. ६ । $\frac{१}{८}$ । ≡ ३ । द. ज. ठ. ≡ ३ ।

पार्श्वभागोंमें इसप्रकारके चार त्रिभुज और चार ही चतुर्भुज हैं। इस गुणनफलमें त्रसनालीका (१×७×७)=४९ घनराजू घनफल और मिला देनेपर सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल प्राप्त हो जाता है। यथा—$\frac{४९}{८}+\frac{१४७}{८}=\frac{१९६}{८}\times४=९८$ घनराजू आठ क्षेत्रोंका घनफल+४९ घनराजू त्रसनालीका घनफल =१४७ घनराजू सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल प्राप्त होता है।

यह घनफल तीनसे गुणित और सातसे भाजित लोकप्रमाण मात्र है अर्थात् $\frac{३४३\times३}{७}=१४७$ घनराजू प्रमाण है।

ऊर्ध्वलोकमें आठ क्षुद्र-भुजाओंका विस्तार एवं आकृति

सोहम्मीसाणोवरि छ[1]च्चेय रज्जूउ सत्त-पविभत्ता।
खुल्लय-भुजस्स रुंदं इगिपासे होदि लोयस्स ॥२०३॥

४९ ६।

अर्थ :—सौधर्म और ईशान स्वर्गके ऊपर लोकके एक पार्श्वभागमे छोटी भुजाका विस्तार सातसे विभक्त छह ($\frac{६}{७}$) राजू प्रमाण है ॥२०३॥

माहिंद-उवरिमंते[2] रज्जूओपंच होंति सत्त-हिदा।
[3]उणवण्ण-हिदा सेढी सत्त-गुणा बम्ह-परिणधीए ॥२०४॥

। ४९ ५। ४९ ७।

अर्थ :—माहेन्द्रस्वर्गके ऊपर अन्तमे सातसे भाजित पाँच राजू और ब्रह्मस्वर्गके पास उनंचाससे भाजित और सातसे गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण छोटी भुजाका विस्तार है ॥२०४॥

माहेन्द्र कल्प $\frac{५}{७}$ राजू; ब्रह्मकल्प ज० श्रे०=७ अर्थात् $\frac{७\times७}{४९}=\frac{४९}{४९}=१$ राजू।

कापिट्ठ-उवरिमंते रज्जूओ पंच होंति सत्त-हिदा।
सुक्कस्स उवरिमंते सत्त-हिदा ति-गुणिदो रज्जू ॥२०५॥

। ४९ ५। ४९ ३।

अर्थ :—कापिष्ठ स्वर्गके ऊपर अन्तमें सातसे भाजित पाँच राजू, और शुक्रके ऊपर अन्तमें सातसे भाजित और तीनसे गुणित राजू प्रमाण छोटी-भुजाका विस्तार है ॥२०५॥ का० $\frac{५}{७}$ रा०; शु० $\frac{३}{७}$ रा०।

---

१. द. छच्चेय रज्जूओ,। २. द. ब. क. ज. ठ. मेत्त। ३ द ज. उणवण्णहिदा रज्जू।

[1]सहसार-उवरिमंते सग-हिद-रज्जू य खुल्ल-भुजरुंदं ।
पाणद-उवरिम-चरिमे छ रज्जूओ हवंति सत्त-हिदा ॥२०६॥

। ४ह १ । ४ह ६ ।[2]

अर्थ :—सहस्रारके ऊपर अन्तमें सातसे भाजित एक राजू प्रमाण और प्राणतके ऊपर अन्तमें सातसे भाजित छह राजू प्रमाण छोटी-भुजाका विस्तार है ॥२०६॥ सह० $\frac{1}{7}$ राजू; प्रा० $\frac{6}{7}$ राजू ।

पणिधीसु आरणच्चुद-कप्पाणं चरिम-इंदय-धयाणं ।
खुल्लय-भुजस्स रुंदं चउ रज्जूओ हवंति सत्त-हिदा ॥२०७॥

४ह ४ ।

अर्थ :—आरण और अच्युत स्वर्गके पास अन्तिम इन्द्रक विमानके ध्वज-दण्डके समीप छोटी-भुजाका विस्तार सातसे भाजित चार राजू प्रमाण है ॥२०७॥ आरण-अच्युत $\frac{4}{7}$ राजू ।

विशेषार्थ :—गाथा २०३ से २०७ तक का विषय निम्नांकित चित्रके आधार पर समझा जा सकता है :—

---

१. ज. ठ. सदरस्स । २. द ४ह । ७ $\frac{1}{4}$ ।
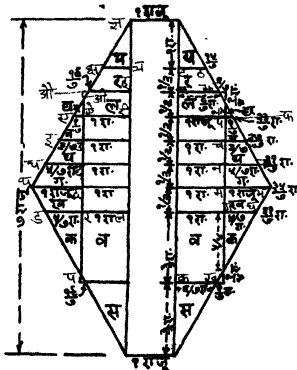
सौधर्मैशान स्वर्गके ऊपर लोकके एक पार्श्वभागमें क ख नामक छोटी भुजाका विस्तार $\frac{६}{७}$ राजू है। माहेन्द्र स्वर्गके ऊपर अन्तमें ग घ भुजाका विस्तार $\frac{५}{७}$ राजू, ब्रह्मस्वर्गके पास म भ भुजाका विस्तार एक राजू, कापिष्ट स्वर्गके पास न त भुजाका विस्तार $\frac{५}{७}$ राजू, शुक्रके ऊपर अन्तमें च छ भुजाका विस्तार $\frac{३}{७}$ राजू, सहस्रारके ऊपर अन्तमें प फ छोटी-भुजाका विस्तार $\frac{१}{७}$ राजू, प्राणतके ऊपर अन्तमें ज झ भुजाका विस्तार $\frac{१}{७}$ राजू और आरण-अच्युत स्वर्गके पास अन्तिम इन्द्रक विमानके ध्वजदण्डके समीप ट ठ छोटी-भुजाका विस्तार $\frac{४}{७}$ राजू प्रमाण है।

ऊर्ध्वलोकके ग्यारह त्रिभुज एवं चतुर्भुज क्षेत्रोंका घनफल

सोहम्मे वलजुत्ता घणरज्जूओ हवंति चत्तारि ।
अट्ठजुदाओ दि तेरस सणक्कुमारम्मि रज्जूओ ॥२०८॥
अट्ठंसेण जुदाओ घणरज्जूओ हवंति तिण्णि वहि ।
तं मिस्स सुद्ध-सेसं तेसीदी[1] अट्ठ-पविहत्ता[2] ॥२०९॥

अर्थ :—सौधर्मयुगल तक त्रिकोण क्षेत्रका घनफल अर्धघनराजूसे कम पाँच (४$\frac{१}{२}$) घनराजू प्रमाण है। सनत्कुमार युगल तक बाह्य और अभ्यन्तर दोनो क्षेत्रोका मिश्र घनफल साढे तेरह घनराजू प्रमाण है। इस मिश्र घनफलमेंसे बाह्य त्रिकोण क्षेत्रका घनफल ($\frac{२५}{८}$) कम कर देनेपर शेष आठसे भाजित तेरासी घनराजू अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल होता है ॥२०८-२०९॥

संदृष्टि :—$\frac{६}{७} \div २ \times \frac{३}{२} \times ७ = \frac{९}{२}$ घनराजू घनफल सौधर्मयुगल तक; $\frac{५}{७} \div २ \times \frac{५}{४} \times ७ = \frac{२५}{८}$ घनराजू घनफल सनत्कुमार कल्प तक बाह्य क्षेत्रका; $[(\frac{१२}{७} + \frac{६}{७}) \div २ \times \frac{३}{२} \times ७] = \frac{२७}{२}$ बाह्य और अभ्यन्तर क्षेत्रका मिश्र घनफल; $\frac{२७}{२} - \frac{२५}{८} = \frac{८३}{८}$ घनराजू अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल है।

विशेषार्थ :—गाथा २०३-२०७ से सम्बन्धित चित्रणमें सौधर्मयुगल पर अ ब स से वेष्टित एक त्रिकोण है, जिसमें प्रतिभुजाका अभाव है। भुजा ब स का विस्तार $\frac{६}{७}$ राजू है, अत: $\frac{६}{७} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{९}{२}$ घनराजू घनफल सौधर्मयुगल पर प्राप्त हुआ।

सनत्कुमार युगल पर्यन्त ड य ब स ल बाह्याभ्यन्तर क्षेत्र है। र ल रेखा $\frac{७}{७}$ और ड र रेखा $\frac{५}{७}$ है, अर्थात् ड ल रेखा $(\frac{७}{७} + \frac{५}{७}) = \frac{१२}{७}$ राजू हुई। प्रतिभुजा ब स का विस्तार $\frac{६}{७}$ राजू है, अत: $\frac{१२}{७} + \frac{६}{७} = \frac{१८}{७}$ तथा $\frac{१८}{७} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times ७ = \frac{२७}{२}$ घनराजू बाह्याभ्यन्तर मिश्रित क्षेत्रका घनफल प्राप्त हुआ। इसमेंसे ड य र बाह्य त्रिकोणका घनफल $\frac{५}{७} \times \frac{१}{२} \times \frac{५}{४} \times ७ = \frac{२५}{८}$ घनराजू घटा देनेपर र य ब स ल अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल $\frac{२७}{२} - \frac{२५}{८} = \frac{८३}{८}$ घनराजू प्राप्त होता है।

---

१. द. ब. तेसि इदि। २. ब. पविहत्था।

बम्हुत्तर-हेट्ठुवरिं रज्जु-घरणा तिण्णि होंति पत्तेक्कं ।
लंतव-कप्पम्मि दुगं रज्जु-घणो[1] सुक्क-कप्पम्मि ॥२१०॥

$\frac{\equiv}{३४३}\,३ \mid \frac{\equiv}{३४३}\,३ \mid \frac{\equiv}{३४३}\,२ \mid \frac{\equiv}{३४३}\,१ \mid$

अर्थ :—ब्रह्मोत्तर स्वर्गके नीचे और ऊपर प्रत्येक बाह्य क्षेत्रका घनफल तीन घनराजू प्रमाण है। लांतव स्वर्गतक दो घनराजू और शुक्र कल्प तक एक घनराजू प्रमाण घनफल है ॥२१०॥

विशेषार्थ :—ब्रह्मोत्तर स्वर्गके नीचे और ऊपर अर्थात् क्षेत्र थ ड र द और ध थ द ढ समान माप वाले हैं। इनकी भुजा $\frac{३}{७}$ राजू और प्रतिभुजा $\frac{९}{७}$ राजू प्रमाण है, अतः ब्रह्मोत्तर कल्पके नीचे और ऊपर वाले प्रत्येक क्षेत्र हेतु $\frac{३}{७}+\frac{९}{७}=\frac{१२}{७}$, तथा घनफल $=\frac{१२}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times७=३$ घनराजू प्रमाण है।

लातव–कापिष्ट पर इ ध ढ उ से वेष्टित क्षेत्र हेतु $(\frac{५}{७}+\frac{३}{७})=\frac{८}{७}$, तथा घनफल $=\frac{८}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times७=२$ घनराजू प्रमाण है।

शुक्र कल्पतक ए इ उ ऐ से वेष्टित क्षेत्र हेतु $(\frac{३}{७}+\frac{१}{७})=\frac{४}{७}$, तथा घनफल $=\frac{४}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times७=१$ घनराजू प्रमाण है।

अट्ठाणउदि-विहत्तो लोओ सदरस्स उभय-बिंदफलं ।
तस्स य बाहिर-भागे रज्जु-घणो अट्ठमो अंसो ॥२११॥

[2] $\frac{\equiv}{३४३}\,।\,\frac{७}{२} \mid \frac{\equiv}{३४३}\,।\,\frac{१}{८} \mid$

तम्मिस्स-सुद्ध-सेसे हवेदि अब्भंतरम्मि बिंदफलं ।
[3]सत्तावीसेहि [4]हदं रज्जू-घणमाणमट्ठ-हिदं ॥२१२॥

$\mid \frac{\equiv}{३४३}\,।\,\frac{२७}{८} \mid$

---

१. द. ब. रज्जुघरणा। २. द. $\frac{\equiv}{४९}$, ब. $\frac{\equiv}{३४९}$। ३. द. ज. ठ. सत्तावसेहि। ४. ज. ठ. वोवं।

अर्थ :—शतारस्वर्ग तक उभय अर्थात् अभ्यन्तर और बाह्यक्षेत्रका मिश्र घनफल अट्ठानवै से भाजित लोकके प्रमाण है। तथा इसके बाह्यक्षेत्रका घनफल घनराजूका अष्टमांश है ॥२११॥

अर्थ :—उपर्युक्त उभय क्षेत्रके घनफलमेंसे बाह्यक्षेत्रके घनफलको घटा देनेपर जो शेष रहे उतना अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल होता है। वह सत्ताईससे गुणित और आठसे भाजित घनराजूके प्रमाण है ॥२१२॥

विशेषार्थ :—शतारस्वर्ग पर्यन्त औ ओ ए ई ह से वेष्टित बाह्याभ्यन्तर क्षेत्र है। ऐ ई रेखा $\frac{५}{७}$ और ए ऐ रेखा $\frac{१}{७}$ राजू है अर्थात् ए ई रेखा ($\frac{५}{७}+\frac{१}{७}$) = $\frac{६}{७}$ है। प्रतिभुजा औ ह रेखा का विस्तार $\frac{८}{७}$ राजू है, अत: $\frac{६}{७}+\frac{८}{७}=\frac{१४}{७}$, तथा $\frac{१४}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{४}\times ७=\frac{७}{२}$ घनराजू उभय क्षेत्रोंका घनफल है, इसमेंसे ओ ए ऐ बाह्य त्रिकोणका घनफल $\frac{१}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{४}\times ७=\frac{१}{८}$ घनराजू घटा देनेपर औ ओ ऐ ई ह अभ्यन्तर क्षेत्रका घनफल ($\frac{७}{२}-\frac{१}{८}$) = $\frac{२७}{८}$ अर्थात् ३$\frac{३}{८}$ घनराजू प्राप्त होता है, जो २७ से गुणित और ८ से भाजित घनराजू प्रमाण (१ × २७ = २७, तथा २७ ÷ ८ = ३$\frac{३}{८}$ घनराजू) है।

> रज्जु-घणा ठाण-दुगे अड्ढाइज्जेहिं दोहि गुणिदव्वा ।
> सव्वं मेलिय दु-गुणिय तस्सि ठावेज्ज जुत्तेण ॥२१३॥

$\frac{\equiv}{३४३}\;\frac{५}{२}$ | $\frac{\equiv}{३४३}\;२$ | $\frac{\equiv}{३४३}\;७०$ |[१]

अर्थ :—घनराजूको क्रमशः ढाई और दो से गुणा करनेपर जो गुणनफल प्राप्त हो, उतना शेष दो स्थानोंके घनफलका प्रमाण है। इन सब घनफलोको जोड़कर उसे दुगुनाकर संयुक्तरूपसे रखना चाहिए ॥२१३॥

विशेषार्थ :—आनतकल्पके ऊपर क्ष औ ह त्र क्षेत्र हेतु ($\frac{६}{७}+\frac{४}{७}$) = $\frac{१०}{७}$, तथा घनफल = $\frac{१०}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times ७=\frac{५}{२}$ घनराजू प्रमाण है।

आरणकल्पके उपरिम क्षेत्र अर्थात् ज्ञ क्ष त्र क्षेत्रका घनफल $\frac{४}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{२}\times\frac{२}{१}=\frac{४}{२}=२$ घनराजू प्रमाण है। इन सम्पूर्ण घनफलोंका योग इसप्रकार है—

---

१. ज. ठ. $\frac{\equiv}{३४३}$ | ५ | $\frac{\equiv}{३४३}\;३$ | $\frac{\equiv}{३४३}\;७०$ | द. $\frac{\equiv}{३४३}\;५१$ | $\frac{\equiv}{३४३}\;३$ | $\frac{\equiv}{३४३}\;७०$ | क. $\frac{\equiv}{३४३}\;\frac{५}{२}$ | $\frac{\equiv}{३४३}\;१$ | $\frac{\equiv}{३४३}\;७०$ |

$$\frac{९}{२}+\frac{२५}{८}+\frac{८३}{८}+\frac{३}{१}+\frac{३}{१}+\frac{४}{२}+\frac{२}{२}+\frac{१}{८}+\frac{२७}{८}+\frac{५}{२}+\frac{४}{२}=$$

$$\frac{३६+२५+८३+२४+२४+१६+८+१+२७+२०+१६}{८}=\frac{२८०}{८} \text{ घनराजू}$$

त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्र ऊर्ध्वलोकके दोनों पार्श्व भागोंमे हैं, अत: $\frac{२८०}{८}$ घनराजूको दो से गुणित करनेपर ($\frac{२८०}{८} \times \frac{२}{१}$) दोनो पार्श्वभागोंमें स्थित ग्यारह क्षेत्रोंका घनफल ७० घनराजू प्रमाण प्राप्त होता है।

आठ आयनाकार क्षेत्रोंका और त्रसनालीका घनफल

एत्तो दल-रज्जूणं घण-रज्जूओ हवंति अडवीसं।
एक्कोणवण्ण-गुणिदा मज्झिम-खेत्तम्मि रज्जु-घणा ॥२१४॥

$$\left| \frac{\equiv}{३४३}\ २८ \right| \frac{\equiv}{३४३}\ ४९ \right|$$

अर्थ :—इसके अतिरिक्त दल (अर्ध) राजुओका घनफल अट्ठाईस घनराजू और मध्यम-क्षेत्र (त्रसनाली) का घनफल ४९ से गुणित एक घनराजू प्रमाण अर्थात् उनचास घनराजू प्रमाण है ॥२१४॥

विशेषार्थ :—ग्यारह क्षेत्रोंके अतिरिक्त ऊर्ध्वलोकमें एक राजू चौड़े और अर्धराजू ऊँचे विस्तार वाले आठ क्षेत्र है जिनका घनफल ($\frac{१}{१} \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{१} \times \frac{८}{१}$) = २८ घनराजू प्राप्त होता है। इसीप्रकार ऊर्ध्वलोक स्थित त्रसनालीका घनफल (१ × ७ × ७) = ४९ घनराजू है।

सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका सम्मिलित घनफल

[1]पुव्व-वण्णिद-खिदीणं रज्जूए घणा सत्तरी होंति।
एदे तिण्णि वि रासी सत्तत्तालुत्तर-सयं मेलिदा ॥२१५॥

$$\left| \frac{\equiv}{३४३}\ ७० \right| \frac{\equiv}{३४३}\ १४७ \right|$$ [2]

अर्थ :—पूर्वमें वर्णित इन पृथ्वियोंका घनफल सत्तर घनराजू प्रमाण होता है। इसप्रकार इन तीनों राशियोंका योग एकसौ सेतालीस घनराजू है, जो सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल समझना चाहिए ॥२१५॥

---

१. द ब. पुव्वणिद। २ द. $\frac{\equiv}{३४३}$ ७८ | $\frac{\equiv}{३४३}$ १४७ |

विशेषार्थ :—ग्यारह क्षेत्रोंका घनफल ७० घनराजू, मध्यवर्ती आठ क्षेत्रोंका घनफल २८ घनराजू और त्रसनालीका घनफल ४९ घनराजू है। इन तीनोंका योग (७०+२८+४९)=१४७ घनराजू होता है। यही सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोकका घनफल है।

सम्पूर्ण लोकके आठ भेद एवं उनके नाम

अट्ठ-विहं सव्व-जगं सामण्णं तह य दोण्णि[1] चउरस्सं।
जवमुरअं जवमज्झं मंदर-दूसाइ-गिरिगडयं ॥२१६॥

अर्थ :—सम्पूर्ण लोक—१ सामान्य, दो चतुरस्र अर्थात् २ आयत-चौरस और ३ तिर्यगायत-चतुरस्र, ४ यवमुरज, ५ यवमध्य, ६ मन्दर, ७ दूष्य और ८ गिरिकटकके भेदसे आठ प्रकार का है ॥२१६॥

सामान्य लोकका घनफल एवं उसकी आकृति

सामाण्णं सेढि-घणं आयद-चउरस्स वेद-कोडि-भुजा।
सेढी सेढी-अद्धं दु-गुणिद-सेढी कमा होंति ॥२१७॥

। ☰ । — । ≡ । ≡ ।

अर्थ :—सामान्यलोक जगच्छ्रेणीके घनप्रमाण है। आयत-चौरस अर्थात् इसकी चारों भुजाएँ समान प्रमाण वाली हैं। (तिर्यगायत चतुरस्र) क्षेत्रके, वेध, कोटि और भुजा ये तीनों क्रमशः जगच्छ्रेणी (७ राजू), जगच्छ्रेणीके अर्धभाग (३½ राजू) और जगच्छ्रेणीसे दुगुने (१४ राजू) प्रमाण हैं ॥२१७॥

विशेषार्थ :—सामान्य लोक निम्नांकित चित्रणके अनुसार जगच्छ्रेणी अर्थात् ७ राजूके घन (३४३ घनराजू) प्रमाण है। यथा—

---

१. ब. तह दोण्णि।
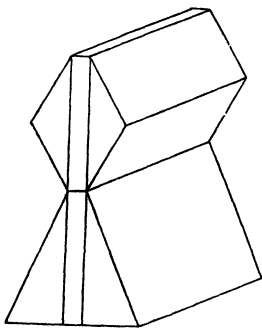
२. आयत-चौरस क्षेत्र निम्नांकित चित्रणके सदृश अर्थात् समान लम्बाई, चौडाई, ऊँचाई एवं मोटाई को लिए हुए है। यथा—
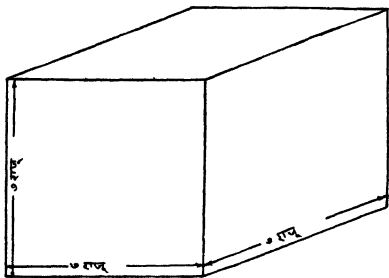
३. तिर्यगायत क्षेत्र का वेध सात राजू, कोटि ३½ राजू और भुजा चौदह-राजू प्रमाण है। यथा—
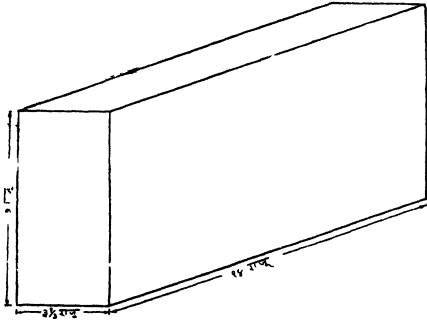
यवका प्रमाण, यवमुरजका घनफल एवं उसकी आकृति

भुजकोडी वेदेसु' पत्तेक्कं एक्कसेढि परिमाणं।
समचउरस्स खिदीए लोगा दोण्हं पि विंदफलं ॥२१८॥

। — । — । ☰ । ☰ ।

सत्तरि हिद-सेढि-घणा एक्काए जवखिदीए विंदफलं।
तं पंचवीस पहदं जवमुरय महीए अवखेत्तं ॥२१९॥

| ☰ / ७० | ☰ ५ / १४ |

¹पहदो णवेहि लोओ चोद्दस-भजिदो य मुरव-विंदफलं।
सेढिस्स घण-पमाणं उभयं पि ²हवेदि जव-मुरवे ॥२२०॥

१. द. एवं दो, क. ज. ठ. एहदो। २. द. ज. ठ. यवेदि।

$\frac{\equiv}{१४}$ ६ | ≡ |

अर्थ :—समचतुरस्र क्षेत्रवाले लोकके भुजा, कोटि एवं वेध ये प्रत्येक एक-एक श्रेणि (—) प्रमाण वाले हैं जिससे (लोक का) घनफल घनश्रेणि (≡) अर्थात् ३४३ घनराजू प्रमाण होता है। इसे दो स्थानों में स्थापित करना चाहिए ।।२१८।।

(इसके पश्चात् प्रथम जगह स्थापित) श्रेणिके घन (≡) को ७० से भाजित करने पर एक जवक्षेत्रका घनफल प्राप्त होता है और दूसरी जगह स्थापित लोक [श्रेणिघन (≡)] को ७० से भाजितकर लब्धराशिको २५ से गुणित करने पर यवमुरज क्षेत्रमें यवक्षेत्रका घनफल $\frac{\equiv}{७०}$ २५ अथवा $\frac{\equiv}{१४}$ ५ प्राप्त होता है ।।२१९।।

नौसे गुणित लोकमें चौदहका भाग देनेपर मुरजक्षेत्रका घनफल आता है। इन दोनोंके घनफलको जोड़नेसे जगच्छ्रेणीके घनरूप सम्पूर्ण यवमुरज क्षेत्रका घनफल होता है ।।२२०।

विशेषार्थ :—लोक अर्थात् ३४३ घनराजूको यवमुरजकी आकृतिमें लानेके लिए लोककी लम्बाई (ऊँचाई) १४ राजू, भूमि ६ राजू, मध्यम व्यास ३½ राजू और मुख एक राजू मानना होगा, क्योंकि यहां लोककी आकृतिसे प्रयोजन नहीं है, उसके घनफलसे प्रयोजन है। यथा—

यवमुरजाकृति—
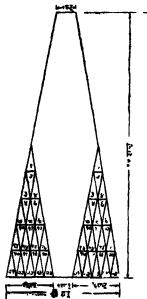
उपर्युक्त आकृतिमें एक मुरज और दोनों पार्श्व भागोंमें ५० अर्धयव अर्थात् २५ यव प्राप्त होते हैं। प्रत्येक अर्धयव $\frac{१}{२}$ राजू चौड़ा, $\frac{७}{५}$ राजू ऊँचा और ७ राजू मोटा है। मुरज १४ राजू ऊँची, ऊपर-नीचे एक-एक राजू चौड़ी एवं मध्यमें ३$\frac{१}{२}$ राजू चौड़ी है। इसकी मोटाई भी ७ राजू है।

अर्धयवका घनफल $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{५} \times \frac{७}{१} = \frac{४९}{२०}$ घनराजू है, अतः पूर्ण यवका घनफल $\frac{४९}{२०} \times \frac{२}{१} = \frac{४९}{१०}$ अर्थात् $\frac{३४३}{७०}$ घनराजू प्राप्त होता है। इन पूर्ण यवोंकी संख्या २५ है इसलिए गाथामें ७० से भाजित लोकको २५ से गुणित करने हेतु कहा गया है।

मुरजकी चौड़ाई मध्यमें ३$\frac{१}{२}$ राजू और अन्तमें एक राजू है। ३$\frac{१}{२}$ + १ = $\frac{९}{२}$ राजू हुआ। इसका आधा करने पर $\frac{९}{२} \times \frac{१}{२} = \frac{९}{४}$ राजू मुरजका सामान्य व्यास प्राप्त होता है। इसे मुरजकी १४ राजू ऊँचाई और ७ राजू मोटाईसे गुणित करनेपर $\frac{९}{४} \times \frac{१४}{१} \times \frac{७}{१} = \frac{४९ \times १८}{४}$ प्राप्त हुआ। अंश और हरको ७ से गुणित करनेपर $\frac{३४३ \times ९}{१४}$ घनराजू प्राप्त होता है इसलिए गाथामें नौसे गुणित लोकमें १४ का भाग देनेको कहा गया है।

यवमुरजका सम्मिलित घनफल इसप्रकार है—

जबकि अर्धयवका घनफल $(\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{५} \times \frac{७}{१}) = \frac{४९}{२०}$ घनराजू है तब दोनों पार्श्वभागोंके ५० अर्धयवोंका कितना घनफल होगा? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{४९}{२०} \times \frac{५०}{१} = \frac{२४५०}{२०}$ अर्थात् १२२$\frac{१}{२}$ घनराजू प्राप्त हुए।

इसीप्रकार अर्धमुरज हेतु ($\frac{७}{२}$ भूमि + $\frac{१}{१}$ मुख) = $\frac{९}{२}$, तथा घनफल = $\frac{९}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{१} \times \frac{७}{१} = \frac{४४१}{४}$ घनराजू है। जबकि अर्धमुरजका घनफल $\frac{४४१}{४}$ घनराजू है तब सम्पूर्ण (एक) मुरजका कितना होगा? $\frac{४४१}{४} \times \frac{२}{१} = \frac{४४१}{२}$ अर्थात् २२०$\frac{१}{२}$ घनराजू होता है। इन दोनोंका योग कर देनेसे (१२२$\frac{१}{२}$ + २२०$\frac{१}{२}$) = ३४३ घनराजू सम्पूर्ण यवमुरजका घनफल प्राप्त होता है।

यव मध्यक्षेत्रका घनफल एवं उसकी आकृति

घण-फलमेक्कम्मि जवे [1]पंचत्तीसद्ध-भाजिदो लोओ।
तं पणतीसद्ध[2]-हदं सेढि-घणं होदि जव-खेत्ते ॥२२१॥

| $\frac{\equiv}{३५}$ २ | ≡ |

१. द. ब. पंचतीसदुभाजिदो। २. द. ब. तप्पणत्तीसं दुहद।

अर्थ :—यवमध्य क्षेत्रमें एक यवका घनफल पैंतीसके आधे साढ़े-सत्तरहसे भाजित लोक-प्रमाण है। इसको पैंतीसके आधे साढ़े सत्तरहसे गुणा करनेपर जगच्छ्रेणीके घन-प्रमाण सम्पूर्ण यवमध्य क्षेत्रका घनफल निकलता है ॥२२१॥

विशेषार्थ :—यवमध्यक्षेत्रकी आकृति निम्न प्रकार है। इसकी रचना भी लोक अर्थात् ३४३ घनराजूके प्रमाणको दृष्टिमें रखकर की जा रही है। यथा—
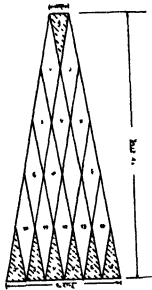
इस आकृतिकी ऊँचाई १४ राजू, भूमि ६ राजू और मुख एक राजू है। इसमें एक राजू चौड़े, $\frac{१४}{५}$ राजू ऊँचे और ७ राजू मोटाई वाले ३५ अर्धयव बनते हैं, अर्थात् १७ यव पूर्ण और एक यव आधा बनता है इसीलिए गाथामें लोक (३४३ घनराजू) को $१७\frac{१}{२}$ से भाजितकर एक यवका क्षेत्रफल $१९\frac{३}{५}$ घनराजू निकाला गया है और इसे पुनः $१७\frac{१}{२}$ से गुणित करके सम्पूर्ण लोकका घनफल ३४३ घनराजू निकाला गया है।

एक अर्धयवका घनफल $\frac{१}{२} \times \frac{१}{१} \times \frac{१४}{५} \times \frac{७}{१} = \frac{४९}{५}$ अर्थात् $९\frac{४}{५}$ घनराजू है। पूर्ण यवका घनफल $\frac{४९}{५} \times \frac{२}{१} = \frac{९८}{५}$ अर्थात् $१९\frac{३}{५}$ घनराजू है। जब एक अर्धयवका घनफल $\frac{४९}{५}$ घनराजू है तब ३५ अर्धयवोंका घनफल कितना होगा ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर $\frac{४९}{५} \times \frac{३५}{१} = ३४३$ घनराजू होगा।

लोकमें मन्दर मेरुकी ऊँचाई एवं उसकी आकृति

[1]चउ-दु-ति-इगितीसेहिं तिय-तेवीसेहि गुणिद-रज्जूओ ।
तिय-तिय-दु-छ-दु-छ भजिदा मंदर-खेत्तस्स उस्सेहो ॥२२२॥
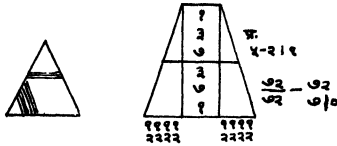
अर्थ :—चार, दो, तीन, इकतीस, तीन और तेईससे गुणित, तथा क्रमशः तीन, तीन, दो, छह, दो और छहसे भाजित राजू प्रमाण मन्दरक्षेत्रकी ऊँचाई है ॥२२२॥

विशेषार्थ :—३४३ घनराजू मापवाले लोककी भूमि ६ राजू, मुख एक राजू और ऊँचाई १४ राजू मानकर मन्दराकार अर्थात् लोकमें सुदर्शन मेरुकी रचना इसप्रकारसे की गई है :—

१. द. ब. चदुतिइगितीसहिं ।
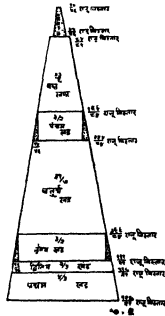
इस आकृतिमें $\frac{४}{३}$ राजू पृथिवीमें सुदर्शन मेरुकी नींव (जड़) अर्थात् १००० योजनका, $\frac{२}{३}$ राजू भद्रशालवनसे नन्दनवन तककी ऊँचाई अर्थात् ५०० योजनका, $\frac{३}{२}$ राजू नन्दनवनसे ऊपर समरुन्द्र भाग (समान विस्तार) तकका अर्थात् ११००० योजनका, $\frac{३१}{१६}$ सौमनस वनके प्रमाण अर्थात् ५१५०० योजनका, उसके ऊपर $\frac{३}{२}$ राजू समविस्तार अर्थात् ११००० योजनका और उसके बाद $\frac{२३}{१६}$ राजू समविस्तारके अन्तसे पाण्डुकवन अर्थात् २५००० योजनका प्रतीक है ।

अन्तरवर्ती चार त्रिकोणोंसे चूलिकाकी सिद्धि एव उसका प्रमाण

पण्णरस-हदा रज्जू छप्पण्ण-हिदा [1]तडाण वित्थारो ।
पत्तेक्कं [2]तक्करणे खंडिद-खेत्तेण चूलिया सिद्धा ।।२२३।।

$\frac{१५}{५६}$ [3]

पणदाल-हदा रज्जू छप्पण्ण-हिदा हवेदि भू-वासो ।
उदओ दिवड्ढ-रज्जू भूमि-ति-भागेण मुह-वासो ।।२२४।।

अर्थ :—पन्द्रहसे गुणित और छप्पनसे भाजित राजू प्रमाण चूलिकाके प्रत्येक तटोंका विस्तार है । उस प्रत्येक अन्तरवर्ती करणाकार अर्थात् त्रिकोण खण्डितक्षेत्रसे चूलिका सिद्ध होती है ।।२२३।।

चूलिकाकी भूमिका विस्तार पैंतालीससे गुणित और छप्पनसे भाजित एक राजू प्रमाण ($\frac{४५}{५६}$ राजू) है । उसी चूलिकाकी ऊँचाई डेढ राजू ($१\frac{१}{२}$) और मुख-विस्तार भूमिके विस्तारका तीसरा भाग अर्थात् तृतीयांश ($\frac{१५}{५६}$) है ।।२२४।।

विशेषार्थ :—मन्दराकृतिमें नन्दन और सौमनसवनोंके ऊपरी भागको समतल करनेके लिए दोनों पार्श्वभागोंमें जो चार त्रिकोण काटे गये हैं, उनमें प्रत्येककी चौड़ाई $\frac{१५}{५६}$ राजू और ऊँचाई $१\frac{१}{२}$ राजू है । इन चारों त्रिकोणोंमेंसे तीन त्रिकोणोंको सीधा और एक त्रिकोणको पलटकर उलटा रखनेसे चूलिकाकी भूमिका विस्तार $\frac{४५}{५६}$ राजू, मुख विस्तार $\frac{१५}{५६}$ राजू और ऊँचाई $१\frac{१}{२}$ राजू प्रमाण प्राप्त होती है ।

---

१. द. ज. क. ठ. तदाण । २. ब. ठ. तक्कारण । ३. द. ज. $\frac{४५}{५६}$ । क $\frac{}{५६}$ ।

हानि-वृद्धि (चय) एवं विस्तारका प्रमाण

भूमीअ मुहं[1] सोहिय उदय-हिदे भूमुहादु हारिण-चया ।
[2]छक्केक्कक्कु-मुह-रज्जू उस्सेहा दुगुण-सेढीए ॥२२५॥

। ७६ । ७१ । -२ ।

तक्खय-वड्ढि-विमाणं चोद्दस-भजिदाइ पंच-रूवाणि ।
णिय-णिय-उदए पहदं आरोज्जं[3] तस्स तस्स खिदि-वासं ॥२२६॥

| ५/१४ |

अर्थ :—भूमिमेंसे मुखको घटाकर शेषमें ऊँचाईका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना भूमिकी अपेक्षा हानि और मुखकी अपेक्षा वृद्धिका प्रमाण होता है। यहाँ भूमिका प्रमाण छह राजू, मुखका प्रमाण एक राजू, और ऊँचाईका प्रमाण दुगुणित श्रेणी अर्थात् चौदह राजू है ॥२२५॥

अर्थ :—हानि और वृद्धिका वह प्रमाण चौदहसे भाजित पाँच, अर्थात् एक राजूके चौदह भागोंमेंसे पाँच भागमात्र है। इस क्षय-वृद्धिके प्रमाणको अपनी-अपनी ऊँचाईसे गुणा करके विवक्षित पृथिवी (क्षेत्र) के विस्तारको ले आना चाहिए ॥२२६॥

विशेषार्थ :—इस मन्दराकृति लोकको भूमि ६ राजू और मुख विस्तार एक राजू है। यह मध्यमें किस अनुपातसे घटा है उसका चय निकालनेके लिए भूमिमेंसे मुखको घटाकर शेष (६ — १)=५ राजूमें १४ राजू ऊँचाईका भाग देनेपर हानि-वृद्धिका ५/१४ चय प्राप्त होता है। इस चयका अपनी ऊँचाईमें गुणा करदेनेसे हानिका प्रमाण प्राप्त होता है। उस हानि प्रमाणको पूर्व विस्तारमेंसे घटा देनेपर ऊपरका विस्तार प्राप्त हो जाता है।

मेरु सदृश लोकके सात स्थानोंका विस्तार प्राप्त करने हेतु गुणकार एवं भागहार

मेरु-सरिच्छम्मि जगे सत्त-ट्ठाणेसु ठविय उड्ढुड्ढं ।
रज्जूओ रुंदट्ठे [4]वोच्छं गुणयार-हाराणि ॥२२७॥

---

१. द. ज. ठ. मुहवासो, ब. क. मुहसोही। २. द. कुमह। ३. द ब. ज. ठ. अरणेज्जयतस्स, क. अरणेज्जय तस्स तस्स। ४. द. ज. ठ. रुंदे वोच्छं, ब. क. रुंदे दो वोच्छं।

छव्वीसब्भहिय-सयं सोलस-एक्कारसाहिरित्त-सया ।
[1]इगिवीसेहि विहत्ता तिसु ट्ठाणेसु हवंति हेट्ठादो ।।२२८।।

७/१४७ १२६ । ७/१४७ ११६ । ७/१४७ १११ ।

एक्कोरण-चउसयाइं वु-सया-चउदाल-वुसयमेक्कोणं ।
चउसीदी चउठाणे होदि हु चउसीदि-पविहत्ता ।।२२९।।

। ७/५८८ ३९९ । ७/५८८ २४४ । ७/५८८ १९९ । ७/५८८ ८४ ।

अर्थ :—मेरुके सदृश लोकमें, ऊपर-ऊपर सात स्थानोंमें राजूको रखकर विस्तारको लानेके लिए गुणकार और भागहारोंको कहता हूं ।।२२७।।

अर्थ :—नीचेसे तीन स्थानोंमें इक्कीससे विभक्त एकसौ छब्बीस, एकसौ सोलह और एकसौ ग्यारह गुणकार हैं ।।२२८।।

७×१२६/१४७ = १२६/२१ ; ७×११६/१४७ = ११६/२१ ; ७×१११/१४७ = १११/२१ ।

अर्थ :—इसके आगे चार स्थानोंमें क्रमशः चौरासीसे विभक्त एक कम चारसौ (३९९), दो सौ चवालीस, एक कम दो सौ (१९९) और चौरासी, ये चार गुणकार हैं ।।२२९।।

७×३९९/५८८ = ३९९/८४ ; ७×२४४/५८८ = २४४/८४ ; ७×१९९/५८८ = १९९/८४ ; ७×८४/५८८ = ८४/८४ ।

विशेषार्थ :—मेरु सदृश लोकका विस्तार तलभागमें ६ राजू है । इससे ४/३ राजू ऊपर जाकर लोकमेरुका विस्तार इसप्रकार प्राप्त होता है । यथा—एक राजू ऊपर जानेपर ५/१४ राजूकी हानि होती है अतः ४/३ राजूकी ऊँचाई पर (५/१४ × ४/३) = १०/२१ राजूकी हानि हुई । इसे ६ राजू विस्तारमें से घटा देने पर (६/१ — १०/२१) = ११६/२१ राजू भद्रशालवनपर लोकमेरुका विस्तार है क्योंकि एक राजू पर ५/१४ राजूकी हानि होती है अतः २/३ राजूकी ऊँचाई पर (५/१४ × २/३) = ५/२१ राजूकी हानि हुई । इसे पूर्ण विस्तार ११६/२१ में से घटा देनेपर (११६/२१ — ५/२१) = १११/२१ राजू विस्तार नन्दनवनपर लोकमेरुका है । क्योंकि एक राजू पर ५/१४ राजूकी हानि होती है अतः ३/२ राजू पर (५/१४ — ३/२) = १५/२८ राजूकी हानि प्राप्त हुई । इसे पूर्व विस्तार १११/२१ मेंसे घटाने पर (१११/२१ — १५/२८) = ३९९/८४ राजू समविस्तारके

१. ब. क. इगवासे वि । द. इगवीसे वि तहत्था तिसु ठाणेसु ठविय हुंवति । ज. ठ. तिहत्ता ।

ऊपरका विस्तार प्राप्त होता है। क्योंकि एक राजूकी ऊँचाईपर ५/१४ राजूकी हानि होती है अतः ३१/६ राजूपर (३१/६ × ५/१४) = १५५/८४ राजूकी हानि हुई।

इसे पूर्व विस्तार ३९९/८४ मेंसे घटादेने पर (३९९/८४ — १५५/८४) = २४४/८४ राजू सौमनस वनपर लोकमेरुका विस्तार होता है। क्योंकि एक राजूपर ५/१४ राजूकी हानि होती है अतः ३/२ राजूपर (३/२ × ५/१४) = १५/२८ राजूकी हानि हुई। इसे पूर्वोक्त विस्तार २४४/८४ मेसे घटानेपर (२४४/८४ — ३/२८) = १९९/८४ राजू सौमनस वनके समरुन्द्रभागके ऊपरका विस्तार है। क्योंकि एक राजूपर ५/१४ राजूकी हानि होती है अतः २३/६ राजूपर (२३/६ × ५/१४) = ११५/८४ राजूकी हानि हुई। इसे पूर्वोक्त विस्तार १९९/८४ मेंसे घटा देनेपर (१९९/८४ — ११५/८४) = ८४/८४ अर्थात् पाण्डुकवन पर लोकमेरुका विस्तार एक राजू प्राप्त होता है।

घनफल प्राप्त करने हेतु गुणकार एव भागहार

मंदर-सरिसम्मि जगे सत्तसु ठाणेसु ठविय रज्जु-घणं।
हेट्ठादु घणफलं स य वोच्छं गुणगार-हाराणि ॥२३०॥

चउसीदि-चउसयाणं सत्तावीसाधिया य दोण्णि सया।
एक्कोण-चउ-सयाइं वीस-सहस्सा विहीण-सगसट्ठी ॥२३१॥

एक्कोणा दोण्णि-सया पण-सट्ठि-सयाइ णव-जुदाणि पि।
पंचत्तालं एदे गुणगारा सत्त-ठाणेसु ॥२३२॥

अर्थ :—मन्दरके सदृश लोकमें घनफल लानेके लिए नीचेसे सात स्थानोंमें घनराजूको रखकर गुणकार और भागहार कहते हैं ॥२३०॥

अर्थ :—चारसौ चौरासी, दो सौ सत्ताईस, एक कम चारसौ अर्थात् तीनसौ निन्यानवै, सड़सठ कम बीस हजार, एक कम दोसौ, नौ अधिक पैसठसौ और पैंतालीस, ये क्रमसे सात स्थानोंमें सात गुणकार हैं ॥२३१-२३२॥

विशेषार्थ :—लोकमेरुके सात खण्ड किये गये हैं। इन सातों-खण्डोंका भिन्न-भिन्न घनफल प्राप्त करनेके लिए "मुख-भूमि जोगदले पदहदे" सूत्रानुसार प्रक्रिया करनी चाहिए। यथा—लोकमेरु अर्थात् प्रथम खण्डकी जड़की भूमि १२१/२१ + १२१/२१ मुख = २४२/२१, तथा घनफल = २४२/२१ × १/२ × ४/३ × ७/१ = ४८४/९ घनराजू है। [यहाँ भूमि और मुखके योगको आधा करके ४/३ राजू ऊँचाई और ७ राजू मोटाईसे गुणित किया गया है। यही नियम सर्वत्र जानना चाहिए]

भद्रशालवनसे नन्दनवन अर्थात् द्वितीय खण्डकी भूमि $\frac{११६}{४२}$ + $\frac{१११}{४२}$ मुख = $\frac{२२७}{४२}$, तथा घनफल = $\frac{२२७}{४२} \times \frac{१}{२} \times \frac{४}{३} \times \frac{७}{१} = \frac{२२७}{९}$ घनराजू प्राप्त होता है।

नन्दनवनसे समविस्तार क्षेत्र तक अर्थात् तृतीय खण्डकी भूमि $\frac{३९९}{८४}$ + $\frac{३९९}{८४}$ मुख, $\frac{७९८}{८४}$ तथा घनफल = $\frac{७९८}{८४} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{३९९}{८}$ घनराजू तृतीय खण्डका घनफल है।

समविस्तारसे सौमनसवन अर्थात् चतुर्थखण्डकी भूमि $\frac{३९९}{८४}$ + $\frac{२४४}{८४}$ मुख = $\frac{६४३}{८४}$, तथा घनफल = $\frac{६४३}{८४} \times \frac{१}{२} \times \frac{३१}{६} \times \frac{७}{१} = \frac{१९९३३}{१४४}$ घनराजू चतुर्थ खण्डका घनफल है।

सौमनसवनके ऊपर समविस्तार क्षेत्रतक अर्थात् पंचमखण्डकी भूमि $\frac{१९९}{८४}$ + $\frac{१९९}{८४}$ = $\frac{३९८}{८४}$, तथा घनफल = $\frac{३९८}{८४} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{१९९}{८}$ घनराजू है।

समविस्तार क्षेत्रसे ऊपर पाण्डुकवन तक अर्थात् षष्ठ खण्डकी भूमि $\frac{१९९}{८४}$ + $\frac{८४}{८४}$ मुख = $\frac{२८३}{८४}$ तथा घनफल = $\frac{२८३}{८४} \times \frac{१}{२} \times \frac{२३}{६} \times \frac{७}{१} = \frac{६५०९}{१४४}$ घनराजू प्राप्त होता है।

पाण्डुकवनके ऊपर चूलिका अर्थात् सप्तम खण्डकी भूमि $\frac{४५}{५६}$ + $\frac{१५}{५६}$ मुख = $\frac{६०}{५६}$, तथा घनफल = $\frac{६०}{५६} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{४५}{८}$ घनराजू चूलिका का घनफल है।

सप्त स्थानोंके भागहार एवं मन्दरमेरु लोकका घनफल

णव णव [1]अट्ठ य बारस-वग्गो अट्ठं सयं च चउदालं।
अट्ठं एदे कमसो हारा सत्तेसु ठाणेसु ॥२३३॥

$$\frac{\equiv}{३४३} । \frac{४८४}{९} \Big| \frac{\equiv}{३४३} । \frac{२२७}{९} \Big| \frac{\equiv}{३४३} । \frac{३९९}{८} \Big| \frac{\equiv}{३४३} । \frac{१९९३३}{१४४} \Big| \frac{\equiv}{३४३} । \frac{१९९}{८} \Big|$$

$$\Big| \frac{\equiv}{३४३} । \frac{६५०९}{१४४} \Big| \frac{\equiv}{३४३} । \frac{४५}{८} \Big|$$

अर्थ :—नौ, नौ, आठ, बारह का वर्ग, आठ, एक सौ चवालीस और आठ, ये क्रमशः सात स्थानोंमें सात—भागहार हैं ॥२३३॥

विशेषार्थ :—इन सातों खण्डोंके घनफलोंका योग इसप्रकार है :—

---

१. द. ब. अट्ठं बारसवग्गे णवणव अट्ठय। ज. क. ठ. अट्ठं बारसवग्गे णवणव अट्ठय।

$\frac{४८४}{९}+\frac{२२७}{९}+\frac{३९९}{८}+\frac{१९९३३}{१४४}+\frac{१९९}{८}+\frac{६५०९}{१४४}+\frac{४५}{८}=$

$\frac{७७४४+३६३२+७१८२+१९९३३+३५८२+६५०९+८१०}{१४४}=\frac{४९३९२}{१४४}$

अर्थात् लोकमन्दरमेरुका सम्पूर्ण घनफल ३४३ घनराजू प्राप्त होता है।

दूष्यलोकका घनफल और उसकी आकृति

[1]सत्त-हिद-दु-गुण-लोगो विंदफलं बाहिरुभय-बाहूणं।

| ≡ २ / ७ | ≡ २ / ५ |

पण-भजि-दु-गुणं लोगो दूसस्सब्भंतरोभय-भुजाणं ।।२३४।।

अर्थ :—दूष्यक्षेत्रकी बाहरी दोनों भुजाओंका घनफल सातसे भाजित और दोसे गुणित लोकप्रमाण होता है। तथा भीतरी दोनों भुजाओंका घनफल पाँचसे भाजित और दोसे गुणित लोकप्रमाण है ।।२३४।।

विशेषार्थ :—दूष्य नाम डेरेका है। ३४३ घनराजू प्रमाण वाले लोककी रचना दूष्याकार करनेपर इसकी आकृति इसप्रकार से होगी :—

---
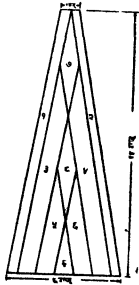
१. ब. ठ. सत्त हिद दुगु लोगो। द. सत्त हिद दुग्गु लोगो।

इस लोक दूष्याकारकी भूमि ६ राजू, मुख एक राजू, ऊँचाई १४ राजू और वेध ७ राजू है। इस दूष्य क्षेत्रकी दोनों बाहरी भुजाओं अर्थात् क्षेत्र संख्या १ और २ का घनफल इसप्रकार है :—

संख्या एक और दोके क्षेत्रोंमें भूमि और मुखका अभाव है। क्षेत्र विस्तार $\frac{१}{२}$ राजू, ऊँचाई १४ राजू और वेध ७ राजू है, अत: $\frac{१}{२} \times \frac{१४}{१} \times \frac{७}{१} \times \frac{२}{१} = ९८$ घनराजू घनफल दोनों बाहरी भुजाओं वाले क्षेत्रोंका है।

भीतरी दोनों भुजाओंका अर्थात् क्षेत्र संख्या ३ और ४ का घनफल इसप्रकार है—इन क्षेत्रोंकी ऊँचाईमें मुख $\frac{३५}{५}$ और भूमि $\frac{६३}{५}$ राजू है। दोनोंका योग $\frac{३५}{५} + \frac{६३}{५} = \frac{९८}{५}$ राजू हुआ। इनका विस्तार एक राजू और वेध (मोटाई) ७ राजू है, अत: $\frac{९८}{५} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{१} \times \frac{७}{१} \times \frac{२}{१} = \frac{६८६}{५}$ अर्थात् १३७$\frac{१}{५}$ घनराजू दोनों भीतरी क्षेत्रोंका घनफल प्राप्त होता है।

तस्साइं लहु-बाहुं [1]छग्गुण-लोओ अ पणत्तीस-हिदो ।
विंदफलं जव-खेत्ते लोओ [2]सत्तेहि पविहत्तो ।।२३५।।

$$\left| \frac{\equiv}{३५} \; ६ \right| \equiv ७$$

अर्थ :—इसी क्षेत्रमें उसके लघु बाहुका घनफल छहसे गुणित और पैंतीससे भाजित लोक-प्रमाण, तथा यवक्षेत्रका घनफल सातसे विभक्त लोकप्रमाण है ।।२३५।।

विशेषार्थ :—अभ्यन्तर लघु बाहुओं अर्थात् क्षेत्र संख्या ५ और ६ का घनफल इसप्रकार है—दोनों क्षेत्रोंकी भूमि ऊँचाईमें $\frac{१४}{५}$ और मुख $\frac{२८}{५}$ राजू है। दोनोंका योगफल ($\frac{२८}{५} \times \frac{१४}{५}$) $= \frac{४२}{५}$ राजू है, अत: $\frac{४२}{५} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{१} \times \frac{७}{१} \times \frac{२}{१} = \frac{२९४}{५}$ अर्थात् ५८$\frac{४}{५}$ घनराजू हुआ। आकृतिके मध्यमें बने हुए दो पूर्ण यव और एक अर्धयव अर्थात् क्षेत्र संख्या ७–८ और ९ का घनफल इसप्रकार है :—

अर्धयवकी भूमि १ राजू, मुख ०, ऊँचाई $\frac{२८}{५}$ राजू तथा वेध ७ राजू है। आकृतिमें दो यव पूर्ण एवं एक यव आधा है, अत: $\frac{५}{२}$ से गुणित करने पर घनफल $= (\frac{१}{१} + ०) \times \frac{१}{२} \times \frac{२८}{५} \times \frac{७}{१} \times \frac{५}{२} =$ ४९ घनराजू यव क्षेत्रोंका घनफल प्राप्त होता है। इन चारों क्षेत्रोंका अर्थात् दूष्यक्षेत्रका एकत्र घनफल इसप्रकार होगा :—

९८ + १३७$\frac{१}{५}$ + ५८$\frac{४}{५}$ + ४९ = ३४३ घनराजू घनफल प्राप्त होता है।

---

१. द. क. ज. ठ. तग्गुणलोओ अप्पट्टिसहिदाओ। ब. तग्गुणलोओ अ पट्टिसहिदाओ। २ द. ब. क. ज. ठ. सत्त वि।

गिरिकटक लोकका घनफल और उसकी आकृति

एक्कस्सि गिरिगडरा विदफलं पंचतीस हिद लोगो ।
तं पणतीसप्पहिदं सेढि-घणं घणफलं तम्हि ।।२३६।।

| $\frac{\equiv}{३५}$ | $\equiv$ |

अर्थ :—एक गिरिकटकका घनफल लोकके घनफलमें ३५ का भाग देनेपर ($\frac{\equiv}{३५}$ रूप में) प्राप्त होता है। जब इसमें ($\frac{३४३}{३५}$ में) ३५ का गुणा किया जाता है तब (सम्पूर्ण गिरिकटक लोकका) घनफल श्रेणिघन ($\equiv$ रूपमें) प्राप्त हो जाता है ।।२३६।।

विशेषार्थ —३४३ घनराजू प्रमाण वाले लोकका गिरिकटककी रचनाके माध्यमसे घनफल निकाला गया है। गिरि (पर्वत) नीचे चौड़े और ऊपर सँकरे होते हैं किन्तु कटक इनसे विपरीत अर्थात् नीचे सँकरे और ऊपर चौड़े होते हैं। यथा :—
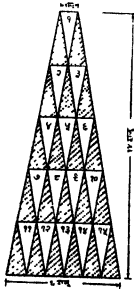
उपर्युक्त लोकगिरिकटकके चित्रणमें २० गिरि और १५ कटक प्राप्त होते हैं, इन गिरि और कटक दोनोंका विस्तार एवं ऊँचाई आदि सदृश ही हैं। इनका घनफल इसप्रकार है :—

एक गिरि या कटकका भूमि-विस्तार १ राजू, मुख ०, ऊँचाई $\frac{१४}{५}$ राजू और वेध ७ राजू है अतः { ($\frac{१}{१}$ + ०) = $\frac{१}{१}$ } × $\frac{१}{२}$ × $\frac{१४}{५}$ × $\frac{७}{१}$ = $\frac{४९}{५}$ घनराजू एक गिरि या एक कटकका घनफल प्राप्त हुआ। जब एक गिरि या कटकका घनफल $\frac{३४३}{३५}$ अर्थात् $\frac{४९}{५}$ घनराजू है तब (२० + १५) = ३५ गिरि-कटकोंका कितना घनफल होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{४९}{५}$ × $\frac{३५}{१}$ = ३४३ घनराजू अर्थात् ३५ गिरिकटकोंमे व्याप्त सम्पूर्ण लोकका घनफल ३४३ घनराजू प्राप्त होता है।

अधोलोकका घनफल कहनेकी प्रतिज्ञा

एवं अट्ठ-वियप्पा सयलजगे वण्णिदा समासेण।
एण्हं अट्ठ-पयारं हेट्ठिम लोयस्स वोच्छामि ।।२३७।।

अर्थ :—इसप्रकार आठ विकल्पोसे समस्त लोकोंका सक्षेपमें वर्णन किया गया है। इसी प्रकार अधोलोकके आठ प्रकारोंका वर्णन करूँगा ।।२३७।।

सामान्य एव ऊर्द्धायत (आयत चतुरस्र) अधोलोकका घनफल एव आकृतियाँ

सामण्णे विदफलं सत्तहिदो होदि चउगुणो लोगो।
विदिए वेद भुजाओ सेढी कोडी य चउरज्जू ।।२३८।।

| $\frac{\equiv}{७}$ ४ | — | — | $\frac{-}{७}$ ४ |

अर्थ :—सामान्य अधोलोकका घनफल लोकके घनफल (≡) में ४ का गुणा एवं ७ का भाग देनेपर प्राप्त होता है और दूसरे आयत चतुरस्र क्षेत्रकी भुजा एव वेध श्रेणि प्रमाण तथा कोटि ४ राजू प्रमाण है। अर्थात् भुजा ७ राजू, वेध सात राजू और कोटि चार राजू प्रमाण है ।।२३८।।

विशेषार्थ :—१. सामान्य अधोलोकका घनफल—

सामान्य अधोलोककी भूमि ७ राजू और मुख एक राजू है, इन दोनोंको जोड़कर उसका आधा करनेसे जो लब्ध प्राप्त हो उसमें ७ राजू ऊँचाई और ७ राजू वेधका गुणा करनेसे घनफल प्राप्त होता है। यथा—(७ + १) = ८ ÷ २ = ४ × ७ × ७ = १९६ घनराजू सामान्य अधोलोकका घनफल है। इसका चित्रण इसप्रकार है—
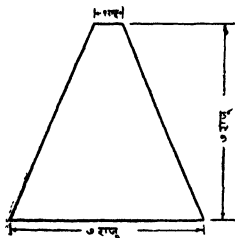
२. आयतचतुरस्र अर्थात् ऊर्द्धायत अधोलोकका घनफल :—

ऊर्द्धता अर्थात् लम्बे और चौकोर क्षेत्रके घनफलको ऊर्द्धायत घनफल कहते हैं। सामान्य अधोलोककी चौड़ाईके मध्यमें अ और ब नामके दो खण्ड कर ब खण्डके समीप अ खण्डको उल्टा रख देनेसे आयत चतुरस्रक्षेत्र बन जाता है। यथा—
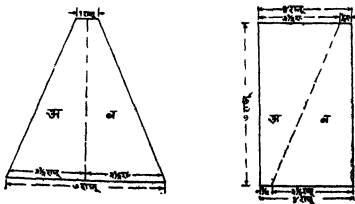
घनफल—इस आयतचतुरस्र (ऊर्द्धायत) क्षेत्रको भुजा, श्रेणी प्रमाण अर्थात् ७ राजू, कोटि ४ राजू और वेध ७ राजू है, अतः ७×४×७=१९६ घनराजू आयतचतुरस्र अधोलोकका घनफल है।

३. तिर्यगायत अधोलोकका घनफल :—(त्रिलोकसार गा० ११५ के आधारसे)

जिस क्षेत्रकी लम्बाई अधिक और ऊँचाई कम हो उसे तिर्यगायत क्षेत्र कहते हैं। अधोलोक-की भूमि ७ राजू और मुख १ राजू है। ७ राजू ऊँचाई के समान दो भाग करने पर नीचे (संख्या १) का भाग ३½ राजू ऊँचा, ७ राजू भूमि, ४ राजू मुख और ७ राजू वेध (मोटाई) वाला हो जाता है। ऊपरके भागके चौड़ाईकी अपेक्षा दो भाग करनेपर प्रत्येक भाग ३½ राजू ऊँचा, २ राजू भूमि, ½ राजू मुख और ७ राजू वेध वाला प्राप्त होता है। इन दोनों (संख्या २ और संख्या ३) भागोंको नीचे वाले (संख्या १) भागके दायी और बायी ओर उलट कर स्थापन करनेसे ३½ राजू ऊँचा और आठ राजू लम्बा तिर्यगायत क्षेत्र बन जाता है।
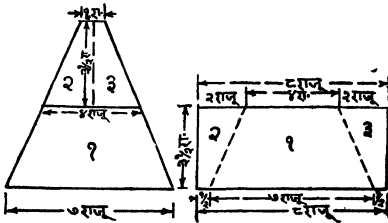
घनफल :—यह आयतक्षेत्र ८ राजू लम्बा, ३½ राजू चौड़ा और ७ राजू मोटा है, अतः $\frac{८}{१} \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{१}$ = १९६ घनराजू तिर्यगायत अधोलोकका घनफल प्राप्त हो जाता है।

यवमुरज अधोलोकको आकृति एवं घनफल

खेत्त-जवे विदफलं चोद्दस-भजिदो य तिय-गुणो लोओ।
मुरव-मही विदफलं चोद्दस भजिदो य पण-गुणो लोओ॥२३९॥

| $\frac{\equiv}{१४}$ ३ | $\frac{\equiv}{१४}$ ५ |

अर्थ :—(यव-मुरज क्षेत्रमें) यवाकार क्षेत्रका घनफल चौदहसे भाजित और तीनसे गुणित लोक प्रमाण तथा मुरजक्षेत्रका घनफल चौदहसे भाजित और पाँचसे गुणित लोकप्रमाण है ।।२३६।।

४. अधोलोकको यव (जौ अन्न) और मुरज (मृदङ्ग) के आकारमें विभाजित करना यवमुरजाकार कहलाता है । इसकी आकृति इसप्रकार है :—
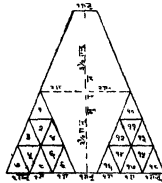
उपर्युक्त चित्रगत अधोलोकमें यवक्षेत्रका घनफल—

अधोलोकके दोनों पार्श्वभागोंमें १८ अर्धयव प्राप्त होते हैं । एक अर्धयवकी भूमि १ राजू, मुख०, उत्सेध $\frac{७}{६}$ राजू और वेध ७ राजू है, अत: $\frac{१}{२}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{६}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{१२}$ घनराजू घनफल प्राप्त हुआ । यत: १ अर्धयवका $\frac{४९}{१२}$ घनराजू घनफल है अत: १८ अर्धयवोका $\frac{४९}{१२}\times\frac{१८}{१}=\frac{१४७}{२}$ अर्थात् ७३$\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है । लोक (३४३) को १४ से भाजित करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे ३ से गुणित करदेने पर भी (३४३ ÷ १४ = २४$\frac{१}{२}$) × ३ = ७३$\frac{१}{२}$ घनराजू प्राप्त होते हैं, इसीलिए गाथामे चौदहसे भाजित और तीनसे गुणित लोक-प्रमाण घनफल कहा है ।

मुरजका घनफल :—मुरजाकार क्षेत्रको बीचसे आधा करनेपर अर्धमुरजकी भूमि ४ राजू, मुख १ राजू, उत्सेध ३$\frac{१}{२}$ राजू और वेध ७ राजू है, अत: (४ + १ = $\frac{५}{१}$) $\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{२}\times\frac{७}{१}=\frac{२४५}{४}$ घनराजू घनफल हुआ । यत: $\frac{१}{२}$ मुरज का घनफल $\frac{२४५}{४}$ घनराजू है अत: सम्पूर्ण मुरजका $\frac{२४५}{४}\times\frac{२}{१}=\frac{२४५}{२}$ अर्थात् १२२$\frac{१}{२}$ घनराजू हुआ । लोक (३४३) को १४ से भाजित कर, लब्धको ५ से गुणित

करने पर भी (३४३ ÷ १४ = २४½) × ५ = १२२½ घनराजू प्राप्त होता है, इसीलिए गाथामें चौदहसे भाजित और पाँचसे गुणित मुरजका घनफल कहा है। इसप्रकार ७३½ + १२२½ = १९६ घनराजू यवमुरज अधोलोकका घनफल प्राप्त होता है।

यवमध्य अधोलोकका घनफल एवं आकृति

घणफलमेक्कम्मि जवे लोओ [1]बादाल-भाजिदो होदि।
तं चउवीसप्पहदं सत्त-हिदो चउ-गुणो लोओ ॥२४०॥

| ≡/४२ | ≡ ४/७ |

अर्थ :—यवाकार क्षेत्रमें एक यवका घनफल बयालीससे भाजित लोकप्रमाण है। उसको चौबीससे गुणा करनेपर सातसे भाजित और चारसे गुणित लोकप्रमाण समस्त यवमध्यक्षेत्रका घनफल निकलता है ॥२४०॥

५. यवमध्य अधोलोकका घनफल :—

विशेषार्थ :—अधोलोकके सम्पूर्ण क्षेत्रमें यवोंकी रचना करनेको यवमध्य कहते हैं। सम्पूर्ण अधोलोकमें यवोंकी रचना करनेपर २० पूर्ण यव और ८ अर्धयव प्राप्त होते हैं। जिनकी आकृति इसप्रकार है :—

१. क. बादार ए भाजिदो।
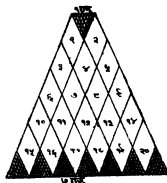
आकृतिमें बने हुए ८ अर्धयवोंके ४ पूर्ण यव बनाकर सम्पूर्ण अधोलोकमें (२०+४)=२४ पूर्ण यवोंकी प्राप्ति होती है। प्रत्येक यवके मध्यकी चौड़ाई १ राजू और ऊपर-नीचेकी चौड़ाई शून्य है तथा ऊँचाई ७/३ राजू और वेध ७ राजू है, अतः १/२ × १/१ × ७/३ × ७/१ = ४९/६ अर्थात् ८१/६ घनराजू एक यवका घनफल है। लोक (३४३) में ४२ का भाग देनेपर भी (३४३/४२) = ८१/६ प्राप्त होते हैं, इसीलिए गाथामें एक यवका घनफल बयालीससे भाजित लोकप्रमाण कहा गया है।

एक यवका घनफल ४९/६ घनराजू है अतः २४ यवोंका घनफल ४९/६ × २४/१ = १९६ घनराजू प्राप्त होता है। लोक (३४३) को ७ से भाजितकर ४ से गुणा करने पर भी (३४३÷७=४९×४) = १९६ घनराजू ही आते हैं इसीलिए गाथामे २४ यवोंका घनफल सातसे भाजित और चारसे गुणित लोकप्रमाण कहा गया है।

मन्दरमेरु अधोलोकका घनफल और उसकी आकृति

रज्जूवो ते-भागं[1] बारस-भागो तहेव सत्त-गुणो।
तेदालं[2] रज्जूओ बारस-भजिदा हवंति उड्ढुड्ढं ॥२४१॥

१४ । २८ । ७ । ७/१२ । ७ । ४३/१२ ।

सत्त-हद-बारसंसा[3] दिवड्ढ-गणिदा हवेइ रज्जू य।
मंदर-सरिसायामे उच्छेहा होइ खेत्तम्मि ॥२४२॥

। ८४७ । ५४३ ।

अर्थ :—मन्दरके सदृश आयाम वाले क्षेत्रमें ऊपर-ऊपर ऊँचाई, क्रमसे एक राजूके चार भागोंमेसे तीनभाग, बारह भागोंमेसे सात भाग, बारहसे भाजित तेतालीस राजू, राजूके बारह भागोंमें से सात भाग और डेढ राजू है ॥२४१-२४२॥

६ मन्दरमेरु अधोलोकका घनफल :—

विशेषार्थ :—अधोलोकमें सुदर्शन मेरुके आकारकी रचना द्वारा घनफल निकालनेको मन्दर घनफल कहते हैं।

अधोलोक सातराजू ऊँचा है, उसमें नीचेसे ऊपरकी ओर (१/२+१/४) = ३/४ राजूके प्रथम व द्वितीय खण्ड बने हैं। इनमें १/२ राजू, पृथिवीमें सुदर्शनमेरुकी जड़ अर्थात् १००० योजनके और १/४

---

१. द. ब. ज. क. ठ. तेदाल। २. द. ज. ठ. तेलंतं, ब. क. तेलम। ३. ब. क. बारसंसो।

राजू, भद्रशालवनसे नन्दनवन तक की ऊँचाई अर्थात् ५०० योजनके प्रतीक हैं। इनके ऊपरका तृतीय खण्ड $\frac{७}{१२}$ राजूका है जो नन्दनवनसे ऊपर समविस्तार क्षेत्र अर्थात् ११००० का द्योतक है। इसके ऊपरका चतुर्थखण्ड $\frac{४३}{१२}$ राजूका है, जो समविस्तारसे ऊपर सौमनसवन तक अर्थात् ५१५०० योजनके स्थानीय है। इसके ऊपर पंचमखण्ड $\frac{७}{१२}$ राजूका है जो सौमनसवनके ऊपर वाले समविस्तार अर्थात् ११००० योजनका प्रतीक है। इसके ऊपर षष्ठखण्ड $\frac{३}{२}$ राजूका है, जो समविस्तारसे ऊपर पाण्डुकवन तक अर्थात् २५००० योजनका द्योतक है। इन समस्त खण्डोंका योग ७ राजू होता है।

यथा—$(\frac{१}{२}+\frac{१}{४})=\frac{३}{४}+\frac{७}{१२}+\frac{४३}{१२}+\frac{७}{१२}+\frac{३}{२}=\frac{८४}{१२}=$ ७ राजू।

अट्ठावीस-विहत्ता सेढी मंदर-समम्मि [1]तड-वासे।
[2]चउ-तड-करणक्खंडिद-खेत्तेणं चूलिया होदि ॥२४३॥

। २८१ ।

अट्ठावीस-विहत्ता सेढी चूलीय होदि मुह-रुंदं।
तत्तिगुणं भू-वासं सेढी बारस-हिदा तदुच्छेहो ॥२४४॥

। २८१ । २८३ । १२ ।

अर्थ :—मन्दर सदृश क्षेत्रमें तट भागके विस्तारमेंसे अट्ठाईससे विभक्त जगच्छ्रेणी प्रमाण चार तटवर्ती करणाकार खण्डित क्षेत्रोंसे चूलिका होती है। अर्थात् तटवर्ती प्रत्येक त्रिकोणोंकी भूमि (२८१) $\frac{१}{४}$ राजू प्रमाण है ॥२४३॥

अर्थ :—इस चूलिकाका मुख विस्तार अट्ठाईससे विभक्त जगच्छ्रेणी (२८१) अर्थात् $\frac{१}{४}$ राजू, भूमि विस्तार इससे तिगुना (२८३) अर्थात् $\frac{३}{४}$ राजू और ऊँचाई बारहसे भाजित जगच्छ्रेणी (१२) अर्थात् $\frac{७}{१२}$ राजू प्रमाण है ॥२४४॥

विशेषार्थ :—दोनों समविस्तार क्षेत्रोंके दोनों पार्श्वभागोंमें चार त्रिकोण काटे जाते हैं, उनमेंसे प्रत्येक त्रिकोणकी भूमि $\frac{१}{४}$ राजू और ऊँचाई $\frac{७}{१२}$ राजू है। इन चारों त्रिकोणोंमेंसे तीन त्रिकोण सीधे और एक त्रिकोणको पलटकर उल्टा रखनेसे चूलिका बन जाती है, जिसकी भूमि $\frac{२१}{२८}$ अर्थात् $\frac{३}{४}$ राजू, मुख $\frac{७}{२८}$ अर्थात् $\frac{१}{४}$ राजू और ऊँचाई $\frac{७}{१२}$ राजू प्रमाण है।

इस मन्दराकृतिका चित्रण इसप्रकार है—
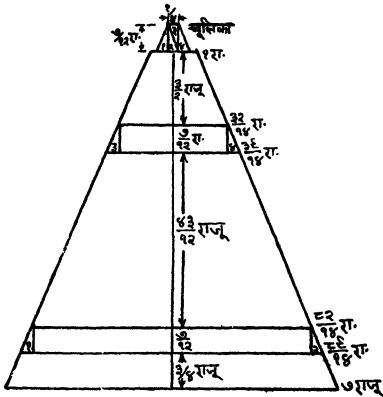
---

१. द. ब. ज. क. ठ. तलवासे। २. द. ब. ज. क. ठ. चउतडकारणखंडिदखेत्तेण।

अट्ठाणवदि-विहत्तं सत्तट्ठाणेसु सेढि उड्ढुड्ढं ।
ठविदूण वास-हेदुं गुणगारं वत्तइस्सामि ॥२४५॥

[1]अडणउदी बाणउदी उणणवदी तह कमेण बासीदी ।
उणदालं बत्तीसं चोद्दस इय होंति गुणगारा ॥२४६॥

ड्ड९८ । ड्ड९२ । ड्ड८९ । ड्ड८२ । ड्ड३९ । ड्ड३२ । ड्ड१४ ।

अर्थ :—अट्ठानवेसे विभक्त जगच्छ्रेणीको ऊपर-ऊपर सात स्थानोंमें रखकर विस्तार लानेके लिए गुणाकार कहता हूं ॥२४५॥

अर्थ :—अट्ठानवे, बानवे, नवासी, बयासी, उनतालीस, बत्तीस और चौदह, ये क्रमशः उक्त सात स्थानोंमें सात गुणाकार हैं ॥२४६॥

---

१. क. गुणगारा पणणवदि तह कमेण बासीदी ।

विशेषार्थ :—९८ से विभक्त जगच्छ्रेणी अर्थात् $\frac{७}{९८}$ अर्थात् $\frac{१}{१४}$ को ऊपर-ऊपर सात स्थानों पर रखकर क्रमसे ९८, ९२, ८९, ८२, ३९, ३२ और १४ का गुणा करनेसे प्रत्येक क्षेत्रका आयाम प्राप्त हो जाता है। यह आयाम निम्नलिखित प्रक्रियासे भी प्राप्त होता है। यथा :—

इस मन्दराकृति अधोलोककी भूमि ७ राजू और मुख १ राजू (७—१) = ६ राजू अवशेष रहा। क्योंकि ७ राजूकी ऊँचाई पर ६ राजूकी हानि होती है, अतः $\frac{१}{२}$ राजूपर ($\frac{६}{७}\times\frac{१}{२}$) = $\frac{३}{७}$ राजूकी हानि हुई। इसे ७ राजू आयाममेंसे घटा देनेपर ($\frac{७}{१}$ — $\frac{३}{७}$) = $\frac{४६}{७}$ राजू आयाम $\frac{१}{२}$ राजूकी ऊँचाईके उपरितन क्षेत्रका है। [यहाँ $\frac{१}{१४}\times\frac{९८}{१}$ = ७ राजू भूमि विस्तार और $\frac{१}{१४}\times\frac{९२}{१}$ = ६$\frac{४}{७}$ राजू सुमेरुकी जड़के ऊपरका विस्तार है।] क्योंकि ७ राजूपर ६ राजूकी हानि होती है अतः $\frac{१}{४}$ पर ($\frac{६}{७}\times\frac{१}{४}$) = $\frac{३}{१४}$ राजूकी हानि हुई; इसे उपरितन विस्तार $\frac{४६}{७}$ मेंसे घटानेपर ($\frac{४६}{७}$—$\frac{३}{१४}$) = $\frac{८९}{१४}$ अर्थात् ६$\frac{५}{१४}$ राजू नन्दनवनकी तलहटीका विस्तार है। क्योंकि ७ राजूपर ६ राजूकी हानि होती है अतः $\frac{७}{१२}$ राजूपर ($\frac{६}{७}\times\frac{७}{१२}$) = $\frac{१}{२}$ राजूकी हानि हुई। इसे नन्दनवनकी तलहटीके विस्तार $\frac{८९}{१४}$ राजूमेसे घटा देनेपर $\frac{८९}{१४}$ — $\frac{१}{२}$ = $\frac{८२}{१४}$ = ५$\frac{६}{७}$ राजू समविस्तारके उपरितन क्षेत्रका आयाम है।

जब ७ राजूकी ऊँचाईपर ६ राजूकी हानि होती है तब $\frac{४३}{१२}$ राजूपर ($\frac{६}{७}\times\frac{४३}{१२}$) = $\frac{४३}{१४}$ अर्थात् ३$\frac{१}{१४}$ राजूकी हानि हुई। इसे उपरितन आयाम $\frac{८२}{१४}$ राजूमेसे घटादेने पर $\frac{८२}{१४}$—$\frac{४३}{१४}$ = $\frac{३९}{१४}$ या २$\frac{११}{१४}$ राजू सौमनसवनके उपरितन क्षेत्रका आयाम है, क्योकि ७ राजू पर ६ राजूकी हानि होती है अतः $\frac{७}{१२}$ राजू पर ($\frac{६}{७}\times\frac{७}{१२}$) = $\frac{१}{२}$ राजूकी हानि हुई, इसे $\frac{३९}{१४}$ राजू मे से घटा देने पर $\frac{३९}{१४}$—$\frac{१}{२}$ = $\frac{३२}{१४}$ अर्थात् २$\frac{२}{७}$ राजू समविस्तार के उपरितन क्षेत्रका आयाम है। क्योंकि ७ राजू पर ६ राजू की हानि होती है अतः $\frac{३}{२}$ राजू पर ($\frac{६}{७}\times\frac{३}{२}$) = $\frac{९}{७}$ राजूकी हानि हुई। इसे उपरिम विस्तार $\frac{३२}{१४}$ राजूमें से घटा देने पर ($\frac{३२}{१४}$—$\frac{९}{७}$) = $\frac{१४}{१४}$ अर्थात् १ राजूका विस्तार पाण्डुकवनकी तलहटीका आयाम है॥

हेट्ठादो रज्जु-घणा सत्तट्ठाणेसु ठविय उड्ढुड्ढे।
[1]गुणगार-भागहारे विंदफले तण्णिरूवेमो ॥२४७॥
गुणगारा पण्णउदी [2]एक्कासीदेहि जुत्तमेक्क-सयं।
[3]सगसीदेहिं दु-सयं तियधियदुसया पण-सहस्सा ॥२४८॥
अडवीसं उणहत्तरि, उणवण्णं उवरि-उवरि हारा य।
चउ चउवग्गं बारस अडदालं ति-चउक्क-चउवीसं ॥२४९॥

---

१. द. ठेविदूण वासहेदुं, ब. ज. ठ. ठविदूण वासहेदुं, क. ठविदूण वासहेदुं गुणगारं वत्त इस्सामि।
२. द. ब. क. ज. ठ. एक्कासेदेहिं। ३. द. ब. समतीसेदि दुस्सतियधियदुसेवा।

$\frac{\equiv}{३४३} । \frac{९५}{४}$ | $\frac{\equiv}{३४३} । \frac{१८१}{१६}$ | $\frac{\equiv}{३४३} । \frac{२८७}{१२}$ | $\frac{\equiv}{३४३} । \frac{५२०३}{४८}$ | $\frac{\equiv}{३४३} । \frac{२८}{३}$ |

$\frac{\equiv}{३४३} । \frac{६९}{४}$ | $\frac{\equiv}{३४३} । \frac{४९}{२४}$ |

अर्थ :—नीचेसे ऊपर-ऊपर सात स्थानोंमें घनराजूको रखकर घनफलको जाननेके लिए गुणकार और भागहारको कहता हूं ।।२४७।।

उक्त सात स्थानोंमें पंचानवे, एक सौ इक्यासी, दो सौ सतासी, पाँच हजार दो सौ तीन, अट्ठाईस, उनहत्तर और उनचास ये सात गुणकार तथा चार, चारका वर्ग (१६), बारह, अड़तालीस, तीन, चार और चौबीस ये सात भागहार हैं ।।२४८-२४९।।

विशेषार्थ :—मन्दराकृति अधोलोकके सात खण्ड किये गये हैं, इन सातों खण्डोंका पृथक्-पृथक् घनफल इसप्रकार है :—

प्रथमखण्ड :—भूमि ७ राजू, मुख $\frac{९२}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{१}{२}$ राजू और वेध ७ राजू है अतः $(\frac{७}{१}+\frac{९२}{१४})=\frac{१९०}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१}=\frac{९५}{४}$ घनराजू प्रथमखण्डका घनफल है ।

द्वितीयखण्ड :—इसकी भूमि $\frac{९२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{८९}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{१}{४}$ राजू, वेध ७ राजू है, अतः $(\frac{९२}{१४}+\frac{८९}{१४})=\frac{१८१}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{४}\times\frac{७}{१}=\frac{१८१}{१६}$ घनराजू द्वितीय खण्डका घनफल है ।

तृतीय खण्ड :—इसकी भूमि $\frac{८२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{८२}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{१२}$ राजू और वेध ७ राजू है अतः $(\frac{८२}{१४}+\frac{८२}{१४})=\frac{१६४}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१२}\times\frac{७}{१}=\frac{२८७}{१२}$ घनराजू तृतीय खण्डका घनफल है ।

चतुर्थखण्ड :—इसकी भूमि $\frac{८२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{३९}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{४३}{१२}$ राजू और वेध ७ राजू है अतः $(\frac{८२}{१४}+\frac{३९}{१४})=\frac{१२१}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{४३}{१२}\times\frac{७}{१}=\frac{५२०३}{४८}$ घनराजू चतुर्थखण्डका घनफल है ।

पंचमखण्ड :—इसकी भूमि $\frac{३२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{३२}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{१२}$ राजू और वेध ७ राजू है, अतः $(\frac{३२}{१४}+\frac{३२}{१४})=\frac{६४}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१२}\times\frac{७}{१}=\frac{२८}{३}$ घनराजू पंचमखण्डका घनफल है ।

नोट :—तृतीय और पंचमखण्डकी भूमि क्रमशः $\frac{८९}{१४}$ राजू और $\frac{३९}{१४}$ राजू थी; किन्तु चार त्रिकोण कट जानेके कारण $\frac{८२}{१४}$ और $\frac{३२}{१४}$ राजू ही ग्रहण किये गये हैं ।

षष्ठ खण्ड :—इसकी भूमि $\frac{३२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{१४}{१४}$ राजू, ऊँचाई $\frac{३}{२}$ राजू और वेध ७ राजू है अतः $(\frac{३२}{१४}+\frac{१४}{१४})=\frac{४६}{१४}\times\frac{१}{२}\times\frac{३}{२}\times\frac{७}{१}=\frac{६९}{४}$ घनराजू षष्ठ खण्डका घनफल है ।

सप्तम खण्ड :—इसकी भूमि $\frac{२१}{२८}$ राजू, मुख $\frac{७}{२८}$ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{१२}$ राजू और वेध ७ राजू है अतः $(\frac{२१}{२८}+\frac{७}{२८})=\frac{२८}{२८}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१२}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{२४}$ घनराजू सप्तमखण्ड अर्थात् चूलिकाका घनफल है ।

इस प्रकार—$\frac{९५}{४}+\frac{१८१}{१६}+\frac{२८७}{१२}+\frac{५२०३}{४८}+\frac{२८}{३}+\frac{६९}{४}+\frac{४९}{२४}$

$=\frac{११४०+५४३+११४८+५२०३+४४८+८२८+९८}{}=\frac{९४०८}{४८}$

अर्थात् १९६ घनराजू सम्पूर्ण मन्दरमेरु अधोलोकका घनफल है ।

दूष्य अधोलोककी आकृति

७. दूष्य अधोलोकका घनफल :—दूष्यका अर्थ डेरा [TENT] होता है अधोलोकके मध्यक्षेत्रमें डेरोंकी रचना करके घनफल निकालनेको दूष्य घनफल कहते हैं । इसकी आकृति इसप्रकार है :—
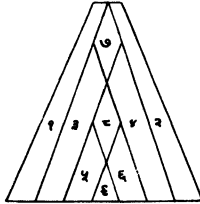
दूष्य अधोलोकका घनफल

चोद्दस-भजिदो [1]ति-गुणो विंदफलं बाहिरुभय-बाहूणं ।
लोओ पंच-विहत्तो[2] वूसस्सब्भंतरोभय-भुजाणं ॥२५०॥

| $\equiv$ १४ ३ | $\equiv$ ५ |

[3]तस्साइं लहु-बाहू ति-गुणिय लोओ य पंचतीस-हिदो ।
विंदफलं जव-खेत्ते चोद्दस-भजिदो हवे लोओ ॥२५१॥

| $\equiv$ ३५ ३ | $\equiv$ १४ |

१. द. ब. ज. क. ठ. विवदि । २. द. ब. ज. ठ. एक विहत्त । ३. ब. क. ज. ठ. तत्ताइं ।

अर्थ :—दूष्य क्षेत्रमें १४ से भाजित और ३ से गुणित लोकप्रमाण बाह्य उभय बाहुओंका और पाँचसे विभक्त लोक प्रमाण अभ्यन्तर दोनों बाहुओंका घनफल है ।।२५०।।

इसी क्षेत्रमें लघु बाहुओं का घनफल तीनसे गुणित और पैंतीससे भाजित लोक प्रमाण तथा यवक्षेत्रका घनफल चौदहसे भाजित लोक प्रमाण है ।।२५१।।

विशेषार्थ :—इस दूष्य क्षेत्रकी बाह्य भुजा अर्थात् संख्या १ और २ का घनफल निम्न-प्रकार है :—

भूमि १ राजू, मुख $\frac{१}{२}$ राजू, ऊँचाई ७ राजू और वेध ७ राजू है अतः ($\frac{१}{१}+\frac{१}{२}$)= $\frac{३}{२}\times\frac{१}{२}\times\frac{७}{१}\times\frac{७}{१}\times\frac{२}{१}=\frac{१४७}{२}$ अर्थात् ७३$\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल है । लोक (३४३) को १४ से भाजित कर जो लब्ध आवे उसको ३ से गुणित कर देनेपर भी (३४३÷१४=२४$\frac{१}{२}$ × ३)=७३$\frac{१}{२}$ घनराजू ही आते हैं इसलिए गाथामें बाह्य बाहुओंका घनफल चौदहसे भाजित और तीनसे गुणित (७३$\frac{१}{२}$) कहा है ।

अभ्यन्तर दोनों बाहुओं अर्थात् क्षेत्र संख्या ३ और ४ का घनफल इसप्रकार है—(ऊँचाईमें भूमि $\frac{२८}{७}$ + $\frac{२१}{७}$ मुख = $\frac{४९}{७}$) $\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१}\times\frac{२}{१}=\frac{३४३}{५}$ अर्थात् ६८$\frac{३}{५}$ घनराजू घनफल है, इसीलिए गाथामें पाँचसे भाजित लोकप्रमाण घनफल अभ्यन्तर बाहुओंका कहा है ।

अभ्यन्तर दोनों लघु-बाहुओं अर्थात् क्षेत्र सख्या ५ और ६ का घनफल इसप्रकार है—(ऊँचाईमें भूमि $\frac{१४}{७}$ + $\frac{७}{७}$ मुख = $\frac{२१}{७}$) $\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{१}\times\frac{७}{१}\times\frac{२}{१}=\frac{१०२९}{३५}$ = २९$\frac{२}{५}$ घनराजू घनफल है । लोक (३४३) को तीनसे गुणित करके लब्धमें ३५ का भाग देनेपर भी (३४३ × ३ = १०२९ ÷ ३५) = २९$\frac{२}{५}$ घनराजू ही प्राप्त होते हैं इसलिए गाथामें तीनसे गुणित और ३५ से भाजित अभ्यन्तर दोनों लघु-बाहुओंका घनफल कहा गया है ।

२$\frac{१}{२}$ यवों अर्थात् क्षेत्र संख्या ७, ८ और ९ का घनफल इसप्रकार है—एक यवकी भूमि १ राजू, मुख ०, ऊँचाई $\frac{१४}{७}$ और वेध ७ है, तथा ऐसे यव $\frac{५}{२}$ हैं, अतः ($\frac{१}{१}$ + ० = $\frac{१}{१}$) $\times\frac{१}{२}\times\frac{१४}{७}\times\frac{७}{१}\times\frac{५}{२}=\frac{४९}{२}$ अर्थात् २४$\frac{१}{२}$ घनराजू घनफल २$\frac{१}{२}$ यवोंका है लोकको चौदहसे भाजित करने पर भी (३४३ ÷ १४) = २४$\frac{१}{२}$ घनराजू ही आते हैं इसीलिए गाथामें चौदहसे भाजित लोक कहा है । इसप्रकार ७३$\frac{१}{२}$ + ६८$\frac{३}{५}$ + २९$\frac{२}{५}$ + २४$\frac{१}{२}$ = १९६ घनराजू घनफल सम्पूर्ण दूष्य अधोलोकका है ।

८. गिरि-कटक अधोलोकका घनफल :—

गिरि (पहाड़ी) नीचे चौड़ी और ऊपर सँकरी अर्थात् चोटी युक्त होती है किन्तु कटक इससे विपरीत अर्थात् नीचे सँकरा और ऊपर चौड़ा होता है । अधोलोकमें गिरि-कटककी रचना करनेसे २७ गिरि और २१ कटक प्राप्त होते हैं । यथा :—

गिरिकटक अधोलोककी आकृति
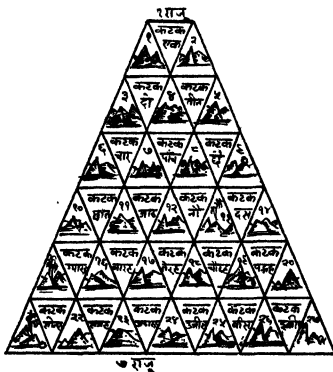
गिरिकटक अधोलोकका घनफल

एक्कस्सिं गिरिगडए[1] चउसीदी-भाजिदो हवे लोओ ।
तं [2]अट्ठतालपहदं विदफलं तम्मि खेत्तम्मि ।।२५२।।

$$\left|\frac{\equiv}{\text{८४}}\right|\frac{\equiv\ \text{४८}}{\text{८४}}\right|$$

अर्थ :—एक गिरिकटक (अर्धयव) क्षेत्रका घनफल चौरासीसे भाजित लोकप्रमाण है । इसको अड़तालीससे गुणा करने पर कुल गिरिकटक क्षेत्रका घनफल होता है ।।२५२।।

---

१. द. ब. गिरिबिडए । क. ज. ठ. गिरिबिदए । २. क. अट्ठमाल ।

विशेषार्थ :—उपर्युक्त आकृतिमें प्रत्येक गिरि एवं कटककी भूमि १ राजू, मुख ०, उत्सेध $\frac{७}{६}$ राजू और वेध ७ राजू है अतः ($\frac{१}{१}$ + ० = $\frac{१}{१}$) × $\frac{१}{२}$ × $\frac{७}{६}$ × $\frac{७}{१}$ = $\frac{४९}{१२}$ घनराजू प्राप्त है। लोक (३४३) को ८४ से भाजित करने पर भी (३४३ ÷ ८४) = $\frac{४९}{१२}$ प्राप्त होते हैं, इसीलिए गाथामें लोकको चौरासीसे भाजित करनेको कहा गया है।

क्योंकि एक गिरिका घनफल $\frac{४९}{१२}$ घनराजू है अतः २७ पहाड़ियोंका घनफल $\frac{४९}{१२}$ × $\frac{२७}{१}$ = $\frac{४४१}{४}$ = ११०$\frac{१}{४}$ घनराजू होगा। इसीप्रकार जब एक कटकका घनफल $\frac{४९}{१२}$ घनराजू है, तब २१ कटकों का घनफल $\frac{४९}{१२}$ × $\frac{२१}{१}$ = $\frac{३४३}{४}$ = ८५$\frac{३}{४}$ घनराजू होता है। इन दोनों घनफलोंका योग कर देनेपर (११०$\frac{१}{४}$ + ८५$\frac{३}{४}$) = १९६ घनराजू घनफल सम्पूर्ण गिरिकटक अधोलोक क्षेत्रका प्राप्त होता है।

अधोलोकके वर्णनकी समाप्ति एवं ऊर्ध्वलोकके वर्णनकी सूचना

एवं अट्ठ-वियप्पो[1] हेट्ठिम-लोओ य वण्णिदो एसो।
एण्हि उवरिम-लोयं अट्ठ-पयारं णिरूवेमो ॥२५३॥

अर्थ :—इसप्रकार आठ भेदरूप अधोलोकका वर्णन किया जा चुका है। अब यहाँसे आगे आठ प्रकारके ऊर्ध्वलोकका निरूपण करते हैं ॥२५३॥

विशेषार्थ :—इसप्रकार आठभेदरूप अधोलोकका वर्णन समाप्त करके पूज्य यतिवृषभाचार्य आगे १. सामान्य ऊर्ध्वलोक, २. ऊर्ध्वायत चतुरस्र ऊर्ध्वलोक, ३ तिर्यगायत चतुरस्र ऊर्ध्वलोक, ४. यवमुरज ऊर्ध्वलोक, ५. यवमध्य ऊर्ध्वलोक, ६ मन्दरमेरु ऊर्ध्वलोक, ७. दूष्य ऊर्ध्वलोक और ८ गिरिकटक ऊर्ध्वलोकके भेदसे ऊर्ध्वलोकका घनफल आठ प्रकारसे कहते हैं।

सामान्य तथा ऊर्ध्वायत चतुरस्र ऊर्ध्वलोकके घनफल एवं आकृतियाँ

सामण्णे विदफलं सत्त-हिदो होइ ति-गुणिदो[2] लोओ।
विदिए वेद-भुजाए[3] सेढी कोडी ति-रज्जूओ ॥२५४॥

| $\frac{\equiv}{७}$ ३ | — | — | $\frac{-}{७}$ ३ |

---

१. द. ब. क ज. ठ. वियप्पा हेट्ठिम-लोउए। २. द. ब. तिगुणिदा। ३. द. ब. क. ज. ठ. भुजासे।

अर्थ :—सामान्य ऊर्ध्वलोकका घनफल सातसे भाजित और तीनसे गुणित लोकके प्रमाण अर्थात् एक सौ सैंतालीस राजूमात्र है।

द्वितीय ऊर्ध्वायतचतुरस्र क्षेत्रमें वेध और भुजा जगच्छ्रेणी प्रमाण, तथा कोटि तीन राजू मात्र है ।।२५४।।

विशेषार्थ :—सामान्य ऊर्ध्वलोककी आकृति :—

सामान्य ऊर्ध्वलोक ब्रह्मस्वर्गके समीप ५ राजू विस्तार वाला एवं ऊपर नीचे एक-एक राजू विस्तार वाला है अतः ५ राजू भूमि, १ राजू मुख, $\frac{७}{२}$ राजू ऊँचाई और ७ राजू वेध वाले इस ऊर्ध्व-लोकके दो भाग करलेनेपर इसका घनफल इसप्रकार होता है—

(भूमि ५ + १ मुख = $\frac{६}{१}$) $\times \frac{१}{२} \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{१} \times \frac{२}{१}$ = १४७ घनराजू सामान्य ऊर्ध्वलोकका घनफल है।

२. ऊर्ध्वायत चतुरस्र ऊर्ध्वलोकका घनफल :—

ऊर्ध्वायत चतुरस्रक्षेत्रकी भुजा जगच्छ्रेणी (७ राजू), वेध ७ राजू और कोटि ३ राजू प्रमाण है। यथा—

(चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये)
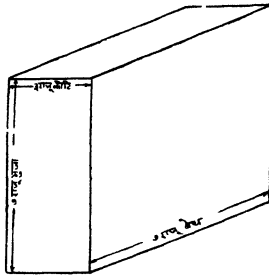
भुजा ७ राजू × कोटि ३ रा० × वेध ७ रा० = १४७ घनराजू ऊर्ध्वायत चतुरस्र क्षेत्रका घनफल है।

नोट :– ऊर्ध्वलोकका घनफल प्राप्त करते समय सामान्य ऊर्ध्वलोकको छोड़कर शेष आकृतियोंमें ऊर्ध्वलोककी मूल आकृतिसे प्रयोजन नहीं रखा गया है।

तिर्यंगायत चतुरस्र तथा यवमुरज ऊर्ध्वलोक एवं आकृतियाँ

तदिए [1]भुय-कोडीओ सेढी वेदो[2] वि तिण्णि रज्जूओ।
बहु-जव-मज्झे मुरये[3] जव-मुरयं होदि तक्खेत्तं ॥२५५॥

। – १ । – १ । ७३ ।

तम्मि जवे विदफलं लोओ सत्तेहि भाजिदो होदि।
मुरयम्मि य विदफलं सत्त-हिदो दु-गुणिदो लोओ ॥२५६॥

| $\frac{\equiv}{७}$ | $\frac{\equiv}{७}$२ |

---

१. द. ब. क. ज. ठ. भुविकोडीयो। २. [वेधो]। ३. द. ब. क. ज. ठ. मुरयं।

अर्थ :—तीसरे तिर्यगायत चतुरस्रक्षेत्रमें भुजा और कोटि जगच्छ्रेणी प्रमाण तथा वेध तीन राजू मात्र है। बहुतसे यवों युक्त मुरज-क्षेत्रमें वह क्षेत्र यव और मुरज रूप होता है। इसमेंसे यव-क्षेत्रका घनफल सातसे भाजित लोकप्रमाण और मुरजक्षेत्रका घनफल सातसे भाजित और दोसे गुणित लोकके प्रमाण होता है ॥२५५-२५६॥

विशेषार्थ :—(३) तिर्यगायत चतुरस्रक्षेत्रमे भुजा और कोटि श्रेणी (७ रा०) प्रमाण तथा वेध (मोटाई) तीन राजू प्रमाण है। यथा :—
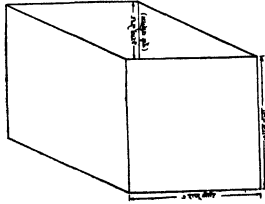
घनफल—यहाँ भुजा अर्थात् ऊँचाई ७ राजू है, उत्तर-दक्षिण कोटि ७ राजू और पूर्व-पश्चिम वेध ३ राजू है, अतः ७ × ७ × ३ = १४७ घनराजू तिर्यगायत ऊर्ध्वलोकका घनफल प्राप्त होता है।

४. यवमुरज ऊर्ध्वलोकका घनफल :—इस यवमुरजक्षेत्रकी भूमि ५ राजू, मुख १ राजू और ऊँचाई ७ राजू है। यथा—

(चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये)
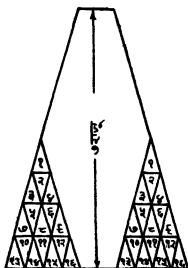
उपर्युक्त आकृतिके मध्यमें एक मुरज और दोनों पार्श्वभागोंमें सोलह-सोलह अर्धयव प्राप्त होते हैं। दोनों पार्श्वभागोंके ३२ अर्धयवोंके पूर्णयव १६ होते हैं। एक यवका विस्तार $\frac{१}{२}$ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{४}$ राजू और वेध ७ राजू है, अतः $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२}$ (अर्धकिया) $\times \frac{७}{४} \times \frac{७}{१} = \frac{४९}{१६}$ घनराजू घनफल प्राप्त होता है। यतः एक यवका घनफल $\frac{४९}{१६}$ घनराजू है, अतः १६ यवोंका ($\frac{४९}{१६} \times \frac{१६}{१}$) = ४९ घनराजू घनफल प्राप्त हुआ।

मुरजके बीचसे दो भाग करनेपर अर्धमुरजकी भूमि ३ राजू मुख १ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{२}$ राजू और वेध ७ राजू है, इसप्रकारके अर्धमुरज दो हैं, अतः $(३+१=\frac{४}{१}) \times \frac{१}{२} \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{१} \times \frac{२}{१} = ९८$ घनराजू पूर्ण मुरजका घनफल होता है और दोनोंका योग कर देने पर (४९ + ९८) = १४७ घनराजू घनफल यवमुरज ऊर्ध्वलोकका प्राप्त होता है। लोक (३४३) को ७ से भाजित करने पर ४९ और उसी लोक (३४३) को ७ से भाजित कर दो से गुणित करदेनेसे ९८ घनफल प्राप्त हो जाता है। यही बात गाथामें दर्शायी गई है।

यवमध्य ऊर्ध्वलोकका घनफल एवं आकृति

घणफलमेक्कम्मि जवे अट्ठावीसेहिं भाजिदो लोओ।
तं बारसेहि गुणिदं जव-खेत्ते होदि विदफलं ॥२५७॥

| $\frac{\equiv}{२८}$ | $\frac{\equiv}{७}$ ३ |

अर्थ :—यवमध्य क्षेत्रमें एक यवका घनफल अट्ठाईससे भाजित लोकप्रमाण है। इसको बारहसे गुणा करनेपर सम्पूर्ण यवमध्य क्षेत्रका घनफल निकलता है ॥२५७॥

विशेषार्थ :—(५) यवमध्य ऊर्ध्वलोकका घनफल :—

५ राजू भूमि, १ राजू मुख और ७ राजू ऊँचाई वाले सम्पूर्ण ऊर्ध्वलोक क्षेत्रमें यवोंकी रचना इसप्रकार है :—
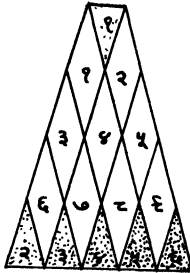
इस आकृतिमें पूर्ण-यव ९ और अर्धयव ६ हैं। ६ अर्धयवोंके पूर्ण यव बनाकर पूर्ण यवोंमें जोड़ देनेपर (९+३)=१२ पूर्ण यव प्राप्त हो जाते हैं। एक यवका विस्तार १ राजू, ऊँचाई $\frac{७}{२}$ राजू और वेध ७ राजू है अतः $\frac{१}{२} \times \frac{१}{१} \times \frac{७}{२} \times \frac{७}{१} = \frac{४९}{४}$ घनराजू एक यवका घनफल प्राप्त होता है। क्योंकि एक यवका घनफल $\frac{४९}{४}$ घनराजू है अतः १२ यवोंका $\frac{४९}{४} \times \frac{१२}{१} = १४७$ घनराजू सम्पूर्ण यवमध्य ऊर्ध्वलोक क्षेत्रका घनफल प्राप्त होता है। लोक (३४३) को २८ से भाजितकर १२ से गुणित करनेपर भी ($\frac{३४३}{२८} \times \frac{१२}{१}$)=१४७ घनराजू ही प्राप्त होता है। इसीलिए गाथामें लोकको अट्ठाईससे भाजितकर बारहसे गुणा करनेको कहा गया है।

६. मन्दर-ऊर्ध्वलोकका घनफल :—५ राजू भूमि, १ राजूमुख और ७ राजू ऊँचाई वाले ऊर्ध्वलोक मन्दर (मेरु) की रचना करके घनफल निकाला जायगा। यथा :—

मन्दरमेरु ऊर्ध्वलोककी आकृति
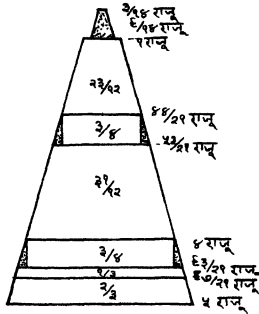
मन्दरमेरु ऊर्ध्वलोकका घनफल

ति-हिदो दु-गुणिद-रज्जू तिय-भजिदा[1] चउ-हिदा ति-गुण-रज्जू ।
एक्कतीसं च रज्जू बारस-भजिदा हवंति उड्ढुड्ढं ।।२५८।।

चउ-हिद-ति-गुणिद-रज्जू तेवीसं ताओ बार-पडिहत्ता ।
मंदर-सरिसायारे[2] उस्सेहो उड्ढ-खेत्तम्मि ।।२५९।।

इ३ २ । इ३ १ । इ४ ३ । इ१२ ३१ । इ४ ३ । इ१२ २३ ।

अर्थ :—मन्दर सदृश आकारवाले ऊर्ध्वक्षेत्रमें ऊपर-ऊपर ऊँचाई क्रमसे तीनसे भाजित दो राजू, तीनसे भाजित एक राजू, चारसे भाजित तीन राजू, बारहसे भाजित इकतीस राजू, चारसे भाजित तीन राजू और बारहसे भाजित तेईस राजू मात्र है ।।२५८-२५९।।

---

१. ज ठ भजिदा । २. द. सरिमायारो ।

विशेषार्थ :—उपर्युक्त आकृतिमें $\frac{3}{4}$ राजू पृथिवीमें सुदर्शन मेरुकी जड़ अर्थात् १००० योजनका, $\frac{1}{4}$ राजू भद्रशालवनसे नन्दनवन पर्यन्तकी ऊँचाई अर्थात् ५०० योजनका, $\frac{3}{4}$ राजू नन्दनवनसे समविस्तार क्षेत्र अर्थात् ११००० योजनका, $\frac{37}{16}$ राजू समविस्तारक्षेत्रसे सौमनस वन अर्थात् ५१५०० योजनका, $\frac{3}{4}$ राजू सौमनसवनसे समविस्तार क्षेत्र अर्थात् ११००० योजनका और उसके ऊपर $\frac{23}{16}$ राजू समविस्तारसे पाण्डुकवन अर्थात् २५००० योजनका प्रतीक है।

अट्ठाणवदि-विहत्ता ति-गुणा सेढी तडाण[1] वित्थारो[2] ।
[3]चउतड-करणक्खंडिद-खेत्तेणं　　चूलिया　　होदि ॥२६०॥

$\frac{-3}{98}$

तिण्णि तडा[4] भू-वासो ताण ति-भागेण होदि मुह-रुंदं ।
तच्चूलियाए उदओ चउ-भजिदो ति-गुणिदो रज्जू ॥२६१॥

$\frac{-9}{98}$ । $\frac{-3}{98}$ ।

अर्थ :—तटोंका विस्तार अट्ठानवेसे विभक्त और तीनसे गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण है। ऐसे चार तटवर्ती करणाकार खण्डित क्षेत्रोंसे चूलिका होती है, उस चूलिकाकी भूमिका विस्तार तीन-तटोके प्रमाण, मुखका विस्तार इसका तीसरा-भाग तथा ऊँचाई चारसे भाजित और तीनसे गुणित, राजू मात्र है ॥२६०-२६१॥

विशेषार्थ :—मन्दराकृतिमें नन्दन और सौमनसवनोंके ऊपरी भागको समविस्तार करनेके लिए दोनों पार्श्वभागोंमें चार त्रिकोण काटे गये हैं, उनमें प्रत्येकका विस्तार ($\frac{7\times3}{4\times28}=\frac{21}{112}=$) $\frac{3}{16}$ राजू और ऊँचाई $\frac{3}{4}$ राजू है। इन चारों त्रिकोणोंमेंसे तीन त्रिकोणोंको सीधा और एक त्रिकोणको पलटकर उल्टा रखनेसे पाण्डुकवनके ऊपर चूलिका बन जाती है, जिसका भूमि विस्तार $\frac{9}{16}$ राजू, मुख $\frac{3}{16}$ राजू, ऊँचाई $\frac{3}{4}$ राजू और वेध ७ राजू है।

सत्तट्ठाणे रज्जू उड्ढुड्ढं एक्कवीस-पविभत्तं ।
ठविदूण वास-हेदुं गुणगारं तेसु साहेमि ॥२६२॥

---

१. द. ब. तदाण। २. द. विहत्ता रिरे तिण्णि गुणा। ३. द. क. ज. ठ. चउतदकारणखंडिद, ब. चउदत्तकारणखंडिद। ४. द. ब. तदा।

[1]पंचुत्तर-एक्कसयं सत्ताणउदी तियधिय-णउदीओ ।
चउसीदी तेवण्णा चउदालं एक्कवीस गुणगारा ॥२६३॥

$\frac{७}{२१}$१०५ । $\frac{७}{२१}$९७ । $\frac{७}{२१}$९३ । $\frac{७}{२१}$८४ । $\frac{७}{२१}$५३ । $\frac{७}{२१}$४४ । $\frac{७}{२१}$२१ ।

अर्थ :—सातों स्थानोंमें ऊपर-ऊपर इक्कीससे विभक्त राजू रखकर उनमें विस्तारके निमित्तभूत गुणकार कहता हूं ॥२६२॥

अर्थ :—एकसौ पाँच, सत्तानवे, तेरानवे, चौरासी, तिरेपन, चवालीस और इक्कीस उपर्युक्त सात स्थानोंमे ये सात गुणकार है ॥२६३॥

विशेषार्थ :—इस मन्दराकृतिक्षेत्रका भूमि विस्तार ५ राजू, मुख विस्तार १ राजू और ऊँचाई ७ राजू है। भूमिमेंसे मुख घटा देनेपर (५—१)=४ राजू हानि ७ राजू ऊँचाई पर होती है अर्थात् प्रत्येक एक-एक राजूकी ऊँचाईपर $\frac{४}{७}$ राजूकी हानि प्राप्त होती है। इस हानि-चयको अपनी-अपनी ऊँचाईसे गुणित करनेपर हानिका प्रमाण प्राप्त हो जाता है। उस हानिको पूर्व-पूर्व विस्तारमेंसे घटा देनेपर ऊपर-ऊपरका विस्तार प्राप्त होता जाता है। यथा :—

तलभाग ५ राजू अर्थात् $\frac{१०५}{२१}$ राजू, $\frac{२}{३}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{९७}{२१}$ राजू, $\frac{१}{३}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{९३}{२१}$ राजू, $\frac{७}{१२}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{८४}{२१}$ राजू, $\frac{३१}{१२}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{५३}{२१}$ राजू, $\frac{३}{४}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{४४}{२१}$ राजू और $\frac{२३}{१२}$ राजूकी ऊँचाईपर $\frac{२१}{२१}$ राजू विस्तार है।

उड्ढुड्ढं रज्जु-घणं सत्तसु ठाणेसु ठविय हेट्ठावो ।
विदफल-जाणणट्ठं वोच्छं गुणगार-हाराणि ॥२६४॥
बुजुदाणि दुसयाणि पंचाणउदी य एक्कवीसं च ।
सगसत्तालजुदाणि बादाल-सयाणि एक्करसं ॥२६५॥
पणणवदियधिय-चउदस-सयाणि णव इय हवंति गुणगारा ।
हारा णव णव एक्कं बाहत्तरि इगि विहत्तरी चउरो ॥२६६॥

$\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{२०२}{९}$ | $\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{९५}{९}$ | $\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{२१}{१}$ | $\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{४२४७}{७२}$ | $\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{११}{१}$ |

$\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{१४९५}{७२}$ | $\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{९}{४}$

---

१. ज. क. ठ. ब. पंचुत्त एक्कसयं ।

अर्थ :—सात स्थानोंमें नीचेसे ऊपर-ऊपर घनराजूको रखकर घनफल जाननेके लिए गुणकार और भागहार कहता हूं ।।२६४।।

अर्थ :—इन सात स्थानोमें क्रमशः दोसौ दो, पचानबे, इक्कीस, बयालीससौ सैतालीस, ग्यारह, चौदहसौ पंचानबे और नौ, ये सात गुणकार हैं तथा भागहार यहाँ नौ, नौ, एक, बहत्तर, एक, बहत्तर और चार हैं ।।२६५-२६६।।

विशेषार्थ :—"मुखभूमिजोगदले-पद-हदे" सूत्रानुसार प्रत्येक खण्डकी भूमि और मुखको जोड़कर, आधा करके उसमें अपनी-अपनी ऊँचाई और ७ राजू वेधसे गुणित करनेपर प्रत्येक खण्डका घनफल प्राप्त हो जाता है । यथा :—

खण्ड	भूमि +	मुख =	योग ×	अर्धकिया ×	ऊँ. ×	मोटाई =	घनफल
प्रथम खण्ड	$\frac{१०५}{२१}$ +	$\frac{९७}{२१}$ =	$\frac{२०२}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{२}{३}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{२०२}{९}$ घनराजू घनफल
द्वितीय खण्ड	$\frac{९७}{२१}$ +	$\frac{९३}{२१}$ =	$\frac{१९०}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{१}{३}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{९५}{९}$ घनराजू घनफल
तृतीय खण्ड	$\frac{८४}{२१}$ +	$\frac{८४}{२१}$ =	$\frac{१६८}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{३}{४}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{२१}{१}$ घनराजू घनफल
चतुर्थ खण्ड	$\frac{८४}{२१}$ +	$\frac{५३}{२१}$ =	$\frac{१३७}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{३१}{१२}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{४२४७}{७२}$ घनराजू घनफल
पंचम खण्ड	$\frac{४४}{२१}$ +	$\frac{४४}{२१}$ =	$\frac{८८}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{३}{४}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{११}{१}$ घनराजू घनफल
षष्ठ खण्ड	$\frac{४४}{२१}$ +	$\frac{२१}{२१}$ =	$\frac{६५}{२१}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{२३}{१२}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{१४९५}{७२}$ घनराजू घनफल
सप्तम खण्ड (चूलिका)	$\frac{९}{१४}$ +	$\frac{३}{१४}$ =	$\frac{१२}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ ×	$\frac{३}{४}$ ×	$\frac{७}{१}$ =	$\frac{९}{४}$ घनराजू घनफल

सर्वयोग—$\frac{२०२}{९}+\frac{९५}{९}+\frac{२१}{१}+\frac{४२४७}{७२}+\frac{११}{१}+\frac{१४९५}{७२}+\frac{९}{४}=$

$$\frac{१६१६+७६०+१५१२+४२४७+७९२+१४९५+१६२}{७२}=\frac{१०५८४}{७२}=१४७$$

घनराजू मन्दर-ऊर्ध्वलोकका घनफल है ।

७. दूष्य ऊर्ध्वलोकका घनफल—

५ राजू भूमि, १ राजू मुख और ७ राजू ऊँचाई प्रमाण वाले ऊर्ध्वलोकमें दूष्यकी रचनाकर घनफल प्राप्त करना है, जिसकी आकृति इसप्रकार है । यथा :—
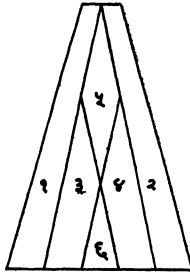
दूष्य क्षेत्रका घनफल एवं गिरि-कटकक्षेत्र कहनेकी प्रतिज्ञा

चोद्दस-भजिदो तिउणो विंदफलं बाहिरोभय-भुजाणं ।
लोग्रो दुगुणो चोद्दस-हिदो य अब्भंतरम्मि दूसस्स ॥२६७॥

| ≡ / १४ ३ | ≡ / १४ २ |

तस्स य जव-खेत्ताणं लोग्रो चोद्दस-हिदो-दु-विंदफलं ।
एत्तो [1]गिरिगड-खंडं वोच्छामो आणुपुव्वीए ॥२६८॥

| ≡ / १४ |

अर्थ :—दूष्यक्षेत्रकी बाहरी उभय भुजाओंका घनफल चौदहसे भाजित और तीनसे गुणित लोकप्रमाण; तथा अभ्यन्तर दोनों भुजाओंका घनफल चौदहसे भाजित और दोसे गुणित लोकप्रमाण है ॥२६७॥

---

१. द. ब. ज. क. ठ. गिरिविडखंडं ।

अर्थ :—इस दूष्यक्षेत्रके यव-क्षेत्रोंका घनफल चौदहसे भाजित लोकप्रमाण है। अब यहाँसे आगे अनुक्रमसे गिरिकटक खण्डका वर्णन करते हैं ॥२६८॥

विशेषार्थ :—इस दूष्यक्षेत्रकी बाहरी उभय भुजाओं अर्थात् क्षेत्र संख्या १ और २ का घनफल :—[(भूमि १ राजू + मुख $\frac{१}{२}$ रा० = $\frac{३}{२}$) × $\frac{१}{२}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{२}{१}$] = $\frac{१४७}{२}$ घनराजू है। अभ्यन्तर उभय भुजाओं अर्थात् क्षेत्र संख्या ३ और ४ का घनफल [ऊँचाईमें भूमि ($\frac{१४}{३}$ + $\frac{७}{३}$ मुख = $\frac{२१}{३}$) × $\frac{१}{२}$ × $\frac{१}{१}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{२}{१}$] = ४९ घनराजू है। डेढ यवों अर्थात् क्षेत्र संख्या ५ और ६ का घनफल [(भूमि १ रा० + मुख० = $\frac{१}{१}$) × $\frac{१}{२}$ × $\frac{१४}{३}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{३}{२}$] = $\frac{४९}{२}$ घनराजू है। इसप्रकार सम्पूर्ण $\frac{१४७}{२}$ + $\frac{४९}{१}$ + $\frac{४९}{२}$ = $\frac{१४७+९८+४९}{२}$ = $\frac{२९४}{२}$ = १४७ घनराजू दूष्यऊर्ध्वलोकका घनफल है।

८ गिरि-कटक ऊर्ध्वलोकका घनफल :—

भूमि ५ राजू, मुख १ राजू और ७ राजू ऊँचाईवाले ऊर्ध्वलोकमें गिरिकटककी रचना करके घनफल निकाला गया है। इसकी आकृति इसप्रकार है :—

गिरि-कटक ऊर्ध्वलोकका घनफल

छप्पण्ण-हिदो लोग्रो एक्कस्सिं [1]गिरिगडम्मि विदफलं ।
तं चउवीसप्पहदं सत्त-हिदो ति-गुणिदो लोग्रो ।।२६९।।

$$\left|\ \frac{\equiv}{५६}\ \right|\ \frac{\equiv}{७}\ ३\ \right|$$

अर्थ :—एक गिरि-कटकका घनफल छप्पनसे भाजित लोकप्रमाण है । इसको चौबीससे गुणा करनेपर सातसे भाजित और तीनसे गुणित लोकप्रमाण सम्पूर्ण गिरि-कटक क्षेत्रका घनफल आता है ।।२६९।।

विशेषार्थ :—उपर्युक्त आकृतिमें १४ गिरि और १० कटक बने हैं, जिसमेंसे प्रत्येक गिरि एवं कटककी भूमि १ राजू, मुख ०, उत्सेध $\frac{७}{४}$ राजू और वेध ७ राजू है, अतः $[(१+०)=\frac{१}{२}]\times\frac{७}{४}\times\frac{७}{१}=\frac{४९}{८}$ घनराजू घनफल एक गिरि या एक कटकका है । लोकको ५६ से भाजित करनेपर भी $(\frac{३४३}{५६})$ $\frac{४९}{८}$ ही प्राप्त होता है, इसलिए गाथामें एक गिरि या कटकका घनफल छप्पनसे भाजित लोकप्रमाण कहा है । क्योंकि एक गिरिका घनफल $\frac{४९}{८}$ घनराजू है अतः १४ गिरिका $(\frac{४९}{८}\times\frac{१४}{१})=\frac{३४३}{४}$ अर्थात् $८५\frac{३}{४}$ घनराजू घनफल हुआ ।

इसीप्रकार जब एक कटकका घनफल $\frac{४९}{८}$ घनराजू है अत: १० कटकोंका $(\frac{४९}{८}\times\frac{१०}{१})=\frac{२४५}{४}$ अर्थात् $६१\frac{१}{४}$ घनराजू घनफल हुआ । इन दोनोंका योगकर देनेपर $(८५\frac{३}{४}+६१\frac{१}{४})=१४७$ घनराजू घनफल सम्पूर्ण गिरिकटक ऊर्ध्वलोकका प्राप्त होता है । लोक (३४३) को ७ से भाजितकर तीनसे गुणा करनेपर भी $(३४३\div७=४९)\times३=१४७$ घनराजू ही आते है, इसीलिए गाथामें सातसे भाजित और तीनसे गुणित लोकप्रमाण सम्पूर्ण गिरिकटक क्षेत्रका घनफल कहा गया है ।

वातवलयके आकार कहनेकी प्रतिज्ञा

अट्ठ-विहप्पं साहिय सामण्णं हेट्ठ-उड्ढ-होदि जयं ।
एण्हि साहेमि पुढं संठाणं वादवलयाणं ।।२७०।।

अर्थ :—सामान्य, अधः और ऊर्ध्वके भेदसे जो तीनप्रकारका जग अर्थात् लोक कहा गया है, उसे आठप्रकारसे कहकर अब वातवलयोंके पृथक्-पृथक् आकारका वर्णन करता हूं ।।२७०।।

---

१. ज. क. ठ. गिरिगदम्मि ।

लोकको परिवेष्टित करनेवाली वायुका स्वरूप

गोमुत्त-मुग्ग-वण्णा [1]घणोवधी तह घणाणिलो वाऊ ।
तणु-वादो बहु-वण्णो रुक्खस्स तयं व वलय-तियं ॥२७१॥
पढमो लोयाधारो घणोवही इह घणाणिलो तत्तो ।
तप्परदो तणुवादो अंतम्मि णहं णिआधारं ॥२७२॥

अर्थ :—गोमूत्रके सदृश वर्णवाला घनोदधि, मूँगके सदृश वर्णवाला घनवात तथा अनेक वर्णवाला तनुवात इसप्रकारके ये तीनों वातवलय वृक्षकी त्वचाके सदृश (लोकको घेरे हुए) हैं। इनमें से प्रथम घनोदधिवातवलय लोकका आधारभूत है। उसके पश्चात् घनवातवलय, उसके पश्चात् तनुवातवलय और फिर अन्तमें निजाधार आकाश है ॥२७१-२७२॥

वातवलयोंके बाहल्य (मोटाई) का प्रमाण

जोयण-वीस-सहस्सा बहलं तम्मारुदाण पत्तेक्कं ।
अट्ठ-खिदीणं हेट्ठे लोअ-तले उवरि जाव इगि-रज्जू ॥२७३॥

२०००० । २०००० । २०००० ।

अर्थ :— आठ पृथ्वियोंके नीचे, लोकके तल-भागमें एवं एक राजूकी ऊँचाई तक उन वायु-मण्डलोंमेंसे प्रत्येककी मोटाई बीस हजार योजन प्रमाण है ॥२७३॥

विशेषार्थ :—आठों भूमियोंके नीचे, लोकाकाशके अधोभागमें एवं दोनों पार्श्वभागोंमें नीचेसे एक राजू ऊँचाई पर्यन्त तीनों वातवलय बीस-बीस हजार योजन मोटे हैं।

सग-पण-चउ-जोयणयं [2]सत्तम-णारयम्मि पुहवि-पणधीए[3] ।
पंच-चउ-तिय-पमाणं तिरीय-खेत्तस्य पणिधीए ॥२७४॥

। ७ । ५ । ४ । ५ । ४ । ३ ।

सग-पंच-चउ-समाणा पणिधीए होंति बम्ह-कप्पस्स ।
पण-चउ-तिय-जोयणया उवरिम-लोयस्स अंतम्मि ॥२७५॥

। ७ । ५ । ४ । ५ । ४ । ३ ।

---

१. द. ज. ठ. घणदधि । २. द. ज. सत्तमणयंमि, ब. सत्तमणारयम्मि । ३. द. पणदीए, ब. पणधीए ।

अर्थ :—सातवें नरकमें पृथिवीके पार्श्वभागमें क्रमशः इन तीनो वातवलयोंकी मोटाई सात, पांच और चार योजन तथा इसके ऊपर तिर्यग्लोक (मध्यलोक) के पार्श्वभागमें पाँच, चार और तीन योजन प्रमाण है ।।२७४।।

अर्थ :—इसके आगे तीनों वायुओंकी मोटाई ब्रह्मस्वर्गके पार्श्वभागमें क्रमशः सात, पाँच और चार योजन प्रमाण तथा ऊर्ध्वलोकके अन्त (पार्श्वभाग) में पाच, चार और तीन योजन प्रमाण है ।।२७५।।

विशेषार्थ :—दोनों पार्श्वभागोंमें एक राजूके ऊपर सप्तमपृथिवीके निकट घनोदधिवात-वलय सात योजन, घनवातवलय पाँच योजन और तनुवातवलय चार योजन मोटाईवाले हैं। इस सप्तम पृथिवीके ऊपर क्रमशः घटते हुए तिर्यग्लोकके समीप तीनों वातवलय क्रमशः पाँच, चार और तीन योजन बाहल्य वाले तथा यहाँसे ब्रह्मलोक पर्यन्त क्रमशः बढ़ते हुए सात, पाँच और चार योजन बाहल्य वाले हो जाते हैं तथा ब्रह्मलोकके क्रमानुसार हीन होते हुए तीनों वातवलय ऊर्ध्वलोकके निकट तिर्यग्लोक सदृश पाँच, चार और तीन योजन बाहल्य वाले हो जाते हैं ।

कोस-दुगमेक्क-कोसं किंचूणेक्कं च लोय-सिहरम्मि ।
ऊण-पमाणं दंडा चउस्सया पंच-वीस-जुदा ।।२७६।।

। २ को० । १ को० । १५७५ दंड ।

अर्थ :—लोकके शिखरपर उक्त तीनों वातवलयोका बाहल्य क्रमशः दो कोस, एक कोस और कुछ कम एक कोस है । यहाँ तनुवातवलयकी मोटाई जो एक कोससे कुछ कम बतलाई है, उस कमीका प्रमाण चारसौ पच्चीस धनुष है ।।२७६।।

विशेषार्थ :—लोकके अग्रभागपर घनोदधिवातवलयकी मोटाई २ कोस, घनवातवलयकी एक कोस और तनुवातवलयकी ४२५ धनुष कम एक कोस अर्थात् १५७५ धनुष प्रमाण है ।

लोकके सम्पूर्ण वातवलयोंको प्रदर्शित करनेवाला चित्र

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

लोक के सम्पूर्ण वातवलयों को प्रदर्शित करने वाला चित्र :-
१२७५ धनुष
६०००० योजन
४ योजन
४ योजन
3 योजन
७ योजन
५ योजन
४ योजन
७ राजू
वातवलय - ६०,००० योजन
वातवलय - ६० ००० - योजन
वातवलय - ६० ००० - योजन
वातवलय ६०,००० - योजन
वातवलय 卐 ६०,००० - योजन
७ राजू
७ योजन
५ योजन
४ योजन

एक राजू पर होने वाली हानि-वृद्धिका प्रमाण

तिरियक्खेत्तप्पणिधिं गदस्स पवणत्तयस्स बहलत्तं ।
मेलिय [1]सत्तम-पुढवी-पणिधीगय-मरुद-बहलम्मि ॥२७७॥

तं सोधिदूण तत्तो भजिदव्वं छप्पमाण-रज्जूहिं ।
लद्धं पडिप्पदेसं जायंते हाणि-वड्ढोम्रो ॥२७८॥

। १६ । १२ । ४/६ ।[2]

अर्थ :—तिर्यक्क्षेत्र (मध्यलोक) के पार्श्वभागमे स्थित तीनों वायुओंके बाहल्यको मिलाकर जो योगफल प्राप्त हो, उसको सातवी पृथिवीके पार्श्वभागमें स्थित वायुओंके बाहल्यमेंसे घटाकर शेषमें छह प्रमाण राजुओंका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतनी सातवीं पृथिवीसे लेकर मध्यलोक पर्यन्त प्रत्येक प्रदेश क्रमशः एक राजूपर वायुकी हानि और वृद्धि होती है ॥२७७-२७८॥

विशेषार्थ :—सप्तम पृथिवीके निकट तीनों पवनोंका बाहल्य (७+५+४)=१६ योजन है, यह भूमि है। तथा तिर्यग्लोकके निकट (५+४+३)=१२ योजन है, यह मुख है। भूमिमेंसे मुख घटानेपर (१६ — १२)=४ योजन अवशेष रहे। सातवीं पृथिवीसे तिर्यग्लोक ६ राजू ऊँचा है, अतः अवशेष रहे ४ योजनोंमे ६ का भाग देनेपर ४/६ योजन प्रतिप्रदेश क्रमशः एक राजूपर होने वाली हानिका प्रमाण प्राप्त हुआ।

पार्श्वभागोंमें वातवलयोंका बाहल्य

अट्ठ-छ-चउ-दुगदेयं तालं तालट्ठ-तीस-छत्तीसं ।
तिय-भजिदा हेट्ठादो मरु-बहलं सयल-पासेसु ॥२७९॥

। ४८/३ । ४६/३ । ४४/३ । ४२/३ । ४०/३ । ३८/३ । ३६/३ ।

अर्थ :—अड़तालीस, छयालीस, चवालीस, बयालीस, चालीस, अड़तीस और छत्तीसमें तीनका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना क्रमशः नीचेसे लेकर सब (सात पृथ्वियोंके) पार्श्वभागोंमें वातवलयोंका बाहल्य है ॥२७९॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ सट्ठमपोढवी°। २. द. १२।४।१०। ज. ठ. १२।४।७। क. १२।४।६।

विशेषार्थ :—सातवीं पृथिवीके समीप तीनों-पवनोंका बाहल्य ४८/३ अर्थात् १६ योजन है।

छठवीं	पृथिवीके	समीप	तीनों-पवनोंका	बाहल्य	४६/३	अर्थात्	१५ १/३	यो०	है।
पाँचवीं	,,	,,	,,	,,	४४/३	,,	१४ २/३	,,	,,
चौथी	,,	,,	,,	,,	४२/३	,,	१४	,,	,,
तीसरी	,,	,,	,,	,,	४०/३	,,	१३ १/३	,,	,,
दूसरी	,,	,,	,,	,,	३८/३	,,	१२ २/३	,,	,,
पहली	,,	,,	,,	,,	३६/३	,,	१२	,,	,,

वातमण्डलकी मोटाई प्राप्त करनेका विधान

उड्ढ-जगे खलु वड्ढी इगि-सेढी-भजिद-अट्ठ-जोयणया[1] ।
एवं इच्छप्पहदं सोहिय मेलिज्ज भूमि-मुहे ॥२८०॥

८

अर्थ :—ऊर्ध्वलोकमें निश्चयसे एक जगच्छ्रेणीसे भाजित आठ योजन प्रमाण वृद्धि है। इस वृद्धि प्रमाणको इच्छा राशिसे गुणित करनेपर जो राशि उत्पन्न हो, उसे भूमिमेंसे कम कर देना चाहिए और मुखमें मिला देना चाहिए। (ऐसा करनेसे ऊर्ध्वलोकमें अभीष्ट स्थानके वायुमण्डलोंकी मोटाईका प्रमाण निकल आता है) ॥२८०॥

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोकमे वृद्धिका प्रमाण ८/७ योजन है। इसे इच्छा अर्थात् अपनी अपनी ऊँचाईसे गुणितकर, लब्ध राशिको भूमिमेंसे घटाने और मुखमें जोड़ देनेसे इच्छित स्थानके वायु-मण्डलकी मोटाईका प्रमाण निकल आता है। यथा—जब ३ १/२ राजूपर ४ राजूकी वृद्धि है, तब १ राजूपर ८/७ राजूकी वृद्धि प्राप्त हुई। यहाँ ब्रह्मलोकके समीप वायु १६ योजन मोटी है। सानत्कुमार-माहेन्द्रके समीप वायुकी मोटाई प्राप्त करना है। यहाँ १६ योजन भूमि है। यह युगल ब्रह्मलोकसे १/२ राजू नीचे है, यहाँ १/२ राजू इच्छा राशि है, अतः वृद्धिके प्रमाण ८/७ राजूमें इच्छा राशि १/२ राजूका गुणा कर, गुणनफल (८/७ × १/२ = ४/७) को १६ राजू भूमिमेंसे घटानेपर (१६ — ४/७) = १५ ३/७ राजू मोटाई प्राप्त होती है। मुखकी अपेक्षा दूसरे युगलकी ऊँचाई ३ राजू है, अतः (८/७ × ३/१) = २४/७ तथा १२ + २४/७ = १५ ३/७ राजू प्राप्त हुए।

---

१. द. ज. ठ. ओयणसया।

मेरुतलसे ऊपर वातवलयोंकी मोटाईका प्रमाण

मेरु-तलादो उवरिं कप्पाणं सिद्ध-खेत्त-पणिधीए ।
चउसीदी छण्णउदी अडजुद-सय बारसुत्तरं च सयं ॥२८१॥

एत्तो चउ-चउ-हीणं सत्तसु ठाणेसु ठविय पत्तेक्कं ।
सत्त-विहत्ते होदि हु मारुद-वलयाण बहलत्तं ॥२८२॥

$\frac{८४}{७}$	$\frac{९६}{७}$	$\frac{१०८}{७}$	$\frac{११२}{७}$	$\frac{१०८}{७}$	$\frac{१०४}{७}$	$\frac{१००}{७}$	$\frac{९६}{७}$	$\frac{९२}{७}$	$\frac{८८}{७}$	$\frac{८४}{७}$

अर्थ :—मेरुतलसे ऊपर सर्वकल्प तथा सिद्धक्षेत्रके पार्श्वभागमें चौरासी, छ्यानबे, एकसौ आठ, एकसौ बारह और फिर इसके आगे सात स्थानोंमें उक्त एकसौ बारहमेंसे उत्तरोत्तर चार-चार कम संख्याको रखकर प्रत्येकमें सातका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना वातवलयोंकी मोटाईका प्रमाण है ॥२८१-२८२॥

विशेषार्थ :—जब ३$\frac{१}{२}$ राजूकी ऊँचाईपर ४ राजूकी वृद्धि है तब १$\frac{१}{२}$ राजू और $\frac{१}{२}$ राजूकी ऊँचाईपर कितनी वृद्धि होगी ? इसप्रकार दो त्रैराशिक करनेपर वृद्धिका प्रमाण क्रमशः $\frac{१२}{७}$ राजू और $\frac{४}{७}$ राजू प्राप्त होता है ।

मेरुतलसे ऊपर सौधर्म युगलके अधोभागमें वायुका बाहुल्य $\frac{८४}{७}$ योजन, सौधर्मेशानके उपरिम भागमें $\frac{८४}{७}+\frac{१२}{७}=\frac{९६}{७}$ योजन और सानत्कुमार-माहेन्द्रके निकट $\frac{९६}{७}+\frac{१२}{७}=\frac{१०८}{७}$ योजन है । अब प्रत्येक युगलकी ऊँचाई आधा-आधा राजू है, जिसकी वृद्धि एवं हानिका प्रमाण $\frac{४}{७}$ राजू है, अतः ब्र० ब्रह्मो० के निकट $\frac{१०८}{७}+\frac{४}{७}=\frac{११२}{७}$ योजन, लां० का० के निकट $\frac{११२}{७}-\frac{४}{७}=\frac{१०८}{७}$ योजन, शु० महाशुक्रके समीप $\frac{१०८}{७}-\frac{४}{७}=\frac{१०४}{७}$ यो०, सतार सह० के समीप $\frac{१०४}{७}-\frac{४}{७}=\frac{१००}{७}$ योजन, आ० प्रा० के समीप $\frac{१००}{७}-\frac{४}{७}=\frac{९६}{७}$ योजन आ० अ० के समीप $\frac{९६}{७}-\frac{४}{७}=\frac{९२}{७}$ यो०, ग्रैवेयकादिके समीप $\frac{९२}{७}-\frac{४}{७}=\frac{८८}{७}$ योजन और सिद्धक्षेत्रके समीप $\frac{८८}{७}-\frac{४}{७}=\frac{८४}{७}$ अर्थात् १२ योजनकी मोटाई है ।

पार्श्वभागोंमें तथा लोकशिखरपर पवनोंकी मोटाई

तीसं इगिदाल-दलं कोसा तिय-भाजिदा य उणवण्णा ।
सत्तम-खिदि-पणिधीए बम्हजुगे वाउ-बहलत्तं ॥२८३॥

घनो०	घ०	तनु०
३०	$\frac{४१}{२}$	$\frac{४९}{३}$

दोछब्बारसभागब्भहिओ कोसो कमेण वाउ-घणं ।
लोय-उवरिम्मि एवं लोय-विभायम्मि पण्णत्तं ।।२८४।।

। $1\frac{1}{2}$ । $1\frac{1}{6}$ । $1\frac{1}{12}$ । पाठान्तरं[1]

अर्थ :—सातवी पृथिवी और ब्रह्मयुगलके पार्श्वभागमें तीनों वायुओंकी मोटाई क्रमशः तीस, इकतालीसके आधे और तीनसे भाजित उनचास कोस है ।।२८३।।

अर्थ :—लोकके ऊपर अर्थात् लोकशिखरपर तीनों वातवलयोंकी मोटाई क्रमशः दूसरे भागसे अधिक एक कोस, छठे भागसे अधिक एक कोस और बारहवें भागसे अधिक एक कोस है, ऐसा "लोकविभाग में" कहा गया है ।।२८४।। पाठान्तर

विशेषार्थ :—लोकविभागानुसार सप्तम पृथिवी और ब्रह्मयुगलके समीप घनोदधिवात ३० कोस, घनवात $\frac{41}{2}$ कोस और तनुवात $\frac{49}{3}$ कोस है तथा लोकशिखरपर घनोदधिवातकी मोटाई $1\frac{1}{2}$ कोस, घनवातकी $1\frac{1}{6}$ कोस और तनुवातकी मोटाई $1\frac{1}{12}$ कोस है ।

वायुरुद्धक्षेत्र आदिके घनफलोंके निरूपणकी प्रतिज्ञा

[2]वादव-रुद्धक्खेत्ते विंदफलं तह य अट्ठ-पुढवीए ।
सुद्धायास-खिदीणं[3] लव-मेत्तं वत्तइस्सामो ।।२८५।।

अर्थ :—यहाँ वायुसे रोके गये क्षेत्र, आठ पृथिवियाँ और शुद्ध-आकाश-प्रदेशके घनफलको लवमात्र (संक्षेपमें) कहते हैं ।।२८५।।

वातावरुद्ध क्षेत्र निकालनेका विधान एवं घनफल

संपहि लोग-पेरंत-ट्ठिद-वादवलय[4]-रुद्ध-खेत्ताणं आणयण[5] विधाणं उच्चदे—

लोगस्स तले [6]तिण्णि-वादाणं बहलं पत्तेक्कं वीस-सहस्सा य जोयणमेत्तं । [7]तं सव्वमेगट्ठं कदे सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्लं जगपदरं होदि ।

---

१. द. ब प्रत्योः 'पाठान्तर' इति पद २८०-२८१ गाथयोर्मध्य उपलभ्यते। २. द. बादरुद्धं, ब. वादवरुद्धं। ३. द. ब. खिदिणं। ४. द. ब. क. ज. ठ. वादंवलयरुंधखित्ताणं। ५. द. ब. क. ज. ठ. याणयणं। ६. द. तिण्ण। ७. द. क. ज. ठ. तं सम्मेगट्ठं, कदेगसट्ठि, ब. तेसमेगट्ठं कदे मासट्ठि।

णवरि दोसु वि अंतेसु सट्ठि-जोयण-सहस्स-उस्सेह-परिहाणि[1]-खेत्तेण ऊणं एवमजोएवूणं सट्ठि-सहस्स बाहल्लं जगपदरमिदि संकप्पिय तच्छेवूण पुढं ठवेदव्वं[2] ।= ६०००० ।

अर्थ :—अब लोक-पर्यन्तमें स्थित वातवलयोंसे रोके गये क्षेत्रोंको निकालनेका विधान कहते हैं :—

लोकके नीचे तीनों पवनोंमें प्रत्येकका बाहल्य (मोटाई) बीस हजार योजन प्रमाण है। इन तीनों पवनोंके बाहल्यको इकट्ठा करने पर साठ हजार योजन बाहल्य-प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

यहाँ मात्र इतनी विशेषता है कि लोकके दोनों ही अन्तों (पूर्व-पश्चिमके अन्तिम भागों) में साठ हजार योजनकी ऊँचाई पर्यन्त क्षेत्र यद्यपि हानि-रूप है, फिर भी उसे न छोड़कर 'साठ हजार योजन बाहल्य वाला जगत्प्रतर है' इसप्रकार संकल्पपूर्वक उसको छेदकर पृथक् स्थापित करना चाहिए । यो० ६००००×४९ ।

विशेषार्थ :- लोकके नीचे तीनों-पवनोंका बाहल्य (२०+२०+२०)=६० हजार योजन है । इनकी लम्बाई, चौड़ाई जगच्छ्रेणी प्रमाण है, अतः जगच्छ्रेणीमें जगच्छ्रेणीका परस्पर गुणा करनेसे (जगच्छ्रेणी × जगच्छ्रेणी)=जगत्प्रतरकी प्राप्ति होती है ।

लोककी दक्षिणोत्तर चौड़ाई सर्वत्र जगच्छ्रेणी (७ राजू) प्रमाण है, किन्तु पूर्व-पश्चिम चौड़ाई ७ राजूसे कुछ कम है, फिर भी उसे गौणकर लोकके नीचे तीनों-पवनोंसे अवरुद्ध क्षेत्रका घनफल=[७×७=४९ वर्ग राजू अर्थात् जगत्प्रतर]×६०००० योजन कहा गया है । यथा—

१. [परिहीण], २. द. ब क. ज. ठ. पुढं ति दव्वं ।
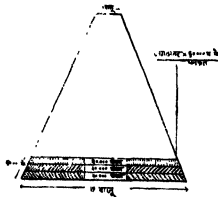
पुणो एग-रज्जुस्सेधेण सत्त-रज्जू-आयामेण सट्ठिजोयण सहस्स-बाहल्लेण दोसु पासेसु ठिद-वाद-खेत्तं बुद्धीए[1] पुध करिय जग-पदर-पमाणेण णिबद्धे वीससहस्साहिय-जोयण-लक्खस्स सत्त-भाग-बाहल्लं जग-पदरं होदि । $=\frac{१२००००}{७}$ ।

अर्थ :—अनन्तर एक ($\frac{-}{७}$) राजू उत्सेध, सात राजू आयाम और साठ हजार योजन बाहल्य वाले वातवलयकी अपेक्षा दोनों पार्श्व-भागोंमें स्थित वातक्षेत्रको बुद्धिसे अलग करके जगत्प्रतर प्रमाणसे सम्बद्ध करनेपर सातसे भाजित एक लाख बीस हजार योजन जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—अधोलोकके एक राजू ऊपरके पार्श्वभागोंतक तीनों पवनोंकी ऊँचाई एक-राजू, आयाम ७ राजू और मोटाई ६० हजार योजन है । इनका परस्पर गुणा करनेसे ($\frac{-}{७}\times\frac{७}{१}\times$ ६०००० योजन) $=\frac{४९}{७}\times\frac{\text{६० हजार योजन}}{१}$ एक पार्श्वभागका घनफल प्राप्त होता है । दोनों पार्श्वभागोंका घनफल निकालने हेतु दोसे गुणित करनेपर ($\frac{४९}{७}\times\frac{\text{६० हजार}}{१}\times\frac{२}{१}$) $=$ ($\frac{४९}{७}$ अर्थात् $\frac{\text{जगत्प्रतर}}{७}$) $\times\frac{१२००००}{७}$ योजन घनफल प्राप्त होता है । यथा—
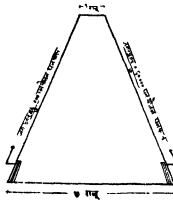
तं पुव्विल्लक्खेत्तस्सुवरि ठिदे चालीस-जोयण-सहस्साहिय-पंचण्हं लक्खाणं सत्त-भाग-बाहल्लं जग-पदरं होदि । $=\frac{५४००००}{७}$ ।

१. द. क. ज. ठ. बुधि पुवकरिय, ब. वुद्धिद पुदकरिय ।

अर्थ :—इसको पूर्वोक्त क्षेत्रके ऊपर स्थापित करनेपर पांचलाख चालीस हजार योजनके सातवेंभाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—लोकके नीचे वातवलयका घनफल ४९ वर्ग राजू × ६०००० योजन था और दोनों पार्श्व भागोंका ४९ वर्ग राजू × $\frac{१२००००}{७}$ योजन है । इन दोनोंका योग करनेके लिए जगत्प्रतरके स्थानीय ४९ को छोड़कर $\frac{६००००}{१}+\frac{१२००००}{७}=\frac{४२००००+१२००००}{७}=\frac{५४००००}{७}$ योजन प्राप्त हुआ । इसे जगत्प्रतरसे युक्त करनेपर $\frac{४९ \times ५४००००}{७}$ योगफल प्राप्त हुआ ।

पुणो अवरासु दोसु दिसासु एग-रज्जुस्सेधेण तले सत्त-रज्जू-आयामेण[1] मुहे सत्त-भागाहिय-छ-रज्जु-रुंदत्तेण सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्लेण [2]ठिद-वाद-खेत्ते जग-पदर-पमाणेण कदे वीस-जोयण-सहस्साहिय-पंच-पंचासज्जोयण-लक्खाणं तेदालीस-तिसद-भाग-बाहल्लं जग-पदरं होदि । = $\frac{५५२००००}{३४३}$

अर्थ :—इसके आगे इतर दो-दिशाओं (दक्षिण और उत्तर) की अपेक्षा एक राजू उत्सेध-रूप, तलभागमें सात राजू आयामरूप, मुखमें सातवें-भागसे अधिक छह राजू विस्ताररूप और साठ हजार योजन बाहल्यरूप वायुमण्डलकी अपेक्षा स्थित वातक्षेत्रके जगत्प्रतर प्रमाणसे करनेपर पचपन लाख बीस हजार योजनके तीनसौ तैंतालीसवें-भाग बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—लोकके नीचेकी चौड़ाईका प्रमाण ७ राजू है, यह भूमि है, सातवीं-पृथिवीके निकट लोककी चौड़ाईका प्रमाण ६$\frac{१}{७}$ राजू है, यह मुख है । लोकके नीचे सप्तम-पृथिवी-पर्यन्त ऊँचाई $\frac{४९}{४९}$ (१ राजू) है, तथा यहाँ पर तीनों-पवनोंकी मोटाई ६० हजार योजन है । इन सबका घनफल इसप्रकार है :—

भूमि $\frac{७}{१}+\frac{४३}{७}$ मुख $=\frac{९२}{७}$, तथा घनफल $=\frac{९२}{७}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{१}\times\frac{४९}{४९}$ वर्ग राजू × $\frac{६००००}{१}$ योजन = ४९ वर्ग राजू × $\frac{५५२००००}{३४३}$ योजन घनफल प्राप्त हुआ । यथा—

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]
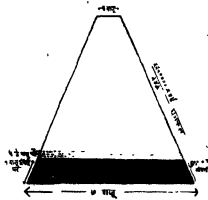
१. द. आलियामेण । ज. ठ. आलियमरण । २. द. ब. क. ज. ठ. ठिदवादखेत्तेण ।

एदे[1] पुव्विल्ल-खेत्तस्सुवरिं पक्खित्ते एगूणवीस-लक्ख-असीदि-सहस्स-जोयणाहिय-तिण्हं कोडीणं तेदालीस-तिसद-भाग-बाहल्लं जग-पदरं होदि । $= \frac{३१९८००००}{३४३}$ ।

अर्थ :—इस उपर्युक्त घनफलके प्रमाणको पूर्वोक्त क्षेत्रके ऊपर रखनेपर तीन करोड़, उन्नीस लाख, अस्सी हजार योजनके तीनसौ तैंतालीसवें-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—पूर्वोक्त योगफल $\frac{४९ \times ५४००००}{७}$ था । लोककी एक राजू ऊँचाईपर दोनों पार्श्वभागोंका घनफल $\frac{५५२०००० \times ४९}{३४३}$ प्राप्त हुआ । यहाँ दोनों जगह ४९ जगत्प्रतरके स्थानीय हैं, अतः योजन [($\frac{५४००००}{७} + \frac{५५२००००}{३४३}$) $= \frac{३१९८००००}{३४३}$] × ४९ वर्ग राजू अर्थात् जगत्प्रतर × $\frac{३१९८००००}{३४३}$ घनफल प्राप्त हुआ ।

पार्श्वभागोंका घनफल

पुणो सत्त-रज्जु-विक्खंभ-तेरह-रज्जु-आयाम-सोलह[2]-बारह- [-सोलसबारह-] जोयण-बाहल्लेण दोसु वि पासेसु ठिद-वाद-खेत्तं जग-पदर-पमाणेण कदे चउ-सट्ठि-सद-जोयणूण-अट्ठारह-सहस्स-जोयणाणं तेदालीस-तिसद-भाग-बाहल्लं जग-पदरमुप्पज्जदि । $= \frac{१७८३६}{३४३}$ ।

अर्थ :—इसके अनन्तर सात राजू विष्कम्भ, तेरह राजू आयाम तथा सोलह, बारह (सोलह एवं बारह) योजन बाहल्यरूप अर्थात् सातवीं पृथिवीके पार्श्वभागमें सोलह, मध्यलोकके

१. एदं पुब्विल्ल । २. ब. सोलस ।

पार्श्वभागमें बारह (ब्रह्मस्वर्गके पार्श्वभागमें सोलह और सिद्धलोकके पार्श्वभागमें बारह) योजन बाहल्यरूप वातवलयकी अपेक्षा दोनों ही पार्श्वभागोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतर प्रमाणसे करनेपर एकसौ चौंसठ योजन कम अठारह हजार योजनके तीनसौ तैंतालीसवें-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—सप्तम पृथिवीसे सिद्धलोक पर्यन्त ऊँचाई १३ राजू, विष्कम्भ ७ राजू वातवलयोंकी मोटाईका औसत (१६ + १२ = २८ ÷ २ = १४), १४ योजन तथा पार्श्वभाग दो हैं, अत: १३ × ७ × १४ × २ = २५४८ प्राप्त हुए, इन्हें जगत्प्रतररूपसे करनेके लिए $\frac{२५४८}{१} \times \frac{३४३}{३४३}$ अर्थात् $\frac{१७८३६ \times ४९}{३४३}$ घनफल प्राप्त हुआ । ग्रन्थकारने इसे = $\frac{१७८३६}{३४३}$ रूपमें प्रस्तुत किया है ।

पुणो सत्त-भागाहिय-छ-रज्जु-मूल-विक्खंभेण छ-रज्जूच्छेहेण एग-रज्जु-मुहेण सोलह-बारह-जोयण-बाहल्लेण दोसु वि पासेसु ठिद-वाद-खेत्तं जगपदर-पमाणेण कदे बादालीस-जोयण-सदस्स[1] [2]तेदालीस-तिसद-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{४२००}{३४३}$[3] ।

अर्थ :—पुन: सातवेंभागसे अधिक छह राजू मूलमें विस्ताररूप, छह राजू उत्सेधरूप, मुखमें एक राजू विस्ताररूप और सोलह-बारह योजन बाहल्यरूप (सातवी पृथिवी और मध्यलोकके पार्श्वभागमें) वातवलयकी अपेक्षा दोनों ही पार्श्वभागोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतरप्रमाणसे करनेपर बयालीस सौ योजनके तीनसौ तैंतालीसवें-भाग बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—सप्तमपृथ्वीके निकट पवनोंकी चौड़ाई ६$\frac{१}{७}$ अर्थात् $\frac{४३}{७}$ राजू है, यह भूमि है । तिर्यग्लोकके निकट पवनोंकी चौड़ाई १ राजू अर्थात् $\frac{७}{७}$ राजू है, यह मुख है । सप्तमपृथिवीसे मध्य-लोक पर्यन्त पवनोंकी ऊँचाई ६ राजू, मोटाई (१६ + १४ = २८ ÷ २) = १४ राजू है तथा पार्श्वभाग दो हैं, अत: [$\frac{४३}{७} + \frac{७}{७} = \frac{५०}{७}$] $\times \frac{१}{२} \times \frac{६}{१} \times \frac{१४}{१} \times \frac{२}{१}$ = ६०० प्राप्त हुए, इन्हें जगत्प्रतरस्वरूप बनाने हेतु ३४३ से गुणित किया और ३४३ से ही भाजित किया । यथा—$\frac{६०० \times ३४३}{३४३}$ अर्थात् = $\frac{४२०० \times ४९}{३४३}$ घनफल प्राप्त हुआ । इसे ४९ वर्गराजू × $\frac{४२००}{३४३}$ योजन रूपमें प्राप्त किया जानेसे ग्रन्थकारने = $\frac{४२००}{३४३}$ रूपमें प्रस्तुत किया है ।

पुणो एग-पंच-एग-रज्जु-विक्खंभेण सत्त-रज्जूच्छेहेण बारह-सोलह-बारह-जोयण-बाहल्लेण उवरिम-दोसु वि पासेसु ठिद-वाद-खेत्तं [4]जगपदर-पमाणेण कदे अट्ठासीदि-समहिय-पंच-जोयण-सदाणं एगूणवण्णासभाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{५८८}{४९}$ ।

---

१. ब. ब. सदा । २. द. जोयणलक्खतेदालीससदभागहिबाहल्ल । ३. ब. ४२००० । ४. द. जगदपदर° ।

अर्थ :—अनन्तर एक, पांच एवं एक राजू विष्कम्भरूप (क्रमसे मध्यलोक, ब्रह्मस्वर्ग और सिद्धक्षेत्रके पार्श्वभागमें), सात राजू उत्सेध रूप और क्रमशः मध्यलोक, ब्रह्मस्वर्ग एवं सिद्धलोकके पार्श्वभागमें बारह, सोलह और बारह योजन बाहल्यरूप वातवलयकी अपेक्षा ऊपर दोनों ही पार्श्व-भागोंमें स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतरप्रमाणसे करनेपर पांचसौ अठासी योजनके एक कम पचासवें अर्थात् उनचासवें भाग बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोक ब्रह्मस्वर्गके समीप पाँच राजू चौड़ा है यही भूमि है। तिर्यग्लोक एवं सिद्धलोकके समीप १ योजन चौड़ा है यही मुख है। उत्सेध ७ राजू, तीनों पवनोंका औसत १४ योजन और पार्श्वभाग दो हैं, अतः भूमि ५+१ मुख=६÷२=३×७×१४×२=५८८ इसे जगत्प्रतर प्रमाण करनेपर ५८८×४९/४९ घनफल प्राप्त होता है। यह ४९ वर्ग राजू×५८८/४९ योजन रूपमें होनेसे ग्रन्थकारने =५८८/४९ संदृष्टि रूपमें लिखा है।

लोकके शिखरपर वायुरुद्ध क्षेत्रका घनफल

उवरि रज्जु-विक्खंभेण सत्त-रज्जु-आयामेण किंचूण-जोयण-बाहल्लेण ठिद-वाद-खेत्तं जगपदर-पमाणेण कदे ति-उत्तर-तिसदाणं बे-सहस्स-विसद-चालीस-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । =३०३/२२४० ।

अर्थ :—ऊपर एक राजू विस्ताररूप, सात राजू आयामरूप और कुछ कम एक योजन बाहल्यरूप वातवलयकी अपेक्षा स्थित वातक्षेत्रको जगत्प्रतर प्रमाणसे करनेपर तीनसौ तीन योजनके दो हजार, दोसौ चालीसवें भाग बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—लोकके अग्रभागपर पूर्व-पश्चिम अपेक्षा वातवलयका व्यास १ राजू, ऊँचाई ३०३/३२० योजन और दक्षिणोत्तर चौड़ाई ७ राजू है। इनका परस्पर गुणाकर जगत्प्रतरस्वरूप करनेसे १/१×७/१×३०३/३२०×४९/४९=३०३×४९/२२४० घनफल प्राप्त होता है। यह ४९ वर्गराजू×३०३/२२४० योजन होनेसे ग्रन्थकारने संदृष्टि रूपमें =३०३/२२४० लिखा है।

यहाँ ३०३/३२० कैसे प्राप्त होते हैं, इसका बीज कहते हैं :—

८००० धनुषका एक योजन और २००० धनुषका एक कोस होता है लोकके अग्रभागपर घनोदधिवातवलय दो कोस मोटा है, जिसके ४००० धनुष हुए। घनवात एक कोस मोटा है जिसके २००० धनुष हुए और तनुवात १५७५ धनुष मोटा है। इन तीनोंका योग (४०००+२०००+१५७५) =७५७५ धनुष होता है। जब ८००० धनुषका एक योजन होता है तब ७५७५ धनुषके कितने योजन

होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१}{८०००}\times\frac{७५०५}{१}=\frac{३०३}{३२०}$ योजन मोटाई लोकके अग्रभागमें कही गई है। (त्रिलोकसार गाथा १३८)
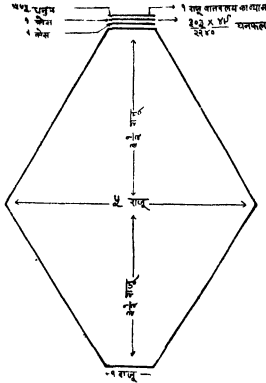
पवनोंसे रुद्ध समस्त क्षेत्रके घनफलोंका योग

एदं [1]सव्वमेगत्थ मेलाविदे चउवीस-कोडि-समहिय-सहस्स-कोडीओ एगूणवीस-लक्ख-तेसीदि-सहस्स-चउसद-सत्तासीदि-जोयणाणं णव-सहस्स-सत्त-सय-सट्ठि-रूवाहिय-लक्खाए अवहिदेग-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ ।

अर्थ :—इन सबको इकट्ठा करके मिला देनेपर एक हजार चौबीस करोड़, उन्नीस लाख, तयासीहजार, चारसौ सत्तासी योजनोंमें एक लाख नौहजार सातसौ साठका भाग देनेपर लब्ध एक भाग बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है।

१. ब. सव्वमगं पवमेलाविदे, द. ज. ठ. सव्वमेगं पमेलाविदे ।

विशेषार्थ :—१. लोकके नीचे तीनों-पवनोंसे अवरुद्ध क्षेत्रके घनफल,

२. लोकके एक राजू ऊपर पूर्व-पश्चिम में अवरुद्ध क्षेत्र के घनफल,

३. लोकके एक राजू ऊपर दक्षिणोत्तरमें अवरुद्ध क्षेत्रके घनफल

४. सप्तमपृथिवीसे सिद्धलोक पर्यन्त अवरुद्ध क्षेत्रके घनफल,

५. सप्तमपृथिवीसे मध्यलोक पर्यन्त दक्षिणोत्तरमें अवरुद्ध क्षेत्रके घनफल,

६. ऊर्ध्वलोकके अवरुद्ध क्षेत्रके घनफलको और ७. लोक के अग्रभागपर वातवलयोंसे अवरुद्ध क्षेत्रके घनफलको एकत्र करनेपर योग इसप्रकार होगा :—

जगत्प्रतर अथवा $४९ \times \frac{३१९८००००}{३४३}$ + जगत्प्रतर या $४९ \times \frac{१७८३६}{३४३}$ + जगत्प्रतर या $४९ \times \frac{४२००}{३४३}$ + जगत्प्रतर या $४९ \times \frac{५८८}{४९}$ + जगत्प्रतर या $४९ \times \frac{३०३}{२२४०}$ । इनको जोड़नेकी प्रक्रिया—

जगत्प्रतर $\times \frac{३१९८००००}{३४३} + \frac{१७८३६}{३४३} + \frac{४२००}{३४३} + \frac{५८८}{४९} + \frac{३०३}{२२४०}$

$$= \text{जगत्प्रतर} \times \frac{१०२३३६००००० + ५७०७५२० + १३४४००० + १३१७१२० + १४८४७}{१०९७६०}$$

$= \text{जगत्प्रतर} \times \frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ अथवा $= \frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ पवनोंसे रुद्ध समस्त क्षेत्रका घनफल प्राप्त हुआ ।

पृथिवियोंके नीचे पवनसे रुद्ध क्षेत्रोंका घनफल

पुणो अट्ठण्हं पुढवीणं हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं वत्तइस्सामो—

तत्थ पढम-पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं एक-रज्जु-विक्खंभ-सत्त-रज्जु-दीहा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्लं एसा अप्पणो बाहल्लस्स सत्तम-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{६००००}{७}$ ।

अर्थ :—इसके बाद आठों पृथिवियोंके अधस्तनभागमें वायुसे अवरुद्ध क्षेत्रका घनफल कहते हैं—

इन आठों पृथिवियोंमेंसे प्रथम पृथिवीके अधस्तनभागमें अवरुद्ध वायुके क्षेत्रका घनफल कहते हैं—एक राजू विष्कम्भ, सात राजू लम्बाई और साठ हजार योजन बाहल्यवाला प्रथम पृथिवीका

वातरुद्ध क्षेत्र होता है। इसका घनफल अपने बाहल्ल अर्थात् साठ हजार योजनके सातवें-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :— प्रथम पृथिवी अर्थात् मध्यलोकके समीप पवनोंकी चौड़ाई एक राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है। इसके घनफल को जगत्प्रतरस्वरूप करनेपर इसप्रकार होता है—

$= \frac{1 \times 7 \times 60000 \times 49}{49} = \frac{49 \times 60000 \times 7}{49}$ घनफल प्राप्त हुआ।

विदिय-पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं सत्त-भागूण-बे रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला असीदि-सहस्साहिय-सत्तण्हं लक्खाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्ल जगपदरं होदि । $= \frac{780000}{49}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके अधस्तन भागमे वातावरुद्ध क्षेत्रका घनफल कहते है :—सातवें-भाग कम दो राजू विष्कम्भवाला, सात राजू आयत और ६० हजार योजन बाहल्लवाला दूसरी पृथिवीका वातरुद्ध क्षेत्र है। उसका घनफल सात लाख, अस्सी हजार, योजनके उनचासवेभाग बाहल्य-प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—अधोलोकको भूमि सात राजू और मुख एकराजू है। भूमिमेसे मुख घटाने पर (७ — १) = ६ राजू अवशेष रहा। क्योंकि ७ राजू ऊँचाईपर ६ राजू घटते हैं, अतः एक राजूपर $\frac{6}{7}$ राजू घटेगा, इसप्रकार प्रत्येक एक राजू ऊपर-ऊपर जाने पर घटेगा। प्रत्येक एक राजूपर $\frac{6}{7}$ राजू घटाते जानेसे नीचेसे क्रमशः $\frac{43}{7}$, $\frac{37}{7}$, $\frac{31}{7}$, $\frac{25}{7}$, $\frac{19}{7}$, $\frac{13}{7}$ और $\frac{7}{7}$ राजू व्यास प्राप्त होता है। इसीलिए गाथामें दूसरी पृथिवीका व्यास $\frac{13}{7}$ राजू कहा गया है। $= \frac{7}{1} \times \frac{13}{7} \times \frac{60000}{1} = \frac{7 \times 7 \times 60000 \times 7}{7 \times 7} = \frac{49 \times 780000}{49}$ घनफल दूसरी पृथिवीके वातरुद्ध क्षेत्रका प्राप्त हुआ।

तदिय-पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं बे-सत्तम-भाग-हीण-तिण्णि-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला चालीस-सहस्साधिय-एक्कारस-लक्ख-जोयणाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $= \frac{1140000}{49}$ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके अधस्तन-भागमें वातरुद्ध क्षेत्रका घनफल कहते हैं :—दो बटे सात भाग ($\frac{2}{7}$) कम तीन राजू विष्कम्भ युक्त, सात राजू लम्बा और साठ हजार योजन बाहल्य-वाला तीसरी पृथिवीका वातरुद्ध क्षेत्र है। इसका घनफल ग्यारह लाख चालीस हजार योजनके उनचासवें भाग बाहल्यप्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—तीसरी पृथिवीके अधस्तन पवनोंका विष्कम्भ $\frac{१९}{७}$ राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है। अतः $\frac{७}{१} \times \frac{१९}{७} \times \frac{६००००}{१} = \frac{७ \times ११४०००० \times ७}{७ \times ७} = \frac{४९ \times ११४००००}{४९}$ घनफल प्राप्त हुआ।

चउत्थ-पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं तिण्णि-सत्तम-भागूण-चत्तारि-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला पण्णरस-लक्ख-जोयणाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि। = १५०००००।
४९

अर्थ :—चौथी पृथिवीके अधस्तन भागमे वातरुद्ध क्षेत्रके घनफलको कहते हैं :—

चौथी पृथिवीका वातरुद्ध क्षेत्र तीन बटे सात ($\frac{३}{७}$) भाग कम चार राजू विस्तार वाला, सात राजू लम्बा और साठ हजार योजन मोटा है। इसका घनफल पन्द्रह लाख योजनके उनचासवें-भाग बाहल्ल प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—चौथी पृथिवीके अधस्तन पवनोंका विष्कम्भ $\frac{२५}{७}$ राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है। अतः $\frac{२५}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{६००००}{१} = \frac{७ \times १५००००० \times ७}{७ \times ७} = \frac{१५०००००}{४९} \times ४९$ घनफल प्राप्त हुआ।

पंचम पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं चत्तारि-सत्तम-भागूण[1]-पंच-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला सट्ठि-सहस्साहिय-अट्ठारस-लक्खाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि। = १८६००००।
४९

अर्थ :—पाँचवीं पृथिवीके अधस्तनभागमें अवरुद्ध वातक्षेत्रका घनफल कहते हैं—

पाँचवीं पृथिवीके अधोभागमें वातावरुद्धक्षेत्र चार बटे सात ($\frac{४}{७}$) भाग कम पाँच राजू विस्ताररूप, सात राजू लम्बा और साठ हजार योजन मोटा है। इसका घनफल अठारह लाख, साठ हजार योजनके उनचासवें-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—पाँचवीं पृथिवीके अधस्तन पवनोंका विष्कम्भ $\frac{३१}{७}$ राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है। अतः $\frac{३१}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{६००००}{१} = \frac{७ \times १८६०००० \times ७}{७ \times ७} = \frac{१८६००००}{४९} \times ४९$ घनफल प्राप्त हुआ।

---

१. द. भागूणछरज्जु।

छट्ठ-पुढवीए [1]हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं पंच-सत्तम-भागूण-छ-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला वीस-सहस्साहिय-बावीस-लक्खा-णमेगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $=\frac{२२२००००}{४९}$ ।

अर्थ :—छठी पृथिवीके अधस्तनभागमें वातावरुद्ध क्षेत्रके घनफलको कहते हैं—पाँच बटे सात ($\frac{५}{७}$) भाग कम छह राजू विस्तार वाला, सात राजू लम्बा और साठ हजार योजन बाहल्यवाला छठी पृथिवीके नीचे वातरुद्ध क्षेत्र है; इसका घनफल बाईस लाख, बीस हजार योजनके उनचासवें-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—छठी पृथिवीके अधस्तन पवनोंका विष्कम्भ $\frac{३७}{७}$ राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है । अतः $\frac{३७}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{६००००}{१} = \frac{२२२०००० \times ७ \times ७}{७ \times ७} = \frac{२२२००००}{४९} \times ४९$ घनफल प्राप्त हुआ ।

सत्तम-पुढवीए हेट्ठिम-भागावरुद्ध-वाद-खेत्त-घणफलं छ-सत्तम-भागूण-सत्त-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला सीदि-सहस्साधिय-पंच-वीस-लक्खाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $=\frac{२५८००००}{४९}$ ।

अर्थ :—सातवीं पृथिवीके अधोभागमें वातरुद्धक्षेत्रके घनफलको कहते हैं—सातवीं पृथिवीके नीचे वातावरुद्धक्षेत्र छह बटे सात ($\frac{६}{७}$) भाग कम सात राजू विस्तार वाला, सात राजू लम्बा और साठ हजार योजन मोटा है । इसका घनफल पच्चीस लाख, अस्सी हजार योजनके उनचासवें-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—सातवी पृथिवीके अधस्तन पवनोंका विष्कम्भ $\frac{४३}{७}$ राजू लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन प्रमाण है । अतः $\frac{४३}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{६००००}{१} = \frac{७ \times २५८०००० \times ७}{७ \times ७} = \frac{२५८००००}{४९} \times ४९$ घनफल प्राप्त हुआ ।

अट्ठम-पुढवीए हेट्ठिम-भाग-वादावरुद्ध-खेत्त-घणफलं सत्त-रज्जु-आयदा एग-रज्जु-विक्खंभा सट्ठि-जोयण-सहस्स-बाहल्ला एसा अप्पणो बाहल्लस्स[2] सत्त-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $=\frac{६००००}{७}$ ।

---

१. द. हेट्ठिभागा । २. द. ब. बाहल्ल से ।

अर्थ :—आठवीं पृथिवीके अधस्तन-भागमें वातावरुद्धक्षेत्रके घनफल को कहते हैं—आठवीं पृथिवीके अधस्तन-भागमें वातावरुद्ध क्षेत्र ७ राजू लम्बा, एक राजू विस्तार-युक्त और साठ हजार योजन बाहल्य वाला है। इसका घनफल अपने बाहल्यके सातवें-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—आठवी पृथिवीके अधस्तन-पवनोंका विस्तार एक राजू, लम्बाई ७ राजू और मोटाई ६०००० योजन है। अत: $\frac{१}{१} \times \frac{७}{१} \times \frac{६००००}{७} = \frac{७ \times ६०००० \times ४९}{४९}$ अर्थात् $\frac{४२०००० \times ४९}{४९}$ घनफल प्राप्त हुआ।

आठो पृथिवियोंके सम्पूर्ण घनफलोंका योग

एवं ¹सव्वमेगट्ठ मेलाविदे येसियं होदि । $= \frac{१०९२००००}{४९}$ ।

।। एवं वादावरुद्ध-खेत्त-घणफल समत्त ।।

अर्थ :—इन सबको इकट्ठा मिलानेपर कुल घनफल इसप्रकार होता है :—

$\frac{४९ \times ६०००० \times ७}{४९} + \frac{४९ \times ७८००००}{४९} + \frac{४९ \times ११४००००}{४९} + \frac{४९ \times १५०००००}{४९} + \frac{४९ \times १८६००००}{४९} + \frac{४९ \times २२२००००}{४९} + \frac{४९ \times २५८००००}{४९} + \frac{४९ \times ४२००००}{४९}$ ।

नोट :—आठों पृथिवियो के उपर्युक्त (घनफल निकालते समय) घनफल को जगत्प्रतर स्वरूप करने हेतु सर्वत्र $\frac{४९}{४९}$ का गुणा किया गया है।

उपर्युक्त घनफलों में अंश का (ऊपर वाला) ४९ जगत्प्रतर स्वरूप है, अत: उसे अन्यत्र स्थापित कर देनेपर घनफलोंका स्वरूप इसप्रकार बनता है।

$४९ \times \frac{४२००००}{४९} + \frac{७८००००}{४९} + \frac{११४००००}{४९} + \frac{१५०००००}{४९} + \frac{१८६००००}{४९} + \frac{२२२००००}{४९} + \frac{२५८००००}{४९} + \frac{४२००००}{४९} = ४९ \times \frac{१०९२००००}{४९}$ अर्थात् जगत्प्रतर $\times \frac{१०९२००००}{४९}$ या $= \frac{१०९२००००}{४९}$ घनफल सम्पूर्ण (आठों) पृथिवियोंके अधस्तन भागका प्राप्त हुआ।

इसप्रकार वातावरुद्ध क्षेत्रके घनफलका वर्णन समाप्त हुआ।

लोक स्थित आठों पृथिवियोंके वायुमण्डलका चित्रण इसप्रकार है—

---

१. द. ब. सव्वमेगं पमेलाविदे।

लोकाकाश
लोकाकाश
आकाश
आकाश
आकाश
आकाश
आकाश
आकाश
नि त्य नि गो द

प्रत्येक पृथिवीके घनफल-कथनका निर्देश

संपहि अट्ठण्हं पुढवीणं पत्तेक्कं विदफलं थोरुच्चएण वत्तइस्सामो—

तत्थ पढम-पुढवीए एग-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-दीहा वीस-सहस्सूण-बे-जोयण-लक्ख-बाहल्ला एसा अप्पणो बाहल्लस्स सत्तम-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि ।= १८०००० ।
७

अर्थ :—अब आठों पृथिवियोंमेंसे प्रत्येक पृथिवीके घनफलको संक्षेपमें कहते हैं :—

इन आठों पृथिवियोंमेंसे पहली पृथिवी एक राजू विस्तृत, सात राजू लम्बी और बीस हजार कम दो लाख योजन मोटी है। इसका घनफल अपने बाहल्यके सातवें भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभा नामक पहली पृथिवी एक राजू चौड़ी, ७ राजू लम्बी और १८०००० योजन मोटी है, इनको परस्पर गुणित कर घनफल को जगत्प्रतर करने हेतु $\frac{७}{७}$ से पुनः गुणा किया गया है। यथा—

$\frac{१}{१} \times \frac{७}{१} \times \frac{१८००००}{१} = \frac{७ \times १८०००० \times ७}{७} = ४९$ वर्ग राजू $\times \frac{१८००००}{७}$ योजन घनफल प्रथम रत्नप्रभा पृ० का प्राप्त हुआ।

दूसरी पृथिवीका घनफल

विदिय-पुढवीए सत्त-भागूण-बे-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु आयदा बत्तीस-जोयण-सहस्स-बाहल्ला सोलस-सहस्साहिय-चदुण्हं[1] लक्खाणमेगूण[2]पण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि ।= ४१६००० ।
४९

अर्थ: —दूसरी पृथिवी सातवेंभाग कम दो राजू विस्तृत, सात राजू आयत और बत्तीस-हजार योजन मोटी है, इसका घनफल चार लाख सोलह हजार योजनके उनचासवेंभाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है

१. ब. क चउण्हं । २. द लक्खाण एगूण° ।

विशेषार्थ :—दूसरी शर्करापृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{१३}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और ३२००० योजन मोटी है। इसके घनफलको जगत्प्रतरस्वरूप करने हेतु $\frac{७}{७}$ से गुणा करनेपर $\frac{१३}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{३२०००}{१} = \frac{७ \times ४१६००० \times ७}{७ \times ७} =$ ४९ वर्ग राजू $\times \frac{४१६०००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त होता है।

तीसरी पृथिवीका घनफल

तदिय-पुढवीए बे-सत्तम-भाग-हीण-तिण्णि-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा अट्ठावीस-जोयण-सहस्स-बाहल्ला बत्तीस-सहस्साहिय-पंच-लक्ख-जोयणाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि। $= \frac{५३२०००}{४९}$।

अर्थ :—तीसरी पृथिवी दो बटे सात ($\frac{२}{७}$) भाग कम तीन राजू विस्तृत, सात राजू आयत और अट्ठाईस हजार योजन मोटी है। इसका घनफल पाँच लाख, बत्तीस हजार योजनके उनचासवें-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—तीसरी बालुका पृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{१९}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और २८००० योजन मोटी है। इसके घनफलको जगत्प्रतरस्वरूप करने हेतु $\frac{७}{७}$ से गुणा करनेपर $\frac{१९}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{२८०००}{१} = \frac{७ \times ५३२००० \times ७}{७ \times ७} =$ ४९ वर्ग राजू $\times \frac{५३२०००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त होता है।

चतुर्थ पृथिवीका घनफल

चउत्थ-पुढवीए तिण्णि-सत्तम-भागूण-चत्तारि-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा चउवीस-जोयण-सहस्स-बाहल्ला छ-जोयण-लक्खाणं एगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि। $= \frac{६०००००}{४९}$।

अर्थ :—चौथी पृथिवी तीन बटे सात ($\frac{३}{७}$) भाग कम चार राजू विस्तृत, सात राजू आयत और चौबीस हजार योजन मोटी है। इसका घनफल छह लाख योजनके उनचासवें-भाग प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—चौथी पंकप्रभा पृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{२५}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और २४००० योजन मोटी है। इसके घनफलको जगत्प्रतर स्वरूप करने हेतु $\frac{७}{७}$ से गुणा करने पर $\frac{२५}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{२४०००}{१} = \frac{७ \times ६००००० \times ७}{७ \times ७} =$ ४९ वर्गराजू $\times \frac{६०००००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त हुआ।

पाँचवी पृथिवीका घनफल

पंचम-पुढवीए चत्तारि-सत्त-भागूण-पंच-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा बीस-जोयण-सहस्स-बाहल्ला बीस-सहस्साहिय-छण्णं लक्खाणमेगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $=\frac{६२००००}{४९}$ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवी चार बटे सात ($\frac{४}{७}$) भाग कम पाँच राजू विस्तृत, सात राजू आयत और बीस हजार योजन मोटी है । इसका घनफल छह लाख, बीस हजार योजनके उनचासवें-भाग बाहल्य प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—पाँचवी धूमप्रभा पृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{३१}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और २०००० योजन मोटी है । इसके घनफलको जगत्प्रतरस्वरूप करने हेतु $\frac{७}{७}$ से गुणा करने पर $\frac{३१}{७}\times\frac{७}{१}\times\frac{२००००}{१}=\frac{७\times६२००००\times७}{७\times७}=$ ४९ वर्ग राजू $\times\frac{६२००००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त हुआ ।

छठी पृथिवीका घनफल

छट्ठम-पुढवीए पंच-सत्त-भागूण-छ-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा सोलस-जोयण-सहस्स-बाहल्ला बाणउदि-सहस्साहिय-पंचण्हं लक्खाणमेगूणवण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $=\frac{५९२०००}{४९}$ ।

अर्थ :—छठी पृथिवी पाँच बटे सात ($\frac{५}{७}$) भाग कम छह राजू विस्तृत, सात राजू आयत और सोलह हजार योजन बाहल्यवाली है । इसका घनफल पाँच लाख, बानबै हजार योजनके उनचासवें-भाग बाहल्य-प्रमाण जगत्प्रतर होता है ।

विशेषार्थ :—छठी तमःप्रभा पृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{३७}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और १६००० योजन मोटी है । इसके घनफलको जगत्प्रतर करनेके लिए $\frac{७}{७}$ से गुणा करनेपर $\frac{३७}{७}\times\frac{७}{१}\times\frac{१६०००}{१}=\frac{७\times५९२०००\times७}{७\times७}=$ ४९ वर्गराजू $\times\frac{५९२०००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त होता है ।

सातवीं पृथिवीका घनफल

सत्तम-पुढवीए छ-[1]सत्तम-भागूण-सत्त-रज्जु-विक्खंभा सत्त-रज्जु-आयदा अट्ठ-

---

१. द ससत्तभागूण° ।

जोयण-सहस्स-बाहल्ला चउदाल-सहस्साहिय-तिण्णं लक्खाणमेगूणपण्णास-भाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । $=\frac{३४४०००}{४९}$ ।

अर्थ :– सातवी पृथिवी छह बटे सात ($\frac{६}{७}$) भाग कम सात राजू विस्तृत, सात राजू आयत और आठ हजार योजन बाहल्य वाली है। इसका घनफल तीन लाख चवालीस हजार योजनके उनचासवें-भाग-बाहल्य-प्रमाण जगत्प्रतर होता है।

विशेषार्थ :—सातवीं महातम:प्रभा पृथिवी पूर्व-पश्चिम $\frac{४३}{७}$ राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और ८००० योजन मोटी है। इसके घनफलको जगत्प्रतरस्वरूप करनेके लिए $\frac{७}{७}$ से गुणा करनेपर $\frac{४३}{७}\times\frac{७}{१}\times\frac{८०००}{१}=\frac{७\times३४४०००\times७}{७\times७}=$ ४९ वर्गराजू $\times\frac{५१२०००}{४९}$ योजन घनफल प्राप्त होता है।

आठवी पृथिवीका घनफल

अट्ठम-पुढवीए सत्त-रज्जु-आयदा [1]एक्क-रज्जु-रुंदा अट्ठ-जोयण[2]-बाहल्ला सत्तम-[3]भागाहियएगज्जोयण-बाहल्लं जगपदरं होदि । $=\frac{५६}{७}$ ।

अर्थ :—आठवी पृथिवी सात राजू आयत, एक राजू विस्तृत और आठ योजन मोटी है। इसका घनफल सातवे-भाग सहित एक योजन बाहल्ल प्रमाण जग-प्रतर होता है।

विशेषार्थ :- आठवीं ईषत्-प्राग्भार पृथिवी पूर्व-पश्चिम एक राजू विस्तृत, दक्षिणोत्तर ७ राजू लम्बी और ८ योजन मोटी है। इसके घनफलको जगत्प्रतरस्वरूप करनेके लिए $\frac{७}{७}$ से गुणा करनेपर $१\times७\times८=\frac{७\times५६\times७}{७}=$ ४९ वर्गराजू $\times\frac{५६}{७}$ योजन घनफल प्राप्त होता है।

सम्पूर्ण घनफलोंका योग

एवाणि सव्व-मेलिदे एत्तियं होदि । $=\frac{४३६४०५६}{४९}$ ।

अर्थ :– इन सब घनफलोंको मिलानेपर निम्नलिखित प्रमाण होता है—

$४९\times\frac{१८०००००}{७}$ या $४९\times\frac{१२१००००}{४९}+४९\times\frac{४११०००}{४९}+४९\times\frac{५३२०००}{४९}+४९\times\frac{१००००००}{४९}+४९\times\frac{१२०००००}{४९}+४९\times\frac{५१२०००}{४९}+४९\times\frac{३४४०००}{४९}+४९\times\frac{५६}{७}$ या ४९ × [illegible] । यहाँ अंशके ४९ जगत्प्रतर स्वरूप हैं। अत :—

१. द. एगरज्जु° । २. द. अट्ठसहस्सजोयण° । ३. द. भागाहियमेयज्जो° ।

$$४९ \times \frac{१२६०००० + ४१६००० + ५३२००० + ६००००० + ६२०००० + ५९२००० + ३४४००० + ५६}{४९}$$

$= ४९$ वर्गराजू $\times \frac{४३१४०५१}{४९}$ योजन या जगत्प्रतर $\times \frac{४३१४०५१}{४९}$ घनफल प्राप्त होता है।

लोकके शुद्धाकाशका प्रमाण

एदेहिं दोहिं खेत्ताणं विंदफलं संमेलिय सयल-लोयम्मि अवणीदे अवसेसं सुद्धा-यास-पमाणं होदि ।

तस्स ठवणा—
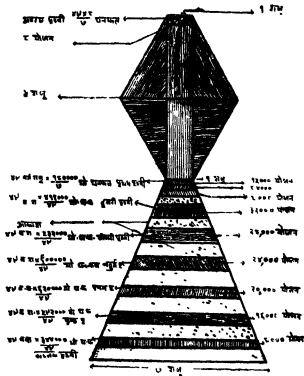
[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]
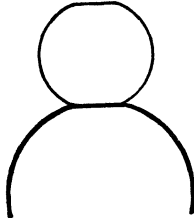
अर्थ :—उपर्युक्त इन दोनों क्षेत्रों (वातावरुद्ध और आठ भूमियों) के घनफलको मिलाकर उसे सम्पूर्ण लोकमेंसे घटा देने पर अवशिष्ट शुद्ध-आकाशका प्रमाण प्राप्त होता है। उसकी स्थापना यह है—संदृष्टि मूलमें देखिये (इस संदृष्टिका भाव समझमें नहीं आया)।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण

केवलणाण-तिणेत्तं चोत्तीसादिसय-भूदि-संपण्णं ।
णाभेय-जिणं तिहुवण-णमंसणिज्जं णमंसामि ॥२८६॥

एवमाइरिय-परंपरागय-तिलोयपण्णत्तीए सामण्ण-जगसरूव-णिरूवण-पण्णत्ती णाम ।

पढमो महाहियारो सम्मत्तो ॥१॥

अर्थ :—केवलज्ञानरूपी तीसरे नेत्रके धारक, चौंतीस अतिशयरूपी विभूतिसे सम्पन्न और तीनों लोकोंके द्वारा नमस्करणीय, ऐसे नाभेय जिन अर्थात् ऋषभ जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूं ॥२८६॥

इसप्रकार आचार्य-परम्परागत त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमें सामान्य जगत्स्वरूप निरूपण-प्रज्ञप्ति नामक

प्रथम महाधिकार समाप्त हुआ ।

बिदुओ महाहियारो

मङ्गलाचरण पूर्वक नारक लोक कथनकी प्रतिज्ञा

अजिय-जिणं जिय-मयणं दुरित-हरं आजवंजवातीदं ।
पणमिय णिरुवमाणं णारय-लोयं णिरूवेमो ।।१।।

अर्थ :—कामदेवको जीतनेवाले, पापको नष्ट करनेवाले, संसारसे अतीत और अनुपम अजितनाथ भगवानको नमस्कार करके नारकलोकका निरूपण करता हूं ।।१।।

पन्द्रह अधिकारोंका निर्देश

[1]णेरइय-णिवास-खिदी-परिमाणं आउ-उदय-ओहीए ।
गुणठाणादीणं संखा उप्पज्जमाण जीवाणं ।।२।।

७ ।

जम्मण-मरणाणंतर-काल-पमाणादि एक्क समयम्मि ।
उप्पज्जय-मरणाण य परिमाणं तह य आगमणं ।।३।।

३ ।

णिरय-गदि-आउबंधण-परिणामा तह य जम्म-भूमीओ ।
णाणावुक्ख-सरूवं दंसण-गहणस्स हेदु जोणीओ ।।४।।

५ ।

एवं पण्णरस-विहा अहियारा वण्णिदा समासेण ।
तित्थयर-वयण-णिग्गय-णारय-पण्णत्ति-णामाए ।।५।।

---

१. द. क. ब. णिरइ ।

अर्थ :—नारकियोंकी निवास १ भूमि, २ परिमाण (संख्या), ३ आयु, ४ उत्सेध, ५ अवधिज्ञान, ६ गुणस्थानादिकोंका वर्णन, ७ उत्पद्यमान जीवोकी संख्या, ८ जन्म-मरणके अन्तर-कालका प्रमाण, ९ एक समयमें उत्पन्न होनेवाले और मरनेवाले जीवोंका प्रमाण, १० नरकसे निकलनेवाले जीवोका वर्णन, ११ नरकगतिके आयु-बन्धक परिणाम, १२ जन्मभूमि, १३ नानादु:खोंका स्वरूप, १४ सम्यक्त्व-ग्रहणके कारण और १५ नरकमें उत्पन्न होनेके कारणोंका कथन, तीर्थङ्करके वचनसे निकले हुए इसप्रकार ये पन्द्रह अधिकार इस नारक-प्रज्ञप्ति नामक महाधिकारमें सक्षेपसे कहे गये हैं ।।२-५।।

त्रसनालीका स्वरूप एवं ऊँचाई

लोय-बहु-मज्झ-देसे तरुम्मि सारं व रज्जु-पदर-जुदा ।
तेरस-रज्जुच्छेहा किंचूणा होदि तस-णाली ।।६।।

ऊण-पमाणं दंडा कोडि-तियं एक्कवीस-लक्खाणं ।
बासट्ठि च सहस्सा दुसया इगिदाल दुतिभाया ।।७।।

। ३२१६२२४१ । $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—वृक्षमे (स्थित) सारकी तरह, लोकके बहुमध्यभागमें एक राजू लम्बी-चौड़ी और कुछ कम तेरह राजू ऊँची त्रसनाली है । त्रसनालीकी कमीका प्रमाण तीन करोड़, इक्कीस लाख, बासठ हजार, दोसौ इकतालीस धनुष एवं एक धनुषके तीन-भागोंमेंसे दो ($\frac{2}{3}$) भाग है ।।६-७।।

विशेषार्थ :—त्रसनालीकी ऊँचाई १४ राजू प्रमाण है । इसमें सातवें नरकके नीचे एक राजू प्रमाण कलकल नामक स्थावर लोक है, यहाँ त्रस जीव नही रहते अत: उसे (१४ — १) = १३ राजू कहा गया है । इसमें भी सप्तम नरकके मध्यभागमें ही नारकी (त्रस) हैं । नीचेके ३९९९$\frac{2}{3}$ योजन (३१९९४६६६$\frac{2}{3}$ धनुष) में नहीं हैं ।

इसीप्रकार ऊर्ध्वलोकमें सर्वार्थसिद्धिसे ईषत्प्राग्भार नामक आठवीं पृथिवीके मध्य १२ योजन (९६००० धनुष) का अन्तराल है, आठवीं पृथिवीकी मोटाई ८ योजन (६४००० धनुष) है और इसके ऊपर दो कोस (४००० धनुष), एक कोस (२००० धनुष) एवं १५७५ धनुष मोटाई वाले तीन वातवलय हैं । इस सम्पूर्ण क्षेत्रमें भी त्रस जीव नही हैं इसलिए गाथामें १३ राजू ऊँची त्रस नालीमेंसे (३१९९४६६६$\frac{2}{3}$ धनुष + ९६००० धनुष + ६४००० धनुष + ४००० धनुष + २००० धनुष और + १५७५ धनुष) = ३२१६२२४१$\frac{2}{3}$ धनुष कम करनेको कहा गया है ।

सर्वलोकको त्रसनालीपनेकी विवक्षा

अहवा—

उववाद-मारणंतिय-परिणद-तस-लोय-पूरणेण गदो ।
केवलिणो अवलंबिय सव्व-जगो होदि तस-णाली ॥८॥

अर्थ :—अथवा–उपपाद और मारणांतिक समुद्घातमें परिणत त्रस तथा लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त केवलीका आश्रय करके सारा लोक त्रस-नाली है ॥८॥

विशेषार्थ :—जीवका अपनी पूर्व पर्यायको छोड़कर नवीन पर्यायजन्य आयुके प्रथम समयको उपपाद कहते हैं । पर्यायके अन्तमें मरणके निकट होनेपर बद्धायुके अनुसार जहाँ उत्पन्न होना है, वहाँके क्षेत्रको स्पर्श करनेके लिए आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलना मारणान्तिक समुद्घात है । १३ वें गुणस्थानके अन्तमे आयुकर्मके अतिरिक्त शेष तीन अघातिया कर्मोंकी स्थितिक्षयके लिए केवलीके (दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूर्ण आकारसे) आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलना केवली समुद्घात है, इन तीनों अवस्थाओंमें त्रसजीव त्रस-नालीके बाहर भी पाये जाते हैं ।

रत्नप्रभा-पृथिवीके तीन-भाग एव उनका बाहल्य

खर-पंकप्पब्बहुला भागा [1]रयणप्पहाए पुढवीए ।
बहलत्तणं सहस्सा [2]सोलस चउसीदि सीदी य ॥९॥

१६००० । ८४००० । ८०००० ।

अर्थ :—रत्नप्रभापृथिवीके खर, पक और अब्बहुलभाग क्रमशः सोलह हजार, चौरासी हजार और अस्सी हजार योजन प्रमाण बाहल्यवाले हैं ॥९॥

विशेषार्थ :—रत्नप्रभापृथिवीका—(१) खरभाग १६००० योजन, (२) पंकभाग ८४००० योजन और (३) अब्बहुलभाग ८०००० योजन मोटा है ।

खरभागके एव चित्रापृथिवीके भेद

खरभागो णादव्वो सोलस-भेदेहिं संजुदो णियमा ।
चित्तादीओ खिदिओ तेसिं चित्ता बहु-वियप्पा ॥१०॥

---

१. द. रयणप्पहायि पुढवोए, ब. रयणप्पहा य पुढवीणं । २. द. ब सोल ।

अर्थ :—इन तीनोंमें खरभाग नियमसे सोलह भेदों सहित जानना चाहिए। ये सोलह भेद चित्रादिक सोलह पृथिवीरूप हैं। इनमेंसे चित्रा पृथिवी अनेक प्रकार है ।।१०।।

'चित्रा' नामकी सार्थकता

णाणाविह-वण्णाओ मट्टीओ तह सिलातला उवला[1] ।
वालुव-सक्कर-सीसय-रुप्प-सुवण्णाण वइरं च ।।११।।

अय-तंब-तउर-सासय-मणिस्सिला-हिंगुलाणि [2]हरिदालं ।
अंजण-पवाल-गोमज्जगाणि रुजगं कदंब-पदराणि ।।१२।।

तह अब्भवालुकाओ फलिहं जलकंत-सूरकंताणि ।
चंदप्पह-वेलुरियं गेरुव-चंदणय-लोहिदंकाणि ।।१३।।

बंबय-बगमोअ-सारग-पहुदीणि विविह-वण्णाणि ।
जा होंति त्ति एत्तेणं चित्तेत्ति [3]पवण्णिदा एसा ।।१४।।

अर्थ :—यहाँपर अनेकप्रकारके वर्णोंसे युक्त मिट्टी, शिलातल, उपल, वालु, शक्कर, शीशा, चाँदी, स्वर्ण तथा वज्र, अयस् (लोहा), तांबा, त्रपु (रांगा), सस्यक (सीसा), मणिशिला, हिंगुल (सिंगरफ), हरिताल, अंजन, प्रवाल (मूँगा), गोमेदक (मणिविशेष), रुचक, कदंब (धातुविशेष), प्रतर (धातुविशेष), अभ्रवालुका (लालरेत), स्फटिकमणि, जलकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि, चन्द्रप्रभ (चन्द्रकान्तमणि), वैडूर्यमणि, गेरू, चन्द्राश्म, (रत्नविशेष) लोहितांक (लोहिताक्ष ?), बंबय (पद्मक ?), (बगमोच ?) और सारंग इत्यादि विविध वर्णवाली धातुएँ हैं, इसीलिए इस पृथिवीका 'चित्रा' इस नामसे वर्णन किया गया है ।।११-१४।।

चित्रा-पृथिवीकी मोटाई

एदाए[4] बहलत्तं एक्क-सहस्सा हवंति[5] जोयणया ।
तीए हेट्ठा कमसो चोद्दस रयणा[6] य खंड मही ।।१५।।

अर्थ :—इस चित्रा पृथिवीकी मोटाई एक हजार योजन है। इसके नीचे क्रमशः चौदह रत्नमयी पृथिवीखण्ड (पृथिवियाँ) स्थित हैं ।।१५।।

---

१. ब. सिलातला ओववादा। २. द. अरिदालं। ३. द. ब. वण्णिदो एसो। ४. ब. एदाव। ५. द. हुवंति। ६ ब. द. क. ठ. रयणा य खिदमही।

अन्य १४ पृथिवियोंके नाम एवं उनका बाहल्य

तण्णामा वेरुलियं लोहिययंकं[1] असारगल्लं च ।
गोमेज्जयं पवालं जोदिरसं अंजणं णाम ।।१६।।

अंजणमूलं अंकं फलिहच्चंदण च [2]वच्चगयं ।
बउलं सेला[3] एदा पत्त`क्कं इगि-सहस्स-बहलाइं ।।१७।।

अर्थ :—वैडूर्य, लोहितांक (लोहिताक्ष), असारगल्ल (मसारकल्पा), गोमेदक, प्रवाल, ज्योतिरस, अंजन, अंजनमूल, अंक, स्फटिक, चन्दन, वर्चगत (सर्वार्थका), बकुल और शैला ये उन उपर्युक्त चौदह पृथिवियोंके नाम हैं। इनमेंसे प्रत्येककी मोटाई एक-एक हजार योजन है ।।१६-१७।।

सोलहवी पृथिवीका नाम, स्वरूप एवं बाहल्य

ताण खिदीणं हेट्ठा पासाणं णाम [4]रयण-सेल-समा ।
जोयण-सहस्स-बहलं वेत्तासण-सण्णिहाउ[5] संठाओ[6] ।।१८।।

अर्थ :—उन (१५) पृथिवियोंके नीचे पाषाण नामकी एक (सोलहवीं) पृथिवी है, जो रत्नपाषाण सदृश है। इसकी मोटाई भी एक हजार योजन प्रमाण है। ये सब पृथिवियाँ वेत्रासनके सदृश स्थित हैं ।।१८।।

पंकभाग एवं अब्बहुलभागका स्वरूप

पंकाजिरो य [7]दीसदि एवं पंक-बहुल-भागो वि ।
अप्पबहुलो वि भागो सलिल-सरूवस्सयो होदि ।।१९।।

अर्थ :—इसीप्रकार पंकबहुलभाग भी पंकसे परिपूर्ण देखा जाता है। उसीप्रकार अब्ब-हुलभाग जलस्वरूपके आश्रयसे है ।।१९।।

---

१. [लोहिययक्खं मसार]। २. ठ. वचव्वगय। ३. द. क. ब. सेलं इय एदाइ। ४. ब. क. ठ. रयणसोलसम। ५. द. ब. सण्णिहो। ६. क. ठ. सबओ। ७. द. क. ठ. दिसदि एदा एवं, ब. दिसदि एवं।

रत्नप्रभा नामकी सार्थकता

एवं बहुविह-रयणप्पयार-भरिदो विराजदे जम्हा ।
रयणप्पहो[1] त्ति तम्हा भणिदा णिउणेहि गुणणामा ।।२०।।

अर्थ :—इसप्रकार क्योंकि यह पृथिवी बहुत प्रकारके रत्नोंसे भरी हुई शोभायमान होती है, इसीलिए निपुण-पुरुषोंने इसका 'रत्नप्रभा' यह सार्थक नाम कहा है ।।२०।।

शेष छह पृथिवियोंके नाम एवं उनकी सार्थकता

सक्कर-वालुव-पंका धूमतमा तमतमा हि सहचरिया ।
जाओ[2] अवसेसाओ[3] छप्पुढवीओ वि गुणणामा ।।२१।।

अर्थ :—शेष छह पृथिवियाँ क्रमशः शक्कर, वालू, कीचड़, धूम, अन्धकार और महान्धकारकी प्रभासे सहचरित हैं, इसीलिए इनके भी उपर्युक्त नाम सार्थक हैं ।।२१।।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभापृथिवीके नीचे शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और तमस्तमः प्रभा (महातमः प्रभा) ये छह पृथिवियाँ क्रमशः शर्करा आदिकी प्रभासदृश सार्थक नाम वाली हैं ।

शर्करा-आदि पृथिवियोंका बाहल्य

बत्तीसट्ठावीसं चउवीसं वीस-सोलसट्ठं च ।
हेट्ठिम-छप्पुढवीणं बहलत्तं जोयण-सहस्सा ।।२२।।

३२००० । २८००० । २४००० । २०००० । १६००० । ८००० ।

अर्थ :—इन छह अधस्तन पृथिवियोंकी मोटाई क्रमशः बत्तीस हजार, अट्ठाईस हजार, चौबीस हजार, बीस हजार, सोलह हजार और आठ हजार योजन प्रमाण है ।।२२।।

विशेषार्थ :—शर्करा पृथिवीकी मोटाई ३२००० योजन, बालुकाकी २८००० योजन, पंकप्रभाकी २४००० योजन, धूमप्रभाकी २०००० योजन, तमःप्रभाकी १६००० योजन और महातमः प्रभाकी ८००० यो० मोटाई है ।

---

१. [रयणप्पह त्ति], ठ. रयणप्पह होंति । २. द. ब. क. ठ. जेत्तं । ३. ठ. अवसेसाओ ।

प्रकारान्तरसे पृथिवियोंका बाहल्य

वि-गुणिय-छ-च्चउ-सट्ठी-सट्ठी-उणसट्ठी-अट्ठ[1]-चउवण्णा ।
बहलत्तणं सहस्सा हेट्ठिम-पुढवीण-छण्णं पि ॥२३॥
पाठान्तरम् ।

१३२००० । १२८००० । १२०००० । ११८००० । ११६००० । १०८०००

अर्थ :—छयासठ, चौंसठ, साठ, उनसठ, अट्ठावन और चौवन इनके दुगुने हजार योजन प्रमाण उन अधस्तन छह पृथिवियोंकी मोटाई है ॥२३॥

विशेषार्थ :—शर्करा पृथिवीकी मोटाई (६६ हजार × २ =) १३२००० योजन बालुकाकी (६४ हजार × २) = १,२८००० यो०, पंकप्रभाकी (६० हजार × २) = १२०००० यो०, धूमप्रभाकी (५९ ह० × २) = ११८००० यो०, तमःप्रभाकी (५८ ह० × २) = ११६००० यो० और महातमः प्रभाकी (५४ ह० × २) = १०८००० योजन प्रमाण है ।

पृथिवियोंसे घनोदधि वायुकी संलग्नता एवं आकार

सत्त च्चिय भूमीओ णव-दिस-भाएण घणोवहि-विलग्गा[2] ।
अट्ठम-भूमी दस-दिस-भागेसु घणोवहिं[3] छिवदि ॥२४॥
पुव्वावर-विब्भाए वेत्तासण-संणिहाओ संठाओ ।
उत्तर-दक्खिण-दीहा अणादि-णिहणा य पुढवीओ ॥२५॥

अर्थ :—सातों पृथिवियाँ (ऊर्ध्वदिशाको छोड़कर शेष) नौ दिशाओंके भागसे घनोदधि वातवलयसे लगी हुई हैं परन्तु आठवीं पृथिवी दसों दिशाओंके सभी भागोंमें घनोदधि वातवलयको छूती है । ये पृथिवियाँ पूर्व और पश्चिम दिशाके अन्तरालमें वेत्रासनके सदृश आकारवाली तथा उत्तर और दक्षिणमें समानरूपसे दीर्घ एवं अनादिनिधन हैं ॥२४-२५॥

नरक बिलोंका प्रमाण

चुलसीदी [4]लक्खाणं णिरय-बिला होंति सव्व-पुढवीसुं ।
पुढविं पडि पत्तेक्कं ताण पमाणं परूवेमो ॥२६॥

८४००००० ।

---

१. द. क. ब. दुविसट्ठि । ठ. छचउट्ठि सट्ठिदविसट्ठि । २. ठ. पुणवहीण । ३. ठ. घणोवहि ।
४. क. ठ. लक्खाणि ।

अर्थ :—सर्व पृथिवियोंमें नारकियोंके बिल कुल चौरासी लाख (८४०००००) हैं। अब इनमेंसे प्रत्येक पृथिवीका आश्रय करके उन बिलोंके प्रमाणका निरूपण करता हूं ॥२६॥

पृथिवीक्रमसे बिलोंकी संख्या

तीसं [1]पणवीसं पण्णरसं दस तिण्णि होंति लक्खाणि ।
पण-रहिदेक्कं लक्खं पंच य [2]रयणादि-पुढवीणं ॥२७॥

३०००००० । २५००००० । १५००००० । १०००००० । ३००००० । ९९९९५ । ५ ।

अर्थ :—रत्नप्रभा आदिक पृथिवियोंमें क्रमशः तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच—कम एक लाख और केवल पाँच ही बिल हैं ॥२७॥

विशेषार्थ :—प्रथम नरकमें ३००००००, दूसरेमें २५०००००, तीसरेमें १५०००००, चौथेमें १००००००, पाँचवेमें ३०००००, छठेमें ९९९९५ और सातवें नरकमें ५ बिल हैं।

सातों नरक पृथिवियोंकी प्रभा, बाहल्य एवं बिल संख्या
गा० ९, २१-२३ और २७

क्रमांक	नाम	प्रभा	बाहल्य योजनोंमें	मतान्तरसे बाहल्य योजनोंमें	बिलोंकी संख्या
१	रत्नप्रभा	रत्नों सदृश	१८००००	१८००००	३००००००
२	शर्कराप्रभा	शक्कर ,,	३२०००	१३२०००	२५०००००
३	वालुकाप्रभा	बालू ,,	२८०००	१२८०००	१५०००००
४	पंकप्रभा	कीचड़ ,,	२४०००	१२४०००	१००००००
५	धूमप्रभा	धूम ,,	२००००	१२००००	३०००००
६	तमप्रभा	अन्धकार ,,	१६०००	११६०००	९९९९५
७	महातमप्रभा	महान्धकार ,,	८०००	१०८०००	५

१. द. पणुवीसं। २. द. ब. क. रयणेइ।

बिलोंका स्थान

सत्तम-खिदि-बहु-मज्झे [1]बिलाणि सेसेसु अप्पबहुलंतं ।
उवरिं हेट्ठे जोयण-सहस्समुज्झिय हवंति [2]पडल-कमे ।।२८।।

अर्थ :—सातवीं पृथिवीके तो ठीक मध्यभागमें बिल हैं, परन्तु अब्बहुलभाग पर्यन्त शेष छह पृथिवियोंमें नीचे एवं ऊपर एक-एक हजार योजन छोड़कर पटलोंके क्रमसे नारकियोंके बिल होते हैं ।।२८।।

विशेषार्थ :—सातवी पृथिवी आठ हजार योजन मोटी है । इसमें ऊपर और नीचे बहुत मोटाई छोड़कर मात्र बीचमें एक बिल है, किन्तु अन्य पाँच पृथिवियोंमें और प्रथम पृथिवीके अब्बहुलभागमें नीचे ऊपरकी एक-एक हजार योजन मोटाई छोड़कर बीचमें जितने-जितने पटल बने हैं, उनमें अनुक्रमसे बिल पाये जाते हैं ।

नरकबिलोंमें उष्णताका विभाग

पढमादि-बि-ति-चउक्के पंचम-पुढवीए[3] ति-चउक्क-भागंतं ।
अदि-उण्हा णिरय-बिला तट्ठिय-जीवाण तिव्व-दाघ-करा ।।२९।।

अर्थ :—पहली पृथिवीसे लेकर दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं पृथिवीके चारभागोंमेंसे तीन (¾) भागोंमें स्थित नारकियोंके बिल अत्यन्त उष्ण होनेसे वहां रहने वाले जीवोंको गर्मीकी तीव्र वेदना पहुंचाने वाले हैं ।।२९।।

नरकबिलोंमें शीतताका विभाग

पंचमि-खिदिए तुरिमे भागे छट्ठीअ सत्तमे महिए[4] ।
अदि-सीदा णिरय-बिला तट्ठिय-जीवाण घोर-सीद-करा ।।३०।।

अर्थ :—पाँचवीं पृथिवीके अवशिष्ट चतुर्थभागमें तथा छठी और सातवीं पृथिवीमें स्थित नारकियोंके बिल अत्यन्त शीत होनेसे वहाँ रहनेवाले जीवोंको भयानक शीतकी वेदना उत्पन्न करने वाले हैं ।।३०।

---

१. द. ब. क. ठ. बिलाण । २. ब. पडालकमे । ३. द. पुढवीय । ४. ब. क. महीए ।

उष्ण एवं शीतबिलोंकी संख्या

बासीदीलक्खाणं उण्ह-बिला पंचवीसदि-सहस्सा ।
पणहत्तरि सहस्सा अदि-[1]सीद-बिलाणि इगिलक्खं ॥३१॥

८२२५००० । १७५०००

अर्थ :—नारकियोंके उपर्युक्त चौरासीलाख बिलोंमेंसे बयासीलाख पच्चीस हजार बिल उष्ण और एक लाख पचहत्तर हजार बिल अत्यन्त शीत हैं ॥३१॥

विशेषार्थ :– रत्नप्रभापृथिवीके बिलोंसे चतुर्थपृथ्वी पर्यन्तके बिल एव पाँचवी धूमप्रभा पृथिवीकी बिल राशिके तीनबटेचारभाग ($\frac{३००००० \times ३}{४}$), अर्थात् ३० लाख + २५ लाख + १५ लाख + १० लाख + २२५००० = ८२२५००० बिलों पर्यन्त अति उष्ण वेदना है। पाँचवीं पृथिवीके शेष बिलोंके एक बटे चारभाग ($\frac{३००००० \times १}{४}$) से सातवी पृथिवी पर्यन्त बिल अर्थात् ७५००० + ९९९९५ + ५ = १७५००० बिलोंमे अत्यन्त शीत वेदना है।

बिलोंकी अति उष्णताका वर्णन

मेरु-सम-लोह-पिंडं सीदं उण्हे बिलम्मि पक्खित्तं ।
ण लहदि तलप्पदेसं विलीयदे मयण-खंडं व ॥३२॥

अर्थ :—उष्ण बिलोंमें मेरुके बराबर लोहेका शीतल पिण्ड डाल दिया जाय, तो वह तल-प्रदेश तक न पहुंचकर बीचमें ही मैण (मोम) के टुकडेके सदृश पिघलकर नष्ट हो जायगा। तात्पर्य यह है कि इन बिलोमें उष्णताकी वेदना अत्यधिक है ॥३२॥

बिलोंकी अति-शीतलताका वर्णन

मेरु-सम-लोह-पिंडं उण्हं सीदे बिलम्मि पक्खित्तं ।
ण लहदि तलप्पदेसं विलीयदे लवण-खंडं व ॥३३॥

अर्थ :—इसीप्रकार, यदि मेरुपर्वतके बराबर लोहेका उष्ण पिण्ड उन शीतल बिलोंमें डाल दिया जाय, तो वह भी तल-प्रदेश तक नहीं पहुंचकर बीचमें ही नमकके टुकड़ेके समान विलीन हो जावेगा ॥३३॥

---

१. द. ब. अदिसीदि ।

बिलोंकी अति दुर्गन्धताका वर्णन

अज-गज-महिस-तुरंगम-खरोट्ट-मज्जार-अहि-णराबीणं ।
कुहिदाणं गंधादो णिरय-बिला ते अणंत-गुणा ।।३४।।

अर्थ :—नारकियोंके वे बिल बकरी, हाथी, भैंस, घोड़ा, गधा, ऊँट, बिल्ली, सर्प और मनुष्यादिकके सड़े हुए शरीरोंके गंधकी अपेक्षा अनन्तगुणी दुर्गन्धसे युक्त हैं ।।३४।।

बिलोंकी अति-भयानकताका वर्णन

करवत्तकं छुरीदो[1] [2]खइरिंगालाति-तिक्ख-सूईए ।
कुंजर-चिक्कारादो णिरय-बिला दारुण-तम-सहावा ।।३५।।

अर्थ :—स्वभावतः अन्धकारसे परिपूर्ण-नारकियोंके ये बिल करोंत या आरी, छुरिका, खदिर (खैर) के अंगार, अतितीक्ष्ण सुई और हाथियोंकी चिंघाड़से अत्यन्त भयानक हैं ।।३५।।

बिलोंके भेद

इंदय-सेढीबद्धा पइण्णयाइ य हवंति [3]तिवियप्पा ।
ते सव्वे णिरय-बिला दारुण-दुक्खाण संजणणा ।।३६।।

अर्थ :—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकके भेदसे तीन प्रकारके ये सभी नरकबिल नारकियोंको भयानक दुःख उत्पन्न करनेवाले होते हैं ।।३६।।

विशेषार्थ :—सातो नरक पृथिवियोंमें जीवोंकी उत्पत्ति स्थानोंके इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक—ये तीन नाम हैं । जो अपने पटलके सर्व बिलोंके ठीक मध्यमें होता है, उसे इन्द्रक बिल कहते हैं । इन्द्रक बिलकी चारों दिशाओं एवं विदिशाओंमें जो बिल पंक्तिरूपसे स्थित हैं उन्हें श्रेणीबद्ध तथा जो श्रेणीबद्ध बिलोंके बीचमें बिखरे हुए पुष्पोंके समान यत्र तत्र स्थित हैं उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं ।

रत्नप्रभा-आदिक-पृथिवियोंके इन्द्रक-बिलोंकी संख्या

तेरस-एक्कारस-णव-सग पंच-ति-एक्कइंदया होंति ।
रयणप्पह-पहुदीसुं पुढवीसुं आणु-पुव्वीए ।।३७।।

---

१. द. ठ. करवकवछुरीदो । क. कुरवकवछुरीदो । [कवक्ककवाणछुरिदो] । २. द. ब. खइरिं-गालातिक्खसूईए । ३. द. ब. हवंति वियप्पा ।

१३ । ११ । ६ । ७ । ५ । ३ । १ ।

अर्थ :—रत्नप्रभा आदिक पृथिवियोंमें क्रमशः तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पांच, तीन और एक, इसप्रकार कुल उनचास इन्द्रक बिल हैं ।।३७।।

विशेषार्थ :—प्रथम नरकमें १३, दूसरेमें ११, तीसरेमें ६, चौथेमें ७, पाँचवेंमें ५, छठेमें ३ और सातवें नरकमें एक इन्द्रक बिल है। एक-एक पटलमें एक-एक इन्द्रक बिल है, अतः पटलभी ४६ ही हैं।

इन्द्रक बिलोंके आश्रित श्रेणीबद्ध बिलोंकी संख्या

पढमम्हि इंदयम्हि य दिसासु उणवण्ण-सेढिबद्धा य ।
अडदालं विदिसासुं विदियादिसु एक्क-परिहीणा ।।३८।।
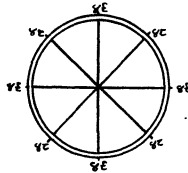
अर्थ :—पहले इन्द्रक बिलकी आश्रित दिशाओंमें उनचास और विदिशाओंमें अड़तालीस श्रेणीबद्ध बिल हैं। इसके आगे द्वितीयादि इन्द्रक बिलोंके आश्रित रहनेवाले श्रेणीबद्ध बिलोंमेंसे एक-एक बिल कम होता गया है ।।३८।।

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]
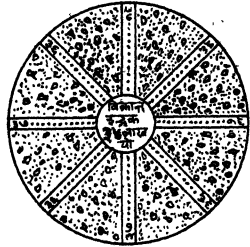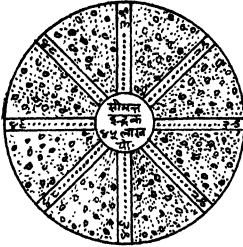
सात-पृथिवियोंके इन्द्रक बिलोंकी संख्या

एक्कंत-तेरसादी सत्तसु ठाणेसु [1]मिलिद-परिसंखा ।
उणवण्णा पढमादो इंदय-णामा इमा होंति ॥३९॥

अर्थ :—प्रथम पृथिवीसे सातों पृथिवियोंमें तेरहको आदि लेकर एक पर्यन्त कुल मिलाकर उनचास संख्यावाले इन्द्रक नामके बिल होते हैं ॥३९॥

पृथिवी क्रमसे इन्द्रक बिलोंके नाम

सीमंतगो य पढमो णिरयो रोरुग य भंत-उब्भंता ।
संभंत-असंभंता विब्भंता [2]तत्त तसिदा य ॥४०॥

वक्कंत अवक्कंता विक्कंतो होंति पढम-पुढवीए ।
[3]थणगो तणगो मणगो वणगो घाडो[4] असंघाडो ॥४१॥

जिब्भा-जिब्भग-लोला लोलय-[5]थणलोलुगाभिहाणा य ।
एदे बिदिय खिदीए एक्कारस इंदया होंति ॥४२॥

१३ । ११ ।

---

१. क. मिलदि । २. ब. तद्य । ३. द. थलगो । ४. ब. दाघो । क. दाघो । ५. द. लोलय-थण । ठ. लोलयथए ।

अर्थ :—प्रथम सीमन्तक तथा द्वितीयादि निरय, रौरुक, भ्रान्त, उद्भ्रान्त, संभ्रान्त, असंभ्रान्त, विभ्रान्त, तप्त, त्रसित, वक्रान्त, अवक्रान्त और विक्रान्त इसप्रकार ये तेरह इन्द्रक बिल प्रथम पृथिवीमें हैं। स्तनक, तनक, मनक, वनक, घात, संघात, जिह्वा, जिह्वक, लोल, लोलक और स्तनलोलुक नामवाले ग्यारह इन्द्रक-बिल दूसरी पृथिवीमें हैं ।।४०-४२।।

तत्तो[1] तसिदो तवणो तावण-णामो णिदाह-पज्जलिदो ।
उज्जलिदो संजलिदो संपज्जलिदो य तदिय-पुढवीए ।।४३।।

९

अर्थ :—तप्त, त्रस्त, तपन, तापन, निदाघ, प्रज्वलित, उज्ज्वलित, संज्वलित और संप्रज्वलित ये नौ इन्द्रक बिल तीसरी पृथिवीमें हैं ।।४३।।

आरो[2] मारो तारो तच्चो तमगो तहेव खाडे य ।
खडखड-णामा तुरिमक्खोणीए इंदया [3]सत्त ।।४४।।

७

अर्थ :—आर, मार, तार, तत्त्व (चर्चा) तमक, खाड और खड़खड़ नामक सात इन्द्रक बिल चौथी पृथिवीमें हैं ।।४४।।

तम-भम-झस-अद्धाविय-तिमिसो धूम-पहाए[4] छट्ठीए ।
हिम वद्दल-लल्लंका सत्तम-अवणीए अवधिठाणो त्ति ।।४५।।

५ । ३ । १ ।

अर्थ :—तमक, भ्रमक, झषक, अन्ध और तिमिस्र ये पाँच इन्द्रक बिल धूमप्रभा पृथिवीमें हैं। छठी पृथिवीमें हिम, वर्दल और लल्लक इसप्रकार तीन तथा सातवीं पृथिवीमें केवल एक अवधि-स्थान नामका इन्द्रक बिल है ।।४५।।

दिशाक्रमसे सातों-पृथिवियोंके प्रथम श्रेणीबद्ध बिलोंके निरूपणकी प्रतिज्ञा

घम्मावी-पुढवीणं पढमिंदय-पढम-सेढिबद्धाणं ।
णामाणि णिरूवेमो पुव्वादि-[5]पदाहिण-क्कमेण ।।४६।।

---

१. द. ब. तेत्तो । २. द. आरे, मारे, तारे । ३. द. ब. क ठ. तस्स । ४. द. धुव्वुपहा, ब. धुव्वुपहा । ५. द. पहादिको कमेण, ब. पहादिको कमेण । क. ठ. पदाहिको कमेण ।

अर्थ :—घर्मादिक सातों पृथिवियों सम्बन्धी प्रथम इन्द्रक बिलोंके समीपवर्ती प्रथम श्रेणी-बद्ध बिलोंके नामोंका पूर्वादिक दिशाओंमें प्रदक्षिण-क्रमसे निरूपण करता हूं ।।४६।।

घर्मा-पृथिवीके प्रथम-श्रेणीबद्ध-बिलोंके नाम

कंखा-पिपास-णामा महकंखा अदिपिपास-णामा य ।
आदिम-सेढीबद्धा चत्तारो होंति सीमंते ।।४७।।

अर्थ :—घर्मा पृथिवीमें सीमन्त-इन्द्रक बिलके समीप पूर्वादिक चारों दिशाओंमें क्रमशः कांक्षा, पिपासा एवं महाकाक्षा और अतिपिपासा नामक चार प्रथम श्रेणीबद्ध बिल हैं ।।४७।।

वंशापृथिवीके प्रथम-श्रेणीबद्ध बिलोंके नाम

पढमो अणिच्चणामो बिदिओ विज्जो तहा [1]महाणिच्चो ।
महविज्जो य चउत्थो पुव्वादिसु होंति [2]थणगम्हि ।।४८।।

अर्थ :—वंशा पृथिवीमें प्रथम अनिच्छ, दूसरा अविन्ध्य, तीसरा महानिच्छ और चतुर्थ महाविन्ध्य, ये चार श्रेणीबद्ध बिल पूर्वादिक दिशाओंमें स्तनक इन्द्रक बिलके समीप हैं ।।४८।।

मेघा-पृथिवीके प्रथम श्रेणीबद्ध-बिलोंके नाम

दुक्खा य वेदणामा महदुक्खा तुरिमया अ महवेदा ।
तत्तिदयस्स[3] एदे पुव्वादिसु होंति चत्तारो ।।४९।।

अर्थ :—मेघा पृथिवीमें दुःखा, वेदा, महादुःखा और महावेदा, ये चार श्रेणीबद्ध बिल पूर्वादिक दिशाओंमें तप्त इन्द्रकके समीप हैं ।।४९।।

अजना-पृथिवीके प्रथम-श्रेणीबद्ध बिलोंके नाम

आरिंदए [4]णिसट्ठो पढमो बिदिओ वि अंजण-णिरोधो ।
तदिओ [5]य अदिणिसत्तो महणिरोधो चउत्थो त्ति ।।५०।।

---

१. द. ब. महाणिज्जो । २. द थलगम्हि, ब. क. ठ. थणगम्हि । ३ ब. तत्तिदियस्स ।
४. ठ. णिमट्ठो । ५. ब. तदिउ य ।

अर्थ :—अंजना पृथिवीमें आर इन्द्रकके समीप प्रथम निसृष्ट, द्वितीय निरोध, तृतीय अति-निसृष्ट और चतुर्थ महानिरोध ये चार श्रेणीबद्ध बिल हैं ।।५०।।

अरिष्टा-पृथिवीके प्रथम श्रेणीबद्ध बिलोंके नाम

तमकिदए[1] णिरुद्धो विमद्दणो अदि-[2]णिरुद्ध-णामो य ।
तुरिमो महाविमद्दण-णामो पुव्वादिसु दिसासु ।।५१।।

अर्थ :—तमक इन्द्रक बिलके समीप निरुद्ध, विमर्दन, अतिनिरुद्ध और चतुर्थ महामर्दन नामक चार श्रेणीबद्ध बिल पूर्वादिक चारों दिशाओंमें विद्यमान हैं ।।५१।।

मघवी पृथिवीके प्रथम-श्रेणीबद्ध-बिलोके नाम

हिम-इंदयम्हि होंति हु णीला पंका य तह य महणीला ।
महपंका पुव्वादिसु सेढीबद्धा इमे चउरो ।।५२।।

अर्थ :—हिम इन्द्रक बिलके समीप नीला, पंका, महानीला और महापंका, ये चार श्रेणी-बद्ध बिल क्रमश. पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित हैं ।।५२।।

माघवी-पृथिवीके प्रथम-श्रेणीबद्ध बिलोके नाम

कालो रोरव-णामो महकालो पुव्व-पहुदि-दिब्भाए ।
महरोरओ चउत्थो अवधी-ठाणस्स चिट्ठेदि ।।५३।।

अर्थ :—अवधिस्थान इन्द्रक बिलके समीप पूर्वादिक चारोंदिशाओंमें काल, रौरव, महा-काल और चतुर्थ महारौरव ये चार श्रेणीबद्ध बिल हैं ।।५३।।

अन्य बिलोंके नामोंके नष्ट होनेकी सूचना

अवसेस-इंदयाणं पुव्वादि-दिसासु सेढिबद्धाणं ।
[3]णट्ठाइं णामाइं पढमाणं विदिय-पहुदि-सेढीणं ।।५४।।

अर्थ :—शेष द्वितीयादिक इन्द्रकबिलोंके समीप पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित श्रेणीबद्ध बिलोंके नाम और पहले इन्द्रकबिलोंके समीप स्थित द्वितीयादिक श्रेणीबद्ध बिलोंके नाम नष्ट हो गये हैं ।।५४।।

१. द. ब. ठ. तमकिडये । २. द. ब. क. ठ. यदिणिधुणामो । ३. द. ब. क. ठ. णत्ताइं ।

इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिलोंकी संख्या

दिसि-विदिसाणं मिलिदा अट्ठासीदी-जुदा य तिण्णि सया ।
सीमंतएण जुत्ता उणणवदी समहिया होंति ।।५५।।

३८८ । ३८९ ।

अर्थ :—सभी दिशाओं और विदिशाओंके कुल मिलाकर तीनसौ अठासी श्रेणीबद्ध बिल हैं। इनमें सीमन्त इन्द्रक बिल मिला देने पर सब तीनसौ नवासी होते हैं ।।५५।।

विशेषार्थ :– प्रथम पृथिवीमें १३ पाथड़े (पटल) हैं, उनमेंसे प्रथम पाथड़ेकी दिशा और विदिशाके श्रेणीबद्ध बिलोंको जोड़कर चारसे गुणा करनेपर सीमन्तक इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल (४९ + ४८ = ९७ × ४) = ३८८ प्राप्त होते हैं और इनमें सीमन्त इन्द्रक बिल और जोड़ देनेसे (३८८ + १) = ३८९ बिल प्राप्त होते हैं।

क्रमशः श्रेणीबद्ध-बिलोंकी हानि

उणणवदी तिण्णि सया पढमाए पढम-पत्थडे[1] होंति ।
बिदियादिसु हीयंते माघवियाए पुढं च ।।५६।।

। ३८९ ।

अर्थ :—इसप्रकार प्रथम पृथिवीके प्रथम पाथड़ेमें इन्द्रकसहित श्रेणीबद्ध बिल तीनसौ नवासी (३८९) हैं। इसके आगे द्वितीयादिक पृथिवियोंमें हीन होते-होते माघवी पृथिवीमें मात्र पाँच ही बिल रह गये हैं ।।५६।।

अट्ठाणं पि दिसाणं एक्केक्कं हीयदे जहा-कमसो ।
एक्केक्क-हीयमाणे पंच [2]च्चिय होंति परिहाणे ।।५७।।

अर्थ :—आठों ही दिशाओंमें यथाक्रम एक-एक बिल कम होता गया है। इसप्रकार एक-एक बिल कम होनेसे अर्थात् सम्पूर्ण हानिके होनेपर अन्तमें पाँच ही बिल शेष रह जाते हैं ।।५७।।

विशेषार्थ :—सातों पृथिवियोंके ४९ पटल और ४९ ही इन्द्रक बिल हैं। प्रथम पृथिवीके प्रथम पटलके प्रथम इन्द्रकको एक-एक दिशामें उनचास-उनचास श्रेणीबद्ध बिल और एक-एक

---

१. क. पंथडे । २. द. यंरजियं, ब. ठ. यंरज्जियं । क. जं रज्जियं ।

विदिशामें अड़तालीस-अड़तालीस श्रेणीबद्ध बिल हैं तथा द्वितीयादि पटलमे सप्तम पृथिवीके अन्तिम पटल पर्यन्त एक-एक दिशा एवं विदिशामें क्रमशः एक-एक घटते हुए श्रेणीबद्ध बिल हैं, अतः सप्तम पृथिवीके पटलकी दिशाओंमें तो एक-एक श्रेणीबद्ध है किन्तु विदिशाओंमें उनका अभाव है इसीलिए सप्तम पृथिवीमे (एक इन्द्रक और चार दिशाओंके चार श्रेणीबद्ध इसप्रकार मात्र) पाँच बिल कहे गये हैं।

श्रेणीबद्ध बिलोंके प्रमाण निकालनेकी विधि

इट्ठिंदयप्पमाणं रूऊणं [1]अट्ठ-ताडिया णियमा।
उणणवदीतिसएसुं अवणिय सेसो [2]हवंति तप्पडला ॥५८॥

अर्थ :—इष्ट इन्द्रक प्रमाणमेंसे एक कम कर अवशिष्टको आठसे गुणा करनेपर जो गुणनफल प्राप्त हो उसे तीनसौ नवासीमेसे घटा देनेपर नियमसे शेष विवक्षित पाथड़ेके श्रेणीबद्ध सहित इन्द्रकका प्रमाण होता है ॥५८॥

विशेषार्थ :—मानलो—इष्ट इन्द्रक प्रमाण ४ है। इसमेसे एक कम कर ८ से गुणित करें, पश्चात् गुणनफलको (प्रथम पृथिवीके प्रथम पाथड़ेमें इन्द्रक सहित श्रेणीबद्ध बिलोंकी संख्या) ३८९ मेंसे घटा देनेपर इष्ट प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—इष्ट इन्द्रक प्रमाण (४ — १ = ३) × ८ = २४। ३८९ — २४ = ३६५ चतुर्थ पाथड़ेके इन्द्रक सहित श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण प्राप्त हुआ। ऐसे अन्यत्र भी जानना चाहिए।

प्रकारान्तरसे प्रमाण निकालनेकी विधि

अहवा—

इच्छे[3] पदर-विहीणा उणवण्णा अट्ठ-ताडिया णियमा।
सा पंच-रूव-जुत्ता इच्छिद-सेढिंदया होंति ॥५९॥

अर्थ :—अथवा—इष्ट प्रतरके प्रमाणको उनचासमेसे कम कर देनेपर जो अवशिष्ट रहे उसको नियमपूर्वक आठसे गुणा कर प्राप्त राशिमें पाँच मिलादें। इसप्रकार अन्तमें जो संख्या प्राप्त हो वही विवक्षित पटलके इन्द्रकसहित श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण होती है ॥५९॥

विशेषार्थ :—कुल प्रतर प्रमाण संख्या ४९ मेंसे इष्ट प्रतर संख्या ४ को कमकर अवशेषको ८ से गुणित करें, पश्चात् ५ जोड़ दे। यथा—(४९ — ४ = ४५) × ८ = ३६० + ५ = ३६५ विवक्षित

१. द. इट्ठतदिमा। २. व. ठ. हुवंति। ३. [इट्ठे]।

(चतुर्थ) पाथड़ेके इन्द्रक सहित श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण प्राप्त हुआ। ऐसे अन्यत्र भी जानना चाहिए।

इन्द्रक-बिलोंके प्रमाण निकालनेकी विधि

उद्दिट्ठं पंचोणं भजिदं अट्ठेहि सोधए लद्धं।
एगुणवण्णाहिंतो[1] सेसा तत्थिदया होंति ॥६०॥

अर्थ : (किसी विवक्षित पटलके श्रेणीबद्ध सहित इन्द्रकके प्रमाणरूप) उद्दिष्ट संख्यामेंसे पाँच कम करके आठसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसको उनचासमेंसे कम कर-देनेपर अवशिष्ट संख्याके बराबर वहाँके इन्द्रकका प्रमाण होता है ॥६०॥

विशेषार्थ :—विवक्षित पटलके इन्द्रक सहित श्रेणीबद्धोंके प्रमाणको उद्दिष्ट कहते हैं। यहाँ चतुर्थ पटलकी संख्या विवक्षित है, अतः उद्दिष्ट (३६५) मे से ५ कम कर आठसे भाग दें। भागफलको सम्पूर्ण इन्द्रक पटल संख्या ४९ मेंसे कम कर देवें। यथा—उद्दिष्ट (३६५ — ५=३६०)÷८=४५; ४९ — ४५ = ४ चतुर्थ पटलके इन्द्रककी प्रमाण संख्या प्राप्त होती है।

आदि (मुख), उत्तर (चय) और गच्छका प्रमाण

आदीओ णिद्दिट्ठा णिय-णिय-चरिमिंदयस्स[2] परिमाणं।
सव्वत्थुत्तरमट्ठं णिय-णिय-पदराणि गच्छाणि ॥६१॥

अर्थ :—अपने-अपने अन्तिम इन्द्रकका प्रमाण आदि कहा गया है, चय सर्वत्र आठ है और अपने-अपने पटलोंका प्रमाण गच्छ या पद है ॥६१॥

विशेषार्थ :—आदि और अन्त स्थानमें जो हीन प्रमाण होता है उसे मुख (वदन) अथवा प्रभव तथा अधिक प्रमाणको भूमि कहते हैं। अनेक स्थानोंमें समान रूपसे होने वाली वृद्धि अथवा हानिके प्रमाणको चय या उत्तर कहते हैं। स्थानको पद या गच्छ कहते हैं।

आदिका प्रमाण

तेणवदि-जुत्त-दुसया पण-जुद-दुसया सयं च तेत्तीसं।
सत्तत्तरि सगतीसं तेरस रयणप्पहादि-आदीओ ॥६२॥

। २९३ । २०५ । १३३ । ७७ । ३७ । १३ ।

---

१. ठ द. ब. ऊणावण्णाहिंतो। क. ऊणाविणा। २. द. ठ. चरिमंदयस्य। क. ठ. सव्वत्थु-त्तरमट्ठं।

अर्थ :—दोसौ तेरानबै, दोसौ पाँच, एकसौ तैंतीस, सतहत्तर, सैंतीस और तेरह यह क्रमशः रत्नप्रभादिक छह पृथिवियोंमें आदिका प्रमाण है ॥६२॥

विशेषार्थ :—रत्नप्रभासे तमःप्रभा पर्यन्त छह पृथिवियोंके अन्तिम पटलकी दिशा-विदिशाओंके श्रेणीबद्ध एवं इन्द्रक सहित क्रमशः २९३, २०५, १३३, ७७, ३७ और १३ बिल प्राप्त होते हैं, अपनी-अपनी पृथिवीका यही आदि या मुख या प्रभव है।

गच्छ एव चयका प्रमाण

तेरस-एक्कारस-णव-सग-पंच-तियाणि होंति गच्छाणि ।
सव्वत्थुत्तरमट्ठं[1]   [2]रयणप्पह-पहुदि-पुढवीसु ॥६३॥

१३ । ११ । ९ । ७ । ५ । ३ सव्वत्थुत्तरमट्ठं[3] ८ ।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक पृथिवियोंमें क्रमशः तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पाँच और तीन गच्छ हैं। उत्तर या चय सब जगह आठ होते हैं ॥६३॥

विशेषार्थ :—रत्नप्रभादि छह पृथिवियोंमें गच्छका प्रमाण क्रमशः १३, ११, ९, ७, ५ और ३ है तथा सर्वत्र उत्तर या चय ८ है।

संकलित-धन निकालनेका विधान

चय-हदमिच्छूण-पदं[4] रूवूणिच्छाए गुणिद-चय-जुत्तं ।
दुगुणिद[5]-वदणेण जुदं पद-दल-गुणिदं हवेदि संकलिदं ॥६४॥

चय-हदमिच्छूण-पदं $\frac{१}{१३}$ । ८ ।
रूवूणिच्छाए[6] गुणिद-चयं $\frac{१}{१}$ । ८ । **जुदं ९६ ।**
दुगुणिद-वदणादि सुगमं ।

अर्थ :—इच्छासे, हीन गच्छको चयसे गुणा करके उसमें एक-कम इच्छासे गुणित चयको जोड़कर प्राप्त हुए योगफलमें दुगुने मुखको जोड़ देनेके पश्चात् उसको गच्छके अर्धभागसे गुणा करनेपर संकलित धनका प्रमाण आता है।

---

१. द. ब. क. ठ सव्वट्ठुत्तरमत । २. द. ब. क. रयणपहाए । ३. द. ब. सव्वट्ठुर । ४. द. ब. मिक्कूण-पदं । ५. द. ब. क. ठ. गुणिदं वदणेण । ६. द. ब. चय-पदमिच्छूण-पदं १३३ । ८ रूऊणिच्छाए गुणिद-चयं $\frac{१}{२}$ । ८ । जुदं ९ । दुगुणि-देवादि सुगमं । इति पाठः ७६ तम-गाथायाः पश्चादुपलभ्यते ।

विशेषार्थ :— संकलित धन निकालनेका सूत्र—

संकलित धन=[{ (गच्छ-इच्छा) × चय } + { (इच्छा–१) × चय } + मुख × २] × गच्छ/२ |

प्रथम पृथ्वीका संकलित धन=[(१३ — १) × ८ + (१ — १) × ८ + २९३ × २] × १३/२ = ४४३३ ।

दूसरी पृथ्वीका संकलित धन=[(११ — २) × ८ + (२ — १) × ८ + २०५ × २] × ११/२ = २६९५ ।

तीसरी पृथ्वीका संकलित धन=[(९ — ३) × ८ + (३ — १) × ८ + १३३ × २] × ९/२ = १४८५ ।

चौथी पृथ्वीका संकलित धन=[(७ — ४) × ८ + (४ — १) × ८ + ७७ × २] × ७/२ = ७०७ ।

पाँचवीं पृ० का संकलित धन=[(५ — ५) × ८ + (५ — १) × ८ + ३७ × २] × ५/२ = २६५ ।

छठी पृ० का संकलित धन=[(३ — ६) × ८ + (६ — १) × ८ + १३ × २] × ३/२ = ६३ ।

प्रकारान्तरसे संकलितधन निकालनेका प्रमाण

एक्कोणमवणि[1]-इंदयमद्धिय[2] वग्गेज्ज मूल-संजुत्तं ।
अट्ठ-गुणं पंच-जुदं पुढविंदय-ताडिदम्मि पुढवि-धणं ।।६५।।

अर्थ :—एक कम इष्ट पृथिवीके इन्द्रकप्रमाणको आधा करके उसका वर्ग करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उसमें मूलको जोड़कर आठसे गुणा करें और पाँच जोड़ दें। पश्चात् विवक्षित पृथिवीके इन्द्रकका जो प्रमाण हो उससे गुणा करनेपर विवक्षित पृथिवीका धन अर्थात् इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण निकलता है ।।६५।।

---

१. द. ब. मण्ण । २. ब. मट्ठिम, द. मद्दिय ।

विशेषार्थ :—जैसे—प्रथम पृ० के इन्द्रक १३ — १=१२, १२ ÷ २=६, ६×६=३६ वर्ग फल, ३६+६ मूलराशि=४२, ४२×८=३३६, ३३६+५=३४१, ३४१×१३ इन्द्रक संख्या=४४३३ प्रमाण प्रथम पृ० के इन्द्रक सहित श्रेणीबद्ध बिलोका प्राप्त हुआ।

समस्त पृथिवियोंके इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिलोंकी सख्या

पढमा[1] इंदय-सेढी चउदाल-सयाणि होंति तेत्तीसं ।
छस्सय-दुसहस्साणि पणणउदी बिदिय-पुढवीए ॥६६॥

४४३३ । २६९५ ।

अर्थ :—पहली पृथिवीमे इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिल चार हजार चार सौ तेतीस हैं और दूसरी पृथिवीमें दो हजार छह सौ पंचानवै (इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिल) हैं ॥६६॥

विशेषार्थ :—(१३ — १=१२)÷२=६ । (६×६=३६)+६=४२ । ४२×८=३३६ । (३३६+५=३४१)×१३=४४३३ पहली पृ० के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण है ।

(११ — १=१०)÷२=५ । (५×५=२५)+५=३० । ३०×८=२४० ।

(२४०+५=२४५)×११=२६९५ दूसरी पृ० के इन्द्रक+श्रेणीबद्ध ।

तिय-पुढवीए इंदय-सेढी [2]चउदस-सयाणि पणसीदी ।
सत्तुत्तराणि सत्त य सयाणि ते होंति तुरिमाए ॥६७॥

१४८५ । ७०७ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमे इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिल चौदहसौ पचासी और चौथी पृथिवीमें सातसौ सात हैं ॥६७॥

विशेषार्थ :—(९ — १=८)÷२=४ । (४×४=१६)+४=२० । २०×८=१६०, (१६०+५)×९=१४८५ तीसरी पृ० के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध ।

पणसट्ठी दोण्णि सया इंदय-सेढीए पंचम-खिदीए ।
तेसट्ठी छट्ठीए चरिमाए पंच णादव्वा ॥६८॥

२६५ । ६३ । ५ ।

---

१. व. पुढमा । २. व. बद्धस्स ।

अर्थ :—पाँचवीं पृथिवीमें दोसौ पैंसठ, छठीमें तिरेसठ और अन्तिम सातवीं पृथिवीमें मात्र पाँच ही इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिल हैं, ऐसा जानना चाहिए। ६८॥

विशेषार्थ :—(५ — १ = ४) ÷ २ = २, (२ × २ = ४) + २ = ६। ६ × ८ = ४८, (४८ + ५ = ५३) × ५ = २६५ पाँचवी पृ० के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध। (३ — १ = २) ÷ २ = १। (१ × १ = १) + १ = २। २ × ८ = १६। (१६ + ५ = २१) × ३ = ६३ छठी पृथिवीके इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण। (१ — १ = ०) ÷ २ = ०, (० × ० = ०) + ० = ०। ० × ८ = ०। (० + ५ = ५) × १ = ५ सातवी पृथिवीके इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण।

सम्मिलित प्रमाण निकालनेके लिए आदि चय एवं गच्छका प्रमाण

पंचादी अट्ठ चयं उणवण्णा होंति गच्छ-परिमाणं।
सव्वाणं पुढवीणं सेढीबद्धिंदयाण [1]इमं ॥६९॥

[2]चय-हदमिट्ठाधिय-पदमेक्काधिय-इट्ठ-गुणिद-चय-हीणं।
दुगुणिद-वदणेण जुदं पद-दल-गुणिदम्मि होदि संकलिदं ॥७०॥

अर्थ :—सम्पूर्ण पृथिवियोंके इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिलोंके प्रमाणको निकालनेके लिए आदि पाँच, चय आठ और गच्छका प्रमाण उनचास है ॥६९॥

इष्टसे अधिक पदको चयसे गुणा करके उसमेंसे, एक अधिक इष्टसे गुणित चयको घटा देनेपर जो शेष रहे उसमें दुगुने मुखको जोड़कर गच्छके अर्धभागसे गुणा करनेपर संकलित धन प्राप्त होता है ॥७०॥

विशेषार्थ :—सातों पृथिवियोंके इन्द्रक और श्रेणीबद्धोंकी सामूहिक संख्या निकालने हेतु आदि अर्थात् मुख ५, चय ८ और गच्छ या पदका प्रमाण ४९ है। यहाँ पर इष्ट ७ है अतः इष्टसे अधिक पदको अर्थात् (४९ + ७) = ५६ को ८ (चय) से गुणा करनेपर (५६ × ८) = ४४८ प्राप्त हुए, इसमेंसे एक अधिक इष्टसे गुणित चय अर्थात् (७ + १ = ८) × ८ = ६४ घटा देनेपर (४४८ — ६४) = ३८४ शेष रहे, इसमें दुगुने मुख (५ × २) = १० को जोड़कर जो ३९४ प्राप्त हुए उसमें $\frac{४९}{२}$ का गुणा कर देनेपर ($\frac{३९४}{१} \times \frac{४९}{२}$) = ९६५३ सातों पृथिवियोंका संकलित धन अर्थात् इन्द्रक और श्रेणीबद्धोंका प्रमाण प्राप्त हुआ।

---

१. द. ब. इवम। २. द. क. चयपदमिट्ठाधियपदमेक्काधिय, ब. चयहदमिट्ठधिय पदेमक्काधिय।

समस्त पृथिवियोंका संकलित धन निकालनेका विधान

ग्रहवा—

ग्रट्ठत्तालं दलिदं गुणिदं ग्रट्ठेहि पंच-रूव-जुदं।
उणवण्णाए पहदं सव्व-धणं होइ पुढवीणं ॥७१॥

ग्रर्थ :—ग्रथवा—ग्रड़तालीसके ग्राधेको ग्राठसे गुणा करके उसमें पाँच मिला देनेपर प्राप्त हुई राशिको उनचाससे गुणा करें तो सातों पृथिवियोंका सर्वधन प्राप्त हो जाता है।

विशेषार्थ :—$\frac{४८}{२}$ × ८ = १९२, १९२ + ५ = १९७, १९७ × ४९ = ९६५३ सर्व पृथिवियोंका संकलित धन।

प्रकारान्तरसे संकलित धन-निकालनेका विधान

इंदय-सेढीबद्धा णवय-सहस्साणि छस्सयाणं पि।
तेवण्णं ग्रधियाइं सव्वासु वि होंति खोणीसु ॥७२॥

। ९६५३ ।

ग्रर्थ :—सम्पूर्ण पृथिवियोंमें कुल नौहजार छहसौ तिरेपन (९६५३) इन्द्रक ग्रौर श्रेणी-बद्ध बिल हैं ॥७२॥

समस्त पृथिवियोंके इन्द्रक ग्रौर श्रेणीबद्ध बिलोंकी सख्या

णिय-णिय-चरिमिंदय[1]-धणमेक्कोणं[2] होदि ग्रादि-परिमाणं।
णिय-णिय-पदरा गच्छा पचया सव्वत्थ [3]ग्रट्ठेव ॥७३॥

ग्रर्थ :—प्रत्येक पृथिवीके श्रेणीधनको निकालनेके लिए एक कम ग्रपने-ग्रपने चरम इन्द्रक-का प्रमाण ग्रादि, ग्रपने-ग्रपने पटलका प्रमाण गच्छ ग्रौर चय सर्वत्र ग्राठ ही है ॥७३॥

प्रथमादि पृथिवियोंके श्रेणीबद्ध बिलोकी सख्या निकालनेके लिए ग्रादि गच्छ एवं चयका निर्देश

बाणउदि-जुत्त-दुसया [4]चउ-जुद दु-सया सयं च बत्तीसं।
छावत्तरि छत्तीसं बारस रयणप्पहादि-ग्रादीग्रो ॥७४॥

---

१. क. चरमिद धय। २. क. मेक्काण। ३. ब. ग्रलढेव, द. ठ. लट्ठेव। ४. क. चउ-ग्रधियसव।

२९२ । २०४ । १३२ । ७६ । ३६ । १२

अर्थ :—दोसौ बानबै, दोसौ चार, एकसौ बत्तीस, छयत्तर, छत्तीस और बारह, इसप्रकार रत्नप्रभादि छह पृथिवियोंमें आदिका प्रमाण है ।।७४।।

विशेषार्थ :—प्रत्येक पृथिवीके अन्तिम पटलकी दिशा-विदिशाओंके श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण क्रमशः २९२, २०४, १३२, ७६, ३६ और १२ है । आदि (मुख) का प्रमाण भी यही है ।

तेरस-एक्कारस-णव-सग-पंच-तियाणि होंति गच्छाणि ।
सव्वत्थुत्तरमट्ठं सेढि-धणं सव्व-पुढवीणं ।।७५।।

अर्थ :—सब पृथिवियोंके (पृथक्-पृथक्) श्रेणी-धनको निकालनेके लिए गच्छका प्रमाण तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पाँच और तीन है; चय सर्वत्र आठ ही है ।।७५।।

प्रथमादि-पृथिवियोंके श्रेणीबद्ध बिलोंकी संख्या निकालनेका विधान

पद-वग्गं चय-पहदं[1] दुगुणिद-गच्छेण गुणिद-मुह[2]-जुत्तं ।
[3]वड्ढिद-हद-पद-विहीणं दलिदं जाणेज्ज संकलिदं ।।७६।।

अर्थ :—पदके वर्गको चयसे गुणा करके उसमें दुगुने पदसे गुणित मुखको जोड़ देनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसमेंसे चयसे गुणित पदप्रमाणको घटाकर शेषको आधा करनेपर प्राप्त हुई राशिके प्रमाण संकलित श्रेणीबद्ध बिलोंकी संख्या जानना चाहिए ।।७६।।

प्रथमादि-पृथिवियोंमें श्रेणीबद्ध-बिलोंकी संख्या

चत्तारि सहस्साणि चउस्सया बीस होंति पढमाए ।
सेढि-गदा बिदियाए दु-सहस्सा [4]छस्सयाणि चुलसीदी ।।७७।।

४४२० । २६८४

अर्थ :—पहली पृथिवीमें चार हजार चार सौ बीस और दूसरी पृथिवीमें दो हजार छहसौ चौरासी श्रेणीबद्ध बिल हैं ।।७७ ।

विशेषार्थ :— $\frac{(१३^२ \times ८) + (१३ \times २ \times २९२) - (८ \times १३)}{२} = \frac{८८४०}{२} = ४४२०$

पहली पृथिवीगत श्रेणीबद्ध-बिलोंका कुल प्रमाण ।

---

१. द. ब. चयपहिदं । २. द. ब. मुखजुत्तं । ३. ब. वड्ढिहद । ठ. वढमखिय । ४. ब. छसयाणि ।

$\frac{(११^२ \times ८)+(११ \times २ \times २०४)-(८ \times ११)}{२} = \frac{५३६८}{२} = २६८४$ दूसरी पृथिवीगत श्रेणीबद्ध बिलोंका कुल प्रमाण। यहाँ गाथा ॥७६॥ के निम्न सूत्रका प्रयोग हुआ है :—

संकलित धन=[(पद)² × चय + (२ पद × मुख)—पद × चय] × ½

चोद्दस-सयाणि छाहत्तरीय तदियाए तह य सत्त-सया ।
तुरिमाए सट्ठि-जुवं दु-सयाणि पंचमीए[1] वि ॥७८॥

१४७६ । ७०० । २६० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें चौदहसौ छयत्तर, चौथीमें सातसौ और पाँचवीं पृथिवीमें दोसौ साठ श्रेणीबद्ध बिल हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥७८॥

विशेषार्थ :— $\frac{(९^२ \times ८)+(९ \times २ \times १३२)-(८ \times ९)}{२} = \frac{२९५२}{२} = १४७६$ तीसरी पृथिवीगत श्रेणीबद्ध बिलोंका कुल प्रमाण।

$\frac{(७^२ \times ८)+(७ \times २ \times ७६)-(८ \times ७)}{२} = \frac{१४००}{२} = ७००$ चौथी पृथिवीगत श्रेणीबद्ध बिलोंका कुल प्रमाण।

$\frac{(५^२ \times ८)+(५ \times २ \times ३६)-(८ \times ५)}{२} = \frac{५२०}{२} = २६०$ पाँचवीं पृथिवीगत श्रेणीबद्ध बिलोंका कुल प्रमाण।

सट्ठी तमप्पहाए चरिम-धरित्तीए होंति [2]चत्तारि ।
एवं सेढीबद्धा पत्तेक्कं सत्त-खोणीसु[3] ॥७९॥

६० । ४ ।

अर्थ :—तम:प्रभा पृथिवीमें साठ और अन्तिम महातम:प्रभा पृथिवीमें चार श्रेणीबद्ध बिल हैं। इसप्रकार सात पृथिवियोंमेंसे प्रत्येकमें श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण समझना चाहिए ॥७९॥

---

१. द. ब. क. पंचमिए होदि णायव्वं। ठ. पंचमिए होदि णादव्वं। २. ठ. वंतिरिए। ३. द. ब. क. ठ. खोणीए।

विशेषार्थ :— $\frac{(३^२ \times ८)+(३ \times २ \times १२)-(८ \times ३)}{२} = \frac{१२०}{२} = ६०$ छठी पृथिवीगत श्रेणीबद्ध बिलोंका कुल प्रमाण ।

सातवीं पृथिवीमें मात्र ४ ही श्रेणीबद्ध बिल हैं ।

सब पृथिवियोंके समस्त श्रेणीबद्ध बिलोंकी संख्या निकालनेके लिए आदि, चय और गच्छका निर्देश

चउ-रूवाइं आदि पचय-पमाणं पि अट्ठ-रूवाइं ।
गच्छस्स य परिमाणं हवेदि एक्कोणपण्णासा ।।८०।।

४ । ८ । ४९ ।

अर्थ :—(रत्नप्रभादिक पृथिवियोंमें सम्पूर्ण श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण निकालनेके लिए) आदिका प्रमाण चार, चयका प्रमाण आठ और गच्छ या पदका प्रमाण एक कम पचास अर्थात् ४९ होता है ।।८०।।

सब पृथिवियोंके समस्त श्रेणीबद्ध बिलोंकी संख्या निकालनेका विधान

पद-वग्गं पद-रहिदं चय-गुणिदं पद-हदादि-जुदमद्धं[1] ।
मुह-दल-गुणिद-पदेणं[2] संजुत्तं होदि संकलिदं ।।८१।।

अर्थ :—पदका वर्गकर उसमेंसे पदके प्रमाणको कम करके अवशिष्ट राशिको चयके प्रमाणसे गुणा करना चाहिए । पश्चात् उसमें पदसे गुणित आदिको मिलाकर और उसका आधा कर प्राप्त राशिमें मुखके अर्ध-भागसे गुणित पदके मिला देनेपर संकलित धनका प्रमाण निकलता है ।।८१।।

विशेषार्थ :— $\frac{(४९^२-४९) \times ८+(४९ \times ४)}{२} + (२ \times ४९) =$

$\frac{(२४०१-४९) \times ८+(१९६)}{२} + (९८) = \frac{२३५२ \times ८+१९६}{२} + ९८ = ९६०४$ संकलित धन ।

समस्त श्रेणीबद्ध-बिलोंकी संख्या

रयणप्पह-पहुदीसुं पुढवीसुं सव्व-सेढिबद्धाणं ।
चउउत्तर-[3]छच्च-सया णव य सहस्साणि परिमाणं ।।८२।।

९६०४

१. द. जुदमदं, ब. जुदमट्ठं । २. द. एदेणं । ३. द. ब. रुत्तरछस्ससया ।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक पृथिवियोंमें सम्पूर्ण श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण नौ हजार छहसौ चार (९६०४) है ॥८२॥

आदि (मुख) निकालनेकी विधि

पद-दल-हिद-संकलिदं[1] इच्छाए गुणिद-पचय-संजुत्तं ।
रूऊणिच्छाधिय-पद-चय-गुणिदं अवणिय-अद्धिए आदी ॥८३॥

अर्थ :—पदके अर्धभागसे भाजित संकलित धनमें इच्छासे गुणित चयको जोड़कर और उसमेंसे चयसे गुणित एक कम इच्छासे अधिक पदको कम करके शेषको आधा करनेपर आदिका प्रमाण आता है ॥८३॥

विशेषार्थ :—यहाँ पद ४९, संकलित धन ९६०४, इच्छा राशि ७ और चय ८ है ।=

$$\frac{(९६०४ \div \frac{४९}{२}) + (८ \times ७) - (७ - १ + ४९) \times ८}{२} = \frac{३९२ + ५६ - ४४०}{२} = \frac{४४८ - ४४०}{२}$$

$=\frac{८}{२}$ अर्थात् ४ आदि या मुखका प्रमाण प्राप्त होता है ।

इस गाथाका सूत्र :—आदि=[(संकलित धन ÷ पद/२) + (इच्छा × चय)—{(इच्छा—१) +पद} चय] $\frac{१}{२}$ ।

चय निकालनेकी विधि

[2]पद-दल-हद-वेक-पदावहरिद-संकलिद-वित्त-परिमाणे ।
वेकपदद्धेण[3] हिदं आदिं सोहेज्ज[4] तत्थ सेस चयं ॥८४॥

९६०४ ।

९६०४[5] अपवर्तिते, वेकपदद्धेण[6] $\frac{४९}{२}$ । ४८[7] हिदं आदिं $\frac{४}{१}$[8] सोहेज्ज[9] शोधित शेषमिदं $\frac{४९}{१}$[10] अपवर्तिते ८[11] ।

---

१. ब. क. बलहिदसंकलिदं । २. ब. पडलहदवेकपादावहरिद..................परिमाणो । क. ब. पडलहद वेकपाहावहरिद..........................परिमाणो । ३. द. ब. क. ठ. वेकपदंदेण । ४. द. ब. ठ. सोवेज्ज । ५. द. ब. क. ठ. ४९ । ६. द. ब. वेकपदंदेण $\frac{४९}{२}$ । ७. द. ब. प्रत्योः इदं ८५ तम गाथायाः पश्चादुपलभ्यते । ८. द. $\frac{४}{१}$ । ९. द. ब. क. सोवेज्ज, ठ. कोवेज्ज । १०. द. $\frac{४९}{२०}$ । ब. क. ठ. $\frac{४९}{२०}$ । ११. द. ब. क. ठ. ९ ।

अर्थ :—पदके अर्धभागसे गुणित जो एक कम पद, उससे भाजित संकलित धनके प्रमाणमेंसे एक कम पदके अर्धभागसे भाजित मुखको कम कर देनेपर शेष चयका प्रमाण होता है ।।८४।।

विशेषार्थ :—पदका अर्धभाग $\frac{४९}{२}$, एक कम पद (४९ — १)=४८, संकलित धन ९६०४, एक कम पदका अर्ध भाग (४९ —१)=४८, मुख ४। अर्थात् ९६०४÷(४९ — १ × $\frac{४९}{२}$) — (४ ÷ $\frac{४९-१}{२}$)=९६०४÷११७६—$\frac{४}{२४}$=$\frac{९६०४}{११७६}$ — $\frac{४}{२४}$=८ चय प्राप्त हुआ ।

इस गाथाका सूत्र—

चय=संकलित धन ÷ [(पद—१) $\frac{पद}{२}$] — (मुख ÷ $\frac{पद—१}{२}$)

दो प्रकारसे गच्छ-निकालनेकी विधि

चय-दल-हद-संकलिदं चय-दल-रहिदादि अद्ध-कदि-जुत्तं ।
मूलं [1]पुरिमूलूणं पचयद्ध-हिदम्मि[2] तं तु [3]पदं ।।८५।।

अहवा—

संदृष्टि—[4]चय-दल-हद-संकलिदं ४४२० । ४ । चय-दल-रहिदादि २८८ । अद्ध १४४ । कदि २०७३६ । जुत्त ३८४१६ । मूलं १९६ । पुरिमूल १४४ । ऊणं ५२ । पचयद्ध ४ । हिदं १३ ।

अर्थ :—चयके अर्धभागसे गुणित संकलित धनमें चयके अर्धभागसे रहित आदि (मुख) के अर्धभागके वर्गको मिला देनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसका वर्गमूल निकाले, पश्चात् उसमेसे पूर्व मूलको (जिसके वर्गको संकलित धनमें जोड़ा था) घटाकर अवशिष्ट राशिमें चयके अर्धभागका भाग देनेपर पदका प्रमाण निकलता है ।।८५।।

विशेषार्थ :—चय ८, इसका दल अर्थात् आधा ४, इससे गुणित संकलित धन ४४२०, अर्थात् ४४२०×४ । चय-दल-रहितादि अर्थात् २९२ मुखमेंसे चय (८) का अर्धभाग (४) घटानेपर

---

१. क. पुरिमूलूणं, ठ. उरिमूलूणं । २. ब. हिदमित्तं । ३ द. ब. पदयथवा । ४. द. ब. मूलुणं पूवं-मूले माणं ५२ । चय-भजिदं ५२=१ । चय-दल-हद-संकलिदं ४४२० । ४ । चय-दल-रहिदाहिदादि २८८ । अद्ध १४४ । १०७३७ । जुत्त ३८४१६ । ४ । मूलं १९६ । पुरि २= । दु २ । चयद्ध-हदं संकलिदं ४४२० । १६ चय ८ । द ४ । वदन २९२ । अंतरस्स २८८ । वग्गजुदं ३३३ । मूलं इंदं ३९२ । पुरिमूल २८८ । चय-भजिदं १०४ । पदं १३=८ । इति पाठः ८६ तम गाथायाः पश्चादुपलभ्यते ।

२८८ अवशेष रहे, तथा इसका आधा १४४ हुए। इसका (१४४) वर्ग २०७३६ हुआ, इसे (४४२० × ४=)१७६८० में मिला देनेपर ३८४१६ होते हैं। इस राशिका वर्गमूल १९६ आता है। इस वर्गमूल-मेंसे पूर्वमूल अर्थात् १४४ घटा देनेपर ५२ शेष बचे। इसमें अर्ध-चय (४) का भाग देनेपर पदका प्रमाण १३ प्राप्त हो जाता है।

यथा— $\left\{ \sqrt{(\frac{८}{२}\times ४४२०)+\left(\frac{२९२-\frac{८}{२}}{२}\right)^{२}} - \left(\frac{२९२-\frac{८}{२}}{२}\right) \right\} \div \frac{८}{२}$

$= \frac{\sqrt{१७६८०+१४४^{२}}-१४४}{४} = \frac{१९६-१४४}{४} = \frac{५२}{४} = १३$ पहली पृ० का पद-प्रमाण।

इस गाथाका सूत्र—

$\text{पद} = \left\{ \sqrt{(\text{सकलित धन}\times\frac{\text{चय}}{२})+\left(\frac{\text{आदि}-\frac{\text{चय}}{२}}{२}\right)^{२}} - \left(\frac{\text{आदि}-\frac{\text{चय}}{२}}{२}\right) \right\} \div \frac{\text{चय}}{२}$

अहवा—

> दु-चय-हदं संकलिदं चय-दल-वदणंतरस्स वग्ग-जुदं।
> मूलं पुरिमूलूणं चय-भजिदं होदि तं तु पदं ॥८६॥

अहवा—

संदृष्टि—दु २। चय ८। दु-चय-हदं संकलिदं ४४२०। १६। चयदल ४। वदन २९२। अंतरस्स २८८। वग्ग $\overline{३९२}$। मूलं ३९२ पुरिमूल २८८। ऊणं १०४। चय-भजिदं $\frac{१०४}{८}$। पदं १३।

अर्थ :—अथवा—दुगुने चयसे गुणित संकलित धनमें चयके अर्धभाग और मुखके अन्तररूप संख्याके वर्गको जोड़कर उसका वर्गमूल निकालनेपर जो संख्या प्राप्त हो उसमेसे पूर्व मूलको (जिसके वर्गको संकलित धनमें जोड़ा था) घटाकर शेषमें चयका भाग देनेपर विवक्षित पृथिवीके पदका प्रमाण निकलता है ॥८६॥

विशेषार्थ :—दुगुणित चय ८×२=१६, इससे गुणित संकलित धन ४४२०×१६, चयका अर्धभाग ४, मुख, २९२; मुख २९२ मेंसे ४ घटाने पर २८८ अवशेष रहे, इसका वर्ग ८२९४४ प्राप्त हुआ, इसमें १६ गुणित सङ्कलित धन ७०७२० जोड़ देनेपर १५३६६४ प्राप्त हुए और इसका वर्गमूल ३९२ आया। इस वर्गमूलमेंसे पूर्वमूल अर्थात् २८८ घटानेपर १०४ अवशिष्ट रहे। इसमें चय ८ (आठ) का भाग देनेपर ($\frac{१०४}{८}$=) १३ प्र० पृ० के पदका प्रमाण प्राप्त हुआ। यथा—

$$\left\{ \sqrt{(२ \times ८ \times ४४२०) + (२९२ - \frac{८}{२})^{२}} - (२९२ - \frac{८}{२}) \right\} \div ८$$

$$= \frac{\sqrt{७०७२० + ८२९९} - २८८}{८} = \frac{१०४}{८} = १३$$ प्रथम पृ० के पदका प्रमाण ।

इस गाथाका सूत्र :—

पद $= \left\{ \sqrt{(२ \text{ चय} \times \text{संकलित धन}) + (\text{आदि} - \frac{\text{चय}}{२})^{२}} - (\text{आदि} - \frac{\text{चय}}{२}) \right\} \div \text{चय}$

प्रत्येक पृथिवीके प्रकीर्णक बिलोंका प्रमाण निकालनेकी विधि—

पत्तेयं रयणादी-सव्व-बिलाणं ठवेज्ज परिसंखं ।
णिय-णिय-सेढीबद्ध[1] य इंदय-रहिदा पइण्णया होंति ।।८७।।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक प्रत्येक पृथिवीके सम्पूर्ण बिलोंकी संख्या रखकर उसमेंसे अपने-अपने श्रेणीबद्ध और इन्द्रक बिलोंकी संख्या घटा देनेसे उस-उस पृथिवीके शेष प्रकीर्णक बिलोंका प्रमाण प्राप्त होता है ।।८७।।

उणतीसं लक्खाणि पंचाणउदी-सहस्स-पंच-सया ।
सगसट्ठी-संजुत्ता पइण्णया पढम-पुढवीए ।।८८।।

। २९९५५६७ ।

अर्थ :– प्रथम पृथिवीमें उनतीस लाख, पंचान्नवै हजार पाँचसौ सड़सठ प्रकीर्णक बिल हैं ।।८८।।

विशेषार्थ :—प्रथम पृथिवीमें कुल बिल ३०००००० हैं, इनमेंसे १३ इन्द्रक और ४४२० श्रेणीबद्ध घटा देनेपर ३००००००—(१३+४४२०)=२९९५५६७ प्रथम पृथिवीके प्रकीर्णक बिलों-की संख्या प्राप्त हो जाती है ।

चउवीसं लक्खाणि सत्ताणवदी-सहस्स-ति-सयाणि ।
पंचुत्तराणि होंति हु पइण्णया विदिय-खोणीए ।।८९।।

२४९७३०५ ।

---

१. द. सेढीया, ब. सेढिया । ठ. सेढीमा,

अर्थ :—द्वितीय पृथिवीमें चौबीस लाख सत्तानबे हजार तीनसौ पाँच प्रकीर्णक बिल हैं ।।८९।।

विशेषार्थ :– दूसरी पृथिवीमें कुल बिल २५००००० हैं, इनमे से ११ इन्द्रक और २६८४ श्रेणीबद्ध बिल घटा देनेपर शेष २४९७३०५ प्रकीर्णक बिल हैं ।

[1]चोद्दस-लक्खाणि तहा अट्ठाणउदी-सहस्स-पंच-सया ।
पण्णरसेहिं जुत्ता पइण्णया तदिय-वसुहाए ।।९०।।

१४९८५१५ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें चौदह लाख, अट्ठानबे हजार पाँचसौ पन्द्रह प्रकीर्णक बिल हैं ।।९०।।

विशेषार्थ :—तीसरी पृथिवीमें कुल बिल १५००००० है, इनमेंसे ९ इन्द्रक बिल और १४७६ श्रेणीबद्ध बिल घटा देनेपर शेष १४९८५१५ प्रकीर्णक बिल प्राप्त होते है ।

णव-लक्खा णवणउदी-सहस्सया दो-सयाणि [2]तेणउदी ।
तुरियाए वसुमइए पइण्णयाणं च परिमाणं ।।९१।।

९९९२९३ ।

अर्थ :—चतुर्थ पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोका प्रमाण नौ लाख, निन्यानबे हजार दोसौ तेरानबे है ।।९१।।

विशेषार्थ :—चतुर्थ पृथिवीमें कुल बिल १०००००० है, इनमेंसे ७ इन्द्रक और ७०० श्रेणीबद्ध बिल घटा देनेपर शेष प्रकीर्णक बिलोंकी संख्या ९९९२९३ प्राप्त होती है ।

दो लक्खाणि सहस्सा [3]णवणउदी सग-सयाणि पणतीसं ।
पंचम-वसुधायाए पइण्णया होंति णियमेणं ।।९२।।

२९९७३५ ।

अर्थ :—पाँचवीं पृथिवीमें नियमसे दो लाख, निन्यानबे हजार सातसौ पेंतीस प्रकीर्णक बिल हैं ।।९२।।

विशेषार्थ :—पाँचवीं पृथिवीमें कुल-बिल ३००००० हैं, इनमेंसे ५ इन्द्रक और २६० श्रेणीबद्ध बिल घटा देनेपर शेष प्रकीर्णक बिलोंकी संख्या २,९९,७३५ प्राप्त होती है ।

---

१. द. चोद्दसय जाणि, ब. चोद्दसएं जाणि । ठ. चोद्दसए भाणि । क. चोद्दसए जाणि ।
२. क. तेणवदी । ३. द. णउणउदी ।

अट्ठासट्ठी-हीणं लक्खं छट्ठीए[1] मेदिणीए वि ।
अवणीए सत्तमिए पइण्णया णत्थि णियमेणं ॥९३॥

९९९३२ ।

अर्थ :—छठी पृथिवीमें अड़सठ कम एक लाख प्रकीर्णक बिल हैं । सातवीं पृथिवीमें नियमसे प्रकीर्णक बिल नहीं हैं ॥९३॥

विशेषार्थ :—छठी पृथिवीमें कुल बिल ९९९९५ हैं, इनमेंसे तीन इन्द्रक और ६० श्रेणी-बद्ध बिल घटा देनेपर प्रकीर्णक बिलोंकी संख्या ९९९३२ प्राप्त होती है । सप्तम पृथिवीमें एक इन्द्रक और चारों दिशाओंमें एक-एक श्रेणीबद्ध, इसप्रकार कुल पांच ही बिल हैं । प्रकीर्णक बिल वहाँ नहीं हैं ।

छह-पृथिवियोंके समस्त प्रकीर्णक बिलोंकी संख्या

तेसीदि लक्खाणि णउदि-सहस्साणि ति-सय-सगदालं ।
छप्पुढवीणं मिलिदा सव्वे वि पइण्णया होंति ॥९४॥

८३९०३४७ ।

अर्थ :—छह पृथिवियोंके सभी प्रकीर्णक बिलोंका योग तेरासी लाख, नव्वै हजार तीनसौ सैंतालीस है ॥९४॥

[विशेषार्थ अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१. द. छट्ठी, ब. क. छट्ठीइ ।

विशेषार्थ :—

पृथिवियाँ	सर्वबिल —	इन्द्रक +	श्रेणीबद्ध =	प्रकीर्णक
प्र० पृ०	३०००००० —	१३ +	४४२० =	२९९५५६७
द्वि० पृ०	२५००००० —	११ +	२६८४ =	२४९७३०५
तृ० पृ०	१५००००० —	९ +	१४७६ =	१४९८५१५
च० पृ०	१०००००० —	७ +	७०० =	९९९२९३
पं० पृ०	३००००० —	५ +	२६० =	२९९७३५
ष० पृ०	९९९९५ —	३ +	६० =	९९९३२
स० पृ०	५—	१ +	४ =	०

८३,९०,३४७ सर्व पृथिवियोंके प्रकीर्णक बिलोंका प्रमाण ।

इन्द्रादिक बिलोंका विस्तार

संखेज्जमिंदयाणं रुंदं सेढीगयाण जोयणया ।
तं होदि [1]असंखेज्जं पइण्णयाणुभय-मिस्सं [2]च ॥९५॥

७ । रि । ७ रि ।[3]

अर्थ :—इन्द्रक बिलोंका विस्तार संख्यात योजन, श्रेणीबद्ध बिलोंका असंख्यात योजन और प्रकीर्णक बिलोंका विस्तार उभयमिश्र अर्थात् कुछका संख्यात और कुछका असंख्यात योजन है ॥९५॥

संख्यात एवं असंख्यात योजन विस्तारवाले बिलोंका प्रमाण

संखेज्जा वित्थारा णिरयाणं पंचमस्स परिमाणा ।
सेस चउ-पंच-भागा होंति असंखेज्ज-रुंदाइं ॥९६॥

८४००००० । १६८०००० । ६७२०००० ।

१. द. ब. यसंखेज्जं । २. द. ब. क. ठ. णुभयमस्सरुवं । ३. [७ । २ । ७ । ६ । २ । ७ ।]

अर्थ :—सम्पूर्ण बिलसंख्याके पाँच भागोंमेंसे एक भाग ($\frac{1}{5}$) प्रमाण बिलोंका विस्तार संख्यात योजन और शेष चारभाग ($\frac{4}{5}$) प्रमाण बिलोंका विस्तार असंख्यात योजन है ।।९६।।

विशेषार्थ :—सातों पृथिवियोंके समस्त बिलोंका प्रमाण ८४००००० है । इसका $\frac{1}{5}$ भाग अर्थात् ८४००००० × $\frac{1}{5}$ = १६८०००० बिल संख्यात योजन प्रमाण वाले और ८४००००० × $\frac{4}{5}$ = ६७२०००० बिल असंख्यात योजन प्रमाण वाले हैं ।

रत्नप्रभादिक पृथिवियोंमे संख्यात एवं असंख्यात योजन विस्तार वाले बिलोंका

पृथक्-पृथक् प्रमाण

छ-प्पंच-ति-दुग-लक्खा सट्ठि-सहस्साणि तह य एक्कोणा ।
वीस-सहस्सा एक्कं [1]रयणादिसु संख-वित्थारा ।।९७।।

६००००० । ५००००० । ३००००० । २००००० । ६०००० । १९९९९ । १ ।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक पृथिवियोंमें क्रमशः छह लाख, पाँच लाख, तीन लाख, दो लाख, साठ हजार, एक कम बीस हजार और एक, इतने बिलोंका विस्तार संख्यात योजन प्रमाण है ।।९७।।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभादिक प्रत्येक पृथिवीके सम्पूर्ण बिलोंके $\frac{1}{5}$ वें भाग प्रमाण बिल संख्यात योजन विस्तार वाले हैं । यथा—

पहली पृ० में—३०००००० का $\frac{1}{5}$ = ६०००००	बिल संख्यात यो० विस्तार वाले ।				
दूसरी पृ० में—२५००००० का $\frac{1}{5}$ = ५०००००	,,	,,	,,		
तीसरी ,, —१५००००० का $\frac{1}{5}$ = ३०००००	,,	,,	,,		
चौथी ,, —१०००००० का $\frac{1}{5}$ = २०००००	,,	,,	,,		
पाँचवी ,, —३००००० का $\frac{1}{5}$ = ६००००	,,	,,	,,		
छठी ,, —९९९९५ का $\frac{1}{5}$ = १९९९९	,,	,,	,,		
सातवीं ,, —५ का $\frac{1}{5}$ = १	,,	,,	,,		

१. द. ब. क. ठ. दुयणेदिसु ।

चउवीस-वीस-बारस-अट्ठ-पमाणाणि होंति लक्खाणि ।
सय-कदि-हद[1]-चउवीसं सीदि-सहस्सा य चउ-हीणा ॥९८॥

२४००००० । २०००००० । १२००००० । ८००००० । २४०००० । ७९९९६ ।

चत्तारि [2]च्चिय एदे होंति असंखेज्ज-जोयणा रुंदा ।
रयणप्पह-पहुदीए कमेण सव्वाण पुढवीणं ॥९९॥

४ ।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक—पृथिवियोंमें क्रमशः चौबीस लाख, बीस लाख, बारह लाख, आठ लाख, चौबीससे गुणित सौ के वर्ग प्रमाण अर्थात् दो लाख चालीस हजार, चार कम अस्सी हजार और चार, इतने बिल असंख्यात योजन प्रमाण विस्तार वाले हैं ॥९८-९९॥

विशेषार्थ :—रत्नप्रभादिक प्रत्येक पृथिवीके कुल बिलोंके $\frac{४}{५}$ वें भाग प्रमाण बिल असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं । यथा—

पहली— पृ० में—	३०००००० का $\frac{४}{५}$	=२४०००००	बिल असंख्यात यो० विस्तार वाले ।			
दूसरी— ,,	—२५००००० का $\frac{४}{५}$	=२००००००		,,	,,	,,
तीसरी— ,,	—१५००००० का $\frac{४}{५}$	=१२०००००		,,	,,	,,
चौथी— ,,	—१०००००० का $\frac{४}{५}$	=८०००००		,,	,,	,,
पाँचवीं— ,,	—३००००० का $\frac{४}{५}$	=२४००००		,,	,,	,,
छठी— ,,	—९९९९५ का $\frac{४}{५}$	=७९९९६		,,	,,	,,
सातवीं— ,,	—५ का $\frac{४}{५}$	=४		,,	,,	,,

सर्व बिलोंका तिरछे रूपमें जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तराल

संखेज्ज-रुंद-संजुद-णिरय-बिलाणं जहण्ण-विच्चालं[3] ।
छक्कोसा तेरिच्छे उक्कस्से [4]संदुगुणिदं तु ॥१००॥

को ६ । १२ ।[5]

१. द. सयकदिहिद° । २. द. रचिय, ब. रचिय । ३. द. जहण्ण-विस्थारं । ४. द. ब. दुगुणिदो । ५. द. ६ ।

अर्थ :—नारकियोंके संख्यात योजन विस्तार वाले बिलोंमें तिरछे रूपमें जघन्य अन्तराल छह कोस प्रमाण और उत्कृष्ट अन्तराल इससे दुगुना अर्थात् बारह कोस प्रमाण है ॥१००॥

विशेषार्थ :—संख्यात योजन विस्तार वाले नरकबिलोंका जघन्य तिर्यग् अन्तर छह कोस (१½ योजन) और उत्कृष्ट तिर्यग् अन्तर १२ कोस (३ योजन) प्रमाण है।

णिरय-बिलाणं होदि हु असंख-रु'दाण अवर-विच्चालं ।
जोयण-सत्त-सहस्सं उक्कस्से तं असंखेज्जं ॥१०१॥

जो० ७००० । रि ।

अर्थ :—नारकियोंके असंख्यात योजन विस्तारवाले बिलोंका जघन्य अन्तराल सात हजार योजन और उत्कृष्ट अन्तराल असंख्यात योजन ही है ॥१०१॥

विशेषार्थ :—असख्यात योजन विस्तारवाले नरक बिलोंका जघन्य तिर्यग् अन्तर ७००० योजन और उत्कृष्ट तिर्यग् अन्तर असंख्यात योजन प्रमाण है। संदृष्टिमें असख्यातका चिह्न 'रि' ग्रहण किया गया है।

प्रकीर्णक बिलोंमे संख्यात एवं असंख्यात योजन विस्तृत बिलोंका विभाग

उत्त-पइण्णय-मज्झे होंति हु 'बहवो असंख-वित्थारा[2] ।
संखेज्ज-वास-जुत्ता थोवा [3]होर-तिमिर-संजुत्ता[4] ॥१०२॥

अर्थ :—पूर्वोक्त प्रकीर्णक बिलोंमें—असंख्यात योजन विस्तारवाले बिल बहुत हैं और संख्यात योजन विस्तारवाले बिल थोडे हैं। ये सब बिल घोर अधकारसे व्याप्त रहते हैं ॥१०२॥

सग-सग-पुढवि-गयाणं संखासंखेज्ज-रु'द-रासिम्मि ।
इंदय-सेढि-विहीणे कमसो सेसा पइण्णए उभयं ॥१०३॥

५९९९८७ । अ २३९५५८०[5] ।
एवं पुढवि पडि आणेदव्व ।

अर्थ :—अपनी-अपनी पृथिवीके संख्यात योजन विस्तारवाले बिलोंकी राशिमेंसे इन्द्रक बिलोंका प्रमाण–घटा देनेपर–संख्यात योजन विस्तारवाले प्रकीर्णक बिलोंका प्रमाण शेष रहता है।

---

१. क. ठ. बहुवो। २. द. ब. क. बित्थारो। ठ. बित्थारे। ३. क. होराति। ४. ब. होएति तिमिर। ५. क. ठ. २३९५९६८०।

इसीप्रकार अपनी-अपनी पृथिवीके असंख्यात योजन विस्तारवाले बिलोंकी संख्यामेंसे क्रमशः श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण-घटा देनेपर असंख्यात योजन विस्तारवाले प्रकीर्णक बिलोंका प्रमाण अवशिष्ट रहता है ।।१०३।।

इसप्रकार प्रत्येक पृथिवीके प्रकीर्णक बिलोंका प्रमाण ज्ञात कर लेना चाहिए ।

विशेषार्थ :—पहली—पृथिवी—

संख्यात यो० विस्तार वाले सर्व बिल ६०००००—१३ इन्द्रक=५९९९८७ प्रकीर्णक सं० यो० वाले । असंख्यात यो० विस्तार वाले सर्व बिल २४०००००—४४२० श्रेणी०=२३९५५८० प्रकीर्णक असंख्यात यो० वाले ।

दूसरी-पृथिवी

संख्यात यो० वि० वाले सर्व बिल ५०००००—११ इन्द्रक=४९९९८९ प्रकीर्णक सं० यो० वाले । असंख्यात यो० वि० वाले सर्व बिल २००००००—२६८४ श्रेणी०=१९९७३१६ असं० यो० वाले ।

तीसरी-पृथिवी

संख्यात यो० वि० वाले सर्व बिल ३०००००—९ इन्द्रक=२९९९९१ प्रकीर्णक सख्यात वाले । असं० यो० वाले सर्व बिल १२०००००—१४७६ श्रेणी०=११९८५२४ प्रकीर्णक असख्यात यो० वि० वाले ।

चौथी-पृथिवी

सख्यात यो० के सर्व बिल २०००००—७ इन्द्रक=१९९९९३ प्रकी० संख्यात यो० वाले । असं० यो० वाले सर्व बिल ८०००००—७०० श्रेणी०=७९९३०० प्रकी० असं० यो० वाले ।

पाँचवीं-पृथिवी

संख्यात यो० के सर्व बिल ६००००—५ इन्द्रक=५९९९५ प्रकी० संख्यात यो० वाले । असंख्यात यो० के सर्व बिल २४००००—२६० श्रेणी०=२३९७४० प्रकी० असं० यो० वाले ।

छठी-पृथिवी

संख्यात यो० के सर्व बिल १९९९९—३ इन्द्रक=१९९९६ प्रकी० सं० यो० वाले । असंख्यात यो० के सर्व बिल ७९९९६ — ६० श्रेणी०=७९९३६ प्रकी० असं० यो० वाले ।

सातवी पृथिवीमें प्रकीर्णक बिल नहीं हैं।

संख्यात एवं असंख्यात योजन विस्तार वाले नारक बिलोंमें नारकियोंकी संख्या

संखेज्ज-वास-जुत्ते णिरय-बिले होंति णारया जीवा।
संखेज्जा णियमेणं इदरम्मि तहा असंखेज्जा ॥१०४॥

अर्थ :—संख्यात योजन विस्तारवाले नरकबिलमें नियमसे संख्यात नारकी जीव तथा असंख्यात योजन विस्तारवाले बिलमें असंख्यात ही नारकी जीव होते हैं ॥१०४॥

इन्द्रक बिलोंकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

पणदालं लक्खाणि पढमो चरिमिंदओ वि इगि-लक्खं।
उभयं सोहिय एक्कोणिदय-भजिदम्मि हाणि-चयं ॥१०५॥

४५००००० । १०००००

छावट्ठि-छस्सयाणि इगिणउदि-सहस्स-जोयणाणि पि।
दु-कलाओ ति-विहत्ता परिमाणं हाणि-वड्ढीए ॥१०६॥

९१६६६$\frac{२}{३}$

अर्थ :—प्रथम इन्द्रकका विस्तार पैंतालीस लाख योजन और अन्तिम इन्द्रकका विस्तार एक लाख योजन है। प्रथम इन्द्रकके विस्तारमेसे अन्तिम इन्द्रकका विस्तार घटाकर शेषमें एक कम इन्द्रक प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना (द्वितीयादि इन्द्रकोंका विस्तार निकालनेके लिए) हानि और वृद्धिका प्रमाण है ॥१०५॥

इस हानि-वृद्धिका प्रमाण इक्यानवे हजार छह सौ छयासठ योजन और तीनसे विभक्त दो कला है ॥१०६॥

विशेषार्थ :—पहली पृथिवीके प्रथम सीमन्त इन्द्रक बिलका विस्तार मनुष्य क्षेत्र सदृश अर्थात् ४५ लाख योजन प्रमाण है और सातवीं पृ० के अवधिस्थान नामक अन्तिम बिलका विस्तार जम्बूद्वीप सदृश एक लाख योजन प्रमाण है। इन दोनोंका शोधन करनेपर (४५०००००—१०००००) =४४००००० योजन अवशेष रहे। इनमें एक कम इन्द्रकों (४९—१=४८) का भाग देनेपर (४४०००००÷४८)=९१६६६$\frac{२}{३}$ योजन हानि और वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है।

इच्छित इन्द्रकके विस्तारको प्राप्त करनेका विधान

बिदियादिसु इच्छंतो रूऊरिणच्छाए गुणिद-खय-वड्ढी ।
सीमंतादो [1]सोहिय मेलिज्ज सुअवहि-ठाणम्मि[2] ॥१०७॥

अर्थ :—द्वितीयादिक इन्द्रकोंका विस्तार निकालनेके लिए एक कम इच्छित इन्द्रक प्रमाणसे उक्त क्षय और वृद्धिके प्रमाणको गुणा करनेपर जो गुणनफल प्राप्त हो उसे सीमन्त इन्द्रकके विस्तारमें से घटा देनेपर या अवधिस्थान इन्द्रकके विस्तारमें मिलानेपर अभीष्ट इन्द्रकका विस्तार निकलता है ॥१०७॥

विशेषार्थ :—प्रथम सीमन्त बिल और अन्तिम अवधिस्थानकी अपेक्षा २५ वें तप्तनामक इन्द्रकका विस्तार निकालनेके लिए क्षय-वृद्धिका प्रमाण ९१६६६$\frac{2}{3}$ × (२५—१) = २२००००० ; ४५०००००—२२००००० = २३००००० योजन सीमन्त बिलकी अपेक्षा । ९१६६६$\frac{2}{3}$ × (२५—१) = २२०००००; २२००००० + १००००० = २३००००० योजन अवधिस्थानकी अपेक्षा तप्त नामक इन्द्रकका विस्तार प्राप्त होता है ।

पहली पृथिवीके तेरह इन्द्रकोंका पृथक्-पृथक् विस्तार

रयणप्पह-अवणीए सीमंतय-इंदयस्स वित्थारो ।
पंचत्तालं जोयण-लक्खाणि होदि णियमेणं ॥१०८॥

४५००००० ।

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीमें सीमन्त इन्द्रकका विस्तार नियमसे पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन प्रमाण है ॥१०८॥

चोदालं[3] लक्खाणि तेसीदि-सयाणि होंति तेत्तीसं ।
एक्क-कला ति-विहत्ता णिरय-इंदय-रुंद-परिमाणं ॥१०९॥

४४०८३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—निरय (नरक) नामक द्वितीय इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण चवालीस लाख, तेरासी सौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीनभागोंमेंसे एक-भाग है ॥१०९॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सेढीय । २. ब. ठाणं । ३. द. चावालसक्खाणि ।

विशेषार्थ :—सीमन्त बिलका विस्तार ४५००००० — ९१६६६ $\frac{2}{3}$ = ४४०८३३३ $\frac{1}{3}$ योजन विस्तार निरय इन्द्रकका है।

तेदालं लक्खाणि छस्सय-सोलस-सहस्स-छासट्ठी।
दु-ति-भागो [1]वित्थारो [2]रोरुग-णामस्स [3]णादव्वो ॥११०॥

४३१६६६६ $\frac{2}{3}$।

अर्थ :—रौरुक (रौरव) नामक तृतीय इन्द्रकका विस्तार तेतालीस लाख, सोलह हजार छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे दो-भाग प्रमाण जानना चाहिए। ११०॥

विशेषार्थ :—४४०८३३३ $\frac{1}{3}$ — ९१६६६ $\frac{2}{3}$ = ४३१६६६६ $\frac{2}{3}$ योजन विस्तार तृतीय रौरुक इन्द्रकका है।

पणुवीस-सहस्साहिय-जोयण-बादाल-लक्ख-परिमाणो।
भंतिदयस्स भणिदो वित्थारो पढम-पुढवीए ॥१११॥

४२२५०००।

अर्थ :—पहली पृथिवीमें भ्रान्त नामक चतुर्थ इन्द्रकका विस्तार बयालीस लाख, पच्चीस हजार योजन प्रमाण कहा गया है ॥१११॥

विशेषार्थ :—४३१६६६६ $\frac{2}{3}$ — ९१६६६ $\frac{2}{3}$ = ४२२५००० योजन विस्तार भ्रान्त नामक चतुर्थ इन्द्रक बिलका है।

एक्कत्तालं लक्खा तेत्तीस-सहस्स[4]-ति-सय-तेत्तीसा।
एक्क-कला ति-बिहत्ता उब्भंतय-इंद-परिमाणं ॥११२॥

४१३३३३३ $\frac{1}{3}$।

अर्थ : —उद्भ्रान्त नामक पाँचवें इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण इकतालीस लाख, तेंतीस हजार तीनसौ तेंतीस योजन और योजनके तीन-भागोंमेंसे एक-भाग है ॥११२॥

विशेषार्थ :—४२२५००० — ९१६६६ $\frac{2}{3}$ = ४१३३३३३ $\frac{1}{3}$ योजन विस्तार उद्भ्रान्त नामक पाँचवें इन्द्रक बिलका है।

---

१. द. ब. क. विस्थारा। २. द. लोरुगणामस्स। ३. द. णादव्वा। ४. द. तीससहस्सं।

चालीसं लक्खाणि इगिदाल-सहस्स-छस्सय छासट्ठी ।
दोण्हि कला ति-विहत्ता वासो [1]संभंत-णामम्मि ।।११३।।

४०४१६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—सम्भ्रान्त नामक छठे इन्द्रकका विस्तार चालीस लाख, इकतालीस हजार, छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे दो-भाग प्रमाण है ।।११३।।

विशेषार्थ :—४१३३३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ४०४१६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार सम्भ्रान्त नामक छठे इन्द्रक बिलका है ।

उणदालं लक्खाणि पण्णास-सहस्स-जोयणाणि पि ।
होदि असंभंतिदय-वित्थारो पढम-पुढवीए ।।११४।।

३९५०००० ।

अर्थ :—पहली पृथिवीमें असम्भ्रान्त नामक सातवें इन्द्रकका विस्तार उनतालीस लाख पचास हजार योजन प्रमाण है ।।११४।।

विशेषार्थ :—४०४१६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=३९५०००० योजन विस्तार असम्भ्रान्त नामक सातवें इन्द्रक बिलका है ।

अट्ठत्तीसं लक्खा अडवण्ण-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसं ।
एक्क-कला ति-विहत्ता वासो विब्भंत-णामम्मि ।।११५।।

३८५८३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—विभ्रान्त नामक आठवें इन्द्रकका विस्तार अड़तीस लाख, अट्ठावन हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे एक भाग प्रमाण है ।।११५।।

विशेषार्थ :—३९५०००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$= ३८५८३३३$\frac{1}{3}$ योजन विस्तार विभ्रान्त नामक आठवें इन्द्रक बिलका है ।

सगतीसं लक्खाणि [2]छासट्ठि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला तिय-भजिदा रुंदो तत्तिदये होदि ।।११६।।

३७६६६६६$\frac{2}{3}$ ।

---

१. द. क. ज. ठ समंत । २. द. क. बासट्ठि ।

अर्थ :—तप्त नामक नवें इन्द्रकका विस्तार सैंतीस लाख, छयासठ हजार छहसौ छयासठ योजन और योजनके तीन-भागोंमेंसे दो भाग प्रमाण है ।।११६।।

विशेषार्थ :—३८५८३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३७६६६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार तप्त नामक नवें इन्द्रक बिलका है ।

छत्तीसं लक्खाणिं जोयणया पंचहत्तरि-सहस्सा ।
तसिदिंदयस्स रुंदं णादव्वं पढम-पुढवीए ।।११७।।

३६७५००० ।

अर्थ :—पहली पृथिवीमें त्रसित नामक दसवें इन्द्रकका विस्तार छत्तीस लाख, पचहत्तर हजार योजन प्रमाण जानना चाहिए ।।११७।।

विशेषार्थ :—३७६६६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३६७५००० योजन विस्तार त्रसित नामक दसवें इन्द्रक बिलका है ।

पणतीसं लक्खाणिं तेसीदि-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला ति-विहत्ता रुंदं वक्कंत-णामम्मि ।।११८।।

३५८३३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—वक्रान्त नामक ग्यारहवें इन्द्रकका विस्तार पैंतीस लाख, तेरासी हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे एक-भाग है ।।११८।।

विशेषार्थ :—३६७५००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३५८३३३३$\frac{1}{3}$ योजन विस्तार वक्रान्त नामक ग्यारहवें इन्द्रक बिलका है ।

चउतीसं लक्खाणिं [1]इगिणउदि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला तिय-भजिदा एस अवक्कंत-वित्थारो ।।११९।।

३४९१६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—अवक्रान्त नामक बारहवें इन्द्रकका विस्तार चौंतीस लाख, इक्यानवे हजार, छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे दो-भाग प्रमाण है ।।११९।।

---

१. ब. इगणउदि ।

विशेषार्थ :—३५८३३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३४९१६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार अवक्रान्त नामक बारहवें इन्द्रक बिलका है।

चोत्तीसं लक्खाणिं जोयण-संखा य पढम-पुढवीए ।
[1]विक्कंत-णाम-इंदय-वित्थारो एत्थ णादव्वो ॥१२०॥

३४००००० ।

अर्थ :—पहली पृथिवीमें विक्रान्त नामक तेरहवें इन्द्रकका विस्तार चौंतीस लाख योजन प्रमाण जानना चाहिए ॥१२०॥

विशेषार्थ :—३४९१६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३४००००० योजन विस्तार विक्रान्त नामक तेरहवें इन्द्रक बिलका है।

दूसरी-पृथिवीके ग्यारह इन्द्रककोंका पृथक्-पृथक् विस्तार

तेत्तीसं लक्खाणिं अट्ठ-सहस्साणि ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला बिदियाए [2]थण-इंदय-रुंद-परिमाणं ॥१२१॥

३३०८३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीमें स्तन नामक प्रथम इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण तेंतीस लाख, आठ हजार, तीनसौ तेंतीस योजन और योजनके तीन-भागोंमेंसे एक-भाग है ॥१२१॥

विशेषार्थ :—३४००००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३३०८३३३$\frac{1}{3}$ यो॰ विस्तार दूसरी पृथिवीके स्तन नामक प्रथम इन्द्रक बिलका है।

बत्तीसं लक्खाणिं छस्सय-सोलस-सहस्स-छासट्ठी ।
दोण्णि कला ति-विहत्ता वासो तण-इंदए होदि ॥१२२॥

३२१६६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—तनक नामक द्वितीय इन्द्रकका विस्तार बत्तीस लाख, सोलह हजार, छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे दो-भाग प्रमाण है ॥१२२॥

विशेषार्थ :—३३०८३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = ३२१६६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार तनक नामक द्वितीय इन्द्रक बिलका है।

---

१. द. ब. विक्कतं-णामाइय-वित्थारो । २. द. थणइंदय । ठ. ज. थण इंदय ।

इगितीसं लक्खाणि [1]पणुवीस-सहस्स-जोयणाणि पि ।
मण-इंदयस्स रुंदं णादव्वं बिदिय-पुढवीए ॥१२३॥

३१२५००० ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीमें मन नामक तृतीय इन्द्रकका विस्तार इकतीस लाख, पच्चीस हज़ार योजन प्रमाण जानना चाहिए ॥१२३॥

विशेषार्थ :—३२१६६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=३१२५००० योजन विस्तार मन नामक तृतीय इन्द्रक बिलका है ।

तीसं चिय लक्खाणि तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला बिदियाए वण-इंदय-रुंद-परिमाणं ॥१२४॥

३०३३३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीमें वन नामक चतुर्थ इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण तीस लाख, तैंतीस हज़ार तीन-सौ तैंतीस योजन और योजनका एक-तिहाई भाग है ॥१२४॥

विशेषार्थ :—३१२५००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$=३०३३३३३$\frac{1}{3}$ योजन विस्तार वन नामक चतुर्थ इन्द्रक बिलका है ।

एक्कोण-तीस-लक्खा इगिदाल-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला ति-विहत्ता घादिंदय-णाम-वित्थारो ॥१२५॥

२९४१६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—घात नामक पंचम इन्द्रकका विस्तार योजनके तीन-भागोंमेंसे दो भाग सहित उनतीस लाख, इकतालीस हज़ार, छहसौ छयासठ योजन प्रमाण है ॥१२५॥

विशेषार्थ :—३०३३३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=२९४१६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार घात नामक पंचम इंद्रक बिलका है ।

अट्ठावीसं लक्खा [2]पण्णास-सहस्स-जोयणाणि पि ।
संघात-णाम-इंदय-वित्थारो बिदिय-पुढवीए ॥१२६॥

२८५०००० ।

---

१. द. लक्खाणं पुणुवीसं । २. द. ब. क. पण्णारस ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीमें संघात नामक छठे इन्द्रकका विस्तार अट्ठाईस लाख, पचास हजार योजन प्रमाण है ।।१२६।।

विशेषार्थ :—२९४१६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=२८५०००० योजन विस्तार संघात नामक छठे इन्द्रक बिलका है ।

सत्तावीसं लक्खा अडवण्ण-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला ति-विहत्ता [1]जिब्भिदय-रुंद-परिमाणं ।।१२७।।

२७५८३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ :—जिह्व नामक सातवें इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण सत्ताईस लाख, अट्ठावन हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे-भाग प्रमाण है ।।१२७।

विशेषार्थ :—२८५०००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$=२७५८३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार जिह्व नामक सातवें इन्द्रक बिलका है ।

छब्बीसं लक्खाणि छासट्ठि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठि[2] ।
दोण्णि कला ति-विहत्ता जिब्भग-णामस्स वित्थारो ।।१२८।।

२६६६६६६$\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—जिह्वक नामक आठवें इन्द्रकका विस्तार छब्बीस लाख, छयासठ हजार, छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे दो-भाग प्रमाण है ।।१२८।।

विशेषार्थ :—२७५८३३३$\frac{१}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=२६६६६६६$\frac{२}{३}$ योजन विस्तार जिह्वक नामक आठवें इन्द्रक बिलका है ।

पणुवीसं लक्खाणि जोयणया पंचहत्तरि-सहस्सा ।
लोलिदयस्स रुंदो बिदियाए होदि पुढवीए ।।१२९।।

२५७५००० ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीमें नवें लोल इन्द्रकका विस्तार पच्चीस लाख, पचहत्तर हजार योजन प्रमाण है ।।१२९।।

---

१. द. ब. दिब्भिदय° । २. द. छावट्ठि ।

विशेषार्थ :—२६६६६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=२५७५००० योजन प्रमाण विस्तार लोल नामक नवें इन्द्रक बिलका है ।

चउवीसं लक्खाणिं तेसीदि-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला ति-विहत्ता लोलग-णामस्स[1] वित्थारो ॥१३०॥

२४८३३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—लोलक नामक दसवें इन्द्रकका विस्तार चौबीस लाख, तेरासी हजार तीनसौ तेंतीस योजन और एक योजनके तीसरे भाग प्रमाण है ॥१३०॥

विशेषार्थ :—२५७५००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$=२४८३३३३$\frac{1}{3}$ योजन विस्तार लोलक नामक दसवें इन्द्रकका है ।

तेवीसं लक्खाणिं इगिणउदि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठि ।
दोण्णि कला तिय-भजिदा रुंदा थणलोलगे होंति ॥१३१॥[2]

२३९१६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—स्तनलोलक नामक ग्यारहवें इन्द्रकका विस्तार तेईस लाख, इक्यानबे हजार छहसौ छयासठ योजन और योजनके तीन-भागोंमेसे दो-भाग प्रमाण है ॥१३१॥

विशेषार्थ :—२४८३३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ =२३९१६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार स्तनलोलक नामक ग्यारहवे इन्द्रक बिलका है ।

तीसरी पृथिवीके नव इन्द्रकोंका पृथक्-पृथक् विस्तार

तेवीसं लक्खाणिं जोयण-संखा य तदिय-पुढवीए ।
पढमिंदयम्मि वासो णादव्वो तत्त-णामस्स ॥१३२॥

२३००००० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें तप्त नामक प्रथम इन्द्रकका विस्तार तेईस लाख योजन प्रमाण जानना चाहिए ॥१३२॥

विशेषार्थ :—२३९१६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$ = २३००००० योजन विस्तार तप्त नामक प्रथम इन्द्रक बिलका है ।

---

१. द. लोलग-णामास । २. ब. पुस्तक एव ।

बावीसं लक्खारिण अट्ठ-सहस्सारिण ति-सयं-तेत्तीसं ।
एक्क-कला ति-विहत्ता पुढवीए तसिद-वित्थारो ॥१३३॥

२२०८३३३⅓ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें त्रसित नामक द्वितीय इन्द्रकका विस्तार बाईस लाख, आठ हजार, तीनसौ तेंतीस योजन और योजनका तीसरा भाग है ॥१३३॥

विशेषार्थ :—२३००००० — ९१६६६⅔=२२०८३३३⅓ योजन विस्तार त्रसित नामक द्वितीय इन्द्रक बिलका है ।

सोल-सहस्सं छस्सय-छासट्ठि एक्कवीस-लक्खारिण ।
दोण्णि कला तदियाए पुढवीए तवण-वित्थारो ॥१३४॥

२११६६६६⅔ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें तपन नामक तृतीय इन्द्रकका विस्तार इक्कीस लाख, सोलह हजार, छहसौ छयासठ योजन और योजनके तीन-भागोंमेंसे दो भाग प्रमाण है ॥१३४॥

विशेषार्थ :—२२०८३३३⅓ — ९१६६६⅔=२११६६६६⅔ योजन विस्तार तपन नामक तृतीय इन्द्रक बिलका है ।

पणवीस-सहस्साधिय-विसदि-लक्खाणि जोयणाणि पि ।
तदियाए खोणीए तावण-णामस्स वित्थारो ॥१३५॥

२०२५००० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें तापन नामक चतुर्थ इन्द्रकका विस्तार बीस लाख, पच्चीस हजार योजन प्रमाण है ॥१३५॥

विशेषार्थ :—२११६६६६⅔ — ९१६६६⅔=२०२५००० योजन विस्तार तापन नामक चतुर्थ इन्द्रक बिलका है ।

एक्कोणवीस-लक्खा तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला तदियाए वसुहाए णिदाघ[1] वित्थारो ॥१३६॥

१९३३३३३⅓ ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. बण्णि होइ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें निदाघ नामक पंचम इन्द्रकका विस्तार उन्नीस लाख, तेंतीस हजार, तीनसौ तेंतीस योजन और योजनके तृतीय-भाग प्रमाण है ॥१३६॥

विशेषार्थ :—२०२५००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$=१९३३३३३$\frac{1}{3}$ योजन विस्तार निदाघ नामक पंचम इन्द्रक बिलका है।

अट्ठारस-लक्खाणि इगिदाल-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला तदियाए भूए पज्जलिद-वित्थारो ॥१३७॥

१८४१६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें प्रज्वलित नामक छठे इन्द्रकका विस्तार अठारह लाख, इकतालीस हजार, छह सौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे दो भाग प्रमाण है ॥१३७॥

विशेषार्थ :—१९३३३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=१८४१६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार प्रज्वलित नामक छठे इन्द्रक बिलका है।

सत्तरसं लक्खाणि पण्णास-सहस्स-जोयणाणि च ।
उज्जलिद-इंदयस्स य वासो वसुहाए तदियाए ॥१३८॥

१७५०००० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें उज्ज्वलित नामक सातवें इन्द्रकका विस्तार सत्तरह लाख, पचास हजार योजन प्रमाण है ॥१३८॥

विशेषार्थ :—१८४१६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=१७५०००० योजन विस्तार उज्ज्वलित नामक सातवें इन्द्रक बिलका है।

सोलस-जोयण-लक्खा अडवण्ण-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला तदियाए संजलिदिंदस्स[1] वित्थारो ॥१३९॥

१६५८३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—तीसरी-भूमिमें संज्वलित नामक आठवें इन्द्रकका विस्तार सोलह लाख अट्ठावन हजार तीन सौ तेंतीस योजन और एक योजनका तीसरा-भाग है ॥१३९॥

---

१. द. ब संपज्जलिदस्स ।

विशेषार्थ :—१७५०००० — ९१६६६⅔ = १६५८३३३⅓ योजन विस्तार संज्वलित नामक आठवें इन्द्रक बिलका है।

पण्णारस-लक्खाणि छस्सट्ठि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला [1]तदियाए संपज्जलिदस्स वित्थारो ॥१४०॥

१५६६६६६⅔ ।

अर्थ :—तीसरी-पृथिवीमें संप्रज्वलित नामक नवें इन्द्रकका विस्तार पन्द्रह लाख, छ्यासठ हजार, छहसौ छ्यासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेसे दो भाग प्रमाण है ॥१४०॥

विशेषार्थ :—१६५८३३३⅓ — ९१६६६⅔ = १५६६६६६⅔ योजन विस्तार संप्रज्वलित नामक नवें इन्द्रक बिलका है।

चौथी पृथिवीके सात इन्द्रकोका पृथक्-पृथक् विस्तार

चोद्दस-जोयण-लक्खा पण-जुद-सत्तरि सहस्स-परिमाणा ।
तुरिमाए पुढवीए आरिंदय-रुंद-परिमाणं ॥१४१॥

१४७५००० ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमें आर नामक प्रथम इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण चौदह लाख, पचहत्तर हजार योजन है ॥१४१॥

विशेषार्थ :—१५६६६६६⅔ — ९१६६६⅔ = १४७५००० योजन विस्तार आर नामक प्रथम इन्द्रक-बिलका है।

तेरस-जोयण-लक्खा तेसीदि-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला तुरिमाए महिए मारिंदए रुंदो ॥१४२॥

१३८३३३३⅓ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमें मार नामक द्वितीय इन्द्रकका विस्तार तेरह लाख, तेरासी हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे भाग प्रमाण है ॥१४२॥

विशेषार्थ :—१४७५००० — ९१६६६⅔ = १३८३३३३⅓ योजन विस्तार मार नामक द्वितीय इन्द्रक बिलका है।

---

१. द. ब. तदिएसं । क. ज. ठ. तदिएसुं ।

बारस-जोयण-लक्खा इगिणउदि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला ति-विहत्ता [1]तुरिमा-तारिंवयस्स रुंदाउ ।।१४३।।

१२९१६६६ $\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमे तार नामक तृतीय इन्द्रकका विस्तार बारह लाख, इक्यानबै हजार, छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे दो-भाग प्रमाण है ।।१४३।।

विशेषार्थ :—१३८३३३३ $\frac{१}{३}$ — ९१६६६ $\frac{२}{३}$ = १२९१६६६ $\frac{२}{३}$ योजन विस्तार तार नामक तृतीय इन्द्रक बिलका है ।

बारस-जोयण-लक्खा तुरिमाए वसुंधराए वित्थारो ।
तच्चिदयस्स[2] रुंदो णिद्दिट्ठं सव्वदरिसीहिं ।।१४४।।

१२००००० ।

अर्थ :—सर्वज्ञदेवने चौथी पृथिवीमे तत्व (चर्चा) नामक चतुर्थ इन्द्रकका विस्तार बारह लाख योजन प्रमाण बतलाया है ।।१४४।।

विशेषार्थ :—१२९१६६६ $\frac{२}{३}$ — ९१६६६ $\frac{२}{३}$ = १२००००० योजन विस्तार तत्व नामक चतुर्थ इन्द्रक बिलका है ।

एक्कारस-लक्खाणिं अट्ठ-सहस्साणि ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला तुरिमाए महिए तमगस्स वित्थारो ।।१४५।।

११०८३३३ $\frac{१}{३}$ ।[3]

अर्थ :—चौथी पृथिवीमें तमक नामक पंचम इन्द्रकका विस्तार ग्यारह लाख आठ हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे-भाग प्रमाण है ।।१४५।।

विशेषार्थ :—१२००००० — ९१६६६ $\frac{२}{३}$ = ११०८३३३ $\frac{१}{३}$ योजन विस्तार तमक नामक पंचम इन्द्रक बिलका है ।

दस-जोयण-लक्खाणिं छस्सय-सोलस-सहस्स-छासट्ठी ।
दोण्णि कला तुरिमाए खाडिदय-वास-परिमाणा ।।१४६।।

१०१६६६६ $\frac{२}{३}$ ।

---

१. द. ब क. ज. ठ. तुरिमाइंदस्स । २. द. ब. क. ज. ठ. तच्चंतयस्य । ३. द. $\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—चौथी भूमिमें खाड नामक छठे इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण, दस लाख, सोलह हजार छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे दो-भाग प्रमाण है ॥१४६॥

विशेषार्थ :—११०८३३३$\frac{१}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=१०१६६६६$\frac{२}{३}$ योजन विस्तार वाद नामक छठे इन्द्रक बिलका है।

पणवीस-सहस्साधिय-णव-जोयण-सय-सहस्स-परिमाणा।
तुरिमाए खोणीए खडखड-णामस्स वित्थारो ॥१४७॥

९२५०००।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमें खलखल (खडखड) नामक सातवें इन्द्रकका विस्तार नौ लाख, पच्चीस हजार योजन प्रमाण है ॥१४७॥

विशेषार्थ :—१०१६६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=९२५००० योजन प्रमाण विस्तार खलखल नामक सातवें इन्द्रक बिलका है।

पाँचवीं पृथिवीके पाँच इन्द्रकोंका पृथक्-पृथक् विस्तार

लक्खाणि अट्ठ-जोयण-तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा।
एक्क-कला [१]तम-इंदय-वित्थारो पंचम-धराए ॥१४८॥

८३३३३३$\frac{१}{३}$।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमें तम नामक प्रथम इन्द्रकका विस्तार आठ लाख, तैंतीस हजार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे-भाग प्रमाण है ॥१४८॥

विशेषार्थ :—९२५००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$=८३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार पाँचवीं पृ० के तम नामक प्रथम इन्द्रक बिलका है।

सग-जोयण-लक्खाणि इगिदाल-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी।
दोण्णि कला भम-इंदय-रुंदो पंचम-धरित्तीए ॥१४९॥

७४१६६६$\frac{२}{३}$।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमें भ्रम नामक द्वितीय इन्द्रकका विस्तार सात लाख, इकतालीस हजार छह सो छयासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमेंसे दो भाग प्रमाण है ॥१४९॥

---

१. द. तममं इंदय।

विशेषार्थ :—८३३३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=७४१६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार भ्रम नामक द्वितीय इन्द्रकका है।

छज्जोयण-लक्खाणि पण्णास-सहस्स-समहियाणि च ।
धूमप्पहावणीए झस-इंदय-रुंद-परिमाणा ॥१५०॥

६५०००० ।

अर्थ :—धूमप्रभा (पाँचवी) पृथिवीमें झस नामक तृतीय इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण छह लाख, पचास हजार योजन है ॥१५०॥

विशेषार्थ :—७४१६६६$\frac{2}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=६५०००० योजन विस्तार झस नामक तृतीय इन्द्रक बिलका है।

लक्खाणि पंच जोयण-अडवण्ण-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
[1]एक्क-कला अंधिदय-वित्थारो पंचम-खिदीए ॥१५१॥

५५८३३३$\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमें अन्ध नामक चतुर्थ इन्द्रकका विस्तार पाँच लाख, अट्ठावन हजार, तीनसौ तेंतीस योजन और एक योजनके तीसरे-भाग प्रमाण है ॥१५१॥

विशेषार्थ:—६५०००० — ९१६६६$\frac{2}{3}$=५५८३३३$\frac{1}{3}$ योजन विस्तार अन्ध नामक चतुर्थ इन्द्रक बिलका है।

चउ-जोयण-लक्खाणि छासट्ठि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला तिमिसिंदय-रुंदं पंचम-धरित्तीए ॥१५२॥

४६६६६६$\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमें तिमिस्र नामक पाँचवे इन्द्रकका विस्तार चार लाख छयासठ हजार छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे दो-भाग प्रमाण है ॥१५२॥

विशेषार्थ:—५५८३३३$\frac{1}{3}$ — ९१६६६$\frac{2}{3}$=४६६६६६$\frac{2}{3}$ योजन विस्तार तिमिस्र नामक पाँचवें इन्द्रक बिलका है।

---

१. द. ब. ठ. ज. एक्ककलायंदिदय । क. यंदिदिय ।

छठी पृथिवीके तीन इन्द्रकोंका पृथक्-पृथक् विस्तार

तिय-जोयण-लक्खाणि सहस्सया पंचहत्तरि-पमाणा ।
छट्ठीए [1]वसुमइए हिम-इंदय-रुंद-परिसंखा ॥१५३॥

३७५००० ।

अर्थ :—छठी पृथिवीमें हिम नामक प्रथम इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण तीन लाख पचहत्तर हज़ार योजन है ॥१५३॥

विशेषार्थ :—४६६६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = ३७५००० योजन विस्तार छठी पृ० के प्रथम हिम इन्द्रक बिलका है ।

दो जोयण-लक्खाणि तेसीदि-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा ।
एक्क-कला छट्ठीए पुढवीए होइ [2]वद्दले रुंदो ॥१५४॥

२८३३३३$\frac{१}{३}$ ।

अर्थ :—छठी पृथिवीमें वर्दल नामक द्वितीय इन्द्रकका विस्तार दो लाख, तेरासी हज़ार, तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तीसरे भाग प्रमाण है ॥१५४॥

विशेषार्थ :—३७५००० — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = २८३३३३$\frac{१}{३}$ योजन विस्तार छठी पृ० के दूसरे वर्दल इन्द्रक बिलका है ।

एक्कं जोयण-लक्खं इगिणउदि-सहस्स-छ-सय-छासट्ठी ।
दोण्णि कला वित्थारो लल्लंके छट्ठ-वसुहाए ॥१५५॥

१९१६६६$\frac{२}{३}$ ।

अर्थ :—छठी पृथिवीमें लल्लंक नामक तृतीय इन्द्रकका विस्तार एक लाख, इक्यानबै हज़ार छहसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीन-भागोंमेंसे दो-भाग प्रमाण है ॥१५५॥

विशेषार्थ :—२८३३३३$\frac{१}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$ = १९१६६६$\frac{२}{३}$ योजन विस्तार लल्लंक नामक तीसरे इन्द्रक बिलका है ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. वसुमाइं । २. द. वद्दलेसु ।

सातवीं पृथिवीके अवधिस्थान इन्द्रकका विस्तार

वासो जोयण-लक्खो [1]अवहि-ट्ठाणस्स सत्तम-खिदीए ।
जिणवर-वयण-विणिग्गद-तिलोयपण्णत्ति-णामाए ॥१५६॥

१००००० ।

अर्थ :—सातवीं पृथिवीमें अवधिस्थान नामक इन्द्रकका विस्तार एक लाख योजन प्रमाण है, इसप्रकार जिनेन्द्रदेवके वचनोंसे उपदिष्ट त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमें इन्द्रक बिलोंका विस्तार कहा गया है ॥१५६॥

विशेषार्थ :—१९१६६६$\frac{२}{३}$ — ९१६६६$\frac{२}{३}$=१००००० योजन विस्तार सप्तम नरकमें अवधिस्थान नामक इन्द्रक बिलका है ।

[चार्ट पृष्ठ १९४ पर देखिये]

१. द. अवदिठाणस्स ।

पहली पृथिवी		दूसरी पृथिवी		तीसरी पृथिवी	
इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार
सीमंत	४५००००० यो०	स्तन	३३०८३३३$\frac{1}{3}$ यो०	तप्त	२३००००० यो०
निरय	४४०८३३३$\frac{1}{3}$,,	तनक	३२१६६६६$\frac{2}{3}$ यो०	त्रसित	२२०८३३३$\frac{1}{3}$,,
रौरुक	४३१६६६६$\frac{2}{3}$,,	मन	३१२५००० ,,	तपन	२११६६६६$\frac{2}{3}$,,
भ्रान्त	४२२५००० ,,	वन	३०३३३३३$\frac{1}{3}$,,	तापन	२०२५००० ,,
उद्भ्रान्त	४१३३३३३$\frac{1}{3}$,,	घात	२९४१६६६$\frac{2}{3}$,,	निदाघ	१९३३३३३$\frac{1}{3}$,,
संभ्रांत	४०४१६६६$\frac{2}{3}$,,	संघात	२८५०००० ,,	प्रज्वलित	१८४१६६६$\frac{2}{3}$,,
असंभ्रांत	३९५०००० ,,	जिह्व	२७५८३३३$\frac{1}{3}$,,	उज्ज्वलित	१७५०००० यो०
विभ्रांत	३८५८३३३$\frac{1}{3}$,,	जिह्वक	२६६६६६६$\frac{2}{3}$,,	संज्वलित	१६५८३३३$\frac{1}{3}$,,
तप्त	३७६६६६६$\frac{2}{3}$,,	लोल	२५७५००० यो०	संप्रज्वलित	१५६६६६६$\frac{2}{3}$,,
त्रसित	३६७५००० यो०	लोलक	२४८३३३३$\frac{1}{3}$,,		
वक्रांत	३५८३३३३$\frac{1}{3}$,,	स्तन-लोलक	२३९१६६६$\frac{2}{3}$,,		
अवक्रांत	३४९१६६६$\frac{2}{3}$,,				
विक्रांत	३४००००० यो०				

चौथी पृथिवी		पाँचवीं पृथिवी		छठी पृथिवी		सातवीं पृथिवी	
इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार
आर	१४७५००० यो०	तम	८३३३३३$\frac{1}{3}$ यो.	हिम	३७५००० यो.	अवधि-स्थान	१००००० यो
मार	१३८३३३३$\frac{1}{3}$,,	भ्रम	७४१६६६$\frac{2}{3}$,,	वर्दल	२८३३३३$\frac{1}{3}$,,		
तार	१२९१६६६$\frac{2}{3}$,,	झस	६५०००० ,,	लल्लंक	१९१६६६$\frac{2}{3}$,,		
तत्व	१२००००० ,,	अन्ध	५५८३३३$\frac{1}{3}$,,				
तमक	११०८३३३$\frac{1}{3}$,,	तिमिस्र	४६६६६६$\frac{2}{3}$,,				
खाड	१०१६६६६$\frac{2}{3}$,,						
खलखल	९२५००० यो०						

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक-बिलोंके बाहल्यका प्रमाण

एक्काहिय-खिदि-संखं तिय-चउ-सत्तेहि[1] गुणिय छब्भजिदे ।
कोसा इंदय-सेढी-पइण्णयाणं पि बहलत्तं ॥१५७॥

अर्थ :—एक अधिक पृथिवी संख्याको तीन, चार और सातसे गुणा करके छहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने कोस प्रमाण क्रमशः इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंका बाहल्य होता है ॥१५७॥

विशेषार्थ :—नारक पृथिवियोंकी संख्यामें एक-एक धन करके तीन जगह स्थापन कर क्रमशः तीन, चार और सातका गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें छहका भाग देनेसे इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंका बाहल्य (ऊँचाई) प्राप्त होता है । यथा—

[चार्ट पृष्ठ १९६ पर देखिये]

१. ब. क. सत्तवि ।

इन्द्रक बिलोंका बाहल्य	श्रेणीबद्धोंका बाहल्य	प्रकीर्णकों का बाहल्य
पहली पृ०–१ + १ = २, २ × ३ = ६, ६ ÷ ६ = १ कोस	२ × ४ = ८, ८ ÷ ६ = १$\frac{१}{३}$ कोस	२ × ७ = १४, १४ ÷ ६ = २$\frac{१}{३}$ कोस
दूसरी पृ०–२ + १ = ३, ३ × ३ – ९, ९ ÷ ६ = १$\frac{१}{२}$,,	३ × ४ = १२, १२ ÷ ६ = २ ,,	३ × ७ = २१, २१ ÷ ६ = ३$\frac{१}{२}$ कोस
तीसरी पृ०–३ + १ = ४, ४ × ३ = १२, १२ ÷ ६ = २ ,,	४ × ४ = १६, १६ ÷ ६ = २$\frac{२}{३}$,,	४ × ७ = २८, २८ ÷ ६ = ४$\frac{२}{३}$ कोस
चौथी पृ०–४ + १ = ५, ५ × ३ = १५, १५ ÷ ६ = २$\frac{१}{२}$,,	५ × ४ = २०, २० ÷ ६ = ३$\frac{१}{३}$,,	५ × ७ = ३५, ३५ ÷ ६ = ५$\frac{५}{६}$ कोस
पाँचवीं ,,–५ + १ = ६, ६ × ३ = १८, १८ ÷ ६ = ३ ,,	६ × ४ = २४, २४ ÷ ६ = ४ ,,	६ × ७ = ४२, ४२ ÷ ६ = ७ कोस
छठी पृ०–६ + १ = ७, ७ × ३ = २१, २१ ÷ ६ = ३$\frac{१}{२}$,,	७ × ४ = २८, २८ ÷ ६ = ४$\frac{२}{३}$,,	७ × ७ = ४९, ४९ ÷ ६ = ८$\frac{१}{६}$ कोस
सातवी पृ०–७ + १ = ८, ८ × ३ = २४, २४ ÷ ६ = ४ ,,	८ × ४ = ३२, ३२ ÷ ६ = ५$\frac{१}{३}$,,	प्रकीर्णकों का अभाव है।

अहवा—

आदी छ अट्ठ चोद्दस तद्दल-वड्ढिय जाव सत्त-खिदी ।
कोसच्छ-हिदे इंदय-सेढी-पइण्णयाण बहलत्तं ।।१५८।।

इ० १ । $\frac{३}{२}$ । २ । $\frac{५}{२}$ । ३ । $\frac{७}{२}$ । ४ । सेढी $\frac{४}{३}$ । २ । $\frac{८}{३}$ । $\frac{१०}{३}$ । ४ । $\frac{१४}{३}$ । $\frac{१६}{३}$ ।

प्र० $\frac{७}{३}$ । $\frac{७}{२}$ । $\frac{१४}{३}$ । $\frac{३५}{६}$ । ७ । $\frac{४९}{६}$ ।

अर्थ :—अथवा—यहाँ आदिका प्रमाण क्रमशः छह, आठ और चौदह है। इसमें दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त उत्तरोत्तर इसी आदिके अर्ध भागको जोड़कर प्राप्त सख्यामें छह कोस का भाग देनेपर क्रमशः विवक्षित पृथिवीके इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंका बाहल्य निकल आता है ।।१५८।।

विशेषार्थ :—पहली पृथिवीके आदि (मुख) इन्द्रक बिलोंका बाहल्य प्राप्त करनेके लिए ६, श्रेणीबद्ध बिलोंके लिए ८ और प्रकीर्णक बिलोंका बाहल्य प्राप्त करने हेतु १४ है। इसमें दूसरी पृथिवीसे सातवीं पृथिवी पर्यन्त उत्तरोत्तर इसी आदि (मुख) के अर्ध-भागको जोड़कर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें ६ का भाग देनेपर क्रमशः इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंका बाहल्य प्राप्त हो जाता है। यथा—

पृथिवियाँ	इन्द्रक, श्रेणी-बद्ध एवं प्रकीर्णक बिलों के मुख या आदि के प्रमाण +	अर्धमुख के प्रमाण =	योगफल ÷	भाग-हार =	इन्द्रक बिलों का बाहल्य	श्रेणीबद्ध बिलों का बाहल्य	प्रकीर्णक बिलों का बाहल्य
१	६, ८, १४+	०, ०, ०=	६, ८, १४÷	६=	१ कोस	$१\frac{१}{३}$ कोस	$२\frac{१}{३}$ कोस
२	६, ८, १४+	३, ४, ७=	९, १२, २१÷	६=	$१\frac{१}{२}$,,	२ ,,	$३\frac{१}{२}$,,
३	९, १२, २१+	३, ४, ७=	१२, १६, २८÷	६=	२ ,,	$२\frac{२}{३}$,,	$४\frac{२}{३}$,,
४	१२, १६, २८+	३, ४, ७=	१५, २०, ३५÷	६=	$२\frac{१}{२}$,,	$३\frac{१}{३}$,,	$५\frac{५}{६}$,,
५	१५, २०, ३५+	३, ४, ७=	१८, २४, ४२÷	६=	३ ,,	४ ,,	७ ,,
६	१८, २४, ४२+	३, ४, ७=	२१, २८, ४९÷	६=	$३\frac{१}{२}$,,	$४\frac{२}{३}$,,	$८\frac{१}{६}$,,
७	२१, २८, ०+	३, ४, ०=	२४, ३२, ०÷	६=	४ ,,	$५\frac{१}{३}$,,	० ,,

रत्नप्रभादि छह पृथिवियोंमें इन्द्रकादि बिलोंका स्वस्थान ऊर्ध्वग अन्तराल

रयणादि-छट्ठमंतं णिय-णिय-पुढवीण बहल-मज्झादो ।
जोयण-सहस्स-जुगलं अवणिय सेसं करेज्ज कोसाणि ।।१५९।।

अर्थ :– रत्नप्रभा पृथिवीको आदि लेकर छठी पृथिवी-पर्यन्त अपनी-अपनी पृथिवीके बाहल्यमेंसे दो हजार योजन कम करके शेष योजनोंके कोस बनाना चाहिए ।।१५९।।

णिय-णिय-इंदय-सेढीबद्धाण पइण्णयाण बहलाइं ।
णिय-णिय-पदर-पवण्णिद-संखा-गुणिदाण लद्धरासी य ।।१६०।।

पुव्विल्लय-रासीणं मज्झे तं सोहिदूण पत्तेक्कं ।
एक्कोण-णिय-[1]णिदिय-चउ-गुणिदेणं च भजिदव्वं ।।१६१।।

लद्धो जोयण-संखा णिय-णिय [2]एयंतरालमुड्ढेण ।
जाणेज्ज परट्ठाणे किंचूणय-रज्जु-परिमाणं ।।१६२।।

---

१. द. ज. ठ. णियणिइंदय, ब. क. णिय-णिय-इंदय । २. द. ज. ठ. तराणमुड्ढेण, ब. क. तराणमुट्ठेण ।

अर्थ :—अपने-अपने पटलोंकी पूर्व-वर्णित संख्यासे गुणित अपनी-अपनी पृथिवीके इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंके बाहल्यको पूर्वोक्त राशिमेंसे (दो हजार योजन कम विवक्षित पृथिवीके बाहल्यके किए गये कोसोंमेंसे) कम करके प्रत्येकमें एक कम अपने-अपने इन्द्रक प्रमाणसे गुणित चारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने योजन प्रमाण अपनी-अपनी पृथिवीके इन्द्रकादि बिलोंमें ऊर्ध्वग अन्तराल तथा परस्थान (एक पृथिवीके अन्तिम और अगली पृथिवीके आदिभूत इन्द्रकादि बिलों) में कुछ कम एक राजू प्रमाण अन्तराल समझना चाहिए ।।१६०-१६२।।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभादि छहों पृथिवियोंकी मोटाई पूर्वमें कही गई है; इन पृथिवियोंमें ऊपर नीचे एक-एक योजनमें बिल नहीं है, अतः पृथिवियोंकी मोटाईमेंसे २००० योजन घटानेपर जो शेष रहे, उसके कोस बनाने हेतु चारसे गुणितकर लब्धमेंसे अपनी-अपनी पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका बाहल्य घटाकर एक कम इन्द्रक बिलोंसे गुणित चारका भाग देनेपर अपनी-अपनी पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका ऊर्ध्व अन्तराल प्राप्त होता है । यथा—

पहली पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(८०००० - २०००)\times ४ - (१ \times १३)}{(१३ - १)\times ४} = ६४९९\tfrac{३५}{४८} \text{ योजन ।}$$

दूसरी पृथिवीके इन्द्रक बिलों का ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(३२००० - २०००)\times ४ - (\tfrac{३}{२} \times ११)}{(११ - १)\times ४} = २९९९\tfrac{४७}{८०} \text{ योजन ।}$$

तीसरी पृथिवीके इन्द्रक बिलों का ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(२८००० - २०००)\times ४ - (२ \times ९)}{(९ - १)\times ४} = ३२४९\tfrac{७}{१६} \text{ योजन ।}$$

चौथी पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(२४००० - २०००)\times ४ - (\tfrac{५}{२} \times ७)}{(७ - १)\times ४} = ३६६५\tfrac{१५}{१६} \text{ योजन ।}$$

पाँचवीं पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(२०००० - २०००)\times ४ - (३ \times ५)}{(५ - १)\times ४} = ४४९९\tfrac{१}{१६} \text{ योजन ।}$$

छठी पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका ऊर्ध्व अन्तराल—

$$=\frac{(१६००० - २०००)\times ४ - (\frac{४}{३}\times ३)}{(३ - १)\times ४} = ६९९८\tfrac{११}{१२}$$ योजन ।

सातवीं पृथिवीमें इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध बिलोंके अधस्तन और
उपरिम पृथिवियोंका बाहल्य

सत्तम-खिदीअ बहले इंदय-सेढीए बहुल-परिमाणं ।
सोधिय-दलिदे हेट्ठिम-उवरिम-भागा हवंति एदाणं ।।१६३।।

अर्थ :—सातवीं पृथिवीके बाहल्यमेंसे इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलोंके बाहल्य प्रमाणको घटाकर अवशिष्ट राशिको आधा करनेपर क्रमशः इन इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलोंके ऊपर-नीचेकी पृथिवियोंकी मोटाईके प्रमाण निकलते हैं ।।१६३।

विशेषार्थ :—$\frac{८००० - १}{२} = ३९९९\frac{१}{२}$ योजन सातवीं पृथिवीके इन्द्रक बिलके नीचे और ऊपरकी पृथिवीका बाहल्य ।

$\frac{८००० - \frac{४}{३}}{२} = ३९९९\frac{१}{३}$ योजन सातवो पृथिवीके श्रेणीबद्ध बिलोंके ऊपर-नीचेकी पृथिवी का बाहल्य ।

पहली पृथिवीके अन्तिम और दूसरी पृथिवीके प्रथम इन्द्रकका परस्थान अन्तराल

पढम-बिदीयवणीणं[1] रुंदं सोहेज्ज एक्क-रज्जूए ।
जोयण-ति-सहस्स-जुदे होदि परट्ठाण-विच्चालं ।।१६४।।

अर्थ :—पहली और दूसरी पृथिवीके बाहल्य प्रमाणको एक राजूमेंसे कम करके अवशिष्ट राशिमें तीन हजार योजन घटानेपर पहली पृथिवीके अन्तिम और दूसरी पृथिवीके प्रथम बिलके मध्यमें परस्थान अन्तरालका प्रमाण निकलता है ।।१६४।।

विशेषार्थ :—पहली पृथिवीकी मोटाई १८०००० योजन और दूसरी पृथिवीकी मोटाई ३२००० योजन प्रमाण है । इस मोटाईसे रहित दोनों पृथिवियोंके मध्यमें एक राजू प्रमाण अन्तराल है । यद्यपि एक हजार योजन प्रमाण चित्रा पृथिवीकी मोटाई पहली पृथिवीकी मोटाईमें सम्मिलित है, परन्तु उसकी गणना ऊर्ध्व लोककी मोटाईमें की गई है, अतएव इसमेंसे इन एक हजार योजनोंको कम

१. द. ब. पढम-बिदीयवणीणं ।

कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त पहली पृथिवीके नीचे और दूसरी पृथिवीके ऊपर एक-एक हजार योजन प्रमाण क्षेत्रमें नारकियोंके बिल न होनेसे इन दो हजार योजनोंको भी कम कर देनेपर (१८०००० + ३२००० — ३०००) = शेष २०९००० योजनोंसे रहित एक राजू प्रमाण पहली पृथिवीके अन्तिम (विक्रान्त) और दूसरी पृथिवीके प्रथम (स्तन) इन्द्रकके बीच परस्थान अन्तराल रहता है।

तीसरी पृथिवीसे छठी पृथिवी तक परस्थान अन्तराल

दु-सहस्स-जोयणाधिय-रज्जू तदियादि-पुढवि-रुंदूणं।
छट्ठो त्ति [1]परट्ठाणे विच्चाल-पमाणमुद्दिट्ठं ॥१६५॥

अर्थ :—दो हजार योजन अधिक एक राजूमेंसे तीसरी आदि पृथिवियोंके बाहल्यको घटा देनेपर जो शेष रहे उतना छठी पृथिवी पर्यन्त (इन्द्रक बिलोंके) परस्थानमें अन्तरालका प्रमाण कहा गया है ॥१६५॥

विशेषार्थ :—गाथामें—एक राजूमें दो हजार योजन जोड़कर पश्चात् पृथिवियोका बाहल्य घटानेका निर्देश है किन्तु १७० आदि गाथाओंमें बाहल्यमेंसे २००० योजन घटाकर पश्चात् राजूमेंसे कम किया गया है। यथा—

१ राजू — २६००० योजन।

छठी एवं सातवीं पृथिवीके इन्द्रकोंका परस्थान अन्तराल

सय-कदि-रूऊणद्धं रज्जु-जुदं चरिम-भूमि-रुंदूणं।
[2]मघविस्स चरिम-इंदय-अवहिट्ठाणस्स विच्चालं ॥१६६॥

अर्थ :—सौ के वर्गमेंसे एक कम करके शेषको आधा कर और उसे एक राजूमें जोड़कर लब्धमेंसे अन्तिम भूमिके बाहल्यको घटा देनेपर मघवी पृथिवीके अन्तिम इन्द्रक और (माघवी पृथिवीके) अवधिस्थान इन्द्रकके बीच परस्थान अन्तरालका प्रमाण निकलता है ॥१६६॥

विशेषार्थ :—सौ के वर्गमेंसे एक घटाकर आधा करनेपर—(100^2—१ = ९९९९) ÷ २ = ४९९९½ योजन प्राप्त होते हैं। इन्हें एक राजूमें जोड़कर लब्ध (१ राजू + ४९९९½ यो०) में से अन्तिम भूमिके बाहल्य (८००० यो०) को घटा देनेपर (१ राजू + ४९९९½ यो०)— ८००० यो० = १ राजू—(८००० यो० — ४९९९½ यो०) = १ राजू—३०००½ योजन छठी पृथिवीके अन्तिम लल्लक इन्द्रक और सातवी पृ० के अवधिस्थान इन्द्रकके परस्थान अन्तरालका प्रमाण प्राप्त होता है।

---

१. ब. परिट्ठाणे। २. द. ज. ठ. मघवस्स।

पहली पृथिवीके इन्द्रक-बिलोंका स्वस्थान अन्तराल

णवणवदि-जुद-चउस्सय-छ-सहस्सा जोयणाणि बे कोसा ।
एक्करस-कला-बारस-हिदा य घम्मिंदयाण विच्चालं ॥१६७॥

जो ६४६६ । को २ । $\frac{११}{१२}$ ।

अर्थ :—घर्मा पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका अन्तराल छह हजार चार सौ निन्यानवे योजन, दो कोस और एक कोसके बारह भागोंमेंसे ग्यारह-भाग प्रमाण है ॥१६७॥

विशेषार्थ :—गाथा १५६-१६२ के नियमानुसार पहली पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका अन्तराल $\frac{(८००००-२०००)\times ४-(१\times १३)}{(१३-१)\times ४}=६४९९\frac{३५}{४८}$ योजन अथवा ६४९९ योजन २$\frac{११}{१२}$ कोस है ।

पहली और दूसरी पृथिवियोंके इन्द्रक-बिलोंका परस्थान अन्तराल

रयणप्पह-चरमिंदय-सक्कर-पुढविंदयाण विच्चालं ।
दो-लक्ख-णव-सहस्सा जोयण-हीणेक्क-रज्जू य ॥१६८॥

७ । रिण । जो २०६००० ।

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीके अन्तिम इन्द्रक और शर्करा प्रभाके आदि (प्रथम) इन्द्रक-बिलोंका अन्तराल दो लाख नौ हजार (२०६०००) योजन कम एक राजू अर्थात् १ राजू — २०९००० योजन प्रमाण है ॥१६८॥

दूसरी पृथिवीके इन्द्रकोंका स्वस्थान अन्तराल

एक्क-विहीणा जोयण-ति-सहस्सा धणु-सहस्स-चत्तारि ।
सत्त-सया वंसाए एक्कारस-इंदयाण विच्चालं ॥१६६॥

जो २६६६ । दंड ४७०० ।

अर्थ :—वंशा पृथिवीके ग्यारह इन्द्रक बिलोंका अन्तराल एक कम तीन हजार योजन और चार हजार सातसौ धनुष प्रमाण है ॥१६६॥

विशेषार्थ :—दूसरी पृ० के इन्द्रक बिलोंका अन्तराल —

$$\frac{(३२००० - २०००) \times ४ - (\frac{३}{२} \times ११)}{(११ - १) \times ४} = २९९९\frac{४७}{८०}$$ योजन अथवा २९९९ यो० और ४७०० धनुष है।

दूसरी और तीसरी पृथिवीके इन्द्रक-बिलोंका परस्थान अन्तराल

[1]एक्को हवेदि रज्जू छब्बीस-सहस्स-जोयण-विहीणा।
[2]थणलोलुगस्स तत्तिदयस्स दोण्हं पि विच्चालं ॥१७०॥

ज। रिण। यो २६०००।

अर्थ :—वंशा पृथिवीके अन्तिम स्तनलोलुक इन्द्रकसे मेघा पृथिवीके प्रथम तप्तका अर्थात् दोनों इन्द्रक बिलोंका अन्तराल छब्बीस हजार योजन कम एक राजू अर्थात् १ राजू — २६००० योजन प्रमाण है ॥१७०॥

तीसरी पृथिवीके इन्द्रकोंका स्वस्थान अन्तराल

तिण्णि सहस्सा दु-सया जोयण-उणवण्ण तदिय-पुढवीए।
पणतीस-सय-धणूणि पत्तेक्कं इंदयाण विच्चालं ॥१७१॥

यो ३२४९। दंड ३५००।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके प्रत्येक इन्द्रक बिलका अन्तराल तीन हजार दो सौ उनचास योजन और तीन हजार पाँचसौ धनुष प्रमाण है ॥१७१॥

विशेषार्थ :— $$\frac{(२८००० - २०००) \times ४ - (२ \times ९)}{(९ - १) \times ४} = ३२४९\frac{७}{१६}$$ योजन। अथवा ३२४९ योजन ३५०० धनुष प्रमाण अन्तराल है।

तीसरी और चौथी पृथिवीके इन्द्रकोंका परस्थान अन्तराल

एक्को हवेदि रज्जू बावीस-सहस्स-जोयण-विहीणा।
दोण्हं विच्चालमिणं संपज्जलिदार-णामाणं ॥१७२॥

ज। रिण। जो २२०००।

---

१. ब. क. ज. ठ. एक्का। २. द. ब. क. ज. ठ. थणलोलुगस्स।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीका अन्तिम इन्द्रक संप्रज्वलित और चौथी पृथिवीका प्रथम इन्द्रक आर, इन दोनों इन्द्रक बिलोंका अन्तराल बाईस हजार योजन कम एक राजू अर्थात् १ राजू — २२००० योजन प्रमाण है ।।१७२।।

चौथी पृथिवीके इन्द्रकोंका स्वस्थान अन्तराल

तिण्णि सहस्सा[1] 'छस्सय-पणसट्ठी-जोयणाणि' पंकाए ।
पण्णत्तरि-सय-दंडा पत्तेक्कं इंदयाण विच्चालं ।।१७३।।

जो ३६६५ । दंड ७५०० ।

अर्थ :—पंकप्रभा पृथिवीके इन्द्रक बिलोंका अन्तराल तीन हजार छहसौ पेंसठ योजन और सात हजार पाँचसौ दण्ड प्रमाण है ।।१७३।।

विशेषार्थ :— $\frac{(२४००० — २०००) \times ४ — (\frac{५}{२} \times ७)}{(७—१) \times ४} = ३६६५\frac{१५}{१६}$ योजन अथवा ३६६५ योजन ७५०० धनुष प्रमाण अन्तराल है ।

चौथी और पाँचवी पृथिवीके इन्द्रकोंका परस्थान अन्तराल

एक्को हवेदि रज्जू अट्ठरस-सहस्स-जोयण-विहीणा[2] ।
खडखड-तमिंदयाणं दोण्हं विच्चाल-परिमाणं ।।१७४।।

७ । रिण । जो १८००० ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीके अन्तिम इन्द्रक खड़खड़ और पाँचवीं पृथिवीके प्रथम इन्द्रक तम, इन दोनोंके अन्तरालका प्रमाण अठारह हजार योजन कम एक राजू अर्थात् १ राजू — १८००० योजन है ।।१७४।।

पाँचवी पृथिवीके इन्द्रकोंका स्वस्थान अन्तराल

चत्तारि सहस्साणि चउ-सय णवणउदि जोयणाणि च ।
पंच-सयाणि दंडा धूमपहा-इंदयाण विच्चालं ।।१७५।।

जो ४४९९ । दंड ५०० ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ छस्सट्ठी ।　२. द. ब. जोयण विहीणा ।

अर्थ :—धूमप्रभाके इन्द्रक बिलोंका अन्तराल चार हजार चार सौ निन्यानबै योजन और पाँचसौ दण्ड प्रमाण है ।।१७५।।

विशेषार्थ :—$\frac{(२००००-२०००)\times ४-(३\times ५)}{(५-१)\times ४}$ = ४४९९$\frac{१}{१६}$ योजन अथवा ४४९९ योजन ५०० धनुष अन्तराल है ।

पाँचवीं और छठी पृथिवीके इन्द्रकोंका परस्थान अन्तराल

चोद्दस-सहस्स-जोयण-परिहीणो होदि केवलो रज्जू ।
तिमिसिदयस्स हिम-इंदयस्स दोण्हं पि विच्चालं ।।१७६।।

७ । रिण । जो १४००० ।

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीके अन्तिम इन्द्रक तिमिस्र और छठी पृथिवीके प्रथम इन्द्रक हिम, इन दोनों बिलोंका अन्तराल चौदह हजार योजन कम एक राजू अर्थात् १ राजू — १४००० योजन प्रमाण है ।।१७६।।

छठी पृथिवीके इन्द्रकोंका स्वस्थान अन्तराल

अट्ठाणउवी णव-सय-छ-सहस्सा [1]जोयणाणि मघवीए ।
पणवण्ण-सयाणि धणू पत्तेक्कं इंदयाण विच्चालं ।।१७७।।

जो ६९९८ । दंड ५५०० ।

अर्थ :—मघवी पृथिवीमें प्रत्येक इन्द्रकका अन्तराल छह हजार नौ सौ अट्ठानबै योजन और पाँच हजार पाँच सौ धनुष है ।।१७७।।

विशेषार्थ :—$\frac{(१६०००-२०००)\times ४-(\frac{७}{२}\times ३)}{(३-१)\times ४}$ = ६९९८$\frac{११}{१६}$ योजन अथवा ६९९८ योजन ५५०० धनुष अन्तराल है ।

छठी और सातवीं पृथिवीके इन्द्रकोंका परस्थान अन्तराल

[2]छट्ठम-खिदि-चरिमिंदय-अवहिट्ठाणाण होइ विच्चालं ।
एक्को रज्जू ऊणो जोयण-ति-सहस्स-कोस-जुगलेहिं ।।१७८।।

७ । रिण । जो ३००० । को २ ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. जोयणाणि । २. द. छट्ठम ।

अर्थ :—छठी पृथिवीके अंतिम इन्द्रक लल्लंक और सातवीं पृथिवीके अवधिस्थान इन्द्रकका अन्तराल तीन हजार योजन और दो कोस कम एक राजू अर्थात् १ राजू — ३००० योजन २ कोस प्रमाण है ।।१७८।।

अवधिस्थान इन्द्रककी ऊर्ध्व एवं अधस्तन भूमिके बाहल्यका प्रमाण

तिण्णि सहस्सा णव-सय-णवणउदी[1] जोयणाणि बे कोसा ।
उड्ढाधर-भूमीणं अवहिट्ठाणस्स परिमाणं ।।१७९।।

३९९९ । को २ ।

।। इंदय-विच्चालं समत्तं ।।

अर्थ :—अवधिस्थान इन्द्रककी ऊर्ध्व और अधस्तन भूमिके बाहल्यका प्रमाण तीन हजार नौ सौ निन्यानबै योजन और दो कोस है ।।१७९।।

विशेषार्थ :—गाथा १६३ के अनुसार—

$\frac{८०००}{२}-\frac{१}{२}$ = ३९९९$\frac{१}{२}$ योजन बाहल्य सातवीं पृथिवीके अवधिस्थान इन्द्रक बिलके नीचेकी और ऊपरकी पृथिवीका है ।

।। इन्द्रक बिलोंके अन्तरालका वर्णन समाप्त हुआ ।।

घर्मादिक पृथिवियोंमें श्रेणीबद्ध बिलोंके स्वस्थान अन्तरालका प्रमाण

प्रथम नरकमें श्रेणीबद्धोंका अन्तराल

णवणउदि-जुद-चउस्सय-छ-सहस्सा जोयणाणि बे कोसा ।
पंच-कला णव-भजिदा घम्माए सेढिबद्ध-विच्चालं ।।१८०।।

६४९९ । को २ । $\frac{५}{९}$ ।

अर्थ :—घर्मा पृथिवीमें श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल छह हजार चार सौ निन्यानबै योजन दो कोस और एक कोसके नौ-भागोंमेंसे पांच भाग प्रमाण है ।।१८०।।

नोट—१८० से १८६ तककी गाथाओं द्वारा सातों पृथिवियोंके श्रेणीबद्ध बिलोंका पृथक्-पृथक् अन्तराल गाथा १५९-१६२ के नियमानुसार प्राप्त होगा । यथा—

---

१. द. णउणउदी ।

विशेषार्थ :—(८०००० — २००० — $\frac{५३}{१२}$) ÷ ($\frac{१३-१}{१}$) = (७८००० — $\frac{५३}{१२}$) × $\frac{१}{१२}$ = $\frac{९३५९४७}{१४४}$ = ६४९९$\frac{९१}{१४४}$ योजन अथवा ६४९९ योजन २$\frac{५}{१२}$ कोस पहली पृथिवीमें श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल है।

दूसरे नरकमें श्रेणीबद्धोंका अन्तराल

णवणउदि णव-सयाणि दु-सहस्सा जोयणाणि वंसाए।
ति-सहस्स-छ-सय-दंडा [1]उड्ढेणं सेढिबद्ध-विच्चालं ॥१८१॥

जो २९९९ । दंड ३६०० ।

अर्थ :—वंशा पृथिवीमें श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल दो हजार नौ सौ निन्यानबै योजन और तीन हजार छह सौ धनुष प्रमाण है ॥१८१॥

विशेषार्थ :—(३२००० — २०००) — ($\frac{३}{४}$ × $\frac{११}{४}$ × $\frac{१}{४}$) ÷ $\frac{(११-१)}{१}$ = ($\frac{३००००}{१}$ — $\frac{३३}{६४}$) × $\frac{१}{१०}$ = २९९९$\frac{३१}{३२०}$ योजन अथवा २९९९ योजन ३६०० दण्ड अन्तराल है।

तीसरे नरकमें श्रेणीबद्धोंका अन्तराल

उणवण्णा दु-सयाणि ति-सहस्सा जोयणाणि मेघाए।
दोण्णि सहस्साणि धणू सेढीबद्धाण विच्चालं ॥१८२॥

जो ३२४९ । दंड २००० ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीमें श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल तीन हजार दो सौ उनचास योजन और दो हजार धनुष है ॥१८२॥

विशेषार्थ :—(२८००० — २०००) — ($\frac{६}{३}$ × $\frac{१}{४}$ × $\frac{१}{४}$) ÷ $\frac{८}{१}$ = ($\frac{२६०००}{१}$ — $\frac{१}{८}$) × $\frac{१}{८}$ = ३२४९$\frac{६३}{६४}$ योजन अथवा ३२४९ योजन २००० दण्ड मेघा पृथिवीमें श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल है।

चतुर्थ नरकमें श्रेणीबद्धोंका अन्तराल

णव-हिद-बावीस-सहस्स-दंड-हीणा [2]हवेदि छासट्ठी।
जोयण-छत्तीस[3]-सयं तुरिमाए सेढीबद्ध-विच्चालं ॥१८३॥

जो ३६६५ । दंड ५५५५ । $\frac{५}{९}$ ।

१. द. ओउड्ढीएां, ब. क उड्ढीएां। २. द. हुवेदि। ३. ब. बत्तीससयं।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमें श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल, बाईस हजारमें नौ का भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतने ($२२००० \div ९ = २४४४\frac{४}{९}$, $८००० - २४४४\frac{४}{९} = ५५५५\frac{५}{९}$) धनुष कम तीन हजार छह सौ छयासठ योजन प्रमाण है ॥१८३॥

विशेषार्थ :—$(२४००० - २०००) - (\frac{१०}{३} \times \frac{७}{१} \times \frac{१}{४}) \div \frac{६}{१} = (\frac{२२०००}{१} - \frac{३५}{६}) \times \frac{१}{६} =$ $३६६५\frac{२५}{३६}$ योजन अथवा ३६६५ योजन $५५५५\frac{५}{९}$ धनुष अन्तराल है।

पाँचवें नरकमें श्रेणीबद्धोंका अन्तराल

[1]अट्ठाणउदी जोयण-चउदाल-सयाणि छस्सहस्स-धणू ।
धूमप्पह-पुढवीए सेढीबद्धाण विच्चालं ॥१८४॥

जो ४४९८ । दंड ६००० ।

अर्थ :—धूमप्रभा पृथिवीमें श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल चार हजार चार सौ अट्ठानबै योजन और छह हजार धनुष है ॥१८४॥

विशेषार्थ :—$(२०००० - २०००) - (\frac{४}{१} \times \frac{५}{१} \times \frac{१}{४}) \div \frac{४}{१} = (\frac{१८०००}{१} - \frac{५}{१}) \times \frac{१}{४} =$ $४४९८\frac{३}{४}$ योजन अथवा ४४९८ योजन ६००० धनुष अन्तराल है।

छठवें नरकमें श्रेणीबद्धोंका अन्तराल

अट्ठाणउदी णव-सय-छ-सहस्सा जोयणाणि मघवीए ।
दोण्णि सहस्साणि धणू सेढीबद्धाण विच्चालं ॥१८५॥

जो ६९९८ । दंड २००० ।

अर्थ :—मघवी पृथिवीमें श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल छह हजार नौ सौ अट्ठानबै योजन और दो हजार धनुष है ॥१८५॥

विशेषार्थ :—$(१६००० - २०००) - (\frac{१४}{३} \times \frac{३}{१} \times \frac{१}{४}) \div (३ - १) = (\frac{१४०००}{१} - \frac{७}{२})$ $\times \frac{१}{२} = ६९९८\frac{१}{४}$ योजन या ६९९८ यो० २००० दण्ड प्रमाण अन्तराल है।

---

१. ब. अट्ठाणणउदी।

सातवें नरकमें श्रेणीबद्धोंका अन्तराल

णवणउदि-सहिय-णव-सय-ति-सहस्सा जोयणाणि एक्क-कला ।
ति-हिदा य माघवीए सेढीबद्धाण विच्चालं ॥१८६॥

जो ३९९९ । $\frac{1}{3}$ ।

अर्थ :—माघवी पृथिवीमें श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल तीन हजार नौ सौ निन्यानबे योजन और एक योजनके तीसरे-भाग प्रमाण है ॥१८६॥

विशेषार्थ :—सातवीं पृथिवीकी मोटाई ८००० योजन है और श्रेणीबद्धोंका बाहल्य $\frac{4}{3}$ यो० है। इसे ८००० यो० बाहल्यमेंसे घटाकर आधा करनेपर अन्तरालका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—$\frac{8000}{1} - \frac{4}{3} = \frac{24000-4}{3} \times \frac{1}{2} = \frac{11998}{3}$ योजन अर्थात् ३९९९$\frac{1}{3}$ यो० सातवीं पृथिवीमें श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल है।

घर्मादिक-पृथिवियोंमें श्रेणीबद्ध बिलोंके परस्थान अन्तरालोंका प्रमाण

सट्ठाणे विच्चालं एवं जाणिज्ज तह परट्ठाणे ।
जं इंदय-परठाणे[1] भणिदं तं एत्थ वत्तव्वं ॥१८७॥

णवरि विसेसो एसो लल्लंकय-अवहिठाण-विच्चाले ।
[2]जोयण-छब्भागूणं सेढीबद्धाण विच्चालं ॥१८८॥

। सेढीबद्धाण विच्चालं [3]समत्तं ।

अर्थ :—यह श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल स्वस्थानमें समझना चाहिए। तथा परस्थानमें जो इन्द्रक बिलोंका अन्तराल कहा जा चुका है, उसीको यहाँभी कहना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि लल्लंक और अवधिस्थान इन्द्रकके मध्यमें जो अन्तराल कहा गया है, उसमेंसे एक योजनके छह भागोंमेंसे एक-भाग कम यहाँ श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल जानना चाहिए ॥१८७-१८८॥

विशेषार्थ :—गाथा १८० से १८६ पर्यन्त श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल स्वस्थानमें कहा गया है। तथा गाथा १६४ एवं १६५ में इन्द्रक बिलोंका जो परस्थान (एक पृथिवीके अन्तिम और अगली पृथिवीके प्रथम बिलका) अन्तराल कहा गया है, वही अन्तराल श्रेणीबद्ध बिलोंका है। यथा—

---

१. द. क. ज. ठ. इंदयपरणाणे, ब. इंदयवरठाणे। २. द ब. जोयणआर्थं। ३. ब. सम्मत्तं।

पहली घर्मापृथिवीकी—१८०००० योजन और वंशाकी ३२००० योजन प्रमाण मोटाई है। इन दोनोंका योग २१२००० योजन हुआ, इसमेंसे चित्रा पृथिवीकी मोटाई १००० यो०, पहली पृथिवीके नीचे १००० योजन और दूसरी पृथिवीके ऊपरका एक हजार योजन इसप्रकार ३००० योजन घटा देनेपर (२१२००० — ३०००)=२०६००० योजन अवशेष रहे, इनको एक राजूमेंसे घटा (१ राजू — २०९०००) कर जो अवशेष रहे वही पहली पृथिवीके अन्तिम और दूसरी पृथिवीके प्रथम श्रेणीबद्ध बिलोंका परस्थान अन्तराल है।

वंशा पृथिवोके नीचेका १००० योजन + मेघा पृथिवीके ऊपरका १००० योजन = दो हजार योजनोंको मेघा पृथिवीकी मोटाई (२८००० योजनों) मेंसे कम करदेने पर (२८००० — २०००) २६००० योजन अवशेष रहे। इन्हें एक राजूमेंसे घटा देनेपर (१ राजू — २६०००) जो अवशेष रहे, वही वंशा पृथिवीके अन्तिम श्रेणीबद्ध और मेघा पृथिवीके प्रथम श्रेणीबद्ध बिलोंका परस्थान अन्तराल है।

अञ्जना पृथिवीकी मोटाई २४००० योजन है। २४००० — २००० = २२००० योजन कम एक राजू (१ राजू — २२००० यो०) प्रमाण मेघा पृथिवीके अन्तिम श्रेणीबद्ध और अञ्जना पृथिवीके आदि श्रेणीबद्ध बिलोंका परस्थान अन्तराल है।

अरिष्टा पृथिवीकी मोटाई २०००० योजन — २००० यो० = १८०००। १ राजू — १८००० योजन अञ्जनाके अन्तिम और अरिष्टाके प्रथम श्रेणीबद्ध बिलोंका परस्थान अन्तराल है।

मघवी पृथिवीकी मोटाई १६००० — २००० = १४००० योजन। १ राजू — १४००० योजन अरिष्टाके अन्तिम और मघवी पृथिवीके प्रथम श्रेणीबद्ध-बिलोंका परस्थान अन्तराल है।

गा० १६६ में छठी पृ० के अन्तिम इन्द्रक लल्लंक और सातवीं पृ० के अवधिस्थान इन्द्रकका परस्थान अन्तराल १ राजू — ८००० योजन + ४९९९$\frac{1}{3}$ योजन कहा गया है। इसमेंसे एक योजनका छठा भाग ($\frac{1}{6}$ यो०) कम करदेने पर (१ राजू — ८००० + ४९९९$\frac{1}{3}$ — $\frac{1}{6}$) = १ राजू — ८००० + ४९९९$\frac{1}{6}$ योजन अर्थात् १ राजू — ३०००$\frac{5}{6}$ योजन छठी पृथिवीके अन्तिम और सातवीं पृथिवीके प्रथम श्रेणीबद्ध बिलका परस्थान अन्तराल है

॥ श्रेणीबद्ध बिलोंके अन्तरालका वर्णन समाप्त हुआ ॥

घर्मादिक छह पृथिवियोंमें प्रकीर्णक-बिलोंके स्वस्थान एवं परस्थान अन्तरालोंका प्रमाण

छक्कदि-हिदेक्कणउदी-कोसोणा छस्सहस्स-पंच-सया ।
जोयणया धम्माए पइण्णयाणं हवेदि विच्चालं ॥१८९॥

६४९९ । को १ । $\frac{१७}{३६}$ ।

अर्थ :—घर्मा पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका अन्तराल, इक्यानबैमें छहके वर्गका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतने कोस कम छह हजार पाँचसौ योजन प्रमाण है ॥१८९॥

विशेषार्थ :—योजन ६५०० — ($\frac{९१}{६ \times ६} \times \frac{१}{४}$) = ६४९९ यो० १$\frac{१७}{३६}$ कोस, अथवा—घर्मा पृथिवीकी मोटाई ८०००० — २००० = ७८००० यो० । $(\frac{७८०००}{१} - \frac{९१}{१४४}) \div \frac{१३-१}{१} = (\frac{७८०००}{१} - \frac{९१}{१४४}) \times \frac{१}{१२}$ = ६४९९$\frac{५३}{१७२८}$ योजन या ६४९९ योजन १$\frac{१७}{३६}$ कोस पहली पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका अन्तराल है ।

णवणउदी-जुद-णव-सय-दु-सहस्सा जोयणाणि वंसाए ।
तिण्णि-सयाणि-दंडा उड्ढेण पइण्णयाण विच्चालं ॥१९०॥

२९९९ । दंड ३०० ।

अर्थ :—वंशा पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका ऊर्ध्वग अन्तराल दो हजार नौ सौ निन्यानबै योजन और तीनसौ धनुष प्रमाण है ॥१९०॥

विशेषार्थ :—३२००० — २००० = $\frac{३००००}{१}$ — ($\frac{७}{२} \times \frac{११}{२} \times \frac{१}{२}$) $\div \frac{(११-१)}{१}$ = ($\frac{३००००}{१}$ — $\frac{७७}{८}$) $\times \frac{१}{१०}$ = २९९९$\frac{३}{८०}$ योजन या २९९९ यो० ३०० दण्ड वंशा पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका अन्तराल है ।

अड्डत्तालं दु-सयं ति-सहस्स-जोयणाणि[1] मेघाए ।
पणवण्ण-सयाणि धणू उड्ढेण पइण्णयाण विच्चालं ॥१९१॥

३२४८ । दंड ५५०० ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका ऊर्ध्वग अन्तराल तीन हजार, दो सौ अड़तालीस योजन और पाँच हजार पाँचसौ धनुष है ॥१९१॥

---

१. द. जोयणाणि ।

विशेषार्थ :—(२८००० — २००० = २६०००) — ($\frac{३५}{३}$ × $\frac{३}{१}$ × $\frac{१}{४}$) + $\frac{(९-१)}{८}$ = ($\frac{२६०००}{१}$ — $\frac{३५}{४}$) × $\frac{१}{८}$ = ३२४८$\frac{२९}{३२}$ योजन या ३२४८ योजन ५५०० दण्ड मेघा पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका अन्तराल है।

चउसट्ठि छस्सयाणि ति-सहस्सा जोयणाणि तुरिमाए ।
उणहत्तरी-सहस्सा पण-सय-दंडा य णव-भजिदा ॥१९२॥

३६६४ । दंड $\frac{६९५००}{९}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका अन्तराल तीन हजार, छहसौ चौंसठ योजन और नौ से भाजित उनहत्तर हजार, पाँच सौ धनुष प्रमाण है ॥१९२॥

विशेषार्थ :—(२४००० — २०००=२२०००) — ($\frac{३५}{६}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{१}{४}$) ÷ $\frac{(७-१)}{६}$ = ($\frac{२२०००}{१}$ — $\frac{२४५}{२४}$) × $\frac{१}{६}$ = ३६६४$\frac{१३९}{१४४}$ योजन या ३६६४ योजन $\frac{६९५००}{९}$ दण्ड अञ्जना पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका अन्तराल है।

सत्ताणउदी-जोयण-चउदाल-सयाणि पंचम-खिदीए ।
पण-सय-जुद-छ-सहस्सा दंडेण पइण्णयाण विच्चालं ॥१९३॥

४४९७ । दंड ६५००

अर्थ :—पाँचवी पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका अन्तराल चार हजार चारसौ सत्तानबै योजन और छह हजार पाँचसौ धनुष प्रमाण है ॥१९३॥

विशेषार्थ :—(२०००० — २०००=१८०००) — ($\frac{५}{१}$ × $\frac{७}{१}$ × $\frac{१}{४}$) ÷ $\frac{(५-१)}{४}$ = ($\frac{१८०००}{१}$ — $\frac{३५}{४}$) × $\frac{१}{४}$ = ४४९७$\frac{१३}{१६}$ योजन या ४४९७ योजन ६५०० दण्ड अरिष्टा पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका ऊर्ध्व अन्तराल है।

छण्णउदि णव-सयाणि छ-सहस्सा जोयणाणि मघवीए ।
पणहत्तरि सय-दंडा उड्ढेण पइण्णयाण विच्चालं ॥१९४॥

॥ ६९९६ । दंड ७५०० ॥

अर्थ :—मघवी नामक छठी पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका ऊर्ध्व अन्तराल छह हजार नौ सौ छयानबै योजन और पचहत्तर सौ धनुष प्रमाण है ॥१९४॥

विशेषार्थ :—(१६००० — २०००=१४०००) — ($\frac{४९}{२} \times \frac{३}{३} \times \frac{१}{४}$) ÷ $\frac{(२-१)}{१}$ = ($\frac{१४०००}{१} - \frac{४९}{८}$) × $\frac{१}{२}$ = ६९९६$\frac{१५}{१६}$ योजन अथवा ६९९६ योजन ७५०० दण्ड (धनुष) मघवी पृथिवीमें प्रकीर्णक बिलोंका ऊर्ध्व अन्तराल है ।

[1]सट्ठाणे विच्चालं एवं जाणिज्ज तह परट्ठाणे ।
जं इंदय-परठाणे भणिदं तं एत्थ [2]वत्तव्वं ॥१९५॥

। एवं पइण्णयाणं विच्चालं समत्तं ।

॥ एवं णिवास-खेत्तं समत्तं ॥१॥

अर्थ :—इस प्रकार यह प्रकीर्णक बिलोंका अन्तराल स्वस्थानमें समझना चाहिए । परस्थानमें जो इन्द्रक बिलोंका अन्तराल कहा जा चुका है उसीको यहाँपर भी कहना चाहिए ॥१९५॥

। इसप्रकार प्रकीर्णक बिलोंका अन्तराल समाप्त हुआ ।

॥ इसप्रकार निवास-क्षेत्रका वर्णन समाप्त हुआ ॥१॥

---

१. ठ. अट्ठाणे । २. द. वत्तव्वं ।

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक बिलोंका स्वस्थान, परस्थान अन्तराल—
गा० १६४–१९५

क्रमांक	नरकों के नाम	इन्द्रक-बिलोंका अन्तराल		श्रेणीबद्ध बिलोंका अन्तराल		प्रकीर्णक बिलोंका अन्तराल	
		स्वस्थान	परस्थान	स्वस्थान	परस्थान	स्वस्थान	परस्थान
१	घम्मा	६४९९ $\frac{35}{48}$ यो०	१ राजू—२०९००० यो.	६४९९ [illegible] यो.	१ रा.–२०९००० यो.	६४९९ $\frac{73}{144}$ यो	इन्द्रक-बिलोंके परस्थान प्रमाण सदृश
२	वंशा	२९९९ $\frac{47}{48}$ यो०	१ राजू—२६००० यो.	२९९९ [illegible] यो.	१ राजू—२६००० यो.	२९९९ $\frac{8}{9}$ यो	
३	मेघा	३२४९ [illegible] यो०	१ राजू—२२००० यो.	३२४९ $\frac{1}{2}$ यो.	१ राजू—२२००० यो.	३२४८ [illegible] यो.	
४	अंजना	३६६५ [illegible] यो०	१ राजू—१८००० यो.	३६६५ [illegible] यो.	१ राजू—१८००० यो	३६६४ [illegible] यो.	
५	अरिष्टा	४४९९ [illegible] यो०	१ राजू—१४००० यो.	४४९८ $\frac{3}{4}$ यो.	१ राजू—१४००० यो.	४४९७ [illegible] यो.	
६	मघवी	६९९८ [illegible] यो०	१ राजू—३००० $\frac{1}{2}$ यो.	६९९८ $\frac{1}{2}$ यो.	१ राजू—३००० $\frac{1}{3}$ यो.	६९९६ [illegible] यो.	
७	माघवी	०		३९९९ $\frac{1}{3}$ यो.		०	

घम्माए णारइया संखातीताओ होंति सेढीओ ।
एदाणं गुणगारा बिदंगुल-बिदिय-मूल-किंचूणं ।।१९६।।

| — २ + १/१२ |

अर्थ :—घर्मा पृथिवीमें नारकी जीव असंख्यात आयुके धारक होते हैं। इनकी संख्या निकालनेके लिए गुणकार घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलसे कुछ कम है। अर्थात् इस गुणकारसे जगच्छ्रेणीको गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उतने नारकी जीव घर्मा पृथिवीमें विद्यमान हैं ।।१९६।।

श्रेणी × घनांगुलके दूसरे वर्गमूलसे कुछ कम = घर्मा पृ० के नारकी ।

वंसाए णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ता वि ।
सो रासी सेढीए बारस-मूलावहिद सेढी ।।१९७।।

—/१२ ।

अर्थ :—वंशा पृथिवीमें नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असंख्यातभाग मात्र हैं, वह राशि भी जगच्छ्रेणीके बारहवें वर्गमूलसे भाजित जगच्छ्रेणी मात्र है ।।१९७।।

श्रेणी ÷ श्रेणीका बारहवाँ वर्गमूल = वंशा पृथिवीके नारकियोंका प्रमाण ।

मेघाए णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ता वि ।
सेढीए [1]दसम-मूलेण भाजिदो होदि सो सेढी ।।१९८।।

—/१० ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीमें नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असंख्यातभाग प्रमाण होते हुए भी जगच्छ्रेणीके दसवें वर्गमूलसे भाजित जगच्छ्रेणी प्रमाण है ।।१९८।।

श्रेणी ÷ श्रेणीका दसवाँ वर्गमूल = मेघा पृ० के नारकियोंका प्रमाण ।

तुरिमाए णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ते वि ।
सो सेढीए अट्ठम-मूलेणं अवहिदा सेढी ।।१९९।।

—/८ ।

---

१. द. क. ठ. दसमूलेण ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमें नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असंख्यातभाग प्रमाण हैं, वह प्रमाण भी जगच्छ्रेणीमें जगच्छ्रेणीके आठवें वर्गमूलका भाग देने पर जो लब्ध आवे, उतना है ।।१९९।।

श्रेणी ÷ श्रेणीका आठवां वर्गमूल = चौथी पृ० के नारकियोंका प्रमाण

पंचम-खिदि-णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ते वि ।
सो सेढीए छट्ठम-मूलेणं भाजिदा सेढी ।।२००।।

$\frac{-}{6}$ ।

अर्थ :—पाँचवीं पृथिवीमें नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असंख्यातवें-भाग प्रमाण होकर भी जगच्छ्रेणीके छठे वर्गमूलसे भाजित जगच्छ्रेणी प्रमाण हैं ।।२००।।

श्रेणी ÷ श्रेणीका छठा वर्गमूल = पाँचवीं पृ० के नारकियोंका प्रमाण ।

मघवीए णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ते वि ।
सेढीए तदिय-मूलेण [1]हरिद-सेढीअ सो रासी ।।२०१।।

$\frac{-}{3}$ ।

अर्थ :—मघवी पृथिवीमें भी नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, वह प्रमाण भी जगच्छ्रेणीमें उसके तीसरे वर्गमूलका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना है ।।२०१।।

श्रेणी ÷ श्रेणीका तीसरा वर्गमूल = छठी पृ० के नारकियोंका प्रमाण ।

सत्तम-खिदि-णारइया सेढीए असंखभाग-मेत्ते वि ।
सेढीए बिदिय-मूलेण हरिद-सेढीअ सो रासी ।।२०२।।

$\frac{-}{3}$ ।

। एवं संखा समत्ता ।।२।।

अर्थ :—सातवी पृथिवीमें नारकी जीव जगच्छ्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, वह राशि जगच्छ्रेणीके द्वितीय वर्गमूलसे भाजित जगच्छ्रेणी प्रमाण है ।।२०२।।

श्रेणी ÷ श्रेणीका दूसरा वर्गमूल = सातवीं पृ० के नारकियोंका प्रमाण ।

इसप्रकार संख्याका वर्णन समाप्त हुआ ।।२।।

---

१. द. ब. क. हरिदा सेढीय ।

पहली पृथिवीमें पटल क्रमसे नारकियोंकी आयुका प्रमाण

णिरय-पदरेसु[1] आऊ सीमंतावीसु दोसु संखेज्जा ।
तदिए संखासंखो दससु असंखो तहेव सेसेसु ॥२०३॥

७ । ७ । ७ रि । १० । रि । से । रि[2]

अर्थ :—नरक-पटलोंमेंसे सीमन्त आदिक दो पटलोंमें संख्यात वर्षकी आयु है। तीसरे पटलमें संख्यात एवं असंख्यात वर्षकी आयु है और आगेके दस पटलोंमें तथा शेष पटलोंमें भी असंख्यात वर्ष प्रमाण ही नारकियोंकी आयु होती है ॥२०३॥

एक्कत्तिण्णि य सत्तं वह सत्तारह दुवीस तेत्तीसा ।
रयणादी-चरिमिंदय[3]-जेट्ठाऊ उवहि-उवमाणा ॥२०४॥

१ । ३ । ७ । १० । १७ । २२ । ३३ । सागरोवमाणि ।

अर्थ :—रत्नप्रभादिक सातों पृथिवियोंके अन्तिम इन्द्रक बिलोंमें क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेंतीस सागरोपम-प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥२०४॥

दस-णउदि-सहस्साणि आऊ अवरो वरो य सीमंते ।
वरिसाणि णउदि-लक्खा णिर-इंदय-आउ-उक्कस्सो[4] ॥२०५॥

१०००० । ९०००० । ९००००००।

अर्थ :—सीमन्त इन्द्रकमें जघन्य आयु दस हजार (१००००) वर्ष और उत्कृष्ट आयु नब्बे (९००००) हजार वर्ष-प्रमाण है। निरय इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण नब्बे लाख (९००००००) वर्ष है ॥२०५॥

रोरुगए जेट्ठाऊ संखातीदा हु पुव्व-कोडीओ ।
भंतस्सुक्कस्साऊ सायर-उवमस्स दसमंसो ॥२०६॥

पुव्व । रिं । सा । $\frac{1}{10}$ ।

अर्थ :—रौरुक इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयु असंख्यात पूर्वकोटी और भ्रान्त इन्द्रकमें सागरोपमके दसवें-भाग ($\frac{1}{10}$ सागर) प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥२०६॥

---

१. द. ज. क. ठ. पदरस्स । २. द. २ । ७ । ७० । १० । ० ॥ ३. ब. चरमिंदिय ।
४. द. ब. आउक्कस्सो ।

दसमंस चउत्थस्स य जेट्ठाऊ सोहिऊण णव-भजिदे ।
आउस्स पढम-भूए[1] णायव्वा हाणि-वड्ढीओ ॥२०७॥

$\frac{१}{१०}$ ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके चतुर्थ पटलमें जो एक सागरके दसवें भाग-प्रमाण उत्कृष्ट आयु है, उसे पहली पृथिवीस्थ नारकियोंकी उत्कृष्ट आयुमेंसे कम करके शेषमें नौ का भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना, पहली पृथिवीके अवशिष्ट नौ पटलोंमें आयुके प्रमाणको लानेके लिए हानि-वृद्धिका प्रमाण जानना चाहिए । (इस हानि-वृद्धिके प्रमाणको चतुर्थादि पटलोंकी आयुमें उत्तरोत्तर जोड़ने पर पंचमादि पटलोंमें आयुका प्रमाण निकलता है) ॥२०७॥

रत्नप्रभा—पृ० में उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम है, अतः १ — $\frac{१}{१०}$ = $\frac{९}{१०}$ ÷ ९ = $\frac{१}{१०}$ सागर हानि-वृद्धिका प्रमाण हुआ ।

सायर-उवमा इगि-दु-ति-चउ-पण-छस्सत्त-अट्ठ-णव-दसया ।
दस-भजिदा रयणप्पह-तुरिमिंदय-पहुदि-जेट्ठाऊ ॥२०८॥

$\frac{१}{१०}$ । $\frac{२}{१०}$ । $\frac{३}{१०}$ । $\frac{४}{१०}$ । $\frac{५}{१०}$ । $\frac{६}{१०}$ । $\frac{७}{१०}$ । $\frac{८}{१०}$ । $\frac{९}{१०}$ । $\frac{१०}{१०}$ ।

अर्थ :- रत्नप्रभा पृथिवीके चतुर्थ पंचमादि इन्द्रकोंमें क्रमशः दससे भाजित एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥२०८॥

भ्रान्तमें $\frac{१}{१०}$ सागर; उद्भ्रान्तमें $\frac{२}{१०}$; संभ्रान्तमें $\frac{३}{१०}$; असंभ्रान्तमें $\frac{४}{१०}$; विभ्रान्तमें $\frac{५}{१०}$; तप्तमें $\frac{६}{१०}$; त्रसितमें $\frac{७}{१०}$; वक्रान्तमें $\frac{८}{१०}$; अवक्रान्तमें $\frac{९}{१०}$ और विक्रान्त इन्द्रक बिलमें उत्कृष्टायु $\frac{१०}{१०}$ या १ सागर प्रमाण है ।

आयुकी हानि-वृद्धिका प्रमाण प्राप्त करनेका विधान

उवरिम-खिदि-जेट्ठाऊ सोहिय[2] हेट्ठिम-खिदीए जेट्ठम्मि ।
सेसं णिय-णिय-इंदय-संखा-भजिदम्मि हाणि-वड्ढीओ ॥२०९॥

अर्थ :—उपरिम पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुको नीचेकी पृथिवीकी उत्कृष्ट आयुमेंसे कम करके शेषमें अपने-अपने इन्द्रकोंकी संख्याका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना विवक्षित पृथिवीमें आयुकी हानि-वृद्धिका प्रमाण जानना चाहिए ॥२०९॥

---

१. द. ब. ज. क. ठ. पढमभाए । २. द. ब. ज. क. ठ. सोहूस ।

उदाहरण :—दूसरी पृ० की उ० आयु सागर (३ — १=२) ÷ ११ = $\frac{२}{११}$ सागर दूसरी पृथिवीमें आयुकी हानि-वृद्धिका प्रमाण है।

दूसरी पृथिवीमें पटल क्रमसे नारकियोंकी आयुका प्रमाण

तेरह-उवही पढमे दो-दो-जुत्ता[1] य जाव तेत्तीसं।
एक्कारसेहि भजिदा बिदिय-खिदी-इंदयाण[2] जेट्ठाऊ ॥२१०॥

$\frac{१३}{११}$ । $\frac{१५}{११}$ । $\frac{१७}{११}$ । $\frac{१९}{११}$ । $\frac{२१}{११}$ । $\frac{२३}{११}$ । $\frac{२५}{११}$ । $\frac{२७}{११}$ । $\frac{२९}{११}$ । $\frac{३१}{११}$ । $\frac{३३}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके ग्यारह इन्द्रक बिलोंमेसे प्रथम इन्द्रक बिलमें ग्यारहसे भाजित तेरह ($\frac{१३}{११}$) सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है। इसमे तेंतीस ($\frac{३३}{११}$) प्राप्त होने तक ग्यारहसे भाजित दो दो ($\frac{२}{११}$) को मिलानेपर क्रमशः दूसरी पृथिवीके शेष द्वितीयादिक इन्द्रकोंकी उत्कृष्ट आयुका प्रमाण होता है ॥२१०॥

स्तनक इन्द्रकमें $\frac{१३}{११}$ सागर, तनकमें $\frac{१५}{११}$; मनमें $\frac{१७}{११}$; वनमें $\frac{१९}{११}$; घातमें $\frac{२१}{११}$; सघातमें $\frac{२३}{११}$; जिह्वामें $\frac{२५}{११}$; जिह्वकमें $\frac{२७}{११}$; लोलमें $\frac{२९}{११}$; लोलकमें $\frac{३१}{११}$ और स्तनलोलकमें $\frac{३३}{११}$ या ३ सागर प्रमाण उत्कृष्टायु है।

तीसरी पृथिवीमें पटल क्रमसे नारकियोंकी आयुका प्रमाण।

इगतीस-उवहि-उवमा पभवो चउ-वड्ढिदो य पत्तेक्कं।
जा तेसठि णव-भजिदं एदं तदियावणिम्मि जेट्ठाऊ ॥२११॥

$\frac{३१}{९}$ । $\frac{३५}{९}$ । $\frac{३९}{९}$ । $\frac{४३}{९}$ । $\frac{४७}{९}$ । $\frac{५१}{९}$ । $\frac{५५}{९}$ । $\frac{५९}{९}$ । $\frac{६३}{९}$ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीमें नौसे भाजित इकतीस ($\frac{३१}{९}$) सागरोपम प्रभव या आदि है। इसके आगे प्रत्येक पटलमें नौसे भाजित चार ($\frac{४}{९}$) की तिरेसठ ($\frac{६३}{९}$) तक वृद्धि करनेपर उत्कृष्ट आयुका प्रमाण निकलता है ॥२११॥

तप्तमें $\frac{३१}{९}$; त्रसितमें $\frac{३५}{९}$; तपनमें $\frac{३९}{९}$; तापनमें $\frac{४३}{९}$; निदाघमें $\frac{४७}{९}$; प्रज्वलितमें $\frac{५१}{९}$; उज्ज्वलितमें $\frac{५५}{९}$; संज्वलितमें $\frac{५९}{९}$ और संप्रज्वलित नामक इन्द्रकमें $\frac{६३}{९}$ अथवा ७ सागर प्रमाण उत्कृष्टायु है।

---

१. द. दोद्दो जेट्ठा य । ब. क. ठ. दोद्दो जेत्ता य। २. खिदीयंदयाण।

चौथी पृथिवीमें नारकियोंकी आयुका प्रमाण

बावण्णुवही-उवमा पभवो तिय-वड्ढिदा य पत्तेक्कं ।
सत्तरि-परियंतं ते सत्त-हिदा तुरिम-पुढवि-जेट्ठाऊ ॥२१२॥

$\frac{५२}{७}$	$\frac{५५}{७}$	$\frac{५८}{७}$	$\frac{६१}{७}$	$\frac{६४}{७}$	$\frac{६७}{७}$	$\frac{७०}{७}$

अर्थ :—चौथी पृथिवीमें सातसे भाजित बावन सागरोपम प्रभव है। इसके आगे प्रत्येक पटलमें सत्तर पर्यन्त सातसे—भाजित तीन ($\frac{३}{७}$) की वृद्धि करने पर उत्कृष्टायुका प्रमाण निकलता है ॥२११॥

आरमें $\frac{५२}{७}$; मारमें $\frac{५५}{७}$; तारमें $\frac{५८}{७}$; चर्चामें $\frac{६१}{७}$; तमकमें $\frac{६४}{७}$; वादमें $\frac{६७}{७}$; खड़खड़में $\frac{७०}{७}$ या १० सागरोपम उत्कृष्ट आयु है ॥२१२॥

पाँचवी पृथिवीमें नारकियोंकी आयुका प्रमाण

सगवण्णोवहि-उवमा आदी सत्ताहिया य पत्तेक्कं ।
पणसीदी-परिअंतं पंच-हिदा पंचमीअ जेट्ठाऊ ॥२१३॥

$\frac{५७}{५}$	$\frac{६४}{५}$	$\frac{७१}{५}$	$\frac{७८}{५}$	$\frac{८५}{५}$

अर्थ :—पाँचवीं पृथिवीमें पाँचसे भाजित सत्तावन सागरोपम आदि है। अनन्तर प्रत्येक पटलमें पचासी तक पाँचसे भाजित सात-सात ($\frac{७}{५}$) के जोड़नेपर उत्कृष्ट आयुका प्रमाण जाना जाता है ॥२१३॥

तममें $\frac{५७}{५}$ सागरोपम; भ्रममें $\frac{६४}{५}$; झसमें $\frac{७१}{५}$; अन्धमें $\frac{७८}{५}$ और तिमिस्र इन्द्रककी उत्कृष्टायु $\frac{८५}{५}$ अर्थात् १७ सागर प्रमाण है।

छठी पृथिवीमें नारकियोंकी आयुका प्रमाण

छप्पण्णा इगिसट्ठी [1]छासट्ठी होंति उवहि-उवमाणा ।
तिय-भजिदा मघवीए णारय-जीवाण जेट्ठाऊ ॥२१४॥

$\frac{५६}{३}$	$\frac{६१}{३}$	$\frac{६६}{३}$

---

१. क. ब. बासट्ठी ।

अर्थ :—मघवी पृथिवीके तीन पटलोंमें नारकियोंकी उत्कृष्टायु क्रमशः तीनसे भाजित छप्पन, इकसठ और छ्यासठ सागरोपम है ॥२१४॥

हिममें $\frac{५६}{३}$; वर्दलमें $\frac{६१}{३}$ और लल्लंकमें $\frac{६६}{३}$ या २२ सागर प्रमाण उत्कृष्टायु है।

सत्तम-खिदि-जीवाणं आऊ तेत्तीस-उवहि-परिमाणा ।
उवरिम-उक्कस्साऊ [1]समय-जुदो हेट्ठिमे जहण्णं खु ॥२१५॥

३३ ।[2]

अर्थ :—सातवीं पृथिवीके जीवोंकी आयु तैतीस सागरोपम प्रमाण है। ऊपर-ऊपरके पटलोंमें जो उत्कृष्ट आयु है, उसमें एक-एक समय मिलानेपर वही नीचेके पटलोंमें जघन्यायु हो जाती है ॥२१५॥

अवधिस्थान नामक इन्द्रककी आयु ३३ सागरोपम प्रमाण है।

श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक बिलोंमें स्थित नारकियोंकी आयु

एवं सत्त-खिदीणं पत्तेक्कं इंदयाण जो आऊ ।
सेढि-विसेढि-गदाणं सो चेय पइण्णयाणं पि ॥२१६॥

एवं आऊ समत्ता ॥३॥

अर्थ :—इसप्रकार सातों पृथिवियोंके प्रत्येक इन्द्रकमे जो उत्कृष्ट आयु कही गई है, वही वहांके श्रेणीबद्ध और विश्रेणीगत (प्रकीर्णक) बिलोंकी भी आयु समझना चाहिए ॥२१६॥

इसप्रकार आयुका वर्णन समाप्त हुआ ॥३॥

---

१. द. ठ. समओ जुदो, ब. क. ज. समउ-जुदो। २. द. २० । ३३ ।; ब. २२ । ३३ ।

सातों नरकोंके प्रत्येक पटलकी जघन्य-उत्कृष्ट आयुका विवरण

घर्मा पृथिवी			वंशा पृथिवी			मेघा पृथिवी		
पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
१	१०००० वर्ष	९००००वर्ष	१	१ सागर	१ २/११ सागर	१	३ सागर	३ ४/९ सागर
२	९०००० वर्ष	९०लाख वर्ष	२	१ २/११ ,,	१ ४/११ सागर	२	३ ४/९ ,,	३ ८/९ ,,
३	९० लाख वर्ष	असं० पूर्व कोटियाँ	३	१ ४/११ ,,	१ ६/११ सागर	३	३ ८/९ ,,	४ ३/९ ,,
४	असं० पूर्व कोटियाँ	१/१० सागर	४	१ ६/११ ,,	१ ८/११ ,,	४	४ ३/९ ,,	४ ७/९ ,,
५	१/१० सागर	२/१० सागर	५	१ ८/११ ,,	१ १०/११ ,,	५	४ ७/९ ,,	५ २/९ ,,
६	२/१० सागर	३/१० सागर	६	१ १०/११ ,,	२ १/११ ,,	६	५ २/९ ,,	५ २/३ ,,
७	३/१० सागर	४/१० ,,	७	२ १/११ ,,	२ ३/११ ,,	७	५ २/३ ,,	६ १/९ ,,
८	४/१० सागर	१/२ ,,	८	२ ३/११ ,,	२ ५/११ ,,	८	६ १/९ ,,	६ ५/९ ,,
९	१/२ ,,	३/५ ,,	९	२ ५/११ ,,	२ ७/११ ,,	९	६ ५/९ ,,	७ सागर
१०	३/५ ,,	७/१० ,,	१०	२ ७/११ ,,	२ ९/११ ,,			
११	७/१० ,,	४/५ ,,	११	२ ९/११ ,,	३ सागर			
१२	४/५ ,,	९/१० ,,						
१३	९/१० ,,	१सागरोपम						

सातों नरकोंके प्रत्येक पटलकी जघन्य-उत्कृष्ट आयुका विवरण											
अञ्जना पृथिवी			अरिष्टा पृथिवी			मघवी पृथिवी			माघवी पृथिवी		
पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	पटल सं०	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
१	७ सागर	७ $\frac{३}{७}$ सागर	१	१० सागर	११ $\frac{२}{५}$ सा०	१	१७ सा०	१८ $\frac{२}{३}$ सागर	१	२२ सा०	३३ सागर
२	७ $\frac{३}{७}$,,	७ $\frac{६}{७}$,,	२	११ $\frac{२}{५}$,,	१२ $\frac{४}{५}$,,	२	१८ $\frac{२}{३}$,,	२० $\frac{१}{३}$,,			
३	७ $\frac{६}{७}$,,	८ $\frac{२}{७}$,,	३	१२ $\frac{४}{५}$,,	१४ $\frac{१}{५}$,,	३	२० $\frac{१}{३}$,,	२२ सार			
४	८ $\frac{२}{७}$,,	८ $\frac{५}{७}$,,	४	१४ $\frac{१}{५}$,,	१५ $\frac{३}{५}$,,						
५	८ $\frac{५}{७}$,,	९ $\frac{१}{७}$,,	५	१५ $\frac{३}{५}$,,	१७ सागर						
६	९ $\frac{१}{७}$,,	९ $\frac{४}{७}$,,									
७	९ $\frac{४}{७}$,,	१० सागर									

नोट :—१. प्रत्येक पटल की जघन्य आयुमें एक समय अधिक करना चाहिए । गा० २१४ ।

२. यह जघन्य उत्कृष्ट आयुका प्रमाण सातों पृथिवियोंके इन्द्रक बिलोंका कहा गया है, यही प्रमाण प्रत्येक पृथिवीके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंमें रहने वाले नारकियों का भी जानना चाहिए । गा० २१५ ।

※

पहली पृथिवीमें पटलक्रमसे नारकियोंके शरीरका उत्सेध

सत्त-ति-छ-दंड-हत्थंगुलाणि कमसो हवंति घम्माए ।
चरिमिंदयम्मि उदओ दुगुणो दुगुणो य सेस-परिमाणं[1] ॥२१७॥

दं ७, ह ३, अं ६ । दं १५, ह २, अं १२ । दं ३१, ह १ । दं ६२, ह २ ।
दं १२५ । द २५० । दं ५००

अर्थ :—घर्मा पृथिवीके अन्तिम इन्द्रकमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल है । इसके आगे शेष पृथिवियोंके अन्तिम इन्द्रकोंमें रहने वाले नारकियोंके शरीरकी ऊँचाईका प्रमाण उत्तरोत्तर इससे दुगुना-दुगुना होता गया है ॥२१७॥

विशेषार्थ :—घर्मा पृथिवीमें शरीरकी ऊँचाई ७ दंड, ३ हाथ, ६ अंगुल; वंशा पृ० में १५ दण्ड, २ हाथ, १२ अगुल; मेघा पृ० में ३१ दण्ड, १ हाथ; अंजना पृ० में ६२ दण्ड, २ हाथ; अरिष्टा पृ० में १२५ दण्ड; मघवी पृ० में २५० दण्ड और माघवी पृथिवीमें ५०० दण्ड ऊँचाई है ।

रयणप्पहक्खिदीए[2] उदओ[3] सीमंत-णाम-पडलम्मि ।
जीवाणं हत्थ-तियं सेसेसुं हाणि-वड्ढीओ ॥२१८॥

ह ३ ।

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीके सीमन्त नामक पटलमें जीवोंके शरीरकी ऊँचाई तीन हाथ है; इसके आगे शेष पटलोंमें शरीरकी ऊँचाई हानि-वृद्धिको लिए हुए है ॥२१८॥

आदी अंते सोहिय रूऊणिदाहिदम्मि हाणि-चया ।
मुह-सहिदे खिदि-सुद्धे णिय-णिय-पदरेसु उच्छेहो ॥२१९॥

ह २ । अं ८ । भा $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—अन्तमेंसे आदिको घटाकर शेषमें एक कम अपने इन्द्रकके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना प्रथम पृथिवीमें हानि-वृद्धिका प्रमाण है । इसे उत्तरोत्तर मुखमें मिलाने अथवा भूमिमेंसे कम करनेपर अपने-अपने पटलोंमें ऊँचाईका प्रमाण ज्ञात होता है ॥२१९॥

---

१. द. ठ. ज. सेसपरिमाणं । २. द. ब. ज. क. ठ. पुरवीए । ३ द. ओदओ ।

उदाहरण :—अन्त ७ धनुष, ३ हाथ, ६ अंगुल; आदि ३ हाथ; ७ ध०, ३ हा०, ६ अं, अर्थात् (३१$\frac{१}{४}$ हाथ — ३ हाथ=२८$\frac{१}{४}$) ÷ (१३—१) = $\frac{११३}{४}$ × $\frac{१}{१२}$ = २ हाथ ८$\frac{१}{२}$ अंगुल हानि-वृद्धिका प्रमाण है।

हाणि-चयाण पमाणं घम्माए होंति दोण्णि हत्था य।
अट्ठंगुलाणि अंगुल-भागो [1]दोहिं विहत्तो य ॥२२०॥

ह २ । अं ८ । भा $\frac{१}{२}$ ।

अर्थ :—घर्मा पृथिवीमें इस हानि-वृद्धिका प्रमाण दो हाथ, आठ अंगुल और एक अंगुलका दूसरा ($\frac{१}{२}$) भाग है ॥२२०॥

हानि-चयका प्रमाण २ हाथ, ८$\frac{१}{२}$ अंगुल प्रमाण है।

एक्क-धणुमेक्क-हत्थो सत्तरसंगुल-दलं च णिरयम्मि।
इगि-दंडो तिय-हत्था[2] सत्तरसं अंगुलाणि रोरुगए ॥२२१॥

दं १, ह १, अं $\frac{१७}{२}$ । दं १, ह ३, अं १७ ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके निरय नामक द्वितीय पटलमें एक धनुष, एक हाथ और सत्तरह अंगुलके आधे अर्थात् साढे आठ अंगुल प्रमाण तथा रौरुक पटलमें एक धनुष, तीन हाथ और सत्तरह अंगुल प्रमाण शरीरकी ऊँचाई है ॥२२१॥

दो दंडा दो हत्था भंतम्मि दिवड्ढमंगुलं होदि।
उब्भंते दंड-तियं दहंगुलाणि च उच्छेहो ॥२२२॥

दं २, ह २, अ $\frac{३}{२}$ । दं ३, अंगु १० ।

अर्थ :—भ्रान्त पटलमें दो धनुष, दो हाथ और डेढ़ अंगुल; तथा उद्भ्रान्त पटलमें तीन धनुष एवं दस अंगुल प्रमाण शरीरका उत्सेध है ॥२२२॥

तिय दंडा दो हत्था अट्ठारह अंगुलाणि पव्वद्धं।
संभंत[3]-णाम-इंदय-उच्छेहो पढम-पुढवीए ॥२२३॥

दं ३, ह २, अं १८ भा $\frac{१}{२}$ ।

---

१. द. दोहि विहत्थो य। २. द. अ. क. ठ. हत्थो। ३ द. सब्भंत्य, ब. क. ज. ठ. सब्भत्य।

अर्थ :—पहली पृथिवीके संभ्रान्त नामक इन्द्रकमें शरीरकी ऊँचाई तीन धनुष, दो हाथ और साढ़े अठारह अंगुल प्रमाण है ॥२२३॥

चत्तारो चावाणि सत्तावीसं च अंगुलाणि पि ।
होदि असंभंतिदय-उदओ पढमाए पुढवीए ॥२२४॥

दं ४ । अं २७ ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके असंभ्रान्त इन्द्रकमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाईका प्रमाण चार धनुष और सत्ताईस अंगुल है ॥२२४॥

चत्तारो कोदंडा तिय हत्था अंगुलाणि तेवीसं ।
दलिदाणि होदि उदओ विब्भंतय-णाम पडलम्मि ॥२२५॥

दं ४, ह ३, अं $\frac{23}{2}$ ।

अर्थ :—विभ्रान्त नामक पटलमें चार धनुष, तीन हाथ और तेईस अंगुलके आधे अर्थात् साढ़े ग्यारह अंगुल प्रमाण उत्सेध है ॥२२५॥

पंच च्चिय कोदंडा एक्को हत्थो य वीस पव्वाणि ।
तत्तिंदयम्मि उदओ पण्णत्तो पढम-खोणीए ॥२२६॥

द ५, ह १, अं २० ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके तप्त इन्द्रकमें शरीरका उत्सेध पाँच धनुष, एक हाथ और बीस अंगुल प्रमाण कहा गया है ॥२२६॥

छ च्चिय कोदंडाणि चत्तारो अंगुलाणि पव्वद्धं ।
उच्छेहो णादव्वो पडलम्मि य तसिद-णामम्मि ॥२२७॥

दं ६, अं ४ भा $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ :—त्रसित नामक पटलमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई छह धनुष और अर्ध अंगुल सहित चार अंगुल प्रमाण जाननी चाहिए ॥२२७॥

बाणासणाणि छ च्चिय दो हत्था तेरसंगुलाणि पि ।
वक्कंत-णाम-पडले उच्छेहो पढम-पुढवीए ॥२२८॥

दं ६, ह २ । अं १३ ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके वक्रान्त पटलमे शरीरका उत्सेध छह धनुष, दो हाथ और तेरह अंगुल है ॥२२८॥

सत्त य सरासणाणि अंगुलया एक्कवीस-पव्वद्धं ।
पडलम्मि य उच्छेहो होदि अवक्कंत-णामम्मि ॥२२९॥

दं ७, अं २१½ ।

अर्थ :—अवक्रान्त नामक पटलमे सात धनुष और साढे इक्कीस अंगुल प्रमाण शरीरका उत्सेध है ॥२२९॥

सत्त विसिखासणाणि हत्थाइं तिण्णि छच्च अंगुलयं ।
चरिमिदयम्मि उदओ विक्कंते पढम-पुढमीए ॥२३०॥

दं ७, ह ३, अं ६ ।

अर्थ :—पहली पृथिवीके विक्रान्त नामक अन्तिम इन्द्रकमें शरीरका उत्सेध सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल है ॥२३०॥

दूसरी पृथिवीमे उत्सेधकी वृद्धिका प्रमाण

दो हत्था वीसंगुल एक्कारस-भजिद-दो वि पव्वाइं ।
वंसाए वड्ढीओ मुह-सहिदा होंति उच्छेहो ॥२३१॥

ह २, अं २० भा $\frac{2}{11}$ ।

अर्थ :—वंशा पृथिवीमें दो हाथ, बीस अंगुल और ग्यारहसे भाजित दो-भाग प्रमाण प्रत्येक पटलमें वृद्धि होती है । इस वृद्धिको मुख अर्थात् पहली पृथिवीके उत्कृष्ट उत्सेध-प्रमाणमें उत्तरोत्तर मिलाते जानेसे क्रमशः दूसरी पृथिवीके प्रथमादि पटलोंमें उत्सेधका प्रमाण निकलता है ॥२३१॥

दूसरी पृथिवीमें पटलक्रमसे नारकियोंके शरीरका उत्सेध

अट्ठ विसिहासणाणि दो हत्था अंगुलाणि चउवीसं ।
एक्कारस-भजिदाइं उदओ थणगम्मि बिदिय-वसुहाए ।।२३२।।

दं ८, ह २, अं $\frac{२४}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके (स्तनक नामक प्रथम इन्द्रकमें) नारकियोंके शरीरका उत्सेध आठ धनुष, दो हाथ और ग्यारहसे भाजित चौबीस अंगुल-प्रमाण है ।।२३२।।

णव दंडा बावीसंगुलाणि एक्करस-भजिद चउ-भागा ।
बिदिय-पुढवीए तणगिंदयम्हि णारइय उच्छेहो ।।२३३।।

दं ९, अं २२ भा $\frac{४}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके तनक पटलमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई नौ धनुष, बाईस अंगुल और ग्यारहसे भाजित चार भाग प्रमाण है ।।२३३।।

णव दंडा तिय-हत्थं चउरुत्तर-दो-सयाणि पव्वाणि ।
एक्कारस-भजिदाणि उदओ मण-इंदयम्मि जीवाणं ।।२३४।।

दं ९, ह ३, अं १८ भा $\frac{६}{११}$ ।

अर्थ :—मन इन्द्रकमें जीवोंके शरीरका उत्सेध नौ धनुष, तीन हाथ और ग्यारहसे भाजित दोसौ चार अंगुल प्रमाण है ।।२३४।।

दस दंडा दो हत्था चोद्दस पव्वाणि अट्ठ भागा य ।
एक्कारसेहिं भजिदा उदओ [1]वणगिंदयम्मि बिदियाए ।।२३५।।

दं १०, ह २, अं १४ भा $\frac{८}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके वनक इन्द्रकमें शरीरका उत्सेध दस-धनुष, दो हाथ, चौदह अंगुल और आठ अंगुलोंका ग्यारहवां भाग है ।।२३५।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. तणगिंदयम्मि ।

एक्कारस चावाणिं एक्को हत्थो दसंगुलाणिं पि ।
एक्करस-हिद-दसंसा उदओ [1]घादिदयम्मि बिदियाए ।।२३६।।

दं ११, ह १, अं १० भा $\frac{१०}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके घात इन्द्रकमें ग्यारह धनुष, १ हाथ, दस अंगुल और ग्यारहसे भाजित दस-भाग प्रमाण शरीरका उत्सेध है ।।२३६।।

बारस सरासणाणिं पव्वाणिं अट्ठहत्तरी होंति ।
एक्कारस भजिदाणिं संघादे णारयाण उच्छेहो ।।२३७।।

दं १२ अं० $\frac{७८}{११}$ ।

अर्थ :—सघात इन्द्रकमें नारकियोंके शरीरका उत्सेध बारह धनुष और ग्यारहसे भाजित अठहत्तर अंगुल प्रमाण है ।।२३७।।

बारस सरासणाणिं तिय हत्था तिण्णि अंगुलाणिं च ।
एक्करस-हिद-ति-भाया उदओ जिब्भिदयम्मि बिदियाए ।।२३८।।

दं १२, ह ३, अं ३ भा $\frac{३}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके जिह्व इन्द्रकमें शरीरका उत्सेध बारह धनुष, तीन हाथ, तीन अंगुल और ग्यारहसे भाजित तीन भाग प्रमाण है ।।२३८।।

तेवण्णा हत्थाइं तेवीसा अंगुलाणि पण भागा ।
एक्कारसेहिं [2]भजिदा जिब्भग-पडलम्मि उच्छेहो ।।२३९।।

ह ५३ अं २३ भा $\frac{५}{११}$ ।

अर्थ :—जिह्वक पटलमें शरीरका उत्सेध तिरेपन हाथ (१३ दण्ड १ हाथ) तेईस अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह-भागों मेंसे पाँच-भाग प्रमाण है ।।२३९।।

---

१. ब. घादिदियम्मि । २. द. भजिदाणं ।

चोद्दस दंडा सोलस-जुत्ताणि सयाणि दोण्हि पव्वाणि ।
एक्कारस-भजिदाइं उदओ [1]लोलिवयम्हि बिदियाए ।।२४०।।

दं १४, अं $\frac{२१६}{११}$ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके लोल नामक पटलमें शरीरका उत्सेध चौदह धनुष और ग्यारहसे भाजित दोसौ सोलह (१९$\frac{७}{११}$) अंगुल प्रमाण है ।।२४०।।

एक्कोण-सट्ठि हत्था [2]पण्णरसं अंगुलाणि णव भागा ।
एक्कारसेहि भजिदा लोलयणामम्मि उच्छेहो ।।२४१।।

ह ५९, अं १५ भा $\frac{९}{११}$ ।

अर्थ :—लोलक नामक पटलमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई उनसठ हाथ (१४ दण्ड, ३ हाथ), १५ अंगुल और ग्यारहसे भाजित अंगुलके नौ-भाग प्रमाण है ।।२४१।।

पण्णरसं[3] कोदंडा दो हत्था बारसंगुलाणि च ।
अंतिम-पडले [4]थणलोलगम्मि बिदियाअ उच्छेहो ।।२४२।।

दं १५, ह २, अं १२ ।

अर्थ :—दूसरी पृथिवीके स्तनलोलक नामक अन्तिम पटलमें पन्द्रह धनुष, दो हाथ और बारह अंगुल-प्रमाण शरीरका उत्सेध है ।।२४२।।

तीसरी पृथिवीमें उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

एक्क धणू बे [5]हत्था बावीसं अंगुलाणि बे भागा ।
तिय-भजिदा[6] णादव्वा[7] मेघाए हाणि-वड्ढीओ ।।२४३।।

ध १, ह २, अं २२ भा $\frac{२}{३}$ ।

---

१. द. क. ज. ठ. लोलय । २. ब. पणरस । ३. ब. पण्णरस । ४. ब. द. ठ. थणलोलगम्मि ।
५. द. हत्थ । ६. द. क. ठ. भजिदं । ७. द. क. ठ. णादव्वो, ब. णायव्वो ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीमें एक धनुष, दो हाथ, २२ अंगुल और तीनसे भाजित एक अंगुलके दो-भाग-प्रमाण हानि-वृद्धि जाननी चाहिए ।।२४३।।

तीसरी पृथिवीमें पटल क्रमसे नारकियोंके शरीरका उत्सेध

सत्तरसं चावाणि चोत्तीसं अंगुलाणि दो भागा ।
तिय-भजिदा मेघाए उदओ तत्तिंदयम्मि जीवाणं ।।२४४।।

ध १७, अं ३४ भा $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीके तप्त इन्द्रकमें जीवोंके शरीरका उत्सेध सत्तरह धनुष, चौंतीस अंगुल (१ हाथ, १० अंगुल) और तीनसे भाजित अंगुलके दो-भाग-प्रमाण है ।।२४४।।

एक्कोणवीस दंडा अट्ठावीसंगुलाणि [1]तिहिदाणि ।
तसिदिंदयम्मि तदियक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ।।२४५।।

ध १९, अं $\frac{२८}{3}$ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके त्रसित इन्द्रकमें नारकियोंका उत्सेध उन्नीस धनुष और तीनसे भाजित अट्ठाईस (९$\frac{1}{3}$) अंगुल प्रमाण है ।।२४५।।

वीसए सिखासयाणि असीदिमेत्ताणि अंगुलाणि च ।
[2]तदिय-पुढवीए तवणिंदयम्मि णारइय उच्छेहो ।।२४६।।

दं २० । अं ८० ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके तपन इन्द्रक बिलमें नारकियोंके शरीरका उत्सेध बीस धनुष अस्सी (३ हाथ ८) अंगुल प्रमाण है ।।२४६।।

णउदि-पमाणा हत्था [3]तिदय-विहत्ताणि वीस पव्वाणि ।
मेघाए [4]तावणिंदय-ठिदाण जीवाण उच्छेहो ।।२४७।।

ह ९०, अं $\frac{२०}{3}$ ।

---

१. द. क. ठ. तिहिदाणि । २. द. ब. क. ठ. तदियं चय पुढवीए । ३. द. तीयविहत्थाणि, क. तीद विहत्थाणि, ठ. तीदी विहत्थाणि, ब. तदिविहत्ताणि । ४. द. ब. क. ठ. तवणिंदय ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीके तापन इन्द्रकमें स्थित जीवोंके शरीरका उत्सेध नब्बे हाथ (२२ धनुष २ हाथ) और तीनसे भाजित बीस अंगुल प्रमाण है। २४७॥

सत्ताणउदी हत्था सोलस पव्वाणि तिय-विहत्ताणि ।
उदओ णिदाहणामा-पडले णेरइय जीवाणं ॥२४८॥

ह ९७ अं $\frac{16}{3}$ ।

अर्थ : —निदाघ नामक पटलमें नारकी जीवोंके शरीरकी ऊँचाई सत्तानवै (२४ दण्ड १) हाथ और तीनसे भाजित सोलह-अंगुल प्रमाण है ॥२४८॥

छव्वीसं चावाणि चत्तारी अंगुलाणि मेघाए ।
पज्जलिद-णाम-पडले ठिदाण जीवाण उच्छेहो ॥२४९॥

ध २६, अं ४ ।

अर्थ :—मेघा पृथिवीके प्रज्वलित नामक पटलमें स्थित जीवोंके शरीरका उत्सेध छब्बीस धनुष और चार अंगुल प्रमाण है ॥२४९॥

सत्तावीसं दंडा तिय-हत्था अट्ठ अंगुलाणि च ।
तिय-भजिदाइं उदओ [1]उज्जलिदे णारयाण णादव्वो ॥२५०॥

ध २७, ह ३ अं $\frac{8}{3}$ ।

अर्थ :—उज्वलित इन्द्रकमें नारकियोंके शरीरका उत्सेध सत्ताईस धनुष, तीन हाथ और तीनसे भाजित आठ अंगुल प्रमाण है ॥२५०॥

एक्कोणतीस[2] दंडा दो हत्था अंगुलाणि चत्तारि ।
तिय-भजिदाइं उदओ [3]संजलिदे तदिय-पुढवीए ॥२५१॥

ध २९, ह २, अं $\frac{4}{3}$ ।

---

१. द. उज्जलिदो । २. ब. क. एकोणतीस । ३. संजलि-तदिय ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके संज्वलित इन्द्रकमें शरीरका उत्सेध उनतीस धनुष, दो हाथ और तीनसे भाजित चार ($1\frac{1}{3}$) अंगुल प्रमाण है ।।२५१।।

एक्कत्तीसं दंडा एक्को हत्थो अ [1]तदिय-पुढवीए ।
संपज्जलिदे[2] चरिमिंदयम्हि [3]णारइय उस्सेहो ।।२५२।।

ध ३१, ह १ ।

अर्थ :—तीसरी पृथिवीके संप्रज्वलित नामक अन्तिम इन्द्रकमें नारकियोंके शरीरका उत्सेध इकतीस-धनुष और एक हाथ प्रमाण है ।।२५२।।

चौथी पृथिवीमें उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

चउ दंडा इगि हत्थो पव्वाणि वीस-सत्त-पविहत्ता ।
चउ भागा तुरिमाए पुढवीए हाणि-वड्ढीओ ।।२५३।।

ध ४, ह १, अं २० भा $\frac{4}{7}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमें चार धनुष, एक हाथ, बीस अंगुल और सातसे भाजित चार-भाग प्रमाण हानि-वृद्धि है ।।२५३।।

चौथी पृथिवीमें पटल क्रमसे नारकियोंके शरीरका उत्सेध

पणतीसं दंडाइं हत्थाइं दोण्णि वीस-पव्वाणि ।
सत्त-हिदा चउ-भागा उदग्रो आर-ट्ठिदाण जीवाणं ।।२५४।।

ध ३५, ह २, अं २० भा $\frac{4}{7}$ ।

अर्थ :—आर पटलमें स्थित जीवोंके शरीरका उत्सेध पैंतीस धनुष, दो हाथ, बीस अंगुल और सातसे भाजित चार-भाग-प्रमाण है ।।२५४।।

---

१. ब. तदिह । २. द. ब. क. ठ. संजलिदे । ३. द. ब. क. ठ. णारइया ।

चालीसं कोदंडा वीसब्भहियं सयं च पव्वाणि ।
सत्त-हिदा उच्छेहो [1]तुरिमाए मार-पडल-जीवाणं ॥२५५॥

ध ४०, अं $\frac{१२०}{७}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीके मार नामक पटलमें रहने वाले जीवोंके शरीरकी ऊँचाई चालीस धनुष और सातसे भाजित एकसौ बीस (१७$\frac{१}{७}$) अंगुल प्रमाण है ॥२५५॥

चउदालं चावाणि दो हत्था अंगुलाणि छण्णउदी ।
सत्त-हिदा उच्छेहो तारिंदय-संठिदाण जीवाणं ॥२५६॥

ध ४४, ह २, अं $\frac{९६}{७}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीके तार इन्द्रकमें स्थित जीवोंके शरीरका उत्सेध चवालीस धनुष, दो हाथ और सातसे भाजित छ्यानबै (१३$\frac{५}{७}$) अंगुल प्रमाण है ॥२५६॥

एक्कोणपण्ण दंडा बाहत्तरि अंगुला य सत्त-हिदा ।
तच्चिंदयम्मि[2] तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥२५७॥

ध ४९, अं $\frac{७२}{७}$ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीमें तत्व (चर्चा) इन्द्रकमें नारकियोंके शरीरका उत्सेध उनचास धनुष और सातसे भाजित बहत्तर (१०$\frac{२}{७}$) अंगुल प्रमाण है ॥२५७॥

[3]तेवण्णा चावाणि बिय हत्था अडदाल पव्वाणि ।
सत्त-हिदाणि उदओ तमगिंदय-संठियाण जीवाणं ॥२५८॥

ध ५३, ह २, अं $\frac{४८}{७}$ ।

अर्थ :—तमक इन्द्रकमें स्थित जीवोंके शरीरका उत्सेध तिरेपन धनुष, दो हाथ और सातसे भाजित अड़तालीस (६$\frac{६}{७}$) अंगुल प्रमाण है ॥२५८॥

---

१. द. ब. क. ठ. पंचाए। २. द. ब. क. ठ. तत्तिदयम्मि। ३. ब. तेण्णाव।

अट्ठावण्णा दंडा सत्त-हिदा अंगुला य चउवीसं ।
खाडिंदयम्मि तुरिमक्खोणीए णारयाण उच्छेहो ॥२५९॥

ध ५८, अं २४/७ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीके खाड इन्द्रकमें नारकियोंके शरीरका उत्सेध अट्ठावन धनुष और सातसे भाजित चौबीस (३३/७) अंगुल प्रमाण है ॥२५९॥

बासट्ठी कोदंडा हत्थाइं दोण्णि तुरिम-पुढवीए ।
चरिमिंदयम्मि खडखड-णामाए णारयाण उच्छेहो ॥२६०॥

दं ६२, ह २ ।

अर्थ :—चौथी पृथिवीके खड्खड़ नामक अन्तिम इन्द्रकमें नारकियोंके शरीरका उत्सेध बासठ धनुष और दो हाथ प्रमाण है ॥२६०॥

पाँचवीं पृथिवीके उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

बारस सरासणाणि दो हत्था पंचमीए पुढवीए ।
खय-वड्ढीय पमाणं णिद्दिट्ठं वीयराएहिं ॥२६१॥

दं १२, ह २ ।

अर्थ :—वीतरागदेवने पाँचवीं पृथिवीमें क्षय एवं वृद्धिका प्रमाण बारह धनुष और दो हाथ कहा है ॥२६१॥

पाँचवीं पृथिवीमें पटलक्रमसे नारकियोंके शरीरका उत्सेध

पण्णहत्तरि-परिमाणा कोदंडा पंचमीए पुढवीए ।
पढमिंदयम्मि उदओ तम-णामे संठिदाण जीवाणं ॥२६२॥

द ७५ ।

अर्थ :—पाँचवीं पृथिवीके तम नामक प्रथम इन्द्रक बिलमें स्थित जीवोंके शरीरकी ऊँचाई पचहत्तर धनुष प्रमाण है ॥२६२॥

सत्तासीदी दंडा दो हत्था पंचमीए खोणीए ।
पडलम्मि य भम-णामे णारय-जीवाण उच्छेहो ॥२६३॥

दं ८७, ह २ ।

अर्थ :—पाँचवीं पृथिवीके भ्रम नामक पटलमें नारकी जीवोंके शरीरका उत्सेध सत्तासी धनुष और दो हाथ-प्रमाण है ॥२६३॥

एक्कं कोदंड-सयं झस-णामे णारयाण उच्छेहो ।
चावाणि बारसुत्तर-सयमेक्कं अंधयम्मि दो हत्था ॥२६४॥

द १०० । दं ११२, ह २ ।

अर्थ :—झस नामक पटलमें मात्र सौ धनुष तथा अन्धक पटलमें एकसौ बारह धनुष और दो हाथ प्रमाण नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई है ॥२६४॥

एक्कं कोदंड-सयं अब्भहियं पंचवीस-रूवेहिं ।
धूमप्पहाए[1] चरिमिंदयम्मि तिमिसम्मि उच्छेहो ॥२६५॥

दं १२५ ।

अर्थ :—धूमप्रभा पृथिवीके तिमिस्र नामक अन्तिम इन्द्रकमें नारकियोंके शरीरका उत्सेध पच्चीस अधिक एकसौ अर्थात् एकसौ पच्चीस धनुष प्रमाण है ॥२६५॥

छठी पृथिवीके उत्सेधकी हानि-वृद्धिका प्रमाण

एक्कत्तालं दंडा हत्थाइं दोण्णि सोलसंगुलया ।
छट्ठीए वसुहाए परिमाणं हाणि-वड्ढीए ॥२६६॥

दंड ४१, ह २, अं १६ ।

अर्थ :—छठी पृथिवीमें हानि-वृद्धिका प्रमाण इकतालीस धनुष, दो हाथ और सोलह अंगुल है ॥२६६॥

---

१. द. क. ठ. धूमप्पहाय ।

छठी पृथिवीमें पटलक्रमसे नारकियोंके शरीरका उत्सेध

छासट्ठी-ग्रहिय-सयं कोदंडा दोण्णि होंति हत्था य ।
सोलस पव्वा य पुढं हिम-पडल-गदाण उच्छेहो ॥२६७॥

दं १६६, ह २, अं १६ ।

अर्थ :—(छठी पृथिवीके) हिम पटलगत जीवोंके शरीरकी ऊँचाई एकसौ छयासठ धनुष, दो हाथ और सोलह अंगुल प्रमाण है ॥२६७॥

दोण्णि सयाणि अट्ठाउत्तर-दंडाणि अंगुलाणि च ।
बत्तीसं [1]छट्ठीए [2]वद्दल-ठिद-जीव-उच्छेहो ॥२६८॥

दं २०८, अं ३२ ।

अर्थ :—छठी पृथिवीके वर्दल पटलमें स्थित जीवोंके शरीरका उत्सेध दोसौ आठ धनुष और बत्तीस (१ हाथ ८) अंगुल प्रमाण है ॥२६८॥

पण्णासब्भहियाणि दोण्णि सयाणि सरासणाणि च ।
लल्लंक-णाम-इंदय-ठिदाण जीवाण उच्छेहो ॥२६९॥

दं २५० ।

अर्थ :—लल्लंक नामक इन्द्रकमे स्थित जीवोंके शरीरका उत्सेध दोसौ पचास धनुष-प्रमाण है ॥२६९॥

सातवीं पृथिवीके नारकियोंके शरीरका उत्सेध

पुढमीए सत्तमिए अवधिट्ठाणम्हि एक्क पडलम्हि ।
पंच-सयाणि दंडा णारय-जीवाण उस्सेहो ॥२७०॥

दं ५०० ।

---

१. द छट्ठाए । २ द. क. ठ वंदलट्ठिदल-जीव ।

अर्थ :—सातवीं पृथिवीके अवधिस्थान इन्द्रकमें नारकियोंका उत्सेध पाँच सौ (५००) धनुष प्रमाण है ॥२७०॥

श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक-बिलोंके नारकियोंका उत्सेध

एवं रयणादीणं पत्तेक्कं इंदयाण जो उदओ।
सेढि-विसेढि-गदाणं पइण्णयाणं च सो च्चेय ॥२७१॥

॥ इदि णारयाण उच्छेहो समत्तो[1] ॥४॥

अर्थ :—इसप्रकार रत्नप्रभादिक पृथिवियोंके प्रत्येक इन्द्रकमें शरीरका जो उत्सेध है, वही उत्सेध उन-उन पृथिवियोंके श्रेणीबद्ध और विश्रेणीगत प्रकीर्णक बिलोंमें स्थित नारकियोंके शरीरका भी जानना चाहिए ॥२७१॥

॥ इसप्रकार नारकियोंके शरीरका उत्सेध-प्रमाण समाप्त हुआ ॥४॥

नोट :—गाथा २१७, २२० से २२६, २३१ से २४१, २४३ से २५१, २५३ से २५६, २६१ से २६४ और २६६ से २६९ से सम्बन्धित मूल संदृष्टियोंका अर्थ निम्नांकित तालिका द्वारा दर्शाया गया है :—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

---

1. द. समत्ता।

सातों नरकोंके प्रत्येक पटल-स्थित नारकियोंके शरीरके उत्सेधका विवरण

पहली पृथिवी				दूसरी पृथिवी				तीसरी पृथिवी			
पटल सं०	धनुष	हाथ	अंगुल	पटल सं०	धनुष	हाथ	अंगुल	पटल सं०	धनुष	हाथ	अंगुल
१	०	३	०	१	८	२	२ २/११	१	१७	१	१० २/३
२	१	१	८ १/२	२	९	०	२२ ४/११	२	१९	०	९ १/३
३	१	३	१७	३	९	३	१८ ६/११	३	२०	३	८
४	२	२	१ १/२	४	१०	२	१४ ८/११	४	२२	२	६ २/३
५	३	०	१०	५	११	१	१० १०/११	५	२४	१	५ १/३
६	३	२	१८ १/२	६	१२	०	७ १/११	६	२६	०	४
७	४	१	३	७	१२	३	३ ३/११	७	२७	३	२ २/३
८	४	३	११ १/२	८	१३	१	२३ ५/११	८	२९	२	१ १/३
९	५	१	२०	९	१४	०	१९ ७/११	९	३१	१	०
१०	६	०	४ १/२	१०	१४	३	१५ ९/११				
११	६	२	१३	११	१५	२	१२				
१२	७	०	२१ १/२								
१३	७	३	६								

सातों नरकोंके प्रत्येक पटल-स्थित नारकियोंके शरीरके उत्सेधका विवरण

चौथी पृथिवी				पाँचवीं पृथिवी				छठी पृथिवी				सातवीं पृथिवी	
पटल सं०	धनुष	हाथ	अंगुल	पटल सं०	धनुष	हाथ	अंगुल	पटल सं०	धनुष	हाथ	अंगुल	पटल सं०	धनुष
१	३५	२	२० $\frac{४}{७}$	१	७५	०	०	१	१६६	२	१६	१	५००
२	४०	०	१७ $\frac{१}{७}$	२	८७	२	०	२	२०८	१	८		
३	४४	२	१३ $\frac{५}{७}$	३	१००	०	०	३	२५०	०	०		
४	४९	०	१० $\frac{२}{७}$	४	११२	२	०						
५	५३	२	६ $\frac{६}{७}$	५	१२५	०	०						
६	५८	०	३ $\frac{३}{७}$										
७	६२	२	०										

❖

रत्नप्रभादि पृथिवियोंमें अवधिज्ञानका निरूपण

रयणप्पहावणीए कोसा चत्तारि ओहिणाण-खिदी ।
तप्परदो पत्तेक्कं परिहाणी गाउदद्धेण ॥२७२॥

को ४ । $\frac{७}{२}$ । ३ । $\frac{५}{२}$ । २ । $\frac{३}{२}$ । १ ।

॥ ओहि सम्मत्ता ॥५॥

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीमें अवधिज्ञानका क्षेत्र चार कोस प्रमाण है, इसके आगे प्रत्येक पृथिवीमें उक्त अवधि-क्षेत्रमेसे अर्धगव्यूति (कोस) की कमी होती गई है ॥२७२॥

विशेषार्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीके नारकी जीव अपने अवधिज्ञानसे ४ कोस तक, शर्कराके ३$\frac{१}{२}$ कोस तक, बालुका पृ० के ३ कोस तक, पंक पृ० के २$\frac{१}{२}$ कोस तक, धूम पृ० के २ कोस तक, तमः पृ० के १$\frac{१}{२}$ कोस तक और महातमः प्रभाके नारकी जीव एक कोस तक जानते हैं ।

॥ इसप्रकार अवधिज्ञानका वर्णन समाप्त हुआ ॥५॥

नारकी जीवोंमें बीस-प्ररूपणाओंका निर्देश

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णाय मग्गणा कमसो ।
उवजोगा कहिदव्वा[1] णारइयाणं जहा-जोग्गं[2] ॥२७३॥

अर्थ :—नारकी जीवोंमें यथायोग्य क्रमशः गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, मार्गणा और उपयोग (ज्ञान-दर्शन), इनका कथन करने योग्य है ॥२७३॥

नारकी जीवोंमें गुणस्थान

चत्तारो गुणठाणा णारय-जीवाण होंति सव्वाणं ।
मिच्छाइट्ठी सासण-मिस्साणि तह अविरदो सम्मो ॥२७४॥

अर्थ :—सब नारकी जीवोंके मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र और अविरतसम्यग्दृष्टि, ये चार गुणस्थान हो सकते हैं ॥२७४॥

१. क. कयदव्वा । २. द. जहाजोग्गं ।

उपरितन गुणस्थानोंका निषेध

ताण अपच्चक्खाणावरणोदय-सहिद-सव्व-जीवाणं ।
हिंसाणंद-जुदाणं णाणाविह-संकिलेस-पउराणं ॥२७५॥

देसविरदादि-उवरिम-दस-गुणठाणाण[1] हेदुभूदाओ ।
जाओ विसोहियाओ[2] कइया वि ण ताओ जायंति ॥२७६॥

अर्थ :—अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे सहित, हिंसानन्दी रौद्र-ध्यान और नाना-प्रकारके प्रचुर संक्लेशोंसे संयुक्त उन सब नारकी जीवोंके देशविरत आदि उपरितन दस गुणस्थानोंके हेतुभूत जो विशुद्ध परिणाम हैं, वे कदापि नहीं होते हैं ॥२७५-२७६॥

नारकी जीवोंमें जीव-समास और पर्याप्तियाँ

पज्जत्तापज्जत्ता जीव-समासा य होंति एदाणं ।
पज्जत्ती छब्भेया तेत्तियमेत्ता अपज्जत्ती ॥२७७॥

अर्थ :—इन नारकी जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास तथा छह प्रकारकी पर्याप्तियाँ एवं इतनी (छह) ही अपर्याप्तियाँ भी होती हैं ॥२७७॥

नारकी जीवोंमे प्राण और संज्ञाएँ

पंच वि इंदिय-पाणा [3]मण-वय-कायाणि आउपाणा य ।
आणप्पाणप्पाणा दस पाणा होंति चउ सण्णा ॥२७८॥

अर्थ :—(नारकी जीवोंके) पाँचों इन्द्रियाँ, मन-वचन-काय ये तीन बल, आयु और आन प्राण (श्वासोच्छ्वास) ये दसों प्राण तथा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह, ये चारों संज्ञाएँ होती हैं ॥२७८॥

नारकी जीवोंमें चौदह मार्गणाएँ

णिरय-गदीए सहिदा पंचक्खा तह य होंति तस-काया ।
चउ-मण-वय-जुग-वेगुव्विय-कम्मइय-सरीरजोग-जुदा ॥२७९॥

---

१. द. ब. ज. क. ठ. गुणठाणाणि । २. ब. उवसोधियाउ । ३. ठ. ज. मणि, बचि ।

होंति णपुंसय-वेदा णारय-जीवा य दव्व-भावेहिं ।
सयल-कसाया-सत्ता संजुत्ता णाण-छक्केण ॥२८०॥

ते सव्वे णारइया विविहेहिं असंजमेहिं परिपुण्णा ।
चक्खु-अचक्खू-ओही-दंसण-तिदएण जुत्ता य ॥२८१॥

भावेसुं तिय-लेस्सा ताओ किण्हा य णील-काओया ।
दव्वेणुक्कड-किण्हा[1] भव्वाभव्वा य ते सव्वे ॥२८२॥

छस्सम्मत्ता ताइं उवसम-खइयाइ-वेदगं-मिच्छो ।
[2]सासण-मिस्सा य तहा संणी आहारिणो अणाहारा ॥२८३॥

अर्थ :—सब नारकी नरकगतिसे सहित, पंचेन्द्रिय, त्रसकायवाले, चार मनोयोगों, चार वचनयोगों तथा दो वैक्रियिक और कार्मण, इन तीन काय-योगोंसे सयुक्त हैं। वे नारकी जीव द्रव्य और भावसे नपुंसकवेदवाले; सम्पूर्ण कषायोंसे युक्त, छह ज्ञान वाले, विविध प्रकारके असयमोंसे परिपूर्ण; चक्षु, अचक्षु, अवधि, इन तीन दर्शनोंसे युक्त; भावकी अपेक्षा कृष्ण, नील, कापोत, इन तीन लेश्याओं और द्रव्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट कृष्ण लेश्यासे सहित; भव्यत्व और अभव्यत्व परिणामसे युक्त, औपशमिक, क्षायिक, वेदक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन छह सम्यक्त्वोंसे सहित, संज्ञी, आहारक एवं अनाहारक होते हैं ॥२७९-२८३॥

विशेषार्थ :—नरक भूमियोंमें स्थित सभी नारकी जीव १ गति (नरक), २ जाति (पंचेन्द्रिय), ३ काय (त्रस), ४ योग (सत्य, असत्य, उभय, अनुभयरूप चार मनोयोग, चार वचन योग तथा वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र और कार्मण तीन काययोग), ५ वेद (नपुंसकवेद), ६ कषाय (स्त्रीवेद और पुरुष वेदसे रहित तेईस), ७ ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि, कुमति, कुश्रुत और विभंग), ८ असंयम, ९ दर्शन (चक्षु, अचक्षु, अवधि), १० लेश्या (भावापेक्षा तीन अशुभ और द्रव्यापेक्षा उत्कृष्ट कृष्ण), ११ भव्यत्व (एवं अभव्यत्व), १२ सम्यक्त्व (औपशमिक, क्षायिक, वेदक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र), १३ संज्ञी और १४ आहारक (एवं अनाहारक) इन चौदह मार्गणाओंमेंसे यथायोग्य भिन्न भिन्न मार्गणाओंसे संयुक्त होते हैं।

---

१. द. किण्हो। २. ब. सासणि-मिस्सा।

नारकी जीवोंमें उपयोग

सायार-अणायारा उवयोगा दोण्णि होंति तेसिं च ।
तिव्व-कसाएण जुदा तिव्वोदय-अप्पसत्त-पयडि-जुदा ।।२८४।।

।। गुणठाणादी समत्ता ।।६।।

अर्थ :—तीव्र कषाय एवं तीव्र उदयवाली पाप-प्रकृतियोंसे युक्त उन-उन नारकी जीवोंके साकार (ज्ञान) और निराकार (दर्शन) दोनों ही उपयोग होते हैं ।।२८४।।

।। इसप्रकार गुणस्थानादिका वर्णन समाप्त हुआ ।।६।।

नरकोंमें उत्पन्न होने वाले जीवोंका निरूपण

पढम-धरंतमसण्णी पढमं बिदियासु सरिसओ जादि ।
पढमादी-तदियंतं पक्खी भुजगा[1] वि आतुरिमं ।।२८५।।

पंचम-खिदि-परियंतं सिंहो इत्थी वि छट्ठ-खिदि-अंतं ।
आसत्तम-भूवलयं मच्छा मणुवा य वच्चंति ।।२८६।।

अर्थ :—पहली पृथिवीके अन्त-पर्यन्त असंज्ञी तथा पहली और दूसरी पृथिवीमें सरीसृप जाता है। पहली से तीसरी पृथिवी पर्यन्त पक्षी एवं चौथी पृथिवी पर्यन्त भुजंगादिक उत्पन्न होते हैं ।।२८५।।

अर्थ :– पाँचवीं पृथिवी पर्यन्त सिंह, छठी पृथिवी तक स्त्री और सातवीं भूमि तक मत्स्य एवं मनुष्य ही जाते हैं ।।२८६।।

नरकोंमें निरन्तर उत्पत्तिका प्रमाण

अट्ठ-सग-छक्क-पण-चउ-तिय-दुग-वाराओ सत्त-पुढवीसु ।
कमसो उप्पज्जंते असण्णि-पमुहाइ उक्कस्से ।।२८७।।

।। उप्पज्जमाण-जीवाण वण्णणं समत्तं[2] ।।७।।

---

१. द. ब ठ. भुयंगाबियायए । २. द. ज. सम्मत्ता ।

अर्थ :—सातों पृथिवियोंमें क्रमशः वे असंज्ञी आदिक जीव उत्कृष्ट-रूपसे आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन और दो बार उत्पन्न होते हैं ।।२८७।।

विशेषार्थ :—नरकसे निकला हुआ कोई भी जीव असंज्ञी और सम्मूर्च्छन जन्म वाला नहीं होता तथा सातवें नरकसे निकला हुआ कोई भी जीव मनुष्य नहीं होता, अतः नरकसे निकले हुए जीवको असंज्ञी, मत्स्य और मनुष्य पर्याय धारण करनेके पूर्व एक बार नियमसे क्रमशः संज्ञी तथा गर्भज तिर्यञ्च पर्याय धारण करनी ही पड़ती है। इसी कारण इन जीवोंके बीचमें एक-एक पर्यायका अन्तर होता है, किन्तु सरीसृप, पक्षी, सर्प, सिंह और स्त्रीके लिए ऐसा नियम नहीं है, वे बीचमें अन्य किसी पर्यायका अन्तर डाले बिना ही उत्पन्न हो सकते हैं।

। इसप्रकार उत्पद्यमान जीवोंका वर्णन समाप्त हुआ ।।७।।

रत्नप्रभादिक पृथिवियोंमें जन्म-मरणके अन्तरालका प्रमाण

चउवीस मुहुत्ताणि सत्त दिणा एक्क पक्ख-मासं च ।
दो-चउ-छम्मासाइं पढमादो जम्म-मरण-अंतरियं ।।२८८।।

मु २४ । दि ७ । दि १५ । मा १ । मा २ । मा ४ । मा ६ ।

।। जम्मण-मरण अंतर-काल-पमाणं समत्तं[1] ।।८।।

अर्थ :—चौबीस मुहूर्त, सात दिन, एक पक्ष, एक मास, दो मास, चार मास और छह मास यह क्रमशः प्रथमादिक पृथिवियोंमें जन्म-मरणके अन्तरका प्रमाण है ।।२८८।।

विशेषार्थ :—यदि कोई भी जीव पहली पृथिवीमें जन्म या मरण न करे तो अधिकसे अधिक २४ मुहूर्त तक, दूसरीमें ७ दिन तक, तीसरीमें एक पक्ष (पन्द्रह दिन) तक, चौथीमें एक माह तक, पाँचवी में दो माह तक, छठीमें ४ माह तक और सातवीं पृथिवीमें उत्कृष्टतः ६ माह तक न करे, इसके बाद नियमसे वहाँ जन्म-मरण होगा ही होगा।

इसप्रकार जन्म-मरणके अन्तरकालका प्रमाण समाप्त हुआ ।।८।।

---

१ द ज. सम्मत्ता ।

नरकोंमें एक समयमें जन्म-मरण करने वालोंका प्रमाण

रयणादि-णारयाणं णिय-संखादो असंखभागमिदा ।
पडि-समयं जायंते [1]तत्तिय-मेत्ता य मरंति पुढं ॥२८९॥

—२+ / रि[१२]	—— / १२ रि	—— / १० रि	—— / ८ रि	—— / ६ रि	—— / ३ रि	—— / २ रि

[2]उप्पज्जण-मरणाण परिमाण-वण्णणा समत्ता ॥९॥

अर्थ :—रत्नप्रभादिक पृथिवियोंमें स्थित नारकियोंके अपनी संख्याके असंख्यातवें भाग-प्रमाण नारकी प्रत्येक समयमें उत्पन्न होते हैं और उतने ही मरते हैं ॥२८९॥

विशेषार्थ :—प्रत्येक नरकोंके नारकियोंकी संख्याका प्रमाण गा० १९६-२०२ पर्यन्त दर्शाया गया है । जिनकी संदृष्टियाँ ¹²।, ¹⁰।, ⁸।............इसप्रकार दी गई हैं । इनमें आड़ी लाइन (—) जगच्छ्रेणीकी, खड़ी पाई (।) वर्गमूलकी और १२, १०, ८ आदि संख्या वर्गमूलके प्रमाणकी द्योतक है । गा० २८९ की संदृष्टि (¹²रि । ¹⁰रि इत्यादि) उन्हीं उपर्युक्त संख्याओंमें असंख्यात (जिसका चिह्न रि है) का भाग देने हेतु ¹²रि इसप्रकार रखी गई हैं ।

इसप्रकार एक समयमें जन्म-मरण करने वाले जीवोंका कथन समाप्त हुआ ॥९॥

नरकसे निकले हुए जीवोंकी उत्पत्तिका कथन

णिक्कंता णिरयादो गब्भ-भवे कम्म-संणि-पज्जत्ते ।
णर-तिरिएसुं जम्मदि [3]तिरियं चिय चरम-पुढवीदो ॥२९०॥

अर्थ :—नरकसे निकले हुए जीव गर्भज, कर्मभूमिज, संज्ञी एवं पर्याप्तक मनुष्यों और तिर्यञ्चोंमें ही जन्म लेते हैं परन्तु सातवीं पृथिवीसे निकला हुआ जीव तिर्यञ्च ही होता है (मनुष्य नहीं होता) ॥२९०॥

---

१. द. क. ज. ठ. तेत्तियमेत्ताए । २. द. ब. ज. क. ठ. उपज्जं । ३. द. तिरिखेचिय, क. ज. ठ. तिरियच्चिय ।

वालेसु[1] दाढीसु[2] पक्खीसुं जलचरेसु आऊणं ।
संखेज्जाऊ-जुत्ता केई णिरएसु वच्चंति ॥२९१॥

अर्थ :—नरकोंसे निकले हुए उन जीवोंमेंसे कितने ही जीव व्यालों (सर्पादिकों) में, डाढ़ों वाले (तीक्ष्ण दाँतों वाले व्याघ्रादिक पशुओं) में (गृद्धादिक) पक्षियोंमें तथा जलचर जीवोंमें जन्म लेकर और संख्यात वर्षकी आयु प्राप्तकर पुनः नरकोंमें जाते हैं ॥२९१॥

केसव-बल-चक्कहरा ण होंति कइयावि णिरय-संचारी ।
जायंते तित्थयरा तदीय-खोणीअ परियंतं ॥२९२॥

अर्थ :—नरकोंमें रहने वाले जीव वहाँसे निकलकर नारायण, (प्रतिनारायण), बलभद्र और चक्रवर्ती कदापि नहीं होते हैं । तीसरी पृथिवी पर्यन्तके नारकी जीव वहाँसे निकलकर तीर्थंकर हो सकते हैं ।२९२॥

आतुरिम-खिदी चरिमंगधारिणो संजदा य धूमंतं ।
छट्ठंतं देसवदा सम्मत्तधरा केइ चरिमंतं ॥२९३॥

॥ आगमण-वण्णणा समत्ता ॥१०॥

अर्थ :—चौथी पृथिवी पर्यन्तके नारकी वहाँसे निकलकर चरम-शरीरी, धूमप्रभा पृथिवी तकके जीव सकलसंयमी एवं छठी पृथिवी-पर्यन्तके नारकी जीव देशव्रती हो सकते हैं । सातवीं पृथिवीसे निकले हुए जीवोंमेंसे विरले ही सम्यक्त्वके धारक होते हैं ॥२९३॥

॥ इसप्रकार आगमका वर्णन समाप्त हुआ ॥१०॥

नरकायुके बन्धक परिणाम

आउस्स बंध-समये सिलो व्व सेलो[3] व्व वेणु-मूले य ।
किमिरायव्व[4] कसाओदयम्हि बंधेदि णिरयाउं ॥२९४॥

---

१. द. ब. ज. क. ठ. वालीसुं । २. द. क. ज. ठ. दालीसुं । ३ द. ब. क. ज. ठ. सिलोव्व सिलोव्व । ४. ज. ठ. किमिराउकसाउदयमि, ब. कसाओदयमि, क. कसाया उदयंमि ।

अर्थ :—आयुबन्धके समय शिलाकी रेखा सदृश क्रोध, शैल सदृश मान, बांसकी जड़ सदृश माया और किमिराग [किरमिच (लालरंग)] सदृश लोभ कषायका उदय होनेपर नरकायुका बन्ध होता है ।।२९४।।

किण्हाग्र णील-काऊणुदयादो बंधिऊण णिरयाऊ ।
मरिऊण ताहि जुत्तो पावइ णिरयं महाघोरं[1] ।।२९५।।

अर्थ :—कृष्ण, नील अथवा कापोत इन तीन लेश्याओंका उदय होनेसे (जीव) नरकायु बाँधकर और मरकर उन्हीं लेश्याओंसे युक्त हुआ महा-भयानक नरकको प्राप्त करता है ।।२९५।।

अशुभ-लेश्या युक्त जीवोंके लक्षरण

किण्हादि-ति-लेस्स-जुदा जे पुरिसा ताण लक्खणं एवं ।
गोत्तं तह स-कलत्तं एक्कं वंछेदि मारिदुं दुट्ठो ।।२९६।।

धम्मदया-परिचत्तो[2] अमुक्क-वइरो पयंड-कलह-यरो ।
बहु-कोहो किण्हाए जम्मदि धूमादि-चरिमंते[3] ।।२९७।।

अर्थ :—जो पुरुष कृष्णादि तीन लेश्याओं सहित होते हैं, उनके लक्षण इसप्रकार हैं— ऐसे दुष्ट पुरुष (अपने ही) गोत्रीय तथा एक मात्र स्वकलत्रको भी मारनेकी इच्छा करते हैं, दयाधर्मसे रहित होते हैं, कभी शत्रुताका त्याग नहीं करते, प्रचण्ड कलह करने वाले और बहुत क्रोधी होते हैं। कृष्ण लेश्याधारी ऐसे जीव धूमप्रभा पृथिवीसे लेकर अन्तिम पृथिवी पर्यन्त जन्म लेते हैं । २९६-२९७।।

विसयासत्तो विमदी माणी विण्णाण-वज्जिदो मंदो ।
अलसो भीरू माया-पवंच-बहुलो य णिद्दालू ।।२९८।।

परवंचणप्पसत्तो लोहंधो धण्ण धण-सुहाकंखी[4] ।
बहु-सण्णा णीलाए जम्मदि तदियादि धूमंतं ।।२९९।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. प्रत्योः गाथेयं अग्रिम-गाथायाः पश्चादुपलभ्यते । २. ब परिचित्तो । ३. ज. ठ. चरिमंतो । ४. द. ज. ठ धण्णधण्णसुहाकंखी । क. धरण-धरण सुहाकंखी ।

अर्थ :—विषयोंमें आसक्त, मति-हीन, मानी, विवेक-बुद्धिसे रहित, मूर्ख, आलसी, कायर, प्रचुर माया-प्रपंचमें संलग्न, निद्राशील, दूसरोंको ठगनेमें तत्पर, लोभसे अन्धा, धन-धान्यजनित सुखका इच्छुक एवं बहुसंज्ञा (आहार-भय-मैथुन और परिग्रह संज्ञाओंमें) आसक्त जीव नील लेश्याको धारण कर धूमप्रभा पृथिवी पर्यन्त जन्म लेता है ।।२९८-२९९।।

अप्पाणं मण्णंता अण्णं णिंदेदि अलिय-दोसेहिं ।
भीरू, सोक-विसण्णो परावमाणी असूया अ[1] ।।३००।।

अमुणिय-कज्जाकज्जो धूवंतो [2]परम-पहरिसं वहइ ।
अप्पं पि वि मण्णंतो परं पि कस्स वि ण-पत्तिअई ।।३०१।।

थुव्वंतो देइ धणं मरिदुं वंछेदि[3] समर-संघट्टे ।
काऊए संजुत्तो जम्मदि धम्मादि-मेघंतं ।।३०२।।

।। आऊ-बंधण-परिणामा समत्ता ।।११।।

अर्थ :—जो स्वयकी प्रशसा और मिथ्या दोषोंके द्वारा दूसरोंकी निन्दा करता है, भीरु है, शोकसे खेद खिन्न होता है, परका अपमान करता है, ईर्ष्या ग्रस्त है, कार्य-अकार्यको नहीं समझता, चंचलचित्त होते हुए भी अत्यन्त हर्षका अनुभव करता है, अपने समान ही दूसरोंको भी समझकर किसीका भी विश्वास नही करता है, स्तुति करने वालोंको धन देता है और समर-संघर्षमें मरनेकी इच्छा करता है, ऐसा प्राणी कापोत लेश्यासे संयुक्त होकर धर्मासे मेघा पृथिवी पर्यन्त जन्म लेता है ।।३००-३०२।।

।। इसप्रकार आयु-बन्धक परिणामोंका कथन समाप्त हुआ ।।११।।

रत्नप्रभादि नरकोंमें जन्म-भूमियोंके आकारादि

इंदय-[4]सेढीबद्ध-प्पइण्णयाणं हवंति उवरिम्मि ।
बाहिं बहु अस्सि-जुदो अंतो वट्टा अहोमुहा-कंठा ।।३०३।।

चेट्ठंदि जम्मभूमी सा धम्मप्पहुदि-खेत्त-तिदयम्मि ।
उट्टिय[5]-कोत्थलि-कुंभी-मोद्दलि-मोग्गर-मुइंग-णालि-णिहा ।।३०४।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. असूयाय । २. द. ब. ज. क. ठ. परमपहइ सव्वहइ । ३. द. बुं छेदि ।
४. द. ब. ज. क. ठ. इंदियसेढी । ५ द. उब्बिय, ब. क ज. ठ. उत्तिय ।

अर्थ :—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंके ऊपर अनेक प्रकारकी तलवारोंसे युक्त, भीतर गोल और अधोमुखकण्ठवाली जन्म-भूमियाँ हैं। वे जन्म भूमियाँ घर्मा पृथिवीसे तीसरी पृथिवी पर्यन्त उष्ट्रिका, कोथली, कुम्भी, मुद्गलिका, मुद्गर, मृदंग और नालीके सदृश हैं ॥३०३-३०४॥

गो-हत्थि-तुरय-भत्था [1]अब्जप्पुड-अंबरीस-दोणीओ ।
चउ-पंचम-पुढवीसु आयारो जम्म-भूमीणं ॥३०५॥

अर्थ :—चौथी और पाँचवीं पृथिवीमें जन्म-भूमियोंके आकार गाय, हाथी, घोड़ा, भस्त्रा, अब्जपुट, अम्बरीष (भड़भूंजाके भाड़) और द्रोणी (नाव) जैसे हैं ॥३०५॥

झल्लरि-[2]मल्लय-पत्थी-केयूर-मसूर-साणय-किलिंजा ।
धय-दीवि-[3]चक्कवायस्सिगाल-सरिसा महाभीमा ॥३०६॥

अज्ज-खर-करह-सरिसा[4] संदोल अ-रिच्छ-संणिहायारा ।
छस्सत्तम-पुढवीणं [5]दुरिक्ख-णिज्जा महाघोरा ॥३०७॥

अर्थ :—छठी और सातवीं पृथिवीकी जन्म-भूमियाँ झालर (वाद्य-विशेष), मल्लक (पात्र-विशेष), बांसका बना हुआ पात्र, केयूर, मसूर, शाणक, किलिंज (तृणकी बनी बड़ी टोकरी), ध्वज, द्वीपी, चक्रवाल, शृगाल, अज, खर, करभ, संदोलक (झूला) और रीछके सदृश हैं। ये जन्म-भूमियाँ दुष्प्रेक्ष्य एवं महाभयानक हैं ॥३०६-३०७॥

करवत्त-सरिच्छाओ अंते वट्टा समंतदो[6] ठाओ ।
वज्जमईओ णारय-जम्मण-भूमीओ [7]भीमाओ ॥३०८॥

अर्थ :—नारकियोंकी (उपर्युक्त) जन्म-भूमियाँ अन्तमें करोंतके सदृश, चारों ओरसे गोल, वज्रमय, कठोर और भयंकर हैं ॥३०८॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. अंतंपुड। २. ज. ठ. मस्खरि, मल्लय, क. मल्लय पक्खी। ३. द. चक्कवायसीयाल। ब. क. ठ. चक्कवायसीवाल। ज. चक्कवायासीवाल। ४. क. ज. ठ. सरिछा संदोलय। ५. द. दुरिक्खाद्धिज्जा। ६. ब. समंतदाओ। ७. द. ब. क. ज. ठ. भीमाए।

नरकोंमें दुर्गन्ध

अज-गज-महिस-तुरंगम-खरोट्ट-मज्जार-मेस-पहुदीणं ।
[1]कुथिताणं गंधादो णिरए गंधा अणंतगुणा ॥३०९॥

अर्थ :—बकरी, हाथी, भैंस, घोड़ा, गधा, ऊँट, बिलाव और मेंढ़े आदिके सड़े-गले शरीरोंकी दुर्गन्धकी अपेक्षा नरकोंमें अनन्तगुणी दुर्गन्ध है ॥३०९॥

जन्म-भूमियोंका विस्तार

पण-कोस-वास-जुत्ता होंति जहण्णम्हि जम्म-भूमीओ ।
जेट्ठे [2]चउस्सयाणि दह-पण्णरसं च मज्झिमए ॥३१०॥

। ५ । ४०० । १०-१५ ।

अर्थ :—नारकी जीवोंकी जन्म-भूमियोंका विस्तार जघन्यतः पाँच कोस, उत्कृष्टतः चारसौ कोस और मध्यम रूपसे दस-पन्द्रह कोस प्रमाण वाला है ॥३१०॥

विशेषार्थ :—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंके ऊपर जो जन्म-भूमियाँ हैं, उनका जघन्य विस्तार ५ कोस, मध्यम विस्तार १०-१५ कोस और उत्कृष्ट विस्तार ४०० कोस प्रमाण है ।

जन्म-भूमियोंकी ऊँचाई एवं आकार

जम्मण-खिदीण उदया णिय-णिय-रुंदाणि पंच-गुणिदाणि ।
सत्त-ति-दुगेक्क-कोणा[3] पण-कोणा होंति एदाओ ॥३११॥

। २५ । २०००० । ५०-७५ ॥ ७ । ३ । २ । १ । ५ ।

अर्थ :—जन्म-भूमियोंकी ऊँचाई अपने-अपने विस्तारकी अपेक्षा पाँच गुनी है । ये जन्म-भूमियाँ सात, तीन, दो, एक और पाँच कोन वाली हैं ॥३११॥

विशेषार्थ :—जन्म-भूमियोंकी जघन्य ऊँचाई (५ × ५) = २५ कोस या ६¼ योजन, मध्यम ऊँचाई (१० × ५ = ५०), (१५ × ५) = ७५ कोस अथवा १२½ । १८¾ योजन और उत्कृष्ट ऊँचाई

---

१. द. कुधिताणं । २. द. ज. क. चउस्सयाणि । ठ. चउसयाणि । ३. द. ब. कोणे ।

(४०००×५)=२०००० कोस अथवा ५००० योजन प्रमाण है। वे जन्म-भूमियाँ ७। ३। २। १ और ५ कोन वाली हैं।

जन्म-भूमियोंके द्वार-कोण एवं दरवाजे

एक्क दु ति पंच सत्त य जम्मण-खेत्तेसु द्वार-कोणाणि।
तेत्तियमेत्ता दारा सेढीबद्धे पइण्णए एवं ॥३१२॥

॥ १। २। ३। ५। ७ ॥

अर्थ :—जन्म-भूमियोंमें एक, दो, तीन, पांच और सात द्वारकोण तथा इतने ही दरवाजे होते हैं, इसप्रकारकी व्यवस्था केवल श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलोंमें ही है ॥३१२॥

ति-द्वार-ति-कोणाओ इंदय-णिरयाण[1] जम्म-भूमीओ।
णिच्चंधयार-बहुला [2]कत्थुरीहिंतो अणंत-गुणो ॥३१३॥

जम्मण-भूमी गदा ॥१२॥

अर्थ :—इन्द्रक बिलोंकी जन्म-भूमियाँ तीन द्वार और तीन कोनोंसे युक्त हैं। उक्त सम्पूर्ण जन्म-भूमियाँ नित्य ही कस्तूरीसे भी अनन्तगुणित काले अन्धकारसे व्याप्त हैं ॥३१३॥

॥ इसप्रकार जन्म-भूमियोंका वर्णन समाप्त हुआ ॥१२॥

नरकोंके दुःखोंका वर्णन

पावेणं णिरय-बिले जादूणं तो[3] मुहुत्तगंमेत्तेण।
छप्पज्जत्ति पाविय आकस्सिय-भय-जुदो-होदि[4] ॥३१४॥

भीदीए कंपमाणो चलिदुं दुक्खेण [5]पेल्लिओ संतो।
छत्तीसाउह-मज्झे पडिदूणं तत्थ उप्पलइ ॥३१५॥

1. द. ब. क. णिरयाणि, ज. ठ. णिरायाणि। 2. क. ज. ठ. कत्थुरी। 3. द. ताममुत्तणं मेत्ते, ब. क. ज. ठ. ता मुहुत्तणं-मेत्ते। 4. ब. होदि। 5. द. पविओ, ब. पच्चिओ, क. पच्चिउ, ज. पच्चिओ, ठ. पच्चिउ।

अर्थ :—नारकी जीव पापसे नरकबिलमें उत्पन्न होकर और एक मुहूर्त मात्र कालमें छह पर्याप्तियोंको प्राप्त कर आकस्मिक भयसे युक्त होता है। भयसे कांपता हुआ बड़े कष्टसे चलनेके लिए प्रस्तुत होकर छत्तीस आयुधोंके मध्यमें गिरकर वहाँसे उछलता है ॥३१४-३१५॥

उच्छेह-जोयणाणि सत्त धणू छस्सहस्स-पंच-सया।
उप्पलइ पढम-खेत्ते दुगुणं दुगुणं कमेण सेसेसु ॥३१६॥

॥ जो ७ । ध ६५०० ॥

अर्थ :—पहली पृथ्वीमें जीव सात उत्सेध योजन और छह हजार, पाँच सौ धनुष प्रमाण ऊँचा उछलता है, शेष पृथिवियोंमें उछलनेका प्रमाण क्रमशः उत्तरोत्तर दूना-दूना है ॥३१६॥

विशेषार्थ :—घर्मा पृथ्वीके नारकी ७ उत्सेध योजन ३½ कोस, वंशाके १५ योजन २½ कोस, मेघाके ३१ योजन १ कोस, अञ्जनाके ६२½ योजन, अरिष्टाके १२५ योजन, मघवीके २५० योजन और माघवी पृथ्वीके नारकी जीव ५०० योजन ऊँचे उछलते हैं।

दट्ठूण मय-सिलिंबं जह वग्घो तह पुराण-णेरइया।
णव-णारयं णिसंसा णिब्भच्छंता पधावंति ॥३१७॥

अर्थ :—जैसे व्याघ्र, मृगशावकको देखकर उस पर झपटता है, वैसे ही क्रूर पुराने नारकी नये नारकीको देखकर धमकाते हुए उसकी ओर दौड़ते हैं ॥३१७॥

साण-गणा एक्केक्के दुक्खं [1]दावंति दारुण-पयारं।
तह अण्णोण्णं णिच्चं दुस्सह-पीडाओ कुव्वंति ॥३१८॥

अर्थ :—जिसप्रकार कुत्तोंके झुण्ड एक दूसरेको दारुण दुःख देते हैं उसीप्रकार वे नारकी भी नित्य ही परस्पर में एक दूसरे को असह्य रूपसे पीड़ित किया करते हैं ॥३१८॥

चक्क-सर-सूल-तोमर-मोग्गर-करवत्त-[2]कोंत-सूईणं।
मुसलासि-प्पहुदीणं वण-णग-[3]दावाणलादीणं ॥३१९॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. धावति। २. द. कुंत। ३. द. ब. क. ज. ठ. दावाणणादीणं।

वय-वग्घ-तरच्छ-सिगाल-साण-मज्जार-सीह-[1]पक्खीणं ।
[2]अण्णोण्णं च सया ते णिय-णिय-देहं विगुव्वंति ॥३२०॥

अर्थ :—वे नारकी जीव, चक्र, बाण, शूली, तोमर, मुद्गर, करोंत, भाला, सुई, मूसल और तलवार आदिक शस्त्रास्त्र रूप वन एवं पर्वतकी आग रूप तथा भेड़िया, व्याघ्र, तरक्ष (श्वापद), शृगाल, कुत्ता, बिलाव और सिंह आदि पशुओं एवं पक्षियोंके समान परस्पर सदैव अपने-अपने शरीरकी विक्रिया किया करते हैं ।।३१९-३२०।।

गहिर-बिल-धूम-मारुद-अइतत्त-कहल्लि-जंत-चुल्लीणं[3] ।
कंडणि-पीसणि-दव्वीण रूवमण्णे विकुव्वंति ।।३२१।।

अर्थ :—अन्य नारकी जीव, गहरे बिल, धुँआ, वायु, अत्यन्त तपे हुए खप्पर, यंत्र, चूल्हे, कण्डनी (एक प्रकारका कूटनेका उपकरण), चक्की और दर्वी (बर्छी) आकाररूप अपने-अपने शरीरकी विक्रिया करते हैं ।।३२१।।

सूवर-वणग्गि-सोणिद-किमि-सरि-दह-कूव-[4]वाइ-पहुदीणं ।
पुह-पुह-रूव-विहीणा णिय-णिय-देहं पकुव्वंति ।।३२२।।

अर्थ :—नारकी जीव शूकर, दावानल तथा शोणित और कीड़ोंसे युक्त नदी, तालाब, कूप एवं वापी आदि रूप पृथक्-पृथक् रूपसे रहित अपने-अपने शरीरकी विक्रिया करते हैं । तात्पर्य यह है कि नारकियोंके अपृथक् विक्रिया होती है, देवोंके सदृश उनके पृथक् विक्रिया नहीं होती ।।३२२।।

पेच्छिय पलायमाणं णारइयं वग्घ-केसरि-प्पहुदी ।
वज्जमय-वियल-तोंडा [5]कत्थ वि भक्खंति रोसेण ।।३२३।।

अर्थ :—वज्रमय विकट मुखवाले व्याघ्र और सिंहादिक, पीछेको भागने वाले दूसरे नारकी को कहींपर भी क्रोधसे खा डालते हैं ।।३२३।।

पीलिज्जंते[6] केई जंत-सहस्सेहिं विरस-तिलवंता ।
अण्णे हम्मंति तहिं अवरे छेज्जंति विविह-भंगेहिं ।।३२४।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. पसूणं । २ द. अण्णाणं । ३. ब. जंतच्चूलीणं । ४. द. कूववाव ।
५. द. तुंडो कत्थवि । क. तोंडो कत्थवि, ज. ठ. तोंडे कत्थवि । ६. द. ठ. पालिज्जंते ।

अर्थ :—बिलबिलाते हुए कितने ही नारकी जीव हजारों यंत्रों (कोल्हुओं) में तिलकी तरह पेल दिए जाते हैं। दूसरे नारकी जीव वहींपर मारे जाते हैं और इतर नारकी विविध प्रकारोंसे छेदे जाते हैं ।।३२४।।

अण्णोण्णं बज्झंते वज्जोवम-संखलाहिं थंभेसु ।
पज्जलिदम्मि हुवासे केई छुब्भंति दुप्पिच्छे ।।३२५।।

अर्थ :—कई नारकी परस्पर वज्रतुल्य सांकलों द्वारा खम्भोंसे बांधे जाते हैं और कई अत्यन्त जाज्वल्यमान दुष्प्रेक्ष्य अग्निमें फेंके जाते हैं ।।३२५।।

फालिज्जंते केई दारुण-करवत्त-कंटग्ग-मुहेहिं ।
अण्णे भयंकरेहिं विज्झंति विचित्त-भल्लेहिं ।।३२६।।

अर्थ :—कई नारकी करोंत (आरी) के कांटोंके मुखोंसे फाड़े जाते हैं और इतर नारकी भयंकर और विचित्र भालोंसे बीधें जाते हैं ।।३२६।।

लोह-कडाहावट्ठिद-तेल्ले तत्तम्मि के वि छुब्भंति ।
[1]घेत्तूणं पच्चंते जलंत-जालुक्कडे जलणे ।।३२७।।

अर्थ :—कितने ही नारकी जीव लोहेके कड़ाहोंमें स्थित गरम—तेलमें फेंके जाते हैं और कितनेही जलती हुई ज्वालाओंसे उत्कट अग्निमें पकाये जाते है ।।३२७।।

इंगालजाल-मुम्मुर-अग्गी-दज्झंत-मह-सरीरा ते ।
सीयल-जल-मण्णंता धाविय पविसंति वइतरिणिं ।।३२८।।

अर्थ :—कोयले और उपलोंकी आगमें जलते हुए स्थूल शरीर वाले वे नारकी जीव शीतल जल समझते हुए वैतरिणी नदीमें दौड़कर प्रवेश करते हैं ।।३२८।।

कत्तरि-सलिलायारा णारइया तत्थ ताण अंगाणि ।
छिंदंति [2]दुस्सहावो पावंता विविह-पीडाओ ।।३२९।।

---

१. द. घुत्तूण । २. द. दुस्सहावे ।

अर्थ :—उस वैतरिणी नदीमें कर्तरी (कैंची) के समान तीक्ष्ण जलके आकार परिणत हुए दूसरे नारकी उन नारकियोंके शरीरोंको अनेक प्रकारकी दुस्सह पीड़ाओंको पहुँचाते हुए छेदते हैं ।।३२९।।

जलयर-कच्छव-मंडूक-मयर-पहुदीण विविह[1]-रूवधरा ।
अण्णोण्णं [2]भक्खंते वइतरणि-जलम्मि[3]णारइया ।।३३०।।

अर्थ :—वैतरिणी नदीके जलमें नारकी कछुआ, मेंढक और मगर आदि जलचर जीवोंके विविध रूप-धारण-कर एक दूसरेका भक्षण करते हैं ।।३३०।।

वइतरणी-सलिलादो णिस्सरिदा पव्वदं पलायंति ।
तस्सिहरमारुहंते तत्तो लोट्टंति अण्णोण्णं ।।३३१।।

गिरि-कंदरं विसंतो खज्जंते वग्घ-सिंह,पहुदीहिं ।
वज्जुक्कड-दाढेहिं दारुण-दुक्खाणि सहमाणा ।।३३२।।

अर्थ :—(पश्चात्) वैतरणीके जलसे निकलते हुए (वे नारकी) पर्वतकी ओर भागते हैं। वे उन पर्वतोंके शिखरोंपर चढ़ते हैं तथा वहाँसे एक दूसरेको गिराते हैं। (इसप्रकार) दारुण दुःखों को सहते हुए (वे नारकी) पर्वतकी गुफाओंमें प्रवेश करते हैं। वहाँ वज्र सदृश प्रचण्ड दाढ़ों वाले व्याघ्रों एवं सिंहों आदिके द्वारा खाये जाते हैं ।।३३१-३३२।।

विउल-सिला-विच्चाले दट्ठूण बिलाणि [4]झत्ति पविसंति ।
तत्थ वि विसाल-जालो उट्ठदि सहसा-महाअग्गी ।।३३३।।

अर्थ :—पश्चात् वे नारकी विस्तीर्ण शिलाओंके बीचमें बिलोंको देखकर शीघ्र ही उनमें प्रवेश करते हैं परन्तु वहाँ पर भी सहसा विशाल ज्वालाओं वाली महान् अग्नि उठती है ।।३३३।।

दारुण-हुदास-जाला-मालाहिं दज्झमाण-सव्वंगा ।
सीदल-छायं मण्णिय असिपत्त-वणम्मि पविसंति ।।३३४।।

---

१. द. विविहरूवधरा। २. द. भक्खंता। ३. द. ब. क. ज. ठ. जलचरंमि। ४. द. झंति, ब. क. ज. ठ. जंति।

अर्थ :—पुनः जिनके सम्पूर्ण अंग भीषण अग्निकी ज्वाला समूहोंसे जल रहे हैं, ऐसे वे नारकी (वृक्षोंकी) शीतल छाया जानकर असिपत्र वनमें प्रवेश करते हैं ॥३३४॥

तत्थ वि विविह-तरूणं पवण-हदा तवग्र-पत्त-फल-पुंजा ।
णिवडंति ताण उवरिं दुप्पिच्छा वज्जदंडे व ॥३३५॥

अर्थ :—वहाँपर भी विविध-प्रकारके वृक्ष, गुच्छे, पत्र और फलोंके समूह पवनसे ताड़ित होकर उन नारकियोंके ऊपर दुष्प्रेक्ष्य वज्रदण्डके समान गिरते हैं ॥३३५॥

चक्क-सर-कणय-तोमर-मोग्गर-करवाल-कोंत-मुसलाणिं ।
अण्णाणि वि ताण सिरं असिपत्त-वणादु णिवडंति ॥३३६॥

अर्थ :—उस असिपत्र-वनसे चक्र, बाण, कनक (शलाकाकार ज्योतिः पिंड), तोमर (बाण-विशेष), मुद्गर, तलवार, भाला, मूसल तथा अन्य और भी अस्त्र-शस्त्र उन नारकियोंके सिरोंपर गिरते हैं ॥३३६॥

छिण्ण[1]-सिरा भिण्ण-करा [2]वुडिदच्छा लंबमाण-अंतचया ।
रुहिरारुण-घोरतणू णिस्सरणा तं वणं[3] पि मुंचंति ॥३३७॥

अर्थ :—अनन्तर छिन्न सिरवाले, खण्डित हाथवाले, व्यथित नेत्र-वाले, लटकती हुई आँतोंके समूहवाले और खूनसे लाल तथा भयानक वे नारकी अशरण होते हुए उस वनको भी छोड़ देत हैं ॥३३७॥

गिद्धा गरुडा काया विहगा अवरे वि वज्जमय-तुंडा ।
कादूण [4]खंड-खंडं ताणंगं ताणि कवलंति ॥३३८॥

अर्थ :—गृद्ध, गरुड़, काक तथा और भी वज्रमय मुख (चोंच) वाले पक्षी नारकियोंके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके खा जाते हैं ॥३३८॥

---

१. ब. क. ज. ठ. णिच्छिण्णसिरा । २. द. ब. क. ज. ठ. वुडिदच्छा । ३. अ. ब. क. ज. ठ. तव्वणम्मि । ४. द खंडु-बंताणंगं, ब. क. ज. ठ. खडु-दंता ताणंगं ।

अंगोवंगट्ठीणं चुण्णं कादूण चंड-घादेहिं ।
विउल-वणाणं मज्झे छुहंति बहुखार-दव्वाणि ॥३३९॥

अइ विलवयंति करुणं [1]लग्गंते अइ वि चलण-जुगलम्मि ।
तह विह सव्वं खंडिय छुहंति चुल्लीसु णारइया ॥३४०॥

अर्थ :—अन्य नारकी उन नारकियोंके अंग और उपांगोंकी हड्डियोंका प्रचंड घातोंसे चूर्ण करके विस्तृत घावोंके मध्यमें क्षार-पदार्थोंको डालते हैं, जिससे वे नारकी करुणापूर्ण विलाप करते हैं और चरणोंमें आ लगते हैं, तथापि अन्य नारकी उसी खिन्न अवस्थामें उन्हें खण्ड-खण्ड करके चूल्हेमें डाल देते हैं ॥३३९-३४०॥

लोहमय-जुवइ-पडिमं परदार-रदाण[2] गाढमंगेसु ।
लायंते अइ-तत्तं खिवंति जलणे जलंतम्मि ॥३४१॥

अर्थ :—परस्त्रीमें आसक्त रहने वाले जीवोंके शरीरोंमें अतिशय तपी हुई लोहमय युवतीकी मूर्तिको दृढतासे लगाते हैं और उन्हें जलती हुई आगमें फेंक देते हैं ॥३४१॥

मंसाहार-रदाणं णारइया ताण अंग-मंसाइं ।
छेत्तूण तम्मुहेसुं छुहंति रुहिरोल्लरूवाणि ॥३४२॥

अर्थ :—जो जीव पूर्व भवमें मांस-भक्षणके प्रेमी थे, उनके शरीरके मांसको काटकर अन्य नारकी रक्तसे भीगे हुए उन्ही मास-खंडोंको उन्हींके मुखोंमें डालते हैं ॥३३९॥

[3]महु-मज्जाहाराणं णारइया तम्मुहेसु अइ-तत्तं ।
लोह-दवं[4] घल्लंते विलीयमाणंग-पब्भारं ॥३४३॥

अर्थ :—मधु और मद्यका सेवन करने वाले प्राणियोंके मुखोंमें नारकी अत्यन्त तपे हुए द्रवित लोहेको डालते हैं, जिससे उनके संतप्त अवयव-समूह भी पिघल जाते हैं ॥३४३॥

करवाल-पहर-भिण्णं कूव-जलं जह पुणो वि संघडदि ।
तह णारयाण अंगं छिज्जंतं विविह-सत्थेहिं[5] ॥३४४॥

---

१. द. अवलंबंते, ब. क. ज. ठ. अंगंते । २. द. परदार-रदाणि । ३. ज. ठ. मुहु । ४ ब. लोहदव्वं । ५. द. विविह-सत्तेहिं ।

अर्थ :—जिसप्रकार तलवारके प्रहारसे भिन्न हुआ कुएका जल फिरसे मिल जाता है, उसी प्रकार अनेकानेक शस्त्रोंसे छेदा गया नारकियोंका शरीर भी फिरसे मिल जाता है। अर्थात् अनेकानेक शस्त्रोंसे छेदनेपर भी नारकियोंका अकाल-मरण कभी नहीं होता ॥३४४॥

कच्छुरि-करकच-[1]सूई-खदिरंगारादि-विविह-भंगीहिं ।
अण्णोण्ण[2]-जादणाओ कुणंति णिरएसु णारइया ॥३४५॥

अर्थ :—नरकोंमें कच्छुरि (कपिकच्छु केवाँच अर्थात् खाज पैदा करने वाली औषधि), करोंत, सुई और खैरकी आग इत्यादि विविध प्रकारोंसे नारकी परस्पर यातनाएँ दिया करते हैं ॥३४५॥

अइ-तित्त-कडुव-कत्थरि-सत्तीदो[3] मट्टियं अणंतगुणं ।
घम्माए णारइया थोवं ति चिरेण भुंजंति ॥३४६॥

अर्थ :—घर्मा पृथ्वीके नारकी अत्यन्त तिक्त और कडवी कत्थरि (कचरी या अचार ?) की शक्तिसे भी अनन्तगुनी तिक्त और कड़वी थोड़ी-थोड़ी मिट्टी चिरकाल खाते रहते हैं ॥३४६॥

अज-गज-महिस-तुरंगम-खरोट्ठ-मज्जार-[4]मेस-पहुदीणं[5] ।
कुहिताणं गंधादो अणंत-गुणिदो हवेदि आहारो ॥३४७॥

अर्थ :—नरकोंमें बकरी, हाथी, भैंस, घोड़ा, गधा, ऊँट, बिल्ली और मेढ़े आदिके सड़े हुए शरीरोंकी गंधसे अनन्तगुनी गन्धवाला आहार होता है ॥३४७॥

अवि-कुणिम-मसुह-मण्णं रयणप्पह-पहुदि जाव चरिमखिदि ।
संखातीद-गुणेहिं दुगुंछणिज्जो हु आहारो ॥३४८॥

अर्थ :—रत्नप्रभासे लेकर अन्तिम पृथिवी पर्यन्त अत्यन्त सड़ा, अशुभ और उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा ग्लानिकर अन्य प्रकारका ही आहार होता है ॥३४८॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सूजीए। २. द. ब. अण्णेण। ३. द. संत्तीदोमंधिअं, ब. क. ज. ठ. संती-दोबमंधियं। ४ द. ब. क. तुरग। ५. ज. ठ. उपहुदीणं।

प्रत्येक पृथिवीके आहारकी गंध-शक्तिका प्रमाण

घम्माए आहारो कोसस्सब्भंतरम्मि ठिद-जीवे ।
इह [1]मारइ गंधेणं सेसे कोसद्ध-वड्ढिया सत्ती ॥३४९॥

॥ १ । $1\frac{1}{2}$ । २ । $2\frac{1}{2}$ । ३ । $3\frac{1}{2}$ । ४ ॥

अर्थ :—घर्मा पृथिवीमें जो आहार है, उसकी गंधसे यहाँ (मध्यलोकमें) पर एक कोसके भीतर स्थित जीव मर सकते हैं, इसके आगे शेष दूसरी आदि पृथिवियोंमें इसकी घातक शक्ति आधा-आधा कोस और भी बढ़ती गई है ॥३४९॥

विशेषार्थ :—प्रथम नरकके नारकी जिस मिट्टीका आहार करते हैं वह मिट्टी अपनी दुर्गन्धसे मनुष्य क्षेत्रके एक कोसमें स्थित जीवोंको, द्वितीय नरककी मिट्टी $1\frac{1}{2}$ कोसमें, तृतीयकी २ कोसमें, चतुर्थकी $2\frac{1}{2}$ कोसमें, पंचमकी ३ कोसमें, षष्ठकी $3\frac{1}{2}$ कोसमें और सप्तम नरककी मिट्टी ४ कोसमें स्थित जीवोंको मार सकती है ।

असुरकुमार-देवोंमें उत्पन्न होनेके कारण

पुव्वं बद्ध-सुराऊ अणंतअणुबंधि-अण्णदर-उदया ।
णासिय-ति-रयण-भावा णर-तिरिया केइ असुर-सुरा ॥३५०॥

अर्थ :—पूर्वमें देवायुका बंध करने वाले कोई-कोई मनुष्य और तिर्यंच अनन्तानुबन्धीमेंसे किसी एकका उदय आजानेसे रत्नत्रयके भावको नष्ट करके असुर-कुमार जातिके देव होते हैं ॥३५०॥

असुरकुमार-देवोंकी जातियाँ एवं उनके कार्य

सिकदाणणासिपत्ता[2] महबल-काला य साम-सबला[3] हि ।
रुद्दंबरिसा विलसिद-णामो महरुद्द-खर-णामा ॥३५१॥

---

१. द. ब. मातहि ।

२. अंबे अंबरिसी चेव, सामे य सबलेवि य ।
रोद्दोवरुद्द काले य महाकालेत्ति आवरे ॥६८॥
असिपत्ते धणुं कुंभे वालुवेयरणीवि य ।
खरस्सरे महाघोसे एवं पण्णरसाहिया ॥६९॥ सूत्रकृतांग-निर्युक्ति, प्रवचनसारोद्धार :—पृ० ३२१

३. द. ब. क. ज. ठ. सबलं ।

कालग्गिरुद्द-णामा कुंभो[1] वेतरणि-पहुदि-असुर-सुरा ।
गंतूण वालुकंतं णारइयाणं[2] पकोपंति ॥३५२॥

अर्थ :—सिकतानन, असिपत्र, महाबल, महाकाल, श्याम, सबल, रुद्र, अम्बरीष, विलसित, महारुद्र, महाखर, काल, अग्निरुद्र, कुम्भ और वैतरणी आदिक असुरकुमार जातिके देव तीसरी बालुका प्रभा पृथिवी तक जाकर नारकी जीवोंको कुपित करते हैं ॥३५१-३५२॥

इह खेत्ते जह मणुवा पेच्छंते मेस-महिस-जुद्धावि ।
तह णिरये असुर-सुरा णारय-कलहं पतुट्ठ-मणा ॥३५३॥

अर्थ :—इस क्षेत्र (मध्यलोक) में जैसे मनुष्य, मैंढे और भैंसे आदिके युद्धको देखते हैं, उसीप्रकार नरकमें असुरकुमार जातिके देव नारकियोंके युद्धको देखते हैं और मनमें सन्तुष्ट होते हैं ॥३५३॥

नरकोमें दुःख भोगनेकी अवधि

एक्क ति सग दस सत्तरस [3]तह बावीसं होंति तेत्तीसं ।
जा [4]सायर-उवमाणा पावंते ताव महु-दुक्खं ॥३५४॥

अर्थ :—रत्नप्रभादि पृथिवियोंमे नारकी जीव जब तक क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सत्तरह, बाईस और तेंतीस सागरोपम पूर्ण होते है, तब तक बहुत भारी दुःख उठाते हैं ॥३५४॥

णिरएसु णत्थि सोक्खं [5]णिमेस-मेत्तं पि णारयाण सदा ।
दुक्खाइ दारुणाइं वड्ढंते पच्चमाणाणं ॥३५५॥

अर्थ :—नरकोंके दुःखोंमें पचने वाले नारकियोंको क्षणमात्रके लिए भी सुख नहीं है । अपितु उनके दारुण-दुःख बढ़ते ही रहते हैं ॥३५५॥

कदलीघादेण विणा णारय-गत्ताणि आउ-अवसाणे ।
मारुद-पहदब्भाइ व णिस्सेसाणि विलीयंते ॥३५६॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. कुंभी । २. द. णारयप्पकोपंति । ३. द. तसय । ४. द. जह अरउवमा, ब. क ज. ठ. जह अरडवुमा । ५ द. ब. क. ज. ठ अणुमिसमेत्तं पि ।

अर्थ :—नारकियोंके शरीर कदलीघात (अकालमरण) के बिना पूर्ण आयुके अन्तमें वायुसे ताड़ित मेघोंके सदृश सम्पूर्ण विलीन हो जाते हैं ॥३५६॥

एवं बहुविह-दुक्खं जीवा पावंति पुव्व-कद-दोसा ।
तद्दुक्खस्स सरूवं को सक्कइ वण्णिदुं सयलं ॥३५७॥

अर्थ :—इसप्रकार पूर्वमें किये गये दोषोंसे जीव (नरकोंमें) नाना प्रकारके दुःख प्राप्त करते हैं, उस दुःखके सम्पूर्ण स्वरूपका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? ॥३५७॥

नरकोंमें उत्पन्न होनेके अन्य भी कारण

सम्मत्त-रयण-पव्वद-सिहरादो मिच्छभाव-खिदि-पडिदो ।
णिरयादिसु अइ-दुक्खं पाविय[1] पविसइ णिगोदम्मि ॥३५८॥

अर्थ :—सम्यक्त्वरूपी रत्नपर्वतके शिखरसे मिथ्यात्व-भावरूपी पृथिवीपर पतित हुआ प्राणी नारकादि पर्यायोंमें अत्यन्त दुःख-प्राप्त कर (परम्परासे) निगोदमें प्रवेश करता है ॥३५८॥

सम्मत्तं देसजमं लहिदूणं[2] विसय-हेदुणा चलिदो ।
णिरयादिसु अइ-दुक्खं पाविय पविसइ णिगोदम्मि ॥३५९॥

अर्थ :—सम्यक्त्व और देशचारित्रको प्राप्तकर जीव विषयसुखके निमित्त (सम्यक्त्व और चारित्रसे) चलायमान हुआ नरकोंमें अत्यन्त दुःख भोगकर (परम्परासे) निगोदमें प्रविष्ट होता है ॥३५९॥

सम्मत्तं सयलजमं लहिदूणं विसय-कारणा चलिदो ।
णिरयादिसु[3] अइ-दुक्खं पाविय पविसइ णिगोदम्मि ॥३६०॥

अर्थ :—सम्यक्त्व और सकल संयमको भी प्राप्तकर विषयोंके कारण उनसे चलायमान होता हुआ यह जीव नरकोंमें अत्यन्त दुःख पाकर (परम्परासे) निगोदमें प्रवेश करता है ॥३६०॥

---

१. द. पावी पइसं णिगोदम्मि । २. द. क. ज. ठ. लद्दूणं । ३. द. ज. ठ. णिरयादी ।

सम्मत्त-रहिय-चित्तो जोइस-मंताविएहिं वट्टंतो ।
णिरयादिसु बहुदुक्खं पाविय पविसइ णिगोदम्मि ।।३६१।।

।। दुक्ख-सरूवं समत्तं ।।१३।।

अर्थ :—सम्यग्दर्शनसे विमुख चित्तवाला, ज्योतिष और मंत्रादिकोंसे आजीविका करता हुआ जीव, नरकादिकमें बहुत दुःख पाकर (परम्परासे) निगोदमें प्रवेश करता है ।।३६१।।

।। दुःखके स्वरूपका वर्णन समाप्त हुआ ।।१३।।

नरकोंमें सम्यक्त्व ग्रहणके कारण

धम्मादी-खिदि-तिदये णारइया मिच्छ-भाव-संजुत्ता ।
जाइ-भरणेण केई केई दुव्वार-वेदणाभिहदा ।।३६२।।

केई देवाहिंतो धम्म-णिबद्धा कहा व सोदूणं ।
गेण्हंते सम्मत्तं अणंत-भव-चूरण-णिमित्तं ।।३६३।।

अर्थ :—घर्मा आदि तीन पृथिवियोंमें मिथ्यात्वभावसे संयुक्त नारकियोंमेंसे कोई जाति-स्मरणसे, कोई दुर्वार वेदनासे और कोई धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाओंको देवोंसे सुनकर अनन्त भवोंको चूर्ण करनेमें निमित्तभूत सम्यग्दर्शनको ग्रहण करते हैं ।।३६२-३६३।।

पंकपहा[1]-पहुदीणं णारइया तिदस-बोहणेण विणा ।
सुमरिदजाई दुक्खप्पहदा गेण्हंति[2] सम्मत्तं ।।३६४।।

।। दंसण-गहणं[3] समत्तं ।।१४।।

अर्थ :—पंकप्रभादिक शेष चार पृथिवियोंके नारकी जीव देवकृत प्रबोधके बिना जाति-स्मरण और वेदनाके अनुभवसे सम्यग्दर्शन ग्रहण करते हैं ।।३६४।।

।। सम्यग्दर्शनके ग्रहणका कथन समाप्त हुआ ।।१४।।

---

१. क. मही । २. द गेण्णति । ३. क. ब. मग्गदं । द. ज. ठ. मग्गणं ।

नारकी-जीवोंकी योनियोंका कथन

जोणीओ णारइयाणं उवदे सीद-उण्ह अच्चित्ता ।
संघडया सामण्णे चउ-लक्खे होंति हु विसेसे ॥३६५॥

॥ जोणी समत्ता ॥१५॥

अर्थ :– सामान्यरूपसे नारकियोंकी योनियोंकी संरचना शीत, उष्ण और अचित्त कही गई हैं। विशेष रूपसे उनकी संख्या चार लाख प्रमाण है ॥३६५॥

॥ इसप्रकार योनिका वर्णन समाप्त हुआ ॥१५॥

नरकगतिकी उत्पत्तिके कारण

मज्जं पिबंता पिसिदं लसंता,
जीवे हणंता मिगयाणुरत्ता ।
णिमेस-मेत्तेण[1] सुहेण[2] पावं,
पावंति दुक्खं णिरए अणंतं ॥३६६॥

अर्थ :—मद्य पीते हुए, मांसकी अभिलाषा करते हुए, जीवोंका घात करते हुए और मृगयामें अनुरक्त होते हुए जो मनुष्य क्षणमात्रके सुखके लिए पाप उत्पन्न करते हैं वे नरकमें अनन्त दुःख उठाते हैं ॥३६६॥

लोह-कोह-भय-मोह-बलेणं जे वदंति वयणं पि असच्चं ।
ते णिरंतर-भये[3] उरु-दुक्खे दारुणम्मि णिरयम्मि पडंते ॥३६७॥

अर्थ :—जो जीव लोभ, क्रोध, भय अथवा मोहके बलसे असत्य वचन बोलते हैं, वे निरन्तर भय उत्पन्न करने वाले, महान् कष्टकारक और अत्यन्त भयानक नरकमें पड़ते हैं ॥३६७॥

छेत्तूण भित्तिं वधिदूण[4] पीयं,
पट्टादि घेत्तूण धणं हरंता ।
अण्णेहि अण्णाअसएहि[5] मूढा,
भुंजंति दुक्खं णिरयम्मि घोरे ॥३६८॥

---

१. ब. क. ज. ठ. मोहेण । २. द. सुह ण पावति । ३. भयं । ४. द. क. ज. ठ. पिंपं, ब. पियं । ५. द. ब. क. ज. ठ. असहेह ।

अर्थ :—भीतको छेदकर अर्थात् सेंध लगाकर प्रियजनको मारकर और पट्टादिकको ग्रहण करके, धनका हरण करने वाले तथा अन्य भी ऐसे ही सैकड़ों अन्यायोंसे, मूर्ख लोग भयानक नरकमें दुःख भोगते हैं ।।३६८।।

लज्जाए चत्ता मयणेण मत्ता तारुण्ण-रत्ता परदार सत्ता ।
रत्ती-दिणं मेहुण-माचरंता पावंति दुक्खं णिरएसु घोरं ।।३६९।।

अर्थ :—लज्जासे रहित, कामसे उन्मत्त, जवानीमें मस्त, परस्त्रीमें आसक्त और रात-दिन मैथुनका सेवन करने वाले प्राणी नरकोंमें जाकर घोर दुःख प्राप्त करते हैं ।।३६९।।

पुत्ते कलत्ते सुजणम्मि मित्ते जे जीवणत्थं पर-वंचणेणं ।
वड्ढंति तिण्णा दविणं हरंते ते तिव्व-दुक्खे णिरयम्मि जंति ।।३७०।।

अर्थ :—पुत्र, स्त्री, स्वजन और मित्रके जीवनार्थ जो लोग दूसरोंको ठगते हुए अपनी तृष्णा बढ़ाते हैं तथा परके धनका हरण करते हैं, वे तीव्र दुःखको उत्पन्न करने वाले नरकमें जाते हैं ।।३७०।।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण

संसारण्णवमहणं तिहुवण-भव्वाण [1]पेम्म-सुह-जणणं ।
संदरिसिय-सयलट्ठं संभवदेवं णमामि तिविहेण ।।३७१।।

एवमाइरिय-परंपरा-गय-तिलोयपण्णत्तीए णारय-लोय-सरूव-णिरूवण-पण्णत्ती-णाम—

।। बिदुओ महाहियारो समत्तो ।।२।।

अर्थ :—संसार समुद्रका मथन करने वाले (वीतराग), तीनों लोकोंके भव्य-जनोंको धर्म-प्रेम और सुखके दायक (हितोपदेशक) तथा सम्पूर्ण पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको दिखलाने वाले (सर्वज्ञ), सम्भवनाथ भगवानको मैं (यतिवृषभ) मन, वचन और कायसे नमस्कार करता हूं ।।३७१।।

इसप्रकार आचार्य-परम्परागत त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमें "नारक-लोक स्वरूप निरूपण-प्रज्ञप्ति" नामक **द्वितीय महाधिकार समाप्त हुआ** ।।२।।

---

१. द. पेमसुह ।

तदिओ महाहियारो

मङ्गलाचरण

भव्य-जण-मोक्ख-जणणं मुणिंद-देविंद-पणद-पय-कमलं ।
णमिय अहिणंदणेसं भावण-लोयं परूवेमो ॥१॥

अर्थ :—भव्य जीवोंको मोक्ष प्रदान करने वाले तथा मुनीन्द्र (गणधर) एवं देवेन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय चरण-कमलवाले अभिनन्दन स्वामीको नमस्कार करके भावन-लोकका निरूपण करता हूं ॥१॥

भावनलोक-निरूपणमें चौबीस अधिकारोंका निर्देश

भावण-णिवास-खेत्तं भवण-सुराणं[1] वियप्प-चिण्हाणि ।
भवणाणं परिसंखा इंदाण पमाण-णामाइं ॥२॥

दक्खिण-उत्तर-इंदा पत्तेक्कं ताण भवण-परिमाणं ।
अप्प-महद्धिय-मज्झिम-भावण-देवाण [2]भवणवासं च ॥३॥

भवणं वेदी कूडा जिणघर-पासाद-इंद-भूदीओ ।
भवणामराण संखा आउ-प्रमाणं जहा-जोग्गं ॥४॥

उस्सेहोहि-पमाणं गुणठाणादीणि एक्क-समयम्मि ।
उपज्जण-मरणाण य परिमाणं तह य आगमणं ॥५॥

भावणलोयस्साऊ-बंधण-पाओग्ग भाव-भेदा य ।
सम्मत्त-गहण-हेऊ अहियारा एत्थ चउवीसं ॥६॥

---

१. द. ब. क. पुराण । २. द । भवणं वासं ।

अर्थ :—भवनवासियोंके १ निवासक्षेत्र, २ भवनवासी देवोंके भेद, ३ चिह्न, ४ भवनोंकी संख्या, ५ इन्द्रोंका प्रमाण, ६ इन्द्रोंके नाम, ७ दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र, ८ उनमेंसे प्रत्येकके भवनोंका परिमाण, ९ अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और मध्यर्द्धिक भवनवासी देवोंके भवनोंका व्यास (विस्तार), १० भवन, ११ वेदी, १२ कूट, १३ जिनमन्दिर, १४ प्रासाद, १५ इन्द्रोंकी विभूति, १६ भवनवासी देवोंकी संख्या, १७ यथायोग्य आयुका प्रमाण, १८ शरीरकी ऊँचाईका प्रमाण, १९ अवधिज्ञानके क्षेत्रका प्रमाण, २० गुणस्थानादिक, २१ एक समयमें उत्पन्न होने वालों और मरने वालोंका प्रमाण तथा २२ आगमन, २३ भवनवासी देवोंकी आयुके बन्धयोग्य भावोंके भेद और २४ सम्यक्त्व ग्रहणके कारण, (इस तीसरे महाधिकारमें) ये चौबीस अधिकार हैं ॥२-६॥

भवनवासी-देवोंका निवास-क्षेत्र

रयणप्पह-पुढवीए खरभाए पंकबहुल-भागम्मि ।
भवणसुराणं भवणाइं होंति वर-रयण-सोहाणि ॥७॥

सोलस-सहस्स-मेत्तो[1] खरभागो पंकबहुल-भागो वि ।
चउसीदि-सहस्साणि जोयण-लक्खं दुवे मिलिदा ॥८॥

१६००० । ८४००० । मिलिता १ ला

॥ भावण-देवाणं णिवास-खेत्त गदं ॥१॥

अर्थ :—रत्नप्रभा पृथिवीके खरभाग एवं पंकबहुल भागमें उत्कृष्ट रत्नोंसे शोभायमान भवनवासी देवोंके भवन हैं। खर-भाग सोलह हजार (१६०००) योजन और पंकबहुल-भाग चौरासी हजार (८४०००) योजन प्रमाण मोटा है तथा इन दोनों भागोंकी मोटाई मिलाकर एक लाख योजन प्रमाण है ॥७-८॥

भवनवासी देवोंके निवास क्षेत्रका कथन समाप्त हुआ ॥१॥

भवनवासी-देवोंके भेद

असुरा णाग-सुवण्णा दीओवहि-थणिद-विज्जु-दिस-अग्गी ।
वाउकुमारा परया दस-भेदा होंति भवणसुरा ॥९॥

॥ वियप्पा समत्ता ॥२॥

---

१. द. ब. ठ. मेत्ता ।

अर्थ :—असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार, और वायुकुमार इसप्रकार भवनवासी देव दस प्रकारके हैं ।।९।।

।। विकल्पोंका वर्णन समाप्त हुआ ।।२।।

भवनवासियोंके चिह्न

चूडामणि-अहि-गरुडा करि-मयरा वड्ढमाण-वज्ज-हरी ।
कलसो तुरवो मउडे कमसो चिण्हाणि एदाणि ।।१०।।

।। चिण्हा समत्ता ।।३।।

अर्थ :—इन देवोंके मुकुटोंमें क्रमशः चूडामणि, सर्प, गरुड़, हाथी, मगर, वर्धमान (स्वस्तिक), वज्र, सिंह, कलश और तुरग ये चिह्न होते हैं ।।१०।।

।। चिह्नोंका वर्णन समाप्त हुआ ।।३।।

भवनवासी देवोंकी भवन संख्या

चउसट्ठी चउसीदी बाहत्तरि होंति छस्सु ठाणेसु ।
छाहत्तरि छण्णउदी [1]लक्खाणि भवणवासि-भवणाणि ।।११।।

६४ ल । ८४ ल । ७२ ल । ७६ ल । ७६ ल । ७६ ल । ७६ ल । ७६ ल ।
७६ ल । ९६ ल ।

एदाणं[2] भवणाणं एक्कस्सि मेलिदाण परिमाणं ।
बाहत्तरि लक्खाणि कोडीओ सत्त-मेत्ताओ ।।१२।।

७७२०००००

।। भवण-संखा गदा ।।४।।

१. द. ब. क. ज. ठ. एक्काणि । २. द. ज. एदाणं भवणाणेक्कस्सि । ठ. एदाणि भवणाणेक्कस्सि ।

अर्थ :—भवनवासी देवोंके भवनोंकी संख्या क्रमशः ६४ लाख, ८४ लाख, ७२ लाख, छह स्थानोंमें ७६ लाख और ९६ लाख है, इन सबके प्रमाणको एकत्र मिला देनेपर सात करोड़, बहत्तर लाख होते हैं ॥११-१२॥

विशेषार्थ :—असुरकुमारदेवोंके ६४०००००, नागकुमारके ८४०००००, सुपर्णकुमारके ७२०००००, द्वीपकुमारके ७६०००००, उदधिकुमारके ७६०००००, स्तनितकुमारके ७६०००००, विद्युत्कुमारके ७६०००००, दिक्कुमारके ७६०००००, अग्निकुमारके ७६००००० और वायुकुमार देवोंके ९६००००० भवन हैं। इन दस कुलोंके सर्व भवनोंका सम्मिलित योग [६४ ला० + ८४ ला० + ७२ ला० + (७६ ला० × ६) + ९६ लाख =] ७७२००००० अर्थात् सात करोड, बहत्तर लाख है।

॥ भवनोंकी संख्याका कथन समाप्त हुआ ॥४॥

भवनवासी-देवोंमें इन्द्र संख्या

दससु कुलेसुं पुह पुह दो दो[1] इंदा हवंति णियमेण ।
ते एक्कस्सि [2]मिलिदा वीस विराजंति भूदीहिं[3] ॥१३॥

। इंद-पमाणं समत्तं ॥५॥

अर्थ :—भवनवासियोंके दसों कुलोंमें नियमसे पृथक्-पृथक् दो-दो इन्द्र होते हैं, वे सब मिलकर बीस हैं, जो अनेक विभूतियोंसे शोभायमान हैं ॥१३॥

॥ इन्द्रोंका प्रमाण समाप्त हुआ ॥५॥

भवनवासी-इन्द्रोंके नाम

पढमो हु चमर-णामो इंदो वइरोयणो त्ति बिदिओ य ।
भूदाणंदो धरणाणंदो [4]वेणू य वेणुधारी य ॥१४॥

पुण्ण-वसिट्ठ-जलप्पह-जलकंता तह य घोस-महघोसा ।
हरिसेणो हरिकंतो अमिदगदी अमिदवाहणग्गिसिही ॥१५॥

---

१. ब. क. दो दो। २. द. ब. क. ज. ठ. मेलिदा। ३. द. भूदीहीं। ४. द. वेणु ब।

अग्गीवाहण-णामो वेलंब-पभंजणाभिहाणा य ।
एदे असुरप्पहुदिसु कुलेसु दो-दो कमेण देविंदा ॥१६॥

॥ इंदाणं-णामाणि समत्ताणि ॥६॥

अर्थ :—प्रथम चमर और द्वितीय वैरोचन नामक इन्द्र; भूतानन्द और धरणानन्द; वेणु-वेणुधारी; पूर्ण-वशिष्ठ; जलप्रभ-जलकान्त, घोष-महाघोष, हरिषेण-हरिकान्त, अमितगति-अमितवाहन, अग्निशिखी-अग्निवाहन तथा वेलम्ब और प्रभंजन नामक ये दो-दो इन्द्र क्रमशः असुरकुमारादि निकायोंमें होते हैं ॥१४-१६॥

॥ इन्द्रोंके नामोंका कथन समाप्त हुआ ॥६॥

दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रोंका विभाग

दक्खिण-इंदा चमरो भूदाणंदो य वेणु-पुण्णा य ।
जलपह-घोसा हरिसेणामिदगदी अग्गिसिहि-वेलंबा ॥१७॥

[1]वइरोअणो य धरणाणंदो तह [2]वेणुधारी-वसिट्ठा ।
जलकंत-महाघोसा हरिकंतो अमिद-अग्गिवाहणया ॥१८॥

तह य पहंजण-णामो उत्तर-इंदा हवंति वह एदे ।
अणिमादि-गुणेहिं[3] जुदा मणि-कुंडल-मंडिय-कवोला ॥१९॥

॥ दक्खि-उत्तर-इंदा गदा ॥७॥

अर्थ :—चमर, भूतानन्द, वेणु, पूर्ण, जलप्रभ, घोष, हरिषेण, अमितगति, अग्निशिखी और वेलम्ब ये दस दक्षिण इन्द्र तथा वैरोचन, धरणानन्द, वेणुधारी, वशिष्ठ, जलकान्त, महाघोष, हरिकान्त, अमितवाहन, अग्निवाहन और प्रभंजन नामक ये दस उत्तर इन्द्र हैं। ये सभी इन्द्र अणिमादिक ऋद्धियोंसे युक्त और मणिमय कुण्डलोंसे अलंकृत कपोलोंको धारण करने वाले हैं ॥१७-१९॥

॥ दक्षिण-उत्तर इन्द्रोंका वर्णन समाप्त हुआ ॥७॥

---

१. ब. वइरो अण्णो। २. द. ब. क. ज. ठ. वेणुधारम। ३. द. अणिमादिगुणे जुदा, ब. क. ज. ठ. अणिमादिगुणे जुत्ता।

भवन-संख्या

चउतीसं[1] चउदालं अट्ठत्तीसं हवंति लक्खाणि ।
चालीसं छट्ठाणे तत्तो पण्णास-लक्खाणि ॥२०॥

तीसं चालं चउतीस छस्सु[2] ठाणेसु होंति छत्तीसं ।
छत्तालं चरिमम्मि य इंदाणं भवण-लक्खाणि ॥२१॥

३४ ल । ४४ ल । ३८ ल । ४० ल । ४० ल । ४० ल । ४० ल । ४० ल

४० ल । ५० ल । ३० ल । ४० ल । ३४ ल । ३६ ल । ३६ ल । ३६ ल

३६ ल । ३६ ल । ३६ ल । ४६ ल ।

अर्थ :—चौंतीस ला०, चवालीस ला०, अड़तीस ला०, छह स्थानोंमें चालीस लाख, इसके आगे पचास लाख, तीस ला०, चालीस ला०, चौंतीस लाख, छह स्थानोंमें छत्तीस लाख और अन्तमें छयालीस लाख क्रमशः दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्रोंके भवनोंकी संख्याका प्रमाण है ॥२०-२१॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

१. द. क. ज. ठ. चोत्तीसं । २. द. ब. क. ज. ठ. छसु वि ठाण ।

भवनवासी देवोंके कुल, चिह्न, भवन सं०, इन्द्र एवं उनकी भवन सं० का विवरण

क्र० सं०	कुल नाम	मुकुट चिह्न	भवन-संख्या	इन्द्र	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	भवन-सं०
१	असुरकुमार	चूड़ामणि	६४ लाख	१. चमर	दक्षिणेन्द्र	३४ लाख
				२. वैरोचन	उत्तरेन्द्र	३० लाख
२	नागकुमार	सर्प	८४ ,,	१. भूतानन्द	द०	४४ लाख
				२. धरणानन्द	उ०	४० लाख
३	सुपर्णकुमार	गरुड	७२ ,,	१. वेणु	द०	३८ लाख
				२. वेणुधारी	उ०	३४ लाख
४	द्वीपकुमार	हाथी	७६ ,,	१ पूर्ण	द०	४० लाख
				२. वशिष्ठ	उ०	३६ लाख
५	उदधिकुमार	मगर	७६ ,,	१. जलप्रभ	द०	४० लाख
				२. जलकान्त	उ०	३६ लाख
६	स्तनितकुमार	वर्धमान	७६ ,,	१. घोष	द०	४० लाख
				२. महाघोष	उ०	३६ लाख
७	विद्युत्कुमार	वज्र	७६ ,,	१. हरिषेण	द०	४० लाख
				२. हरिकान्त	उ०	३६ लाख
८	दिक्कुमार	सिंह	७६ ,,	१. अमितगति	द०	४० लाख
				२. अमितवाहन	उ०	३६ लाख
९	अग्निकुमार	कलश	७६ ,,	१. अग्निशिखी	द०	४० लाख
				२. अग्निवाहन	उ०	३६ लाख
१०	वायुकुमार	तुरग	९६ लाख	१. वेलम्ब	द०	५० लाख
				२. प्रभंजन	उ०	४६ लाख

निवास स्थानोंके भेद एवं स्वरूप

भवणा भवण-पुराणि आवासा अ सुराण होंदि तिविहा णं ।
रयणप्पहाए भवणा दीव-समुद्दाण उवरि भवणपुरा ॥२२॥

दह-सेल-दुमादीणं रम्माणं उवरि होंति आवासा ।
णागादीणं केसिं तिय-णिलया भवणमेक्कमसुराणं ॥२३॥

॥ [1]भवण-वण्णणा समत्ता ॥८॥

अर्थ :—भवनवासी देवोंके निवास-स्थान भवन, भवनपुर और आवासके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। इनमेंसे रत्नप्रभा पृथिवीमें भवन, द्वीप-समुद्रोंके ऊपर भवनपुर एवं रमणीय तालाब, पर्वत तथा वृक्षादिकके ऊपर आवास हैं। नागकुमारादिकोंमेंसे किन्हींके भवन, भवनपुर एवं आवास-रूप तीनों निवास हैं परन्तु असुरकुमारोंके केवल एक भवनरूप ही निवास-स्थान होते हैं ॥२२-२३॥

॥ भवनोंका वर्णन समाप्त हुआ ॥८॥

अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और मध्यम ऋद्धिधारक देवोंके भवनोंके स्थान

अप्प-महद्धिय-मज्झिम-भावण-देवाण होंति भवणाणि ।
दुग-बादाल-सहस्सा लक्खमधोधो खिदीए गंतूणं ॥२४॥

२००० । ४२००० । १००००० ।

॥ अप्पमहद्धिय-मज्झिम भावण-देवाण णिवास-खेत्तं समत्तं ॥९॥

अर्थ :—अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक एवं मध्यम ऋद्धिके धारक भवनवासी देवोंके भवन क्रमशः चित्रा पृथिवीके नीचे-नीचे दो हजार, बयालीस हजार और एक लाख योजन-पर्यन्त जाकर हैं ॥२४॥

विशेषार्थ :—चित्रा पृथिवीसे २००० योजन नीचे जाकर अल्पऋद्धि धारक देवोंके ४२००० योजन नीचे जाकर महाऋद्धि धारक देवोंके और १००००० योजन नीचे जाकर मध्यम ऋद्धि धारक भवनवासी देवोंके भवन हैं।

इसप्रकार अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक एवं मध्यम ऋद्धिके धारक भवनवासी देवोंका निवास क्षेत्र समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

१. द. भुवण ।

भवनोंका विस्तार आदि एवं उनमें निवास करने वाले देवोंका प्रमाण—

समचउरस्सा भवणा वज्जमया-दार-वज्जिया सव्वे ।
बहलत्ते ति-सयाणि संखासंखेज्ज-जोयणा वासे ॥२५॥

संखेज्ज-रुंद-भवणेसु भवण-देवा वसंति संखेज्जा ।
संखातीदा वासे अच्छंती सुरा असंखेज्जा ॥२६॥

भवण-सरूवं समत्ता[1] ॥१०॥

अर्थ :—भवनवासी देवोंके ये सब भवन समचतुष्कोण और वज्रमय द्वारोंसे शोभायमान हैं। इनकी ऊँचाई तीनसौ योजन एवं विस्तार संख्यात और असंख्यात योजन प्रमाण है। इनमेंसे संख्यात योजन विस्तार वाले भवनोंमें संख्यात देव रहते हैं तथा असंख्यात योजन विस्तार वाले भवनोमें असंख्यात भवनवासी देव रहते हैं ॥२५-२६॥

भवनोंके विस्तारका कथन समाप्त हुआ ॥१०॥

भवन-वेदियोंका स्थान, स्वरूप तथा उत्सेध आदि

तेसुं चउसु दिसासुं जिण-दिट्ठ-पमाण-जोयणे गंता ।
मज्झम्मि दिव्व-वेदी पुह पुह वेढ़ेदि एक्केक्का ॥२७॥

अर्थ :—जिनेन्द्र भगवान्से उपदिष्ट उन भवनोंकी चारों दिशाओंमें योजन प्रमाण जाते हुए एक-एक दिव्य वेदी (कोट) पृथक्-पृथक् उन भवनोंको मध्यमें वेष्टित करती है ॥२७॥

बे कोसा उच्छेहा वेदीणमकट्टिमाण सव्वाणं ।
पंच-सयाणि दंडा वासो वर-रयण-छण्णाणं ॥२८॥

अर्थ :—उत्तमोत्तम रत्नोंसे व्याप्त (उन) सब अकृत्रिम वेदियोंकी ऊँचाई दो कोस और विस्तार पाँचसौ धनुष-प्रमाण होता है ॥२८॥

गोउर-दार-जुवाओ उवरिम्मि जिणिंद-गेह-सहिदाओ ।
[2]भवण-सुर-रक्खिदाओ वेदीओ तासु सोहंति ॥२९॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सम्मत्ता । २. द. ब. क. ज. ठ. भवणासुर-रक्खिदाओ वेदीणं तेसु ।

अर्थ :—गोपुरद्वारोंसे युक्त और उपरिम भागमें जिनमन्दिरोंसे सहित वे वेदियाँ भवनवासी देवोंसे रक्षित होती हुई सुशोभित होती हैं ॥२९॥

वेदियोंके बाह्य-स्थित-वनोंका निर्देश

तब्बाहिरे असोयं सत्तच्छद-चंपयाय चूदवणा ।
पुव्वादिसु णाणातरु-चेत्ता चिट्ठंति चेत्त-तरु सहिया ॥३०॥

अर्थ :—वेदियोंके बाह्यभागमें चैत्यवृक्षोंसे सहित और अपने नाना वृक्षोंसे युक्त, (क्रमशः) पूर्वादि दिशाओंमें पवित्र अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्रवन स्थित हैं ॥३०॥

चैत्यवृक्षोंका वर्णन

चेत्त-द्दुम-थल-रुंदं दोण्णि सया जोयणाणि पण्णासा ।
चत्तारो मज्झम्मि य अंते कोसद्धमुच्छेहो ॥३१॥
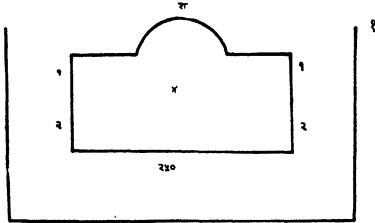
अर्थ :—चैत्यवृक्षोंके स्थलका विस्तार दोसौ पचास योजन तथा ऊँचाई मध्यमें चार योजन और अन्तमें अर्धकोस प्रमाण है ॥३१॥

छ-द्दो-भू-मुह-रुंदा[2] चउ-जोयण-उच्छिदाणि पीढाणि ।
पीढोवरि बहुमज्झे रम्मा चेट्ठंति चेत्त-दुमा ॥३२॥

जो ६ । २ । ४ ।

---

१. उपरोक्त चित्र प्रक्षेप रूप है एवं उसमें दिया हुआ प्रमाण स्केल रूप नहीं है।

२. द. ब. क. ज. ठ. रुंदो।

अर्थ :—पीठोंकी भूमिका विस्तार छह योजन, मुखका विस्तार दो योजन और ऊँचाई चार योजन है, इन पीठोंके ऊपर बहुमध्यभागमें रमणीय चैत्यवृक्ष स्थित हैं ॥३२॥

पत्तेक्कं रुक्खाणं [1]अवगाढं कोसमेक्कमुद्दिट्ठं ।
जोयण खंधुच्छेहो साहा-दीहत्तणं च चत्तारि ॥३३॥

को १ । जो १ । ४ ।[2]

अर्थ :—प्रत्येक वृक्षका अवगाढ़ एक कोस, स्कन्धका उत्सेध एक योजन और शाखाओंकी लम्बाई चार योजन प्रमाण कही गयी है ॥३३॥

विविह-वर-रयण-साहा विचित्त-कुसुमोवसोहिदा सव्वे ।
मरगयमय-वर-पत्ता दिव्व-तरू ते विरायंति ॥३४॥

अर्थ :—वे सब दिव्य वृक्ष विविध प्रकारके उत्तम रत्नोंकी शाखाओंसे युक्त, विचित्र पुष्पोंसे अलंकृत और मरकत मणिमय उत्तम पत्रोंसे व्याप्त होते हुए अतिशय शोभाको प्राप्त हैं ॥३४॥

विविहंकुर चेंचइया विविह-फला विविह-रयण-परिणामा[3] ।
छत्तादी छत्त-जुदा[4] घंटा-जालादि-रमणिज्जा ॥३५॥

आदि-णिहणेण हीणा पुढविमया सव्व-भवण-चेत्त-दुमा ।
जीवुप्पत्ति[5]-लयाणं होंति णिमित्ताणि ते णियमा[6] ॥३६॥

अर्थ :—विविध प्रकारके अंकुरोंसे मण्डित अनेक प्रकारके फलोंसे युक्त, नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित, छत्रके ऊपर छत्रसे संयुक्त, घण्टा-जालादिसे रमणीय और आदि-अन्तसे रहित, वे पृथिवीके परिणाम स्वरूप सब भवनोंके चैत्यवृक्ष नियमसे जीवोंकी उत्पत्ति और विनाशके निमित्त होते हैं ॥३५-३६॥

विशेषार्थ :—यहाँ चैत्यवृक्षोंको 'नियमसे जीवोंकी उत्पत्ति और विनाशका कारण कहा गया है।' उसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि—चैत्यवृक्ष अनादि-निधन हैं, अतः कभी उनका उत्पत्ति

---

१. ब. क. अवगाढ । २. ब. को १ । जो ४ । ३. द. ज. ठ. परिमाणा । ४. द. ब. क. ज. ठ. जुवा । ५. द. ब. ठ. जीहुप्पत्ति आयाणं, क. ज. जीऊप्पत्ति आयाणं । ६. द. ब. णिआयामा ।

या विनाश नहीं होता है, किन्तु चैत्यवृक्षोंके पृथिवीकायिक जीवोंका पृथिवीकायिकपना अनादि-निधन नहीं है। अर्थात् उन वृक्षोंमें पृथिवीकायिक जीव स्वयं जन्म लेते तथा आयुके अनुसार मरते रहते हैं, इसीलिए चैत्यवृक्षोंको जीवोंकी उत्पत्ति और विनाशका कारण कहा गया है। यही विवरण चतुर्थ-अधिकारकी गाथा १६०८ और २१५६ में तथा पाँचवें अधिकार की गाथा २६ में आयगा।

चैत्यवृक्षोंके मूलमें-स्थित जिन प्रतिमाएँ

चेत्त-द्दुम मूलेसुं पत्तेक्कं चउ-दिसासु पंचेव।
चेट्ठंति जिणप्पडिमा पलियंक-ठिया सुरेहि महणिज्जा ॥३७॥

चउ-तोरणाहिरामा अट्ठ-महा-मंगलेहि सोहिल्ला।
वर-रयण-णिम्मिदेहि माणत्थंभेहि अइरम्मा ॥३८॥

॥ वेदी-वण्णणा गदा ॥११॥

अर्थ : चैत्यवृक्षोंके मूलमें चारों दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें पद्मासनसे स्थित और देवोंसे पूजनीय पाँच-पाँच जिनप्रतिमाये विराजमान हैं, जो चार तोरणोंसे रमणीय, अष्ट महामंगल द्रव्योंसे सुशोभित और उत्तमोत्तम रत्नोसे निर्मित मानस्तम्भोंसे अतिशय शोभायमान हैं ॥३७-३८॥

॥ इसप्रकार वेदियोंका वर्णन समाप्त हुआ ॥११॥

वेदियोंके मध्यमें कूटोंका निरूपण

वेदीणं बहुमज्झे जोयण-सयमुच्छिदा महाकूडा।
वेत्तासण-संठाणा रयणमया होंति सव्वट्ठा ॥३९॥

अर्थ :—वेदियोंके बहुमध्य भागमें सर्वत्र एकसौ योजन ऊँचे, वेत्रासनके आकार और रत्नमय महाकूट स्थित हैं ॥३९॥

ताणं मूले उवरिं समंतदो दिव्व-वेदीओ।
पुव्विल्ल-वेदियाणं सारिच्छं वण्णणं सव्वं ॥४०॥

अर्थ :—उन कूटोंके मूलभागमें और ऊपर चारों ओर दिव्य वेदियाँ हैं। इन वेदियोंका सम्पूर्ण वर्णन पूर्वोल्लिखित वेदियों जैसा ही समझना चाहिए ॥४०॥

वेदीणब्भंतरए वण-संडा वर-विचित्त-तरु-णियरा ।
पुक्खरिणीहिं समग्गा तप्परदो दिव्व-वेदीओ[1] ॥४१॥

॥ कूडा गदा ॥१२॥

अर्थ :—वेदियोंके भीतर उत्तम एवं विविध प्रकारके वृक्ष-समूह और वापिकाओंसे परिपूर्ण वन-समूह हैं तथा इनके आगे दिव्य वेदियाँ हैं ॥४१॥

॥ इसप्रकार कूटोंका वर्णन समाप्त हुआ ॥१२॥

कूटोंके ऊपर स्थित-जिन-भवनोंका निरूपण

कूडोवरि पत्तेक्कं जिणवर-भवणं [2]हुवेदि एक्केक्कं ।
वर-रयण-कंचणमयं विचित्त-विण्णास[3]-रमणिज्जं ॥४२॥

अर्थ :—प्रत्येक कूटके ऊपर उत्तम रत्नों एवं स्वर्णसे निर्मित तथा विचित्र विन्याससे रमणीय एक-एक जिनभवन है ॥४२॥

चउ-गोउरा ति-साला वीहिं [4]पडि माणथंभ-णव-थूहा ।
वण[5]-धय-चेत्त-खिदीओ सव्वेसुं जिण-णिकेदेसुं ॥४३॥

अर्थ :—सब जिनालयोंमें चार-चार गोपुरोंसे संयुक्त तीन कोट, प्रत्येक वीथीमें एक-एक मानस्तम्भ एवं नौ स्तूप तथा (कोटोंके अन्तरालमें क्रमशः) वन, ध्वज और चैत्य-भूमियाँ हैं ॥४३॥

णंदादिओ ति-मेहल ति-पीढ-पुव्वाणि धम्म-विभवाणि ।
चउ-वण-मज्झेसु ठिदा चेत्त-तरू तेसु सोहंति ॥४४॥

अर्थ :—उन जिनालयोंमें चारों वनोंके मध्यमें स्थित तीन मेखलाओंसे युक्त नन्दादिक वापिकायें एवं तीन पीठोंसे संयुक्त धर्म-विभव तथा चैत्यवृक्ष शोभायमान होते हैं ॥४४॥

---

१. द. दिव्ववेदीओ । २. द. हुवेदि । ३. द. ब. क. विण्णासणरमणिज्जं । ४. द. ब. क. ज. ठ. परि । ५. ब. क. ज. ठ. णवधय ।

महाध्वजाओं एवं लघु ध्वजाओंकी संख्या

हरि-करि-वसह-खगाहिव[1]-सिहि-ससि-रवि-हंस-पउम-चक्क-धया ।
एक्केक्कमट्ठ-जुद-सयमेक्केक्कं　अट्ठ-सय　खुल्ला　॥४५॥

अर्थ :—(ध्वज भूमिमें) सिंह, गज, वृषभ, गरुड, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र, इन चिह्नोंसे अंकित प्रत्येक चिह्नवाली एकसौ आठ महाध्वजाएँ और एक-एक महाध्वजाके आश्रित एकसौ आठ क्षुद्र (छोटी) ध्वजाएँ होती हैं ॥४५॥

विशेषार्थ :—सिंह आदि १० चिह्न हैं अतः १०×१०८=१०८० महाध्वजाएँ । १०८०×१०८=११६६४० छोटी ध्वजाएँ हैं ।

जिनालयमें वन्दनगृहों आदिका वर्णन

[2]वंदणभिसेय-णच्चण-संगीदालोय-मंडवेहि　जुदा　।
कीडण-गुणण-गिहेहिं　विसाल-वर-पट्टसालेहिं　॥४६॥

अर्थ :—(उपर्युक्त जिनालय) वन्दन, अभिषेक, नर्तन, संगीत और आलोक (प्रेक्षण) मण्डप तथा क्रीड़ागृह, गुणनगृह (स्वाध्यायशाला) एवं विशाल तथा उत्तम पट्ट (चित्र) शालाओंसे सहित हैं ॥४६॥

जिनमन्दिरोंमें श्रुत आदि देवियोंकी एवं यक्षोंकी मूर्तियोंका निरूपण

सिरिदेवी-सुदेवी-सव्वाण-सणक्कुमार-जक्खाणं ।
रूवाणि अट्ठ-मंगल [3]देवच्छंदम्मि जिण-णिकेदेसु ॥४७॥

अर्थ :—जिनमन्दिरोंमें देवच्छन्दके भीतर श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह और सनत्कुमार यक्षोंकी मूर्तियाँ एवं अष्ट मंगलद्रव्य होते हैं ॥४७॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. खगाबइ ।　२. द. चंदणाभिसेय ।　३. द. देवंणच्छाणि, ब. देवच्छाणि । ज. ठ. देवं देवच्छाणि, क. मेव णिच्छाणि ।

अष्टमंगल द्रव्य

भिंगार-कलस-दप्पण-धय-चामर-छत्त-वियण-सुपइट्ठा ।
इय अट्ठ-मंगलाणि पत्तेक्कं [1]अट्ठ-अहिय-सयं ॥४८॥

अर्थ :—झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चामर, छत्र, व्यजन और सुप्रतिष्ठ, ये आठ मंगल द्रव्य हैं, जो प्रत्येक एकसौ आठ कहे गये हैं ॥४८॥

जिनालयोंकी शोभाका वर्णन

दिप्पंत-रयण-दीवा जिण-भवणा पंच-वण्ण-रयण-मया ।
[2]गोसीस-मलयचंदण-कालागरु-धूव-गंधड्ढा ॥४९॥

भंभा-मुइंग-मद्दल-जयघंटा-कंसताल-तिवलीणं ।
दुंदुहि-पडहादीणं सद्देहिं णिच्च-हलबोला ॥५०॥

अर्थ :—देदीप्यमान रत्नदीपकोंसे युक्त वे जिनभवन पाँच वर्णके रत्नोंसे निर्मित; गोशीर्ष, मलयचन्दन, कालागरु और धूपकी गंधसे व्याप्त तथा भम्भा, मृदंग, मर्दल, जयघंटा, कांस्यताल, तिवली, दुन्दुभि एवं पटहादिकके शब्दोंसे नित्य ही शब्दायमान रहते हैं ॥४९-५०॥

नागयक्ष-युगलोंसे युक्त जिनप्रतिमाएँ

सिंहासणादि-सहिदा चामर-कर-णागजक्ख-मिहुण-जुदा ।
णाणाविह-रयणमया जिण-पडिमा तेसु भवणेसुं ॥५१॥

अर्थ :—उन भवनोंमें सिंहासनादिकसे सहित, हाथमें चँवर लिए हुए नागयक्ष युगलसे युक्त तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित जिनप्रतिमायें हैं ॥५१॥

जिनभवनोंकी संख्या

बाहत्तरि लक्खाणि कोडीओ सत्त जिण-णिकेदाणि ।
आदि-णिहणुज्झिदाणि भवण-समाइं विरायंति ॥५२॥

७७२००००० ।

---

१. ब. अडग्रहियसयं । २. द. ब. क. ज. ठ. गोसीर ।

अर्थ :—आदि-अन्तसे रहित (अनादिनिधन) वे जिनभवन, भवनवासी देवोंके भवनोंकी संख्या प्रमाण सात करोड़, बहत्तर लाख, सुशोभित होते हैं ।।५२।।

७७२००००० जिनभवन हैं ।

भवनवासी-देव, जिनेन्द्रको ही पूजते हैं

सम्मत्त-रयण-जुत्ता णिब्भर-भत्तीए णिच्चमच्चंति ।
कम्मक्खवण-णिमित्तं देवा जिणणाह-पडिमाओ ।।५३।।

कुलदेवा इदि मण्णिय अण्णेहिं बोहिया बहुपयारं ।
मिच्छाइट्ठी णिच्चं पूजंति जिणिंद-पडिमाओ ।।५४।।

।। जिणभवणा गदा ।।१३।।

अर्थ :—सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे युक्त देव तो कर्मक्षयके निमित्त नित्य ही अत्यधिक भक्तिसे जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टि देवोंसे सम्बोधित किये गये मिथ्यादृष्टि देव भी कुलदेवता मानकर जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी नित्य ही नाना प्रकारसे पूजा करते हैं । ५३-५४।।

।। जिनभवनोंका वर्णन समाप्त हुआ ।।१३।।

कूटोंके चारों ओर स्थित भवनवासी-देवोंके प्रासादोंका निरूपण

कूडाण [1]समंतादो पासादा[2] होंति भवण-देवाणं ।
[3]णाणाविह-विण्णासा वर-कंचण[4]-रयण-णियरमया ।।५५।।

अर्थ :—कूटोंके चारों ओर नानाप्रकारकी रचनाओंसे युक्त और उत्तम स्वर्ण एवं रत्न-समूहसे निर्मित भवनवासी देवोंके प्रासाद हैं ।।५५।।

सत्तट्ठ-णव-दसादिय-विचित्त-भूमीहिं भूसिदा सव्वे ।
लंबंत-रयण-माला दिप्पंत-मणिप्पदीव-कंठिल्ला ।।५६।।

---

१. द. ब. क. ज. समत्तादो । २. द. ब. पासादो । ३. द. ब. क. ज. ठ. णाणाविविहविणासं । ४. ब. कंचणणियर ।

जम्माभिसेय-भूसण-मेहुण-ओलग्ग[1]-मंत-सालाहिं[2] ।
विविधाहिं[3] रमणिज्जा मणि-तोरण-सुंदर-दुवारा ।।५७।।

[4]सामण्ण-गब्भ-कदली-चित्तासण-णालयादि-गिह-जुत्ता ।
कंचण-पायार-जुदा विसाल-वलही विराजमाणा य ।।५८।।

धुव्वंत-धय-वडाया पोक्खरणी-वावि-[5]कूव-वण-सहिदा[6] ।
धूव-घडेहिं जुजुट्ठा णाणावर-मत्त-वारणोपेदा ।।५९।।

मणहर-जाल-कवाडा णाणाविह-सालभंजिका-बहुला ।
आदि-णिहणेण हीणा किं बहुणा ते णिरुवमा णेया ।।६०।।

अर्थ :—सब भवन सात, आठ, नौ, दस इत्यादिक विचित्र भूमियोंसे विभूषित; लम्बायमान रत्नमालाओंसे सहित; चमकते हुए मणिमय दीपकोंसे सुशोभित; जन्मशाला, अभिषेकशाला, भूषण-शाला, मैथुनशाला, ओलगशाला (परिचर्यागृह) और मंत्रशाला, इन विविध प्रकारकी शालाओंसे रमणीक; मणिमय तोरणोंसे सुन्दर द्वारों वाले; सामान्यगृह, गर्भगृह, कदलीगृह, चित्रगृह, आसनगृह, नादगृह और लतागृह इत्यादि गृह-विशेषोंसे सहित; स्वर्णमय प्राकारसे संयुक्त विशाल छज्जोंसे विराजमान; फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे सहित; पुष्करिणी, वापी, कूप और वनोंसे संयुक्त; धूपघटोंसे युक्त अनेक उत्तम मत्तवारणों (छज्जों) से संयुक्त; मनोहर गवाक्ष और कपाटोंसे सुशोभित; नानाप्रकारकी पुत्तलिकाओं सहित और आदि-अन्तसे हीन (अनादिनिधन) हैं । बहुत कहनेसे क्या ? ये सब प्रासाद उपमासे रहित (अनुपम) हैं, ऐसा जानना चाहिए ।।५६-६०।।

चउ-पासाणि तेसुं विचित्त-रूवाणि आसणाणि च ।
वर-रयण-विरइदाणि सयणाणि हवंति दिव्वाणि ।।६१।।

।। पासादा गदा ।।१४।।

अर्थ :—उन भवनोंके चारों पार्श्वभागोंमें विचित्र रूपवाले आसन और उत्तम रत्नोंसे रचित दिव्य शय्यायें स्थित हैं ।।६१।।

।। प्रासादोंका कथन समाप्त हुआ ।।१४।।

---

१. द. ओलंग, ब. क. उलग । २. द. ब. क. ज. ठ. सालाइ । ३. द. ब. क. ज. ठ. विदिलाहिं । ४. ब. क. सामेरा । ५. ब. कूद । ६ द. ब. क. ज. ठ. संडाई ।

प्रत्येक इन्द्रके परिवार-देव-देवियोंका निरूपण

एक्केक्कम्मि इंदे परिवार-सुरा हवंति [1]दस भेदा ।
पडिइंदा तेत्तीससुरवरा सामाणिया-दिसाइंदा ।।६२।।

तणुरक्खा तिप्परिसा सत्ताणीया पइण्णगभियोगा ।
किब्बिसिया इदि कमसो पवण्णिदा इंद-परिवारा ।।६३।।

अर्थ :—प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिंश, सामानिक, दिशाइन्द्र (लोकपाल), तनुरक्षक, तीन पारिषद, सात-अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक, ये दस, प्रत्येक इन्द्रके परिवार देव होते हैं। इसप्रकार क्रमशः इन्द्रके परिवार देव कहे गये हैं ।।६२-६३।।

इंदा राय-सरिच्छा जुवराय-समा हवंति पडिइंदा ।
पुत्त-णिहा तेत्तीससुरवरा सामाणिया कलत्तं वा ।।६५।।

अर्थ :—इन्द्र राजा सदृश, प्रतीन्द्र युवराज सदृश, त्रायस्त्रिश देव पुत्र सदृश और सामानिक देव कलत्र तुल्य होते हैं ।।६५।।

चत्तारि लोयपाला [2]सारिच्छा होंति तंतवालाणं ।
तणुरक्खाण समाणा [3]सरीर-रक्खा सुरा सव्वे ।।६६।।

अर्थ :—चारों लोकपाल तन्त्रपालोंके समान और सब तनुरक्षक देव राजाके अंग-रक्षकके समान होते हैं ।।६६।।

बाहिर-मज्झब्भंतर तंडय-सरिसा [4]हवंति तिप्परिसा ।
सेणोवमा अणीया पइण्णया पुरजण-सरिच्छा ।।६७।।

अर्थ :—राजाकी बाह्य, मध्य और अभ्यन्तर समितिके सदृश देवोंमें भी तीन प्रकारकी परिषद् होती है। अनीक देव सेना तुल्य और प्रकीर्णक देव पुरजन सदृश होते हैं ।।६७।।

परिवार-समाणा ते अभियोग-सुरा हवंति [5]किब्बिसिया ।
पाणोवमाणधारी[6] देवाणिंदस्स णादव्वं ।।६८।।

---

१. क. दह । २. द. ब. क. ज. ठ. सावंता । ३ द. ससरीरं, ब. सरीरं वा । ४. द. हुवंति । ५. द. हुवंति । ६. ब. माणाधीरी । क. ज. ठ. माणुधारी ।

अर्थ :—वे आभियोग्य जातिके देव दास सदृश तथा किल्विषिक देव चण्डालकी उपमाको धारण करने वाले हैं। इसप्रकार देवोंके इन्द्रका परिवार जानना चाहिए ॥६८॥

इंद-समा पडिइंदा तेत्तीस-सुरा हुवंति तेत्तीसं।
चमरादी-इंदाणं पुह पुह सामाणिया इमे देवा ॥६९॥

अर्थ :—प्रतीन्द्र, इन्द्र प्रमाण और त्रायस्त्रिंश देव तेंतीस होते हैं। चमर-वैरोचनादि इन्द्रोंके सामानिक देवोंका प्रमाण पृथक्-पृथक् इसप्रकार है ॥६९॥

चउसट्ठि सहस्साणि सट्ठी छप्पण्ण चमर-तिदयम्मि।
पण्णास सहस्साणि पत्तेक्कं होंति सेसेसु ॥७०॥

६४००० । ६०००० । ५६००० । सेसे १७ । ५००००

अर्थ : —चमरादिक तीन इन्द्रोंके सामानिक देव क्रमशः चौंसठ हजार, साठ हजार और छप्पन हजार होते हैं, इसके आगे शेष सत्तरह इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके पचास हजार प्रमाण सामानिक देव होते हैं ॥७०॥

पत्तेक्कं-इंदयाणं सोमो यम-वरुण-धणद-णामा य।
पुव्वादि-लोयपाला [1]हुवंति चत्तारि चत्तारि ॥७१॥

। ४ ।

अर्थ :—प्रत्येक इन्द्रके पूर्वादिक दिशाओंके (रक्षक) क्रमशः सोम, यम, वरुण एवं धनद (कुबेर) नामक चार-चार लोकपाल होते हैं ॥७१॥

छप्पण्ण-सहस्साहिय-बे-लक्खा होंति चमर-तणुरक्खा।
चालीस-सहस्साहिय-लक्ख-जुगं बिदिय-इंदम्मि ॥७२॥

२५६००० । २४०००० ।

चउवीस-सहस्साहिय-लक्ख-जुगं [2]तदिय-इंद-तणुरक्खा।
सेसेसुं पत्तेक्कं णादव्वा दोण्णि लक्खाणि ॥७३॥

२२४००० । सेसे १७ । २००००० ।

---

१. द. हुवंति। २. ब. तदियतणु।

अर्थ :—चमरेन्द्रके तनुरक्षक देव दो लाख, छप्पन हजार और द्वितीय (वैरोचन) इन्द्रके दो लाख, चालीस हजार होते हैं। तृतीय (भूतानन्द) इन्द्रके तनुरक्षक दो लाख, चौबीस हजार तथा शेषमेंसे प्रत्येकके दो-दो लाख प्रमाण तनुरक्षक देव जानने चाहिए ।।७२-७३।।

अडवीसं छव्वीसं छक्क सहस्साणि चमर-तिदयम्मि ।
आदिम-परिसाए[1] सुरा सेसे पत्तेक्क-चउ-सहस्साणि ।।७४।।

२८००० । २६००० । ६००० । सेसे १७ । ४००० ।

अर्थ :—चमरादिक तीन इन्द्रोंके आदिम पारिषद देव क्रमशः अट्ठाईस हजार, छब्बीस हजार और छह हजार प्रमाण तथा शेष इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके चार-चार हजार प्रमाण होते हैं ।।७४।।

तीसं अट्ठावीसं अट्ठ सहस्साणि चमर-तिदयम्मि ।
मज्झिम-परिसाए सुरा सेसेसुं छस्सहस्साणि ।।७५।।

३०००० । २८००० । ८००० । सेसे १७ । ६००० ।

अर्थ :—चमरादिक तीन इन्द्रोंके मध्यम पारिषद देव क्रमशः तीस हजार, अट्ठाईस हजार और आठ हजार तथा शेष इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके छह-छह हजार प्रमाण होते हैं ।।७५।।

बत्तीसं तीसं दस होंति सहस्साणि चमर-तिदयम्मि ।
बाहिर-परिसाए सुरा अट्ठ सहस्साणि सेसेसुं ।।७६।।

३२००० । ३०००० । १०००० । सेसे १७ । ८००० ।

अर्थ :—चमरादिक तीन इन्द्रोंके क्रमशः बत्तीस हजार, तीस हजार और दस हजार तथा शेष इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके आठ-आठ हजार प्रमाण बाह्य पारिषद देव होते हैं ।।७६।।

[भवनवासी-इन्द्रोंके परिवार-देवोंकी संख्याकी तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१. क. ज. परिसाए ।

भवनवासी-इन्द्रोंके परिवार-देवोंकी संख्या									
क्र० सं०	इन्द्रोंके नाम	प्रतीन्द्र	त्रायस्त्रिंश	सामानिक देव	लोकपाल	तनुरक्षक	पारिषद		
							आदि	मध्य	बाह्य
१	चमर	१	३३	६४०००	४	२५६०००	२८०००	३००००	३२०००
२	वैरोचन	१	३३	६००००	४	२४००००	१६०००	२८०००	३००००
३	भूतानन्द	१	३३	५६०००	४	२२४०००	६०००	८०००	१००००
४	धरणानन्द	१	३३	५००००	४	२०००००	४०००	६०००	८०००
५	वेणु	१	३३	५००००	४	२०००००	४०००	६०००	८०००
६	वेणुधारी	१	३३	५००००	४	२०००००	४०००	६०००	८०००
७	पूर्ण	१	३३	"	४	"	"	"	"
८	वशिष्ट	१	३३	"	४	"	"	"	"
९	जलप्रभ	१	३३	"	४	"	"	"	"
१०	जलकान्त	१	३३	"	४	"	"	"	"
११	घोष	१	३३	"	४	"	"	"	"
१२	महाघोष	१	३३	"	४	"	"	"	"
१३	हरिषेण	१	३३	"	४	"	"	"	"
१४	हरिकान्त	१	३३	"	४	"	"	"	"
१५	अमितगति	१	३३	"	४	"	"	"	"
१६	अमितवाहन	१	३३	"	४	"	"	"	"
१७	अग्निशिखी	१	३३	"	४	"	"	"	"
१८	अग्निवाहन	१	३३	"	४	"	"	"	"
१९	वेलम्ब	१	३३	"	४	"	"	"	"
२०	प्रभंजन	१	३३	"	४	"	"	"	"

अनीकदेवोंका वर्णन

सत्ताणीया होंति हु पत्तेक्कं सत्त सत्त कक्ख-जुदा ।
पढमा ससमाण-समा तद्दुगुणा, चरम-कक्खंतं ॥७७॥

अर्थ :—सात अनीकोंमेंसे प्रत्येक अनीक सात-सात कक्षाओंसे युक्त होती हैं। उनमेंसे प्रथम कक्षाका प्रमाण अपने-अपने सामानिक देवोंके बराबर तथा इसके आगे अन्तिम कक्षातक उत्तरोत्तर प्रथम कक्षासे दूना-दूना प्रमाण होता गया है ॥७७॥

विशेषार्थ :—एक एक इन्द्रके पास सात-सात अनीक (सेना या फौज) होती हैं। प्रत्येक अनीककी सात-सात कक्षाएँ होती हैं। प्रथम कक्षामें अनीक देवोंका प्रमाण अपने अपने सामानिक देवोंकी संख्या सदृश, पश्चात् दूना-दूना होता जाता है।

असुरम्मि महिस-तुरगा रह-करिणो[1] तह पदाति-गंधव्वो ।
णच्चणया एदाणं महत्तरा छम्महत्तरी एक्का ॥७८॥

। ७ ।

अर्थ :—असुरकुमारोंमें महिष, घोड़ा, रथ, हाथी, पादचारी, गन्धर्व और नर्तकी, ये सात अनीकें होती हैं। इनके छह महत्तर (प्रधान देव) और एक महत्तरी (प्रधान देवी) होती हैं ॥७८॥

णावा गरुड-गइंदा मयरुट्टा [2]खग्गि-सीह-सिविकस्सा ।
णागादीणं पढमाणीया बिदियाग्र असुरं वा ॥७९॥

अर्थ :—नागकुमारादिकोंके क्रमशः नाव, गरुड, गजेन्द्र, मगर, ऊँट, गेंडा (खड्गी), सिंह, शिविका और अश्व, ये प्रथम अनीक होती हैं, शेष द्वितीयादि अनीकें असुरकुमारोंके ही सदृश होती हैं ॥७९॥

विशेषार्थ :—दसों भवनवासी देवोंमें इसप्रकार अनीकें होती हैं—

१. असुरकुमार—महिष, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।

२. नागकुमार—नाव, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।

३. सुपर्णकुमार—गरुड, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।

---

१. ब. रहकरणो। २ द. ज. ठ. खग्ग।

४. द्वीपकुमार—हाथी, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

५. उदधिकुमार—मगर, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

६ विद्युत्कुमार—ऊँट, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

७. स्तनितकुमार—गैंडा, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

८. दिक्कुमार—सिंह, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

९. अग्निकुमार—शिविका, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

१०. वायुकुमार—अश्व, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी ।

गच्छ-समे गुणयारे परोप्परं गुणिय रूव-परिहीणे[1] ।
एक्कोण-गुण-विहत्ते गुणिदे वयणेण गुण-गणिदं ।।८०।।

अर्थ :- गच्छके बराबर गुणकारको परस्पर गुणा करके प्राप्त गुणनफलमेंसे एक कम करके शेषमें एक कम गुणकारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसको मुखसे गुणा करनेपर गुणसंकलित धनका प्रमाण आता है ।।८०।।

विशेषार्थ :—स्थानोके प्रमाणको पद और प्रत्येक स्थानपर जितनेका गुणा किया जाता है उसे गुणकार कहते हैं । यहाँ पदका प्रमाण ७, गुणकार (प्रत्येक कक्षाका प्रमाण दुगुना-दुगुना है अतः गुणकारका प्रमाण) दो और मुख ६४००० है ।

उदाहरण—पद बराबर गुणकारोंका परस्पर गुणा करनेपर (२×२×२×२×२×२×२) अर्थात् १२८ फल प्राप्त हुआ, इसमेंसे १ घटाकर एक कम गुणकार (२—१=१) का भाग देनेपर (१२८ — १=१२७÷१) = $\frac{१२७}{१}$ लब्ध प्राप्त हुआ । इसका मुखसे गुणा करनेपर (६४०००×१२७) अर्थात् ८१२८००० गुणसंकलित धन प्राप्त होता है ।

एक्कासीदी लक्खा अडवीस-सहस्स-संजुदा चमरे ।
होंति हु महिसाणीया पुह पुह तुरयादिया वि तम्मेत्ता ।।८१।।

८१२८००० ।

---

१. ब. द. क. ज. ठ. परिहीणो ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके इक्यासी लाख, अट्ठाईस हजार महिष सेना तथा पृथक्-पृथक् तुरगादिक भी इतने ही होते हैं ।।८१।।

तिट्ठाणे सुण्णाणि छण्णव-अड-छक्क-पंच-अंक-कमे ।
सत्ताणीया मिलिदा णादव्वा चमर-इंदम्हि ।।८२।।

५६८९६००० ।

अर्थ :—तीन स्थानोंमें शून्य, छह, नौ, आठ, छह और पाँच अंक स्वरूप क्रमशः चमरेन्द्रकी सातों अनीकोंका सम्मिलित प्रमाण जानना चाहिए ।।८२।।

विशेषार्थ :—गाथा ८० के विशेषार्थमें प्राप्त हुए गुणसंकलित धनको ७ से गुणित करने पर (८१२८००० × ७ =) पाँच करोड़, अड़सठ लाख, छयानबे हजार (५६८९६०००) सातों अनीकोंका सम्मिलित धन प्राप्त हो जाता है । यह चमरेन्द्रकी अनीकोंका सम्मिलित धन है ।

छाहत्तरि लक्खाणि वीस-सहस्साणि होंति महिसाणं ।
वइरोयणम्मि इंदे पुह पुह तुरयादिणो वि तम्मेत्ता ।।८३।।

७६२०००० ।

अर्थ :—वैरोचन इन्द्रके छिहत्तर लाख, बीस हजार महिष और पृथक्-पृथक् तुरगादिक भी इतने ही हैं ।।८३।।

चउ-ठाणेसुं सुण्णा चउ तिय तिय पंच-अंक-माणाए ।
वइरोयणस्स मिलिदा सत्ताणीया इमे होंति ।।८४।।

। ५३३४०००० ।

अर्थ :—चार स्थानोंमें शून्य, चार, तीन, तीन और पाँच, इन अंकोंके क्रमशः मिलानेपर जो संख्या हो, इतने मात्र वैरोचन इन्द्रके मिलकर ये सात अनीकें होती हैं ।।८४।।

एक्कत्तरि लक्खाणि णावाओ होंति बारस-सहस्सा ।
भूदाणंदे पुह पुह [1]तुरग-प्पहुदीणि तम्मेत्ता ।।८५।।

७११२०००

1 ब. उरग ।

अर्थ :—भूतानन्दके इकहत्तर लाख, बारह हजार नाव और पृथक्-पृथक् तुरगादिक भी इतने ही होते हैं ।।८५।।

ति-ट्ठाणे सुण्णाणि चउक्क-अड[1]-सत्त-णव-चउक्क-कमे ।
सत्ताणीया[2] मिलिदे भूदाणंदस्स णादव्वा ।।८६।।

४६७८४०००

अर्थ :—तीन स्थानोंमें शून्य चार, आठ, सात, नौ और चार इन अंकोंको क्रमशः मिलाकर भूतानन्द इन्द्रकी सात अनीकें जाननी चाहिए । अर्थात् भूतानन्दकी सातों अनीकें चार करोड़ सत्तानबै लाख चौरासी हजार प्रमाण हैं ।।८६।।

तेसट्ठी लक्खाइं पण्णास सहस्सयाणि पत्तेक्कं ।
सेसेसुं इंदेसुं पढमाणीयाण परिमाणा ।।८७।।

६३५०००० ।

अर्थ :—शेष सत्तरह इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके प्रथम अनीकका प्रमाण तिरेसठ लाख पचास हजार प्रमाण है ।।८७।।

[3]चउ-ठाणेसुं सुण्णा पंच य तिट्ठाणए चउक्काणि ।
अंक-कमे सेसाणं सत्ताणीयाण[4] परिमाणं ।।८८।।

४४४५०००० ।

अर्थ :—चार स्थानोंमें शून्य, पाँच और तीन स्थानोंमें चार इस अंक क्रमसे यह शेष इन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी सात अनीकोंका प्रमाण होता है ।।८८।।

होंति पयण्णय-पहुदी जेत्तियमेत्ता य सयल-इंदेसु ।
तप्परिमाण-परूवण[5]-उवएसो णत्थि काल-वसा ।।८९।।

अर्थ :—सम्पूर्ण इन्द्रोंमें जितने प्रकीर्णक आदिक देव हैं, कालके वशसे उनके प्रमाणके प्ररूपणाका उपदेश नहीं है ।।८९।।

---

१. ब. अट्ठसत्त । २. द. सत्ताणीया । ३. ब. चवट्ठाणेसुं । ४. द. ब. क. ज. ठ. सत्ताणीयाणि ।
५. द. ब. परूणा ।

भवनवासी-इन्द्रोंके अनीक देवोंका प्रमाण गाथा ८१–८६

क्रमांक	इन्द्रोंके नाम	प्रथम कक्षाका नाम	प्रथम कक्षाका प्रमाण ×	कक्षाएँ ७ =	सातों अनीकोंका सम्मिलित प्रमाण	प्रकीर्णक सेनाका प्रमाण
१	चमरेन्द्र	महिष	८१२८००० ×	७ =	५६८९६०००	काल-वश उपदेशका अभाव।
२	वैरोचन	,,	७६२०००० ×	७ =	५३३४००००	
३	भूतानन्द	नाव	७११२००० ×	७ =	४९७८४०००	
४-२०	शेष १७ मेंसे प्रत्येक इन्द्रके	गरुड, गज मगर आदि	प्रत्येकके ६३५०००० ×	७ =	प्रत्येक इन्द्रके ४४४५००००	

भवनवासिनीदेवियोंका निरूपण

किण्हा रयण-सुमेघा देवी-णामा सुकंठ-अभिहाणा ।
णिरुवम-रूव-धराओ चमरे पंचग्ग-महिसीओ ।।९०।।

अर्थ :—चमरेन्द्रके कृष्णा, रत्ना, सुमेघा, देवी और सुकंठा नामकी अनुपम रूपको धारण करनेवाली पाँच अग्रमहिषियाँ हैं ।।९०।।

अग्ग-महिसीण ससमं अट्ठ-सहस्साणि होंति पत्तेक्कं ।
परिवारा देवीओ चाल-सहस्साणि संमिलिदा ।।९१।।

८००० । ४०००० ।

अर्थ :—अग्रदेवियोंमेंसे प्रत्येकके अपने साथ आठ हजार परिवार-देवियाँ होती हैं । इस-प्रकार मिलकर सब परिवार देवियाँ चालीस हजार प्रमाण होती हैं ।।९१।।

चमरग्गिम-महिसीणं अट्ठ-सहस्सा विकुव्वणा संति ।
पत्तेक्कं अप्प-समं णिरुवम-लावण्ण-रूवेहिं ।।९२।।

अर्थ :—चमरेन्द्रकी अग्र-महिषियोंमेंसे प्रत्येक अपने (मूल शरीरके) साथ, अनुपम रूप-लावण्यसे युक्त आठ हजार प्रमाण विक्रियानिर्मित रूपोंको धारण कर सकती हैं ।।९२।।

सोलस-सहस्समेत्ता वल्लहियाओ हवंति चमरस्स ।
छप्पण्ण-सहस्साणि संमिलिदे सव्व-देवीओ ।।९३।।

१६००० । ५६००० ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके सोलह हजार प्रमाण वल्लभा देवियाँ होती हैं । इसप्रकार चमरेन्द्रकी पाँचों अग्र-देवियोंकी परिवार-देवियों और वल्लभा देवियोंको मिलाकर, सर्व देवियाँ छप्पन हजार होती हैं ।।९३।।

पउमा-पउमसिरीओ कणयसिरी कणयमाल-महपउमा ।
अग्ग-महिसीउ बिदिए विक्किरिया पहुदि पुव्वं व[1] ॥९४॥

अर्थ :—द्वितीय (वैरोचन) इन्द्रके पद्मा, पद्मश्री, कनकश्री, कनकमाला और महापद्मा, ये पांच अग्र-देवियां होती हैं, इनके विक्रिया आदिका प्रमाण पूर्व (प्रथम इन्द्र) के सदृश ही जानना चाहिए ॥९४॥

पण अग्ग-महिसियाओ पत्तेक्कं वल्लहा दस-सहस्सा ।
णागिंदाणं होंति हु विक्किरियप्पहुदि पुव्वं व[2] ॥९५॥

५ । १०००० । ४०००० । ५०००० ।

अर्थ :—नागेन्द्रों (भूतानन्द और धरणानन्द) मेंसे प्रत्येककी पांच अग्र-देवियां और दस हजार वल्लभाएँ होती हैं । शेष विक्रिया आदिका प्रमाण पूर्ववत् ही है ॥९५॥

चत्तारि सहस्साणि वल्लहियाओ हवंति पत्तेक्कं ।
गरुडिंदाणं[3] सेसं पुव्वं पिव एत्थ वत्तव्वं ॥९६॥

५ । ४००० । ४०००० । ४४००० ।

अर्थ :—गरुडेन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी चार हजार वल्लभायें होती हैं । यहाँ पर शेष कथन पूर्वके सदृश ही समझना चाहिए ॥९६॥

सेसाणं इंदाणं पत्तेक्कं पंच-अग्ग-महिसीओ ।
एदेसु छस्सहस्सा स-समं परिवार-देवीओ ॥९७॥

५ । ६००० । ३०००० ।

अर्थ :—शेष इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके पांच अग्र-देवियां और उनमेंसे प्रत्येकके अपने (मूल शरीर) को सम्मिलित कर छह हजार परिवार-देवियां होती हैं ॥९७॥

---

१. द. बा । क. ज. ठ. व । २. द. बा । क. व । ३. द. ब. गरुणिदाण । ज. ठ. गरुडंदाणं ।

[1]दीविंद-प्पहुदीणं देवीणं वरविउव्वणा[2] संति ।
छ-सहस्साणि च समं पत्तेक्कं विविह-रूवेहिं ॥९८॥

अर्थ :—द्वीपेन्द्रादिकोंकी देवियोंमेंसे प्रत्येकके मूलशरीरके साथ विविध-प्रकारके रूपोंसे छह-हजार प्रमाण उत्तम विक्रिया होती है ॥९८॥

पुह पुह सेसिंदाणं वल्लहिया होंति दो सहस्साणि ।
बत्तीस-सहस्साणि संमिलिदे सव्व-देवीओ ॥९९॥

२००० । ३२००० ।

अर्थ :—शेष इन्द्रोंके पृथक्-पृथक् दो हजार वल्लभा देवियाँ होती हैं इन्हें मिला देनेपर प्रत्येक इन्द्रके सब देवियाँ बत्तीस हजार प्रमाण होती हैं ॥९९॥

[भवनवासी इन्द्रोंकी देवियोंके प्रमाण की तालिका पृष्ठ २९४ पर देखिये]

---

१. द. ब. क. ज. ठ. देविंद । २. द. वरविव्वणा ब. वार विव्वणा । ज. ठ. वारविव्वणा । क. वार विकुव्वणा ।

भवनवासी इन्द्रोंकी देवियोंका प्रमाण गाथा ९०-९९

क्रमांक	कुल	इन्द्रोंके नाम	अग्रदेवियाँ ×	परिवार-देवियाँ =	गुणनफल +	वल्लभा-देवियाँ =	सर्वयोग	मूल शरीर सहित विक्रिया
१.	असुर कु०	चमर	५ ×	८००० =	४०००० +	१६००० =	५६०००	८०००
		वैरोचन	५ ×	८००० =	४०००० +	१६००० =	५६०००	८०००
२.	नाग कु०	भूतानन्द	५ ×	८००० =	४०००० +	१०००० =	५००००	८०००
		धरणानंद	५ ×	८००० =	४०००० +	१०००० =	५००००	८०००
३.	सुपर्ण कु०	वेणु	५ ×	८००० =	४०००० +	४००० =	४४०००	८०००
		वेणुधारी	५ ×	८००० =	४०००० +	४००० =	४४०००	८०००
४.	द्वीपकुमार आदि शेष	शेष इन्द्र	५ ×	६००० =	३०००० +	२००० =	३२००० (प्रत्येक की)	६००० (प्रत्येककी)

पडिइंदादि-चउण्हं वल्लहियाणं तहेव देवीणं ।
सव्वं विउव्वणादि णिय-णिय-इंदाण सारिच्छं ।।१००।।

अर्थ :—प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिंश, सामानिक और लोकपाल, इन चारोंकी वल्लभाएँ तथा इन देवियोंकी सम्पूर्ण विक्रिया आदि अपने-अपने इन्द्रोंके सदृश ही होती हैं ।।१००।।

सव्वेसुं इंदेसुं तणुरक्ख-सुराण होंति देवीओ ।
पत्तेक्कं सय-मेत्ता णिरुवम-लावण्ण-लीलाओ ।।१०१।।

१००

अर्थ :—सब इन्द्रोंमें प्रत्येक तनुरक्षक देवकी अनुपम-लावण्य लीलाको धारण करने वाली सौ देवियाँ होती हैं ।।१०१।।

अड्ढाइज्ज-सयाणि देवीओ दुवे सया दिवड्ढ-सयं ।
आदिम-मज्झिम-बाहिर-परिसासुं होंति चमरस्स ।।१०२।।

२५० । २०० । १५० ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके आदिम, मध्यम और बाह्य पारिषद देवोंके क्रमशः ढाईसौ, दोसौ एवं डेढ़सौ देवियाँ होती हैं ।।१०२।।

देवीओ तिण्णि सया अड्ढाइज्जं सयाणि दु-सयाणि ।
आदिम-मज्झिम-बाहिर-परिसासुं होंति बिदिय-इंदस्स ।।१०३।।

३०० । २५० । २०० ।

अर्थ :—द्वितीय इन्द्रके आदिम, मध्यम और बाह्य पारिषद देवोंके क्रमशः तीनसौ, ढाईसौ एवं दोसौ देवियाँ होती हैं ।।१०३।।

दोण्णि सया देवीओ सट्ठी-चालाविरित्त[1] एक्क-सयं ।
णागिंदाणं अब्भिंतरादि-ति-प्परिस-देवेसुं[2] ।।१०४।।

२०० । १६० । १४० ।

---

१. द. ब. चालादिरत्त । २. द. ब. क. ज. ठ. तिप्परिसदेवीसु ।

अर्थ :—नागेन्द्रोंके अभ्यन्तरादिक तीनों प्रकारके पारिषद देवोंमें क्रमशः दोसौ, एकसौ साठ और एकसौ चालीस देवियाँ होती हैं ॥१०४॥

सट्ठी-जुदमेक्क-सयं चालीस-जुदं च बीस अब्भहियं ।
गरुडिंदाणं अब्भंतरादि-ति-प्परिस-देवीओ ॥१०५॥

१६० । १४० । १२० ।

अर्थ :—गरुडेन्द्रोंके अभ्यन्तरादिक तीनों पारिषद देवोंके क्रमशः एकसौ साठ, एकसौ चालीस और एकसौ बीस देवियाँ होती हैं ॥१०५॥

चालुत्तरमेक्कसयं बीसब्भहियं सयं च केवलयं ।
सेसिंदाणं[1] आदिम-परिस-प्पहुदीसु देवीओ ॥१०६॥

१४० । १२० । १००

अर्थ :—शेष इन्द्रोंके आदिम पारिषदादिक देवोंमें क्रमशः एक सौ चालीस, एकसौ बीस और केवल सौ देवियाँ होती है ॥१०६॥

उवहि पहुदि कुलेसुं इंदाणं दीव-इंद-सरिसाओ ।
आदिम-मज्झिम-बाहिर परिसत्तिदयस्स देवीओ ॥१०७॥

१४० । १२० । १००

अर्थ :—उदधिकुमार पर्यंत कुलोंमें द्वीपेन्द्रके सदृश १४०, १२० और १०० देवियाँ क्रमशः आदि, मध्य और बाह्य पारिषादिक इन्द्रोंकी होती है ॥१०७॥

असुरादि-दस-कुलेसुं हवंति सेणा-सुराण पत्तेक्कं ।
पण्णासा देवीओ सयं च परो महत्तर-सुराणं ॥१०८॥

। ५० । १०० ।

अर्थ :—असुरादिक दस कुलोंमें सेना-सुरोंमेंसे प्रत्येकके उत्कृष्टतः पचास और महत्तर देवोंके सौ देवियाँ होती हैं ॥१०८॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. देविंदाणं ।

भवनवासी इन्द्रोंके परिवार देवोंकी देवियोंका प्रमाण गाथा—१००-१०८

कुल नाम	इन्द्र-नाम	प्रतीन्द्र	त्रायस्त्रिंश	सामानिक	लोकपाल	तनु-रक्षक	पारिषद			सेना-सुर	महत्तर	नि:कृष्ट देव
							आदि	मध्य	बाह्य			
असुर कु०	चमरेन्द्र	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	१००	२५०	२००	१५०	५०	१००	३२
	वैरोचन					१००	३००	२५०	२००	५०	१००	३२
नाग कु०	भूतानन्द					१००	२००	१६०	१४०	५०	१००	३२
	धरणानन्द					१००	२००	१६०	१४०	५०	१००	३२
सुपर्ण कु०	वेणु					१००	१६०	१४०	१२०	५०	१००	३२
	वेणुधारी					१००	१६०	१४०	१२०	५०	१००	३२
द्वीपकुमार आदि शेष	शेष सर्व इन्द्र					१०० (प्रत्येक की)	१४० (प्रत्येक की)	१२० (प्रत्येक की)	१०० (प्रत्येक की)	५०	१००	३२

जिण-विट्ठ-पमाणाओ[1] होंति पइण्णय-तियस्स देवीओ ।
सव्व-णिगिट्ठ-सुराणं, पियाओ बत्तीस पत्तेक्कं ॥१०९॥

। ३२ ।

अर्थ :—प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक, इन तीन देवोंकी देवियाँ जिनेन्द्रदेव द्वारा कहे गये प्रमाण स्वरूप होती हैं । सम्पूर्ण निकृष्ट देवोंके भी प्रत्येकके बत्तीस-बत्तीस प्रिया (देवियाँ) होती हैं ॥१०९॥

अप्रधान परिवार देवोंका प्रमाण

एदे सव्वे देवा देविंदाणं पहाण-परिवारा ।
अण्णे वि अप्पहाणा संखातीदा विराजंति ॥११०॥

अर्थ :—ये सब उपर्युक्त देव इन्द्रोंके प्रधान परिवार स्वरूप होते हैं । इनके अतिरिक्त अन्य और भी असंख्यात अप्रधान परिवार सुशोभित होते हैं ॥११०॥

भवनवासी देवोंका आहार और उसका काल प्रमाण

इंद-पडिंद-प्पहुदी तद्देवीओ मणेण आहारं ।
अमयमय-मइसिणिद्धं संगेण्हंते णिरुवमाणं[2] ॥१११॥

अर्थ :—इन्द्र-प्रतीन्द्रादिक तथा इनकी देवियाँ अति-स्निग्ध और अनुपम अमृतमय आहारको मनसे ग्रहण करती हैं ॥१११॥

[3]चमर-दुगे आहारो [4]वरिस-सहस्सेण होइ णियमेण ।
पणुवीस-दिणाण दलं भूदाणंदादि-छण्हं पि ॥११२॥

व १००० । दि $\frac{२५}{२}$ ।

अर्थ :—चमरेन्द्र और वैरोचन इन दो इन्द्रोंके एक हजार वर्ष बीतनेपर नियमसे आहार होता है । इसके आगे भूतानन्दादिक छह इन्द्रोंके पच्चीस दिनोंके आधे (१२½) दिनोंमें आहार होता है ॥११२॥

---

१. द. प्पमाणाओ, ज. ठ. पमाणिक । २. द. ब. णिवरुवमणं । क. णिवरुवमाण । ३. द. ज. ठ. चरमदुगे । ४. द. ज. ठ. वरस ।

बारस-दिणेसु जलपह-पहुदी-छण्हं पि भोयणावसरो ।
पण्णरस-वासर-दलं अमिदगदि-प्पमुह-छक्कम्मि ॥११३॥

। १२ । $\frac{१५}{२}$ ।

अर्थ :—जलप्रभादिक छह इन्द्रोंके बारह दिनके अन्तरालसे और अमितगति आदि छह इन्द्रोंके पन्द्रहके आधे (७½) दिनके अन्तरालसे आहारका अवसर आता है ॥११३॥

इंदादी पंचाणं सरिसो आहार-काल-परिमाणं ।
तणुरक्ख-प्पहुदीणं तस्सि उवदेस-उच्छिण्णो[1] ॥११४॥

अर्थ :—इन्द्रादिक पांच (इन्द्र, प्रतीन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश और पारिषद) के आहार-कालका प्रमाण सदृश है । इसके आगे तनुरक्षकादि देवोंके आहार-कालके प्रमाणका उपदेश नष्ट हो गया है ॥११४॥

दस-वरिस-सहस्साऊ जो देवो तस्स भोयणावसरो ।
दोसु दिवसेसु पंचसु पल्ल-[2]पमाणाउ-जुत्तस्स ॥११५॥[3]

अर्थ :—जो देव दस-हजार वर्षकी आयुवाला है उसके दो दिनके अन्तरालसे और पल्योपम-प्रमाणसे संयुक्त देवके पांच दिनके अन्तरालसे भोजनका अवसर आता है ॥११५॥

भवणवासियोंमें उच्छ्वासके समयका निरूपण

चमर-दुगे उस्सासं [4]पण्णरस-दिणाणि पंचवीस-दलं ।
पुह-पुह [5]मुहुत्तयाणि भूदाणंदादि-छक्कम्मि ॥११६॥

। दि १५ । मु $\frac{२५}{२}$ ।

अर्थ :—चमरेन्द्र एवं वैरोचन इन्द्रोंके पन्द्रह दिनमें तथा भूतानन्दादिक छह इन्द्रोंके पृथक्-पृथक् साढ़े बारह-मुहूर्तोंमें उच्छ्वास होता है ॥११६॥

---

१. द. ब. क. ज ठ. उच्छिण्णा । २. द. पमाणाउजुत्तस्स । ३. मूल प्रतिमें यह गाथा संख्या ११७ है किन्तु विषय-प्रसंगके कारण यहाँ दी गई है । ४. ब. पणरस । ५. ब. मुहुत्तयाणं ।

बारस-मुहुत्तयाणि जलपह-पहुदीसु छस्सु उस्सासा ।
पण्णरस-मुहुत्त-दलं अमिदगदि-पमुह-छण्हं पि ।।११७।।

। मु १२ । $\frac{१५}{२}$ ।

अर्थ :—जलप्रभादिक छह इन्द्रोंके बारह-मुहूर्तोंमें और अमितगति आदि छह इन्द्रोंके साढ़े-सात-मुहूर्तोंमें उच्छ्वास होता है ।।११७।।

जो अजुदाऊ देवो[1] उस्सासा तस्स सत्त-पाणेहिं ।
ते पंच-मुहुत्तेहिं [2]पलिदोवम-आउ-जुत्तस्स ।।११८।।

अर्थ :—जो देव अयुत (दस हजार) वर्ष प्रमाण आयुवाले हैं उनके सात श्वासोच्छ्वास-प्रमाण कालमें और पल्योपम-प्रमाण आयुसे युक्त देवके पाँच मुहूर्तोंमें उच्छ्वास होते हैं ।।११८।।

प्रतीन्द्रादिकोंके उच्छ्वासका निरूपण

पडिइंदादि-चउण्हं इंदस्सरिसा हवंति उस्सासा ।
तणुरक्ख-प्पहुदीसुं उवएसो संपइ पणट्ठो ।।११९।।

अर्थ :—प्रतीन्द्रादिक चार-देवोंके उच्छ्वास इन्द्रोंके सदृशही होते हैं । इसके आगे तनुरक्षकादि देवोंमें उच्छ्वास-कालके प्रमाणका उपदेश इस समय नष्ट हो गया है ।।११९।।

असुरकुमारादिकोंके वर्णोंका निरूपण

सव्वे असुरा किण्हा हवंति णागा वि कालसामलया ।
गरुडा दीवकुमारा सामल-वण्णा सरीरेहिं ।।१२०।।

[3]उदहि-त्थणिदकुमारा ते सव्वे कालसामलायारा ।
विज्जू विज्जु-सरिच्छा सामल-वण्णा दिसकुमारा ।।१२१।।

अग्गिकुमारा सव्वे जलंत-सिहिजाल-सरिस-दित्ति-धरा ।
णव-कुवलय-सम-भासा वादकुमारा वि णादव्वा ।।१२२।।

---

१. द. ठ. देओ, क. ज. देउ । २. ब. क. पलिदोवमयावजुत्तस्स, द. ज. ठ. पलिदोवमयाहुजुत्तस्स । ३. द. ब. ज. ठ. उदधिथणिद ।

अर्थ :—सर्व असुरकुमार (शरीर से) कृष्णवर्ण, नागकुमार कालश्यामल, गरुड़कुमार एवं द्वीपकुमार श्यामलवर्ण वाले होते हैं। सम्पूर्ण उदधिकुमार तथा स्तनितकुमार कालश्यामलवर्णवाले, विद्युत्कुमार बिजलीके सदृश और दिक्कुमार श्यामलवर्णवाले होते हैं। सब अग्निकुमार जलती हुई अग्निकी ज्वाला सदृश कान्तिको धारण करनेवाले तथा वातकुमार देव नवीन कुवलय (नील कमल) की सदृशता वाले जानने चाहिए ।।१२०-१२२।।

असुरकुमार आदि देवोंका गमन

पंचसु कल्लाणेसुं जिरिणद-पडिमाण पूजण-णिमित्तं ।
णंदीसरम्मि दीवे इंदादी जांति भत्तीए ।।१२३।।

अर्थ :—भक्तिसे युक्त सभी इन्द्र पंचकल्याणकोंके निमित्त (ढ़ाई द्वीप में) तथा जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजनके निमित्त नन्दीश्वर द्वीपमें जाते हैं ।।१२३।।

सीलादि-संजुदाणं पूजण-हेदुं परिक्खण-णिमित्तं ।
णिय णिय-कीडण-कज्जे वइरि-समूहस्स मारणिच्छाए[1] ।।१२४।।

असुर-प्पहुदीण गदी उड्ढ-सरूवेण जाव ईसाणं ।
णिय-वसदो पर-वसदो अच्चुद-कप्पावही होदि ।।१२५।।

अर्थ :—शीलादिकसे संयुक्त किन्हीं मुनिवरादिकको पूजन एवं परीक्षाके निमित्त, अपनी-अपनी क्रीडा करनेके लिए अथवा शत्रु समूहको नष्ट करनेकी इच्छासे असुरकुमारादिक देवोंकी गति ऊर्ध्वरूपसे अपने वश (अन्यकी सहायताके बिना) ईशान स्वर्ग-पर्यन्त और दूसरे देवोंकी सहायतासे अच्युत स्वर्ग पर्यन्त होती है ।।१२४-१२५।।

भवनवासी देव-देवियोंके शरीर एवं स्वभावादिकका निरूपण

कणयं व णिरुवलेवा णिम्मल-कंती सुगंध-णिस्सासा ।
णिरुवमय-रूवरेखा समचउरस्संग-संठाणा ।।१२६।।

लक्खण-वंजण-जुत्ता, संपुण्णमियंक-सुन्दर-महाभा ।
णिच्चं चेय कुमारा देवा देवी ओ तारिसया ।।१२७।।

---

१. द. मारणिट्ठाए।

अर्थ :—(वे सब देव) स्वर्णके समान, मलके संसर्गसे रहित निर्मल कान्तिके धारक, सुगन्धित निश्वाससे संयुक्त, अनुपम रूपरेखा वाले, समचतुरस्र नामक शरीर संस्थानवाले लक्षणों और व्यंजनोंसे युक्त, पूर्ण चन्द्र सदृश सुन्दर महाकान्ति वाले और नित्य ही (युवा) कुमार रहते हैं, वैसी ही उनकी देवियाँ होती हैं ॥१२६-१२७॥

रोग-जरा-परिहीणा णिरुवम-बल-वीरिएहिं परिपुण्णा ।
आरत्त-पाणि-चरणा कदलीघादेण परिचत्ता ॥१२८॥

वर-रयण-मोडधारी[1] वर-विविह-विभूसणेहिं सोहिल्ला ।
[2]मंसट्ठि-मेघ-लोहिद-मज्ज-वसा[3]-सुक्क-परिहीणा ॥१२९॥

कररुह-केस-विहीणा णिरुवम-लावण्ण-दित्ति-परिपुण्णा ।
बहुविह-विलास-सत्ता देवा देवीओ ते होंति ॥१३०॥

अर्थ :—वे देव, देवियाँ रोग एवं जरासे विहीन, अनुपम बल-वीर्यसे परिपूर्ण, किंचित् लालिमा युक्त हाथ-पैरोंसे सहित कदलीघात (अकालमरण) से रहित, उत्कृष्ट रत्नोंके मुकुटको धारण करनेवाले, उत्तमोत्तम विविध-प्रकारके आभूषणोंसे शोभायमान, मांस-हड्डी-मेद-लोहू-मज्जा-वसा और शुक्र आदि धातुओंसे विहीन, हाथोंके नख एवं बालोंसे रहित अनुपम लावण्य तथा दीप्तिसे परिपूर्ण और अनेक प्रकारके हाव-भावोंमें आसक्त रहते (होते) हैं ॥१२८-१३०॥

असुरकुमार आदिकोंमे प्रवीचार

असुरादी भवणसुरा सव्वे ते होंति काय-पविचारा[4] ।
वेदस्सुदीरणाए[5] अणुभवणं [6]माणुस-समाणं ॥१३१॥

अर्थ :—वे सब असुरादिक भवनवासी देव काय-प्रवीचारसे युक्त होते हैं तथा वेद-नोकषायकी उदीरणा होनेपर वे मनुष्योंके समान कामसुखका अनुभव करते हैं ॥१३१॥

धादु-विहीणत्तादो रेद-विणिग्गमणमत्थि ण हु ताणं ।
संकप्प-सुहं जायदि वेदस्स उदीरणा-विगमे ॥१३२॥

---

१. ब. मेडधारी । २. द. मंसट्ठिद । ३ द क. ज ठ. वसू । ४ द. ब. क. ज. ठ. पडिचारा । ५. द. ब. वेदसुदीरणयाए । ६. द. ब. क. ज. ठ. माणुस ।

अर्थ :– सप्त-धातुओंसे रहित होनेके कारण निश्चयसे उन देवोंके वीर्यका क्षरण नहीं होता। केवल वेद-नोकषायकी उदीरणाके शान्त होनेपर उन्हें संकल्पसुख उत्पन्न होता है ॥१३२॥

इन्द्र-प्रतीन्द्रादिकोंकी छत्रादि-विभूतियाँ

बहुविह-परिवार-जुदा देविंदा विविह-छत्त-पहुदीहिं ।
सोहंति विभूदीहिं पडिइंदादी य चत्तारो ॥१३३॥

अर्थ :—बहुत प्रकारके परिवारसे युक्त इन्द्र और प्रतीन्द्रादिक चार (प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिंश, सामानिक और लोकपाल) देव भी विविध प्रकारकी छत्रादिरूप विभूतिसे शोभायमान होते हैं ॥१३३॥

पडिइंदादि-चउण्हं सिंहासण-आदवत्त-चमराणि ।
णिय-णिय-इंद-समाणि आयारे होंति किंचूणा ॥१३४॥

अर्थ : —प्रतीन्द्रादिक चार देवोंके सिंहासन, छत्र और चमर ये अपने-अपने इन्द्रोंके सदृश होते हुए भी आकारमें कुछ कम होते हैं ॥१३४॥

इन्द्र-प्रतीन्द्रादिकोंके चिह्न

सव्वेसिं इंदाणं चिण्हाणि तिरीटमेव मणि-खचिदं ।
पडिइंदादि-चउण्हं चिण्हं मउडं मुणेदव्वा ॥१३५॥

अर्थ :—सब इन्द्रोंका चिह्न मणियोंसे खचित किरीट (तीन शिखर वाला मुकुट) है और प्रतीन्द्रादिक चार देवोंका चिह्न साधारण मुकुट ही जानना चाहिए ॥१३५॥

ओलगशालाके आगे स्थित असुरादि कुलोंके चिह्न-स्वरूप
वृक्षोंका निर्देश

ओलगसाला-पुरदो चेत्त-दुमा होंति विविह-रयणमया ।
असुर-प्पहुदि-कुलाणं ते चिण्हाइं[1] इमा होंति ॥१३६॥

---

१. ब. क. ज. ठ. चिण्हा इंदमाहोंति ।

अस्सत्थ-सत्तपण्णा संमलि-जंबू य वेदस-कडंबा ।
[1]तह पीयंगू सिरसा पलास-रायद्दुमा कमसो ॥१३७॥

अर्थ :—असुरकुमार आदि कुलोंकी श्रोलगशालाओंके आगे क्रमशः विविध प्रकारके रत्नोंसे निर्मित अश्वत्थ, सप्तपर्ण, शाल्मलि, जामुन, वेतस, कदम्ब, प्रियंगु, शिरीष, पलाश और राजद्रुम ये दस चैत्यवृक्ष उनके चिह्न स्वरूप होते हैं ॥१३६-१३७॥

[भवनवासीदेवोंके आहार एवं श्वासोच्छ्वासका अन्तराल तथा चैत्य-वृक्षादिका विवरण चित्र पृष्ठ ३०५ में देखिये]

१. ब. क. ज. ठ. तय ।

भवनवासी देवोंके आहार एवं श्वासोच्छ्वासका अन्तराल तथा चैत्य-वृक्षादिका विवरण

कुलों के नाम	आहार का अन्तराल	श्वासोच्छ्वास का अन्तराल	शरीर का वर्ण	ऊर्ध्व रूप से गति		संस्थान	प्रवीचार	चैत्य-वृक्ष
				स्ववश	परवश			
असुरकुमार	१००० वर्ष	१५ दिन	कृष्ण	स्व-आलम्बन से ईशान-स्वर्ग-पर्यन्त	परावलम्बन रूप से अच्युत स्वर्ग पर्यन्त	समचतुरस्र-संस्थान	कायप्रवीचार से युक्त	अश्वत्थ (पीपल)
नागकुमार	१२½ दिन	१२½ मु०	कालश्याम					सप्तपर्ण
सुपर्णकुमार	,,	,,	श्याम					शाल्मलि
द्वीपकुमार	,,	,,	श्याम					जामुन
उदधिकुमार	१२ दिन	१२ मु०	कालश्याम					वेतस
स्तनितकुमार	,,	,,	,,					कदम्ब
विद्युत्कुमार	,,	,,	बिजलीवत्					प्रियंगु
दिक्कुमार	७½ दिन	७½ मु०	श्यामल					शिरीष
अग्निकुमार	,,	,,	अग्निवत्					पलास
वायुकुमार	,,	,,	नीलकमल					राजद्रुम
इनके सामा०, त्राय०, पारिषद एवं प्रतीन्द्र	स्व इन्द्रवत्	स्व इन्द्रवत्						
देव १००० वर्ष आयु वाले	२ दिन	७ श्वासो०						
देव १ पल्य के आयु वाले	५ दिन	५ मुहूर्त						

नोट :—गाथाओंमें चमर-वैरोचन आदि इन्द्रोंके आहार एवं श्वासोच्छ्वासका अन्तराल कहा गया है। तालिकामें कुलोंका जो अन्तराल दर्शाया है, वही उनके चमरादि इन्द्रोंका समझना चाहिए।

चैत्यवृक्षोंके मूलमें जिनप्रतिमाएँ एवं उनके आगे मानस्तम्भोंकी स्थिति

चेत्त-दुमा-मूलेसुं पत्तेक्कं चउ-दिसासु चेट्ठंते[1] ।
पंच जिणिंद-प्पडिमा पलियंक-ठिदा परम-रम्मा ।।१३८।।

अर्थ :—प्रत्येक चैत्यवृक्षके मूलभागमें चारों ओर पल्यंकासनसे स्थित परम रमणीय पाँच-पाँच जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ विराजमान हैं ।।१३८।।

पडिमाणं अग्गेसुं रयणत्थंभा हवंति वीस फुडं[2] ।
पडिमा-पीढ-सरिच्छा पीढा थंभाण णादव्वा ।।१३९।।

एक्केक्क-माणथंभे अट्ठावीसं जिणिंद-पडिमाओ ।
चउसु दिसासुं सिंहासणादि-विण्णास-जुत्ताओ ।।१४०।।

अर्थ :—प्रतिमाओंके आगे रत्नमय बीस मानस्तम्भ होते हैं। स्तम्भोंकी पीठिकाएँ प्रतिमाओंकी पीठिकाओंके सदृश जाननी चाहिए। एक-एक मानस्तम्भके ऊपर चारों दिशाओंमें सिंहासन आदिके विन्याससे युक्त अट्ठाईस जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ होती हैं ।।१३९-१४०।।

सेसाओ वण्णणाओ चउ-वण-मज्झत्थ-चेत्ततरु-सरिसा[3] ।
छत्तादि-छत्त-पहुदी-जुवाण[4] जिणणाह-पडिमाणं ।।१४१।।

अर्थ :—छत्रके ऊपर छत्र आदिसे युक्त जिनेन्द्र-प्रतिमाओंका शेष वर्णन चार वनोंके मध्यमें स्थित चैत्यवृक्षोंके सदृश जानना चाहिए ।।१४१।।

चमरेन्द्रादिकोंमें परस्पर ईर्षाभाव

चमरिंदो सोहम्मे ईसदि वइरोयणो य ईसाणे[5] ।
भूदाणंदे[6] वेणू धरणाणंदम्मि वेणुधारि[7] त्ति ।।१४२।।

एदे अट्ठ सुरिंदा अण्णोण्णं बहुविहाओ भूदीओ ।
दट्ठूण मच्छरेणं ईसंति सहावदो केई ।।१४३।।

।। इंदविभवो[8] समत्तो[9] ।।

---

१. द. चेट्ठंतो । २. द. क. ज. ठ. पुढं । ३. द. ब. सहस्सा । ४. द. ब. क. ज. ठ जुवाणि । ५. ब. ईसाणो । ६. ब. ईसाणंदे । ७. ब. क. वेणुवारि । ८. द. इंदविभवे । ९. द. ब. समत्ता ।

अर्थ :—चमरेन्द्र सौधर्मसे, वैरोचन ईशानसे, वेणु भूतानन्दसे और वेणुधारी धरणानन्दसे ईर्षा करता है। इसप्रकार ये आठ सुरेन्द्र परस्पर नानाप्रकारकी विभूतियोंको देखकर मात्सर्यसे एवं कितने ही स्वभावसे ईर्षा करते हैं ॥१४२-१४३॥

॥ इन्द्रोंका वैभव समाप्त हुआ ॥

भवनवासियोंकी संख्या

संखातीदा सेढी भावण-देवाण दस-विकप्पाणं ।
तीए पमाणं सेढी [1]बिदंगुल-पढम-मूल-हदा ॥१४४॥

॥ संखा समत्ता ॥

अर्थ :—दस भेदरूप भवनवासी देवोंका प्रमाण असंख्यात-जगच्छ्रेणीरूप है, उसका प्रमाण घनांगुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित जगच्छ्रेणी मात्र है ॥१४४॥

॥ संख्या समाप्त हुई ॥

भवनवासियोंकी आयु

रयणाकरेक्क-उवमा चमर-दुगे होदि आउ-परिमाणं ।
तिण्णि पलिदोवमाणि भूदाणंदादि-जुगलम्मि ॥१४५॥

सा १ । प ३ ॥

वेणु-दुगे पंच-दलं पुण्ण-वसिट्ठे सु दोण्णि पल्लाइं ।
जलपहुदि-सेसयाणं दिवड्ढ-पल्लं तु पत्तेक्कं ॥१४६॥

। प $\frac{5}{2}$ । प २ । प $\frac{3}{2}$ । सेस १२ ।

अर्थ :—चमरेन्द्र एवं वैरोचन इन दो इन्द्रोंकी आयुका प्रमाण एक सागरोपम, भूतानन्द एवं धरणानन्द युगलकी तीन पल्योपम, वेणु एवं वेणुधारी इन दो इन्द्रों की ढाई पल्योपम, पूर्ण एवं वशिष्ठकी दो पल्योपम तथा जलप्रभ आदि शेष बारह इन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी आयुका प्रमाण डेढ पल्योपम है ॥१४५-१४६॥

---

1. द. ब. क. ज. ठ. बिदंगुणगार ।

अहवा उत्तर-इंदेसु पुव्व-भणिदं हवेदि अदिरित्तं ।
पडिइंदादि-चउण्हं आउ-पमाणाणि इंद-समं ॥१४७॥

अर्थ :—अथवा—उत्तरेन्द्रों (वैरोचन, धरणानन्द आदि) की पूर्वमें जो आयु कही गयी है उससे कुछ अधिक होती है । प्रतीन्द्रादिक चार देवोंकी आयुका प्रमाण इन्द्रोंके सदृश है ॥१४७॥

एक्क-पलिदोवमाऊ सरीर-रक्खाण होदि चमरस्स ।
वइरोयणस्स[1] अहियं भूदाणंदस्स कोडि-पुव्वाणि ॥१४८॥

प १ । प १ । पु को १ ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके शरीर-रक्षकोंकी एक पल्योपम, वैरोचन इन्द्रके शरीर-रक्षकोंकी एक पल्योपमसे अधिक और भूतानन्दके शरीर-रक्षकोंकी आयु एक पूर्वकोटि प्रमाण होती है ॥१४८॥

धरणिंदे अहियाणि वच्छर-कोडी हवेदि वेणुस्स ।
तणुरक्खा-उवमाणं अदिरित्तो वेणुधारिस्स ॥१४९॥

पु को १ । व को १ । व को १ ।

अर्थ :—धरणानन्दमें शरीर-रक्षकोंकी एक पूर्वकोटिसे अधिक, वेणुके शरीर-रक्षकोंकी एक करोड़ वर्ष और वेणुधारीके शरीर-रक्षकोंकी आयु एक करोड़ वर्षसे अधिक होती है ॥१४९॥

पत्तेक्कमेक्क-लक्खं वासा आऊ सरीर-रक्खाणं ।
सेसम्मि दक्खिणिंदे उत्तर-इंदम्मि अदिरित्ता ॥१५०॥

व १ ल । व १ ल ।

अर्थ :—शेष दक्षिण इन्द्रोंके शरीर-रक्षकोंमेंसे प्रत्येककी एक लाख वर्ष और उत्तरेन्द्रोंके शरीर-रक्षकोंकी आयु एक लाख वर्षसे अधिक होती है ॥१५०॥

अड्ढाइज्जा दोण्णि य पल्लाणि दिवड्ढ-आउ-परिमाणं ।
आदिम-मज्झिम-बाहिर-तिप्परिस-सुराण चमरस्स ॥१५१॥

प $\frac{5}{2}$ । प २ । प $\frac{3}{2}$ ।

---

१. द. वयरोयणस्स ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके आदि, मध्यम और बाह्य, इन तीन पारिषद देवोंकी आयुका प्रमाण क्रमशः ढाई पल्योपम, दो पल्योपम और डेढ़ पल्योपम है ॥१५१॥

तिण्णि पलिदोवमाणिं अड्ढाइज्जा दुवे कमा होंति ।
वइरोयणस्स आदिम-परिसप्पहुदीण जेट्ठाऊ ॥१५२॥

प ३ । प $\frac{५}{२}$ । प २ ।

अर्थ :—वैरोचन इन्द्रके आदिम आदिक पारिषद देवोंकी उत्कृष्ट आयु क्रमशः तीन पल्योपम, ढाई पल्योपम और दो पल्योपम है ॥१५२॥

[१]अट्ठं सोलस-बत्तीसहोंतिपलिदोवमस्स भागाणि ।
भूदाणंदे अहिओ धरणाणंदस्स परिस-तिद-आऊ ॥१५३॥

प $\frac{१}{८}$ । प $\frac{१}{१६}$ । प $\frac{१}{३२}$ ।

अर्थ :—भूतानन्दके तीनों पारिषद देवोंकी आयु क्रमशः पल्योपमके आठवें, सोलहवें और बत्तीसवें-भाग प्रमाण, तथा धरणानन्दके तीनों पारिषद देवोंकी आयु इससे अधिक होती है ॥१५३॥

परिसत्तय-जेट्ठाऊ तिय-दुग-एक्का य पुव्व-कोडीओ ।
वेणुस्स होंति कमसो अविरित्ता वेणुधारिस्स ॥१५४॥

पु को ३ । पु को २ । पु को १ ।

अर्थ :—वेणुके तीनों पारिषद देवोंकी उत्कृष्ट आयु क्रमशः तीन, दो और एक पूर्व कोटि तथा वेणुधारीके तीनों पारिषदोंकी इससे अधिक है ॥१५४॥

तिप्परिसाणं आऊ तिय-दुग-एक्काओ वास-कोडीओ ।
सेसम्मि दक्खिणिंदे अविरित्तं उत्तरिंदम्मि ॥१५५॥

व को ३ । व को २ । व को १ ।

अर्थ :—शेष दक्षिण-इन्द्रों के तीनों पारिषद देवोंकी आयु क्रमशः तीन, दो और एक करोड़ वर्ष तथा उत्तर इन्द्रोंके तीनों पारिषद देवोंकी आयु इससे अधिक है ॥१५५॥

---

१. द. क. अट्ठसोलस । ज. ठ. अट्ठंसोलस ।

एक्क-पलिदोवमाऊ सेणाधीसाण होदि चमरस्स ।
वइरोयणस्स अहियं भूदाणंदस्य कोडि-पुव्वाणि ॥१५६॥

प १ । प १ । पुव्व को १ ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके सेनापति देवोंकी आयु एक पल्योपम, वैरोचनके सेनापति देवोंकी इससे अधिक और भूतानन्दके सेनापति देवोंकी आयु एक पूर्व-कोटि है ॥१५६॥

धरणाणंदे अहियं वच्छर-कोडी हवेदि वेणुस्स ।
[1]सेणा-महत्तराऊ अदिरित्ता[2] वेणुधारिस्स ॥१५७॥

पु० को० १ । व० को० १ । व० को० १ ।

अर्थ :—धरणानन्दके सेनापति देवोंकी आयु एक पूर्वकोटिसे अधिक, वेणुके सेनापति देवोंकी एक करोड़ वर्ष और वेणुधारीके सेनापति देवोंकी आयु एक करोड़ वर्षसे अधिक है ॥१५७॥

पत्तेक्कमेक्क-लक्खं आऊ [3]सेणाहईण णादव्वो ।
सेसम्मि दक्खिणिंदे [4]अदिरित्तं उत्तरिंदम्मि ॥१५८॥

व० १ ल । व १ ल ।

अर्थ :—शेष दक्षिणेन्द्रोंमें प्रत्येक सेनापतिकी आयु एक लाख वर्ष और उत्तरेन्द्रोंके सेनापतियोंकी आयु इससे अधिक जाननी चाहिए ॥१५८॥

पलिदोवमद्धमाऊ आरोहक-वाहणाण चमरस्स ।
वइरोयणस्स अहियं भूदाणंदस्स कोडि-वरिसाइं ॥१५९॥

प $\frac{1}{2}$ । प $\frac{1}{2}$ । व को १ ।

अर्थ :—चमरेन्द्रके आरोहक वाहनोंकी आयु अर्ध-पल्योपम, वैरोचनके आरोहक-वाहनोंकी अर्ध-पल्योपमसे अधिक और भूतानन्दके आरोहक वाहनोंकी आयु एक करोड़ वर्ष होती है ॥१५९॥

---

१. द. ब. ज. ठ. सेना । २. द. ब. क. ज. ठ. अधिरित्ता । ३. द. सेण्णाहईण । ४. ब. क. अधिरित्तं, ज. ठ. अविरित्तं ।

धरणाणंदे अहियं वच्छर-लक्खं हवेदि वेणुस्स ।
आरोह-वाहणाऊ[1] तु अतिरित्तं वेणुधारिस्स[2] ॥१६०॥

। व० को १ । व १ ल । व १ ल ।

अर्थ :—धरणानन्दके आरोहक वाहनोंकी आयु एक करोड़ वर्षसे अधिक, वेणुके आरोहक वाहनोंकी एक लाख वर्ष और वेणुधारीके आरोहक वाहनोंकी आयु एक लाख वर्षसे अधिक होती है ॥१६०॥

पत्तेक्कमद्ध-लक्खं आरोहक-वाहणाण जेट्ठाऊ ।
सेसम्मि दक्खिणिंदे अदिरित्तं उत्तरिंदम्मि ॥१६१॥

५०'०००

अर्थ :— शेष दक्षिण इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके आरोहक वाहनोंकी उत्कृष्ट आयु अर्धलाखवर्ष और उत्तरेन्द्रोंके आरोहक वाहनोंकी आयु इससे अधिक है ॥१६१॥

जेत्तियमेत्त[3] आऊ पइण्ण-अभियोग-किब्बिस-सुराणं ।
तप्परिमाण-परूवण-उवएसस्सप्पहि[4] पणट्ठो ॥१६२॥

अर्थ :—प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्बिषिक देवोंकी जितनी-जितनी आयु होती है, उसके प्रमाणके प्ररूपणके उपदेश इस समय नष्ट हो चुके हैं ॥१६२॥

[भवनवासी-इन्द्रोंकी (सपरिवार) आयुके प्रमाणके विवरण की तालिका
पृष्ठ ३१२-३१३ में देखिये]

---

१. ब. वाहणाइं । २. क. ब. वेणुवारिस्स । ३. द. मेत्तयाऊ, ज. ठ मेत्तियाऊ । ४. द. ब. ज. ठ. उवएसं ।

भवनवासी-इन्द्रोंकी (सपरिवार)

इन्द्रोंके नाम	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	उत्कृष्ट आयु	प्रतीन्द्रों की	त्रायस्त्रिंश की	सामानिक देवों की	लोकपालों की	तनुरक्षक देवोंकी
चमर	द०	एक सागर					एक पल्य
वैरोचन	उ०	साधिक एक सा०					साधिक एक पल्य
भूतानन्द	द०	तीन पल्योपम					एक पूर्व कोटि
धरणानन्द	उ०	साधिक तीन पल्य					सा. एक पूर्व कोटि
वेणु	द०	२½ पल्य	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	स्व-इन्द्रवत्	एक करोड़ वर्ष
वेणुधारी	उ०	साधिक २½ प०					सा. एक करोड़ वर्ष
पूर्ण	द०	२ पल्योपम					एक लाख वर्ष
वशिष्ठ	उ०	साधिक २ पल्य					सा. एक लाख वर्ष
जलप्रभादि छह	द०	१½ पल्य					एक लाख वर्ष
जलकान्त आदि छह	उ०	साधिक १½ पल्य					साधिक एक लाख वर्ष

आयुके प्रमाणका विवरण गाथा–१४४-१६० तक

पारिषद			अनीक देवोंकी	वाहन देवोंकी
आदि	मध्य	बाह्य		
२$\frac{1}{2}$ पल्योपम	२ पल्योपम	१$\frac{1}{2}$ पल्योपम	१ पल्य	$\frac{1}{2}$ पल्य
३ पल्योपम	२$\frac{1}{2}$ पल्योपम	२ पल्योपम	साधिक १ पल्य	साधिक $\frac{1}{2}$ पल्य
पल्य का $\frac{1}{8}$ भाग	पल्य का $\frac{1}{16}$ भाग	पल्य का $\frac{1}{32}$ भाग	१ पूर्वकोटि	१ करोड़ वर्ष
सा.पल्य का $\frac{1}{8}$ भाग	सा.पल्यका $\frac{1}{16}$ भाग	सा.पल्यका $\frac{1}{32}$ भाग	साधिक १ पूर्वकोटि	साधिक १ करोड़ वर्ष
३ पूर्व कोटि	२ पूर्व कोटि	१ पूर्व कोटि	१ करोड़ वर्ष	१ लाख वर्ष
सा. ३ पूर्व कोटि	सा. २ पूर्व कोटि	साधिक १ पूर्वकोटि	साधिक १ करोड़ वर्ष	साधिक १ लाख वर्ष
३ करोड़ वर्ष	२ करोड़ वर्ष	एक करोड़ वर्ष	१ लाख वर्ष	$\frac{1}{2}$ लाख वर्ष
सा. ३ करोड़ वर्ष	सा. २ करोड़ वर्ष	सा. एक करोड़ वर्ष	साधिक १ लाख वर्ष	साधिक $\frac{1}{2}$ लाख वर्ष
३ करोड़ वर्ष	२ करोड़ वर्ष	एक करोड़ वर्ष	१ लाख वर्ष	$\frac{1}{2}$ लाख वर्ष
साधिक ३ करोड़ वर्ष	सा. २ करोड़ वर्ष	सा.एक करोड़ वर्ष	सा० एक लाख वर्ष	साधिक $\frac{1}{2}$ लाख वर्ष

आयुकी अपेक्षा भवनवासियोंका सामर्थ्य

दस-वास-सहस्साऊ जो देवो[1] माणुसाण सयमेक्कं ।
मारिदुमह-पोसेदुं सो सक्कदि अप्प-सत्तीए ।।१६३।।

खेत्तं दिवड्ढ-सय-धणु-पमाण-आयाम-वास-बहलत्तं ।
बाहाहिं [2]वेढेदुं [3]उप्पाडेदुं पि सो सक्को ।।१६४।।

दं १५० ।

अर्थ :—जो देव दस हजार वर्षकी आयुवाला है, वह अपनी शक्तिसे एकसौ मनुष्योंको मारने अथवा पोसनेके लिए समर्थ है, तथा वह देव डेढ़सौ धनुष प्रमाण लम्बे, चौड़े और मोटे क्षेत्रको बाहुओंसे वेष्टित करने और उखाड़नेमें भी समर्थ है ।।१६३-१६४।।

एक्क-पलिदोवमाऊ उप्पाडेदुं महीए छक्खंडं ।
तग्गद-णर-तिरियाणं मारेदुं पोसिदुं सक्को ।।१६५।।

अर्थ :—एक पल्योपम आयु वाला देव पृथिवीके छह खण्डोंको उखाड़ने तथा वहाँ रहने वाले मनुष्य एवं तिर्यंचोंको मारने अथवा पोसनेके लिए समर्थ है ।।१६५।।

उवहि-उवमाण-जीवी जंबूदीवं [4]समग्गमुक्खलिदुं ।
तग्गद-णर-तिरियाणं मारेदुं पोसिदुं सक्को ।।१६६।।

अर्थ :—एक सगरोपम काल तक जीवित रहनेवाला देव समग्र जम्बूद्वीपको उखाड़ फेंकने अर्थात् तहस-नहस करने और उसमें स्थित मनुष्य एवं तिर्यंचोंको मारने अथवा पोसनेके लिए समर्थ है ।।१६६।।

आयुकी अपेक्षा भवनवासियोंमें विक्रिया

दस-वास-सहस्साऊ सद-रूवाणि विगुव्वणं कुणदि ।
उक्कस्सम्मि जहण्णे सग-रूवा मज्झिमे विविहा ।।१६७।।

---

१. ब. देवाउ । २. द. ज. ठ. बेढेदुं । ३. द. ब ज. ठ. उप्पादेदु । ४. द. ब. क. ज. ठ. जंबूदीवस्स उमाने ।

अर्थ :—दस हजार वर्षकी आयुवाला देव उत्कृष्ट रूपसे सौ, जघन्य रूपसे सात और मध्यम रूपसे विविध रूपोंकी विक्रिया करता है ।।१६७।।

अवसेस-सुरा सव्वे णिय-णिय-ओही[1] पमाण-खेत्ताणि ।
[2]जेत्तियमेत्ताणि पुढं पूरंति [3]विकुव्वणाए एवाइं ।।१६८।।

अर्थ :—अपने-अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रोंका जितना प्रमाण है, उतने क्षेत्रोंको शेष सब देव पृथक्-पृथक् विक्रियासे पूरित करते हैं ।।१६८।।

आयुकी अपेक्षा गमनागमन-शक्ति

संखेज्जाऊ जस्स य सो संखेज्जाणि जोयणाणि सुरो[4] ।
गच्छेदि एक्क-समए आगच्छदि तेत्तियाणि पि ।।१६९।।

अर्थ :—जिस देवकी संख्यात वर्षकी आयु है, वह एक समयमें संख्यात योजन जाता है और इतने ही योजन आता है ।।१६९।।

जस्स असंखेज्जाऊ सो वि असंखेज्ज-जोयणाणि पुढं ।
गच्छेदि एक्क-समए आगच्छदि तेत्तियाणि पि ।।१७०।।

अर्थ :—तथा जिस देवकी आयु असंख्यात वर्षकी है, वह एक समयमें असंख्यात योजन जाता है और इतने ही योजन आता है ।।१७०।।

भवनवासिनी-देवियोंकी आयु

अड्ढाइज्जं पल्लं आऊ देवीण होदि चमरम्मि ।
वइरोयणम्मि तिण्णि य भूदाणंदम्मि पल्ल-अट्ठंसो ।।१७१।।

प $\frac{5}{2}$ । प ३ । प $\frac{1}{8}$ ।

अर्थ :—चमरेन्द्रकी देवियोंकी आयु ढाई पल्योपम, वैरोचनकी देवियोंकी तीन पल्योपम और भूतानन्दकी देवियोंकी आयु पल्योपमके आठवें भागमात्र होती है ।।१७१।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. उहइपमाण । २. ब. क. ज. ठ. ज्जित्तिय । ३. ब. विउव्वणाए । ४. द. ब. क. ज. ठ सुरा ।

धरणाणंदे अहियं वेणुम्मि हवेदि पुव्वकोडि-तियं ।
देवीए[1] आउसंखा अदिरित्तं वेणुधारिस्स ॥१७२॥

प ⅛ । पु को ३ ।

अर्थ :—धरणानन्दकी देवियोंकी आयु पल्यके आठवें-भागसे अधिक, वेणुकी देवियोंकी तीन पूर्वकोटि और वेणुधारीकी देवियोंकी आयु तीन पूर्व कोटियोंसे अधिक है ॥१७२॥

पत्तेक्कमाउसंखा देवीणं तिण्णि वरिस-कोडीओ ।
सेसम्मि दक्खिणिंदे अदिरित्तं उत्तरिदम्मि ॥१७३॥

व को ३ ।

अर्थ :—अवशिष्ट दक्षिण इन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी तीन करोड़ वर्ष और उत्तर इन्द्रोंमेंसे प्रत्येक की देवियोंकी आयु इससे अधिक है ॥१७३॥

[2]पडिइंदादि-चउण्हं आऊ देवीण होदि पत्तेक्कं ।
णिय-णिय-इंद-पविण्णद-देवी आउस्स सारिच्छो ॥१७४॥

अर्थ :—प्रतीन्द्रादिक चार देवोंकी देवियोंमेंसे प्रत्येककी अपने अपने इन्द्रोंकी देवियोंकी कही गई आयुके सदृश होती है ॥१७४॥

जेत्तियमेत्ता आऊ सरीररक्खादियाण देवीणं ।
तस्स पमाण-णिरूवम-उवदेसो णत्थि काल-वसा ॥१७५॥

अर्थ :—अंगरक्षक आदिक देवोंकी देवियोंकी जितनी आयु होती है, उसके प्रमाणके कथनका उपदेश कालके वशसे इस समय नहीं है ॥१७५॥

भवनवासियोंकी जघन्य-आयु

असुरादि-दस-कुलेसुं सव्व-णिगिट्ठाए[3] होदि देवाणं ।
दस-वास-सहस्साणि जहण्ण-आउस्स परिमाणं ॥१७६॥

॥ आउ-परिमाणं समत्तं[4] ॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. अंदेवीए । २. द. ब. क. ज. पडिइंदादि । ३. ब. क. ज. ठ. णिरिट्ठाए । ४. द. ब. क. ज. ठ. सम्मत्ता ।

अर्थ :—असुरकुमारादिक दस निकायोंमें सर्व निकृष्ट देवोंकी जघन्य आयुका प्रमाण दस हजार वर्ष है ॥१७६॥

॥ आयुका प्रमाण समाप्त हुआ ॥

भवनवासी देवोंके शरीरका उत्सेध

असुराण पंचवीसं सेस-सुराणं हुवंति दस-दंडा ।
एस सहाउच्छेहो विक्किरियंगेसु बहुभेया ॥१७७॥

दं २५ । दं १० ।

॥ उच्छेहो गदो[1] ॥

अर्थ :—असुरकुमारोंकी पच्चीस धनुष और शेष देवोंकी ऊँचाई दस धनुष मात्र होती है, शरीरकी यह ऊँचाई स्वाभाविक है किन्तु विक्रिया निर्मित शरीरोंकी ऊँचाई अनेक प्रकारकी होती है ॥१७७॥

॥ उत्सेधका कथन समाप्त हुआ ॥

ऊर्ध्वदिशामें उत्कृष्ट रूपसे अवधिक्षेत्रका प्रमाण

णिय-णिय-भवण-ठिदाणं उक्कस्से भवणवासि-देवाणं ।
उड्ढेण होदि णाणं कंचणगिरि-सिहर-परियंतं ॥१७८॥

अर्थ :—अपने-अपने भवनमें स्थित भवनवासी देवोंका अवधिज्ञान ऊर्ध्वदिशामें उत्कृष्ट-रूपसे मेरुपर्वतके शिखरपर्यन्त क्षेत्रको विषय करता है ॥१७८॥

अधः एवं तिर्यग् क्षेत्रमें अवधिज्ञानका प्रमाण

[2]तट्ठाणादोधोधो थोवत्थोवं पयट्टदे ओही ।
तिरिय-सरूवेण पुणो बहुतर-खेत्तेसु अक्खलिदं ॥१७९॥

---

१. द. ठ. गदा । २ द तट्ठाणादो थोहो, ब तट्ठाणाथोहो, क. तट्ठाणादो थो थो, ज. ठ. तट्ठाणादो हो थो ।

अर्थ :—भवनवासी देवोंका अवधिज्ञान अपने-अपने भवनोंके नीचे-नीचे थोड़े-थोड़े क्षेत्रमें प्रवृत्ति करता है परन्तु वही तिरछेरूपसे बहुत अधिक क्षेत्रमें अबाधित प्रवृत्ति करता है ।।१७९।।

क्षेत्र एवं कालापेक्षा जघन्य अवधिज्ञान

पणुवीस जोयणाणिं होंति जहण्णेण ओहि-परिमाणं ।
भावणवासि-सुराणं एक्क-दिणब्भंतरे काले ।।१८०।।

यो २५ । का दि १ ।

अर्थ :—भवनवासी देवोंके अवधिज्ञानका प्रमाण जघन्यरूपसे पच्चीस योजन है । पुनः कालकी अपेक्षा एक दिनके भीतरकी वस्तुको विषय करता है ।।१८०।।

असुरकुमार-देवोंके अवधिज्ञानका प्रमाण

असुराणामसंखेज्जा जोयण-कोडीउ ओहि-परिमाणं ।
खेत्ते कालम्मि पुणो होंति असंखेज्ज-वासाणि ।।१८१।।

रि । क । जो । रि । व ।

अर्थ :—असुरकुमार देवोंके अवधिज्ञानका प्रमाण क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात करोड़ योजन और कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्षमात्र है ।।१८१।।

शेष देवोंके अवधिज्ञानका प्रमाण

संखातीद-सहस्सा उक्कस्से जोयणाणि सेसाणं ।
असुराणं कालादो संखेज्ज-गुणेण हीणा य ।।१८२।।

अर्थ :—शेष देवोंके अवधिज्ञानका प्रमाण उत्कृष्ट रूपसे क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात हजार योजन और कालकी अपेक्षा असुरकुमारोंके अवधिज्ञानके कालसे संख्यातगुणा कम है ।।१८२।।

अवधिक्षेत्र-प्रमाण विक्रिया

णिय-णिय-ओहीक्खेत्तं णाणा-रूवाणि तह [1]विकुव्वंता ।
पूरंति असुर-पहुदी भावण-देवा दस-वियप्पा ।।१८३।।

।। ओही गदा ।।

---

१. द. क. वकुव्वंता, ज. ठ. वकुव्वंती ।

अर्थ :—असुरकुमारादि दस-प्रकारके भवनवासी देव अनेक रूपोंकी विक्रिया करते हुए अपने-अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रको पूरित करते हैं ॥१८३॥

॥ अवधिज्ञानका कथन समाप्त हुआ ॥

भवनवासी-देवोंमें गुणस्थानादिका वर्णन

गुण-जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणा कमसो ।
उवजोगा कहिदव्वा एदाण कुमार-देवाणं ॥१८४॥

अर्थ :—अब इन कुमार-देवोंके क्रमशः गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा आदि चौदह मार्गणा और उपयोगका कथन करना चाहिए ॥१८४॥

भवण-सुराणं अवरे दो [1]गुणठाणं च तम्मि चउसंखा ।
मिच्छाइट्ठी सासण-सम्मो मिस्सो विरदसम्मा ॥१८५॥

अर्थ :—भवनवासी देवोंके अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यात्व और सासादन ये दो तथा पर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टि, सासादन-सम्यक्त्व, मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि ये चार गुणस्थान होते हैं ॥१८५॥

उपरितन गुणस्थानोंकी विशुद्धि-विनाशके फलसे भवनवासियोंमें उत्पत्ति

ताण अपच्चक्खाणावरणोदय-सहिद भवण-जीवाणं ।
विसयाणंद-जुदाणं णाणाविह राग-पउराणं ॥१८६॥

देसविरदादि उवरिम दसगुणठाणाण-हेदु भूदाओ ।
जाओ विसोहियाओ कइया वि ण ताओ जायंते ॥१८७॥

अर्थ :—अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदय सहित, विषयोंके आनन्दसे युक्त, नानाप्रकारकी राग-क्रियाओंमें निपुण उन भवनवासी जीवोंके देशविरत-आदिक उपरितन दस गुणस्थानोंके हेतुभूत जो विशुद्ध परिणाम हैं, वे कदापि नहीं होते हैं ॥१८६-१८७॥

---

१. ब. गुणट्ठाणं चउ ।

जीवसमासा दो च्चिय णिव्वित्तियपुण्ण-पुण्ण भेदेण ।
पज्जत्ती छच्चेव य तेत्तियमेत्ता अपज्जत्ती ।।१८८।।

अर्थ :—इन देवोंके निर्वृत्यपर्याप्त और पर्याप्तके भेदसे दो जीवसमास, छह पर्याप्तियाँ और इतने मात्र ही अपर्याप्तियाँ होती हैं ।।१८८।।

पंच य इंदिय-पाणा मण-वय-कायाणि आउ-आणपाणाइं ।
पज्जत्ते दस पाणा इदरे मण-वयण-आणपाणूणा ।।१८९।।

अर्थ :—पर्याप्त अवस्थामें पाँचों इन्द्रियप्राण, मन, वचन और काय, आयु एवं आनप्राण ये दस प्राण तथा अपर्याप्त अवस्थामें मन, वचन और श्वासोच्छ्वाससे रहित शेष सात प्राण होते हैं ।।१८९।।

चउ सण्णा ताओ भय-मेहुण-आहार-गंथ-णामाणि ।
देवगदी पंचक्खा तस-काया एक्करस-जोगा ।।१९०।।

चउ-मण-चउ-वयणाइं वेगुव्व-दुगं तहेव कम्म-इयं ।
पुरिसित्थी [1]वेद-जुदा सयल-कसाएहिं परिपुण्णा ।।१९१।।

सव्वे छण्णाण-जुदा मदि-सुद-णाणाणि ओहि-णाणं च ।
मदि-अण्णाणं तुरिमं सुद-अण्णाणं विभंग-णाणं पि ।।१९२।।

सव्वे असंजदा[2] ति-दंसण-जुत्ता अचक्खु-चक्खोही ।
लेस्सा किण्हा णीला काउया पीता य [3]मज्झिमंस-जुदा ।।१९३।।

भव्वाभव्वा, [4]पंच हि सम्मत्तेहिं समण्णिदा सव्वे ।
उवसम-वेदग-मिच्छा-सासण[5]-मिच्छाणि ते होंति ।।१९४।।

अर्थ :—वे देव भय, मैथुन, आहार और परिग्रह नामवाली चारों संज्ञाओंसे, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति और त्रसकायसे चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, दो वैक्रियिक (वैक्रियिक, वैक्रियिक-

१. द. ब. संहूणा, ज. संहूणा, ठ. संदूणा । २. द. ब. क. ज. ठ. असंजदाइं-दंसण-जुत्ता य चक्खु-अचक्खोही । ३. द. क. मज्झिमस्स-जुदा, ब. मज्झिमस-जुदा । ज. ठ. जिमस्सजुदा । ४. ब. क. ज. ठ. एव्व हि । ५. ब. सासासण ।

मिश्र) तथा कार्मण इन ग्यारह योगोंसे, पुरुष और स्त्री वेदोंसे, सम्पूर्ण कषायोंसे परिपूर्ण, मति, श्रुत, अवधि, मतिअज्ञान, श्रुताज्ञान और विभंग, इन सभी छह ज्ञानोंसे, सब असंयम, अचक्षु, चक्षु एवं अवधि इन तीन दर्शनोंसे, कृष्ण, नील, कापोत और पीतके मध्यम अंशोंसे, भव्य एवं अभव्य तथा औपशमिक, वेदक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन पांचों सम्यक्त्वोंसे समन्वित होते हैं ।।१९०-१९४।।

सण्णी[1] य भवणदेवा हवंति आहारिणो अणाहारा ।
सायार-अणायारा उवजोगा होंति सव्वाणं ।।१९५।।

अर्थ :—भवनवासी देव संज्ञी तथा आहारक और अनाहारक होते हैं, इन सब देवोंके साकार (ज्ञान) और निराकार (दर्शन) ये दोनों ही उपयोग होते हैं ।।१९५।।

मज्झिम-विसोहि-सहिदा उदयागद-सत्थ-[2]पगिदि-सत्तिगदा ।
एवं [3]गुणठाणादी जुत्ता देवा व होंति देवीओ ।।१९६।।

।। गुणठाणादी समत्ता ।।

अर्थ :—वे देव मध्यम विशुद्धिसे सहित हैं और उदयमें आई हुई प्रशस्त प्रकृतियोंकी अनुभाग-शक्तिको प्राप्त हैं। इसप्रकार गुणस्थानादिसे संयुक्त देवोंके सदृश देवियाँ भी होती हैं ।।१९६।।

गुणस्थानादिका वर्णन समाप्त हुआ ।

एक समयमें उत्पत्ति एवं मरणका प्रमाण

सेढी-असंखभागो विदंगुल-पढम-वग्गमूल-हदो ।
भवणेसु एक्क-समए जायंति मरंति तम्मेत्ता ।।१९७।।

।। जम्मण-मरण-जीवाणं संखा समत्ता ।।

अर्थ :—घनांगुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित जगच्छ्रेणीके असंख्यातवें-भाग प्रमाण जीव भवनवासियोंमें एक समयमें उत्पन्न होते हैं और इतने ही मरते हैं । १९७।।

।। उत्पन्न होने वाले एवं मरने वाले जीवोंकी संख्या समाप्त हुई ।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सव्वे । २. द. ब. क. ज. ठ. परिदि । ३. द. ब. क. एवं गुणठाणजुत्ता देवं वा होइ देवीओ । ज. ठ. एवं गुणवणजुत्ता देवा वा होइ देवीओ ।

भवनवासियोंकी आगति निर्देश

णिक्कंता भवणादो गब्भे [1]सम्मुच्छि कम्म-भूमीसुं ।
पज्जत्ते उप्पज्जदि णरेसु तिरिएसु मिच्छभाव-जुदा ॥१९८॥

अर्थ :—मिथ्यात्वभावसे युक्त भवनवासी देव भवनोंसे निकल (चय) कर कर्मभूमियोंमें गर्भज या सम्मूर्च्छनज तथा पर्याप्त मनुष्यों अथवा तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होते हैं ॥१९८॥

सम्माइट्ठी देवा णरेसु जम्मंति कम्म-भूमीए ।
गब्भे पज्जत्तेसुं सलाग-पुरिसा ण होंति कइयाइं ॥१९९॥

अर्थ :—सम्यग्दृष्टि भवनवासी देव (वहाँसे चयकर) कर्मभूमियोंके गर्भज और पर्याप्त मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, किन्तु वे शलाका-पुरुष कदापि नहीं होते ॥१९९॥

तेसिमणंतर-जम्मे णिव्वुदि-गमणं हवेदि केसिं पि ।
संजम-देसवदाइं गेण्हंते केइ भव-भीरू ॥२००॥

॥ आगमणं गदं ॥

अर्थ :—उनमेंसे किन्हींके आगामी भवमें मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है और कितने ही संसारसे भयभीत होकर सकल संयम अथवा देशव्रतोंको ग्रहण कर लेते हैं ॥२००॥

॥ आगमनका कथन समाप्त हुआ ॥

भवनवासी-देवोंकी आयुके बन्ध-योग्य परिणाम

[2]अचलिद-संका केई णाण-चरित्ते किलिट्ठ-भाव-जुदा ।
भवणामरेसु आउं बंधंति हु मिच्छ-भाव-जुदा ॥२०१॥

अर्थ :—ज्ञान और चारित्रमें दृढ़ शंका सहित, संक्लेश परिणामों वाले तथा मिथ्यात्व भावसे युक्त कोई (जीव) भवनवासी देवों सम्बन्धी आयुको बांधते हैं ॥२०१॥

सबल-चरित्ता केई उम्मग्गंथा णिदाणगद-भावा ।
पावग-पहुदिम्हि मया भावणवासीसु जम्मंते ॥२०२॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ सम्मुच्छ । २. द. ब. क. आवलिदसंका ।

अर्थ :—शबल (दोष पूर्ण) चारित्र वाले, उन्मार्ग-गामी, निदान-भावोंसे युक्त तथा पापोंकी प्रमुखतासे सहित जीव भवनवासियोंमें उत्पन्न होते हैं ॥२०२॥

अविणय-सत्ता केई कामिणि-विरहज्जरेण जज्जरिदा ।
कलहपिया पाविट्ठा जायंते [1]भवण-देवेसु ॥२०३॥

अर्थ :—कामिनीके विरहरूपी ज्वरसे जर्जरित, कलहप्रिय और पापिष्ठ कितने ही अविनयी जीव भवनवासी देवोंमें उत्पन्न होते हैं ॥२०३॥

सण्णि-असण्णी जीवा मिच्छा-भावेण संजुदा केई ।
[2]जायंति भावणेसुं दंसण-सुद्धा ण कइया वि ॥२०४॥

अर्थ :—मिथ्यात्व भावसे संयुक्त कितने ही संज्ञी और असंज्ञी जीव भवनवासियोंमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु विशुद्ध सम्यग्दृष्टि (जीव) इन देवोंमें कदापि उत्पन्न नहीं होते ॥२०४॥

देव-दुर्गतियोंमें उत्पत्तिके कारण

मरणे विराहिदम्हि य केई कंदप्प-किब्बिसा देवा ।
अभियोगा संमोह-प्पहुदी-सुर-दुग्गदीसु जायंते ॥२०५॥

अर्थ :—(समाधि) मरणके विराधित करनेपर कितने ही जीव कन्दर्प, किल्विष, आभियोग्य और सम्मोह आदि देव-दुर्गतियोंमें उत्पन्न होते हैं ॥२०५॥

कन्दर्प-देवोंमें उत्पत्तिके कारण

जे सच्च-वयण-हीणा [3]हस्सं कुव्वंति बहुजणे णियमा ।
कंदप्प-रत्त-हिदया ते कंदप्पेसु जायंति ॥२०६॥

अर्थ :—जो सत्य वचनसे रहित हैं, बहुजनमें हंसी करते हैं और जिनका हृदय कामासक्त रहता है, वे निश्चयसे कन्दर्प देवोंमें उत्पन्न होते हैं ॥२०६॥

वाहन-देवोंमें उत्पत्तिके कारण

जे भूदि-कम्म-मंताभिओग-कोदूहलाइ-संजुत्ता ।
जण-वंचणे पयट्टा वाहण-देवेसु ते होंति ॥२०७॥

---

१. द. भवणादिदेवेसु । २. द. जायंते । ३. ब. ब. क. ब ठ. हिसं ।

अर्थ :—जो भूतिकर्म, मन्त्राभियोग और कौतूहलादिसे संयुक्त हैं, तथा लोगोंकी वंचना करनेमें प्रवृत्त रहते हैं, वे वाहन देवोंमें उत्पन्न होते हैं ।।२०७।।

किल्विषिक-देवोंमें उत्पत्तिके कारण

तित्थयर-संघ-पडिमा-आगम-गंथादिएसु पडिकूला ।
दुव्विणया णिगदिल्ला जायंते किब्बिस-सुरेसुं ।।२०८।।

अर्थ :—तीर्थंकर, संघ-प्रतिमा एवं आगम-ग्रन्थादिकके विषयमें प्रतिकूल, दुर्विनयी तथा प्रलाप करनेवाले (जीव) किल्विषिक देवोंमें उत्पन्न होते हैं ।।२०८।।

सम्मोह-देवोंमें उत्पत्तिके कारण

उप्पह-उवएसयरा विप्पडिवण्णा जिणिंद-मग्गम्मि ।
मोहेणं संमूढा सम्मोह-सुरेसु जायंते ।।२०९।।

अर्थ :—उत्पथ-कुमार्गका उपदेश करनेवाले, जिनेन्द्रोपदिष्ट मार्गके विरोधी और मोहसे मुग्ध जीव सम्मोह जातिके देवोंमें उत्पन्न होते हैं ।।२०९।।

असुरोंमें उत्पन्न होनेके कारण

जे कोह-माण-माया-लोहासत्ता किलिट्ठ-चारित्ता ।
वइराणुबद्ध-रुचिणो ते उप्पज्जंति असुरेसुं ।।२१०।।

अर्थ :—जो क्रोध, मान, माया और लोभमें आसक्त हैं; दुश्चारित्रवाले (क्रूराचारी) हैं [illegible] रुचि रखते हैं । वे असुरोंमें उत्पन्न होते हैं ।।२१०।।

उत्पत्ति एवं पर्याप्ति वर्णन

उप्पज्जंते भवणे उववादपुरे महारिहे सयणे ।
पावंति छ-पज्जत्तिं जादा अंतो-मुहुत्तेण ।।२११।।

अर्थ :—(उक्त जीव) भवनवासियोंके भवनके भीतर उपपादशालामें बहुमूल्य शय्यापर उत्पन्न होते हैं और अन्तर्मुहूर्तमें ही छह पर्याप्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं ।।२११।।

सप्तादि-धातुओंका एवं रोगादिका निषेध

अट्ठि-सिरा-रुहिर-वसा-मुत्त-पुरीसाणि केस-लोमाइं ।
[1]चम्म-णह-मंस-पहुदी ण होंति देवाण संघडणे ॥२१२॥

अर्थ :—देवोंकी शरीर रचनामें हड्डी, नस, रुधिर, चर्बी, मूत्र, मल, केश, रोम, चमड़ा, नख और मांस आदि नहीं होते हैं ॥२१२॥

वण्ण-रस-गंध-फासे[2] अइसय-वेकुव्व-दिव्व-खंदा हि ।
णेदेसु[3] रोयवादि-उवठिदी कम्माणुभावेण ॥२१३॥

अर्थ :—उन देवोंके वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्शके विषयमें अतिशयताको प्राप्त वैक्रियिक दिव्य-स्कन्ध होते हैं, अतः कर्मके प्रभावसे रोग आदिकी उत्पत्ति नहीं होती है ॥२१३॥

भवणवासियोंमें उत्पत्ति समारोह

[4]उप्पण्णे सुर-भवणे पुव्वमणुग्घाडिदं कवाड-जुगं ।
उग्घडदि तम्मि समए पसरदि आणंद-भेरि-रवो ॥२१४॥

आयण्णिय भेरि-रवं ताणं पासम्हि कय-जयंकारा ।
एंति परिवार-देवा देवीओ पमोद-भरिदाओ ॥२१५॥

वायंता जयघंटा-पडह-पडा-किब्बिसा य गायंति ।
संगीय-णट्ट-मागध-देवा एदाण देवीओ ॥२१६॥

अर्थ :—सुरभवनमें उत्पन्न होनेपर पहिले अनुद्घाटित दोनों कपाट खुलते हैं और फिर उसी समय आनन्द भेरीका शब्द फैलता है। भेरीके शब्दको सुनकर पारिवारिक देव और देवियाँ हर्षसे परिपूर्ण हो जयकार करते हुए उन देवोंके पास आते हैं। उस समय किल्विषिक देव जयघण्टा, पटह और पट बजाते हैं तथा संगीत एवं नाट्यमें चतुर मागध देव-देवियाँ गाते हैं ॥२१४-२१६॥

---

१. द. ब. क. चम्मह, ज. ठ. चंचमह। २. द. क. ज. ठ. फासे। ३. णेव्वेसु रोयवादि-उवठिदि, क. ज. ठ. णेव्वेसु रोयवादि उवविदि। ४. द. ब. क. ज. ठ. उप्पण्ण-सुर-विमाणे।

विभंगज्ञान उत्पत्ति

देवी-देव-समूहं दट्ठूणं तस्स विम्हयो होदि ।
तक्काले उप्पज्जदि विब्भंगं थोव-पच्चक्खं ॥२१७॥

अर्थ :—उन देव-देवियोंके समूहको देखकर उस नवजात देवको आश्चर्य होता है, तथा उसी समय उसे प्रत्यक्षरूप अल्प-विभंग-ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ॥२१७॥

नवजात देवकृत पश्चाताप

माणुस्स-तेरिच्छ-भवम्हि पुव्वे लद्धो ण सम्मत्त-मणी[1] पुरुवं ।
तिलप्पमाणस्स सुहस्स कज्जे चत्तं मए काम-विमोहिदेण ॥२१८॥

अर्थ :—मैंने पूर्वकालमें मनुष्य एवं तियँच भवमें सम्यक्त्वरूपी मणिको प्राप्त नहीं किया और यदि प्राप्त भी किया तो उसे कामसे विमोहित होकर तिल प्रमाण अर्थात् किंचित् सुखके लिये छोड़ दिया ॥२१८॥

जिणोवदिट्ठागम-भासणिज्जं देसव्वदं [2]गेण्हिय सोक्ख-हेदुं ।
मुक्कं मए दुव्विसयत्थमप्पस्सोक्खाणु-रत्तेण विचेदणेण ॥२१९॥

अर्थ :—जिनोपदिष्ट आगममें कथित वास्तविक सुखके निमित्तभूत देशचारित्रको ग्रहण करके मेरे जैसे मूर्खने अल्प सुखमें अनुरक्त होकर दुष्ट विषयोंके लिये उसे छोड़ दिया ॥२१९॥

अणंत-[3]णाणादि-चउक्क-हेदुं णिव्वाण-बीजं जिणणाह-लिंगं ।
पभूद-कालं धरिदूण चत्तं मए मयंधेण बहू-णिमित्तं ॥२२०॥

अर्थ :—अनन्तज्ञानादि-चतुष्टयके कारणभूत और मुक्तिके बीजभूत जिनेन्द्रनाथके लिंग (सकलचारित्र) को बहुत कालतक धारण करके मैंने मदान्ध होकर कामिनीके निमित्त छोड़ दिया ॥२२०॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ मणं। २, द. ब. क. ज. ठ. गेण्हय। ३. द. ब. क. ज. ठ. णाणाणि।

कोहेण लोहेण भयंकरेण माया-पवंचेण[1] समच्छरेण ।
माणेण [2]वड्ढंत-महाविमोहो मेल्लाविदोहं जिणणाह-लिंगं ।।२२१।।

अर्थ :—भयंकर क्रोध, लोभ और मात्सर्यभावसहित माया-प्रपंच एवं मानसे वृद्धिगत अज्ञानभावको प्राप्त हुआ मैं जिनेन्द्र-लिंगको छोड़े रहा ।।२२१।।

एदेहि दोसेहि सयंकिलेहिं कादूण णिव्वाण-फलम्हि विग्घं ।
तुच्छं फलं संपइ जादमेदं एवं मणे वड्ढिदव तिव्व-दुक्खं ।।२२२।।

अर्थ :—ऐसे दोषों तथा संक्लेशोंके कारण, निर्वाणके फलमें विघ्न डालकर मैंने यह तुच्छफल (देव पर्याय) प्राप्त कर तीव्र दु:खोंको बढ़ा लिया है; मैं ऐसा मानता हूं ।।२२२।।

दुरंत-संसार-विणास-हेदुं णिव्वाण-मग्गम्मि परं पदीवं ।
गेण्हंति सम्मत्तमणंत-सोक्खं संपाविणं छंडिय-मिच्छ-भावं ।।२२३।।

अर्थ :—(वे देव उसी समय) मिथ्यात्वभावको छोड़कर, दुरन्त संसारके विनाशके कारणभूत, निर्वाण मार्गमें परम प्रदीप, अनन्त सौख्यके सम्पादन करने वाले सम्यक्त्वको ग्रहण करते हैं ।।२२३।।

तादो देवी-णिवहो आणंदेणं महाविभूदीए ।
सेसं भरंति ताणं सम्मत्तग्गहण-तुट्ठाणं ।।२२४।।

अर्थ :—तब महाविभूतिरूप आनन्दके द्वारा देवियोंके समूह और शेष देव, उन देवोंके सम्यक्त्व ग्रहणसे संतुष्टिको प्राप्त होते हैं ।।२२४।।

जिणपूजा-उज्जोगं कुणंति केई महाविसोहीए ।
केई पुव्विल्लाणं देवाण पबोहण-वसेण ।।२२५।।

अर्थ :—कोई पहलेसे वहाँ उपस्थित देवोंके प्रबोधनके वशीभूत हुए (परिणामों की) महाविशुद्धि पूर्वक जिन-पूजाका उद्योग करते हैं ।।२२५।।

---

१. ब. पवसंण । २. द. ब. क. ज. ठ. वंदंत ।

पढमं बहज्हवाणं तत्तो अभिसेय-मंडव-गवाणं ।
सिंहासणट्ठिवाणं एवाण सुरा कुणंति अभिसेयं ॥२२६॥

अर्थ :—सर्व प्रथम स्नान करके फिर अभिषेक-मण्डपके लिए जाते हुए (सद्योत्पन्न) देवको सिंहासन पर बैठाकर ये (अन्य) देव अभिषेक करते हैं ॥२२६॥

भूसणसालं पविसिय मउडादि विभूसणाणि दिव्वाइं ।
गेण्हिय विचित्त-वत्थं देवा कुव्वंति णेपत्थं ॥२२७॥

अर्थ :—फिर आभूषणशालामें प्रविष्ट होकर मुकुटादि दिव्य आभूषण ग्रहण करके अन्य देवगण अत्यन्त विचित्र (सुन्दर) वस्त्र लेकर उसका वस्त्र-विन्यास करते हैं ॥२२७॥

नवजात देव द्वारा जिनाभिषेक एवं पूजन आदि

तत्तो ववसायपुरं[1] पविसिय पूजाभिसेय-जोग्गाइं ।
गहिदूणं दव्वाइं देवा-देवीहि[2] संजुत्ता ॥२२८॥

णच्चिवद-विचित्त-केदण-माला-वर-चमर-छत्त-सोहिल्ला ।
णिब्भर-भत्ति-पसण्णा वच्चंते कूड-जिण-भवणं ॥२२९॥

अर्थ :—पश्चात् स्नान आदि करके व्यवसायपुरमें प्रवेश कर पूजा और अभिषेकके योग्य द्रव्य लेकर देव-देवियों सहित झूलती हुई अद्भुत पताकाओं, मालाओं, उत्कृष्ट चमर और छत्रोंसे शोभायमान होकर प्रगाढ़ भक्तिसे प्रसन्न होते हुए वे नवजात देव कूटपर स्थित जिन-भवनको जाते हैं ॥२२८-२२९॥

पाविय जिण-पासावं वर-मंगल-तूर रवहलबोला ।
देवा देवी-सहिदा कुव्वंति पदाहिणं णमिदा ॥२३०॥

अर्थ :—उत्कृष्ट माङ्गलिक वाद्योंके रवसे परिपूर्ण जिन-भवनको प्राप्तकर वे देव, देवियोंके साथ नमस्कार पूर्वक प्रदक्षिणा करते हैं ॥२३०॥

---

१. द. क. तत्तो बसाय । २. द. ब. क. ज. ठ. देवेंहि ।

सीहासण-छत्त-त्तय-भामंडल-चामरादि-चारूणो ।
दट्ठूण जिणप्पडिमा जय-जय-सद्दा पकुव्वंति ॥२३१॥

थोदूण थुदि-सएहिं विचित्त-चित्तावली णिबद्धेहिं ।
तत्तो जिणाभिसेए भत्तीए कुणंति उज्जोयं ॥२३२॥

खीरोवहि जल-पूरिद मणिमय-कुंभेहि अड-सहस्सेहिं ।
मंतुग्घोसणमुहला जिणाभिसेयं पकुव्वंति ॥२३३॥

अर्थ :—(जिनमन्दिरमें) सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल और चमर आदि (आठ प्राति-हार्यों) से सुशोभित जिनेन्द्र मूर्तियोंका दर्शनकर जय-जय शब्द करते हैं, फिर विचित्र अर्थात् सुन्दर मनमोहक शब्दावलीमें निबद्ध अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करके भक्ति सहित जिनेन्द्र भगवानका अभिषेक करनेका उद्योग करते हैं। क्षीरोदधिके जलसे परिपूर्ण १००८ मणिमय घटोंसे मन्त्रोच्चारण पूर्वक जिनेन्द्र भगवानका अभिषेक करते हैं ॥२३१-२३३॥

पडु-पडह-संख-मद्दल-जयघंटा काहलादि वज्जेहिं ।
वाइज्जंते हि सुरा जिणिंद-पूजा पकुव्वंति ॥२३४॥

अर्थ :—(पश्चात्) वे देव उत्तम पटह, शङ्ख, मृदङ्ग, जयघण्टा एवं काहलादि बाजोंको बजाते हुए जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करते हैं ॥२३४॥

भिंगार-कलस-दप्पण-छत्तत्तय-चमर-पहुदि-दिव्वेहिं ।
पूजंति [1]फलिय-दंडोवमाण-वर-वारि-धारेहिं ॥२३५॥

गोसीस-मलय-चंदण-कुंकुम-पंकेहि परिमलिल्लेहिं ।
मुत्ताफलुज्जलेहिं सालीए तंदुलेहिं [2]सयलेहिं ॥२३६॥

वर-विविह-कुसुम-माला-सएहिं दूरंग-मत्त-गंधेहिं ।
अमियादो महुरेहिं णाणाविह-दिव्व-भक्खेहिं ॥२३७॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. पलिह। २. द. सालेहिं।

रयणुज्जल-दीवेहिं सुगंध-धूवेहिं मणहिरामेहिं ।
पक्केहिं फणस-कदली-दाडिम-दक्खादि य फलेहिं ।।२३८।।

अर्थ :—वे देव दिव्य झारी, कलश, दर्पण, तीन छत्र और चामरादिसे; स्फटिक मणिमय दण्डके तुल्य उत्तम जलधाराओंसे; सुगन्धित गोशीर मलय-चन्दन और केशरके पङ्कोंसे; मोतियोंके समान उज्ज्वल शालिधान्यके अखण्डित तन्दुलोसे; दूर-दूर तक फैलनेवाली मत्त गन्धसे युक्त उत्तमोत्तम विविध प्रकारकी सैकड़ों फूल मालाओंसे; अमृतसे भी मधुर नानाप्रकारके दिव्य नैवेद्योंसे; मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले रत्नमयी उज्ज्वल दीपकोंसे; सुगन्धित धूपसे और पके हुए कटहल, केला, दाड़िम एवं दाख आदि फलोंसे (जिनेन्द्र देवकी) पूजा करते हैं ।।२३५-२३८।।

पूजनके बाद नाटक

पूजाए अवसाणे कुव्वंते णाडयाइ विविहाइं ।
पवरच्छराप-जुत्ता-बहुरस-भावाभिणेयाइं ।।२३९।।

अर्थ :—(वे देव) पूजाके अन्तमें उत्तम अप्सराओं सहित बहुत प्रकारके रस, भाव एवं अभिनयसे युक्त विविध-प्रकारके नाटक करते हैं ।।२३९।।

सम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि देवके पूजन-परिणाममें अन्तर

णिस्सेस-कम्मक्खवणेक्क[1]-हेदुं मण्णंतया तत्थ जिणिंद-पूजं ।
[2]सम्मत्त-जुत्ता विरयंति णिच्चं, देवा महाणंद-विसोहि-पुव्वं ।।२४०।।

[3]कुलाहिदेवा इव मण्णमाणा पुराण-देवाण पबोहणेण ।
मिच्छा-जुदा ते य जिणिंद-पूजं [4]भत्तीए णिच्चं णियमा कुणंति ।।२४१।।

अर्थ :—अविरत-सम्यग्दृष्टि देव, समस्त कर्मोंके क्षय करनेमें एक अद्वितीय कारण समझकर नित्य ही महान् अनन्तगुणी विशुद्धिपूर्वक जिनेन्द्र देवकी पूजा करते हैं किन्तु मिथ्यादृष्टि देव पुराने

१. द. ब. क. ज. ठ. क्खवणकहेदुं । २. द. ब. क. ज. ठ. सम्मत्तविरयं । ३. द. ब. कुलाइदेवा । क. ज. ठ. कुलाई देवाइ । ४ द. क. ज. ठ. भत्तीय ।

देवोंके उपदेशसे जिनप्रतिमाओंको कुलाधि देवता मानकर नित्य ही नियमसे भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रार्चन करते हैं ।।२४०-२४१।।

जिनपूजाके पश्चात्

काढूण दिव्व-पूजं आगच्छिय णिय-णियम्मि पासादे ।
सिंहासणाहिरूढा [1]ओलग्गं देंति देवा णं ।।२४२।।

अर्थ :—वे देव, दिव्य जिनपूजा करनेके पश्चात् अपने-अपने भवनमें आकर ओलगशाला (परिचर्यागृह) में सिंहासनपर विराजमान हो जाते हैं ।।२४२।।

भवनवासी देवोंके सुखानुभव

विविह-रतिकरण-भाविद-विसुद्ध-बुद्धीहि दिव्व-रूवेहिं ।
णाणा-विकुव्वणं बहुविलास-संपत्ति-जुत्ताहि ।।२४३।।

मायाचार-विवज्जिद-पयदि-पसण्णाहि अच्छराहि समं ।
णिय-णिय-विभूदि-जोग्गं संकप्प-वसंगदं सोक्खं ।।२४४।।

पडु-पडह-प्पहुदीहिं सत्त-सराभरण-महुर-गीदेहिं ।
वर-ललिद-णच्चणेहिं देवा भुंजंति उवभोगं ।।२४५।।

अर्थ :—(पश्चात् वे देव) विविध रूपसे रतिके प्रकटी-करणमें चतुर, दिव्य रूपोंसे युक्त, नाना प्रकारकी विक्रिया एवं बहुत विलास-सम्पत्तिसे सहित तथा मायाचारसे रहित होकर स्वभावसे ही प्रसन्न रहने वाली अप्सराओंके साथ अपनी-अपनी विभूतिके योग्य एवं संकल्पमात्रसे प्राप्त होने वाले सुख तथा उत्तम पटह आदि वादित्र, सप्त स्वरोंसे शोभायमान मधुर गीत तथा उत्कृष्ट सुन्दर नृत्यका उपभोग करते हैं ।।२४३-२४५।।

---

१. [ओलगसालम्मि]

ओहिं पि विजाणंतो अण्णोण्णुप्पण्ण-पेम्म-मूढ-मणा ।
कामंधा ते सव्वे गदं पि कालं ण जाणंति ।।२४६।।

अर्थ :—अवधिज्ञानसे जानते हुए भी परस्पर उत्पन्न प्रेमसे मूढमनवाले मानसिक विचारोंसे युक्त वे सब देव कामान्ध होकर बीते हुए समयको भी नहीं जानते हैं ।।२४६।।

वर-रयण-कंचणमये विचित्त-सयलुज्जलम्मि पासादे ।
कालागरु-गंधड्ढे राग-णिहाणे रमंति सुरा ।।२४७।।

अर्थ :—वे देव उत्तम रत्न और स्वर्णसे विचित्र एवं सर्वत्र उज्ज्वल, कालागरुकी सुगन्धसे व्याप्त तथा रागके स्थानभूत प्रासादमें रमण करते हैं ।।२४७।।

सयणाणि आसणाणि मउवाणि विचित्त-रूव-रइदाणि ।
तणु-मण-णयणाणंदण-जणणाणि होंति देवाणं ।।२४८।।

अर्थ :—देवोंके शयन और आसन मृदुल, विचित्र रूपसे रचित तथा शरीर, मन एवं नेत्रोंके लिए आनन्दोत्पादक होते हैं ।।२४८।।

पास-रस-रूव[1]-सद्धुणि-गंधेहिं वड्ढियाणि [2]सोक्खाणि ।
उवभुंजंता[3] देवा तित्तिं ण लहंति णिमिसं पि ।।२४९।।

अर्थ :—(वे देव) स्पर्श, रस, रूप, सुन्दर शब्द और गन्धसे वृद्धिको प्राप्त हुए सुखोंका अनुभव करते हुए क्षणमात्रके लिए भी तृप्तिको प्राप्त नहीं होते हैं ।।२४९।।

---

१. द. क. ज. ठ. रूववज्जुणि गंधेहिं, ब. रूववक्खुणि गंधेहिं । २. द. ब. क. ज. ठ. सोक्खाणि । ३. द. ब. क. उवयंजुत्ता । ज. ठ. उवयवजुत्ता ।

दीवेसु णगिंदेसुं भोग-खिदीए वि णंदण-वणेसुं ।
वर-पोक्खरिणी-पुलिणत्थलेसु कीडंति राएण ॥२५०॥

॥ एवं [1]सुहप्परूवणा समत्ता ॥

अर्थ :—(वे कुमार देव) रागसे-द्वीप, कुलाचल, भोगभूमि, नन्दनवन एवं उत्तम बावड़ी अथवा नदियोंके तट स्थानोंमें भी क्रीड़ा करते हैं ॥२५०॥

इस प्रकार देवोंकी सुख-प्ररूपणाका कथन समाप्त हुआ ।

सम्यक्त्वग्रहणके कारण

भवणेसु समुप्पण्णा पज्जत्तिं पाविदूण छब्भेयं ।
जिण-महिम-दंसणेणं केई [2]देविद्धि-दंसणदो ॥२५१॥

जादीए सुमरणेणं वर-धम्मप्पबोहणावलद्धीए ।
गेण्हंते सम्मत्तं दुरंत-संसार-णासयरं ॥२५२॥

॥ सम्मत्त-गहणं गदं ॥

अर्थ :—भवनोंमें उत्पन्न होकर छह प्रकारकी पर्याप्तियोंको प्राप्त करनेके पश्चात् कोई जिन-महिमा (पंचकल्याणकादि) के दर्शनसे, कोई देवोंकी ऋद्धिके देखनेसे, कोई जातिस्मरणसे और कितने ही देव उत्तम धर्मोपदेशकी प्राप्तिसे दुरन्त संसारको नष्ट करनेवाले सम्यग्दर्शनको ग्रहण करते हैं ॥२५१-२५२॥

॥ सम्यक्त्वका ग्रहण समाप्त हुआ ॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सहप्पं । २. द. ब. क. ज. ठ. देविद ।

भवनवासियोंमें उत्पत्तिके कारण

जे केइ अण्णाण-तवेहि जुत्ता, णाणाविहुप्पाडिद-देह-दुक्खा ।
घेत्तूण सण्णाण-तवं पि पावा डज्झंति जे दुव्विसयापसत्ता ।।२५३।।

विसुद्ध-लेस्साहि सुराउ-बंधं [1]काऊण कोहादिसु घादिदाऊ ।
सम्मत्त-संपत्ति-विमुक्क-बुद्धी जायंति एदे भवणेसु सव्वे ।।२५४।।

अर्थ :—जो कोई अज्ञान-तपसे युक्त होकर शरीरमें नानाप्रकारके कष्ट उत्पन्न करते हैं, तथा जो पापी सम्यग्ज्ञानसे युक्त तपको ग्रहण करके भी दुष्ट विषयोंमें आसक्त होकर जला करते हैं, वे सब विशुद्ध लेश्याओंसे पूर्वमें देवायु बाँधकर पश्चात् क्रोधादि कषायों द्वारा उस आयुका घात करते हुए सम्यक्त्वरूप सम्पत्तिसे मनको हटा कर भवनवासियोंमें उत्पन्न होते हैं ।।२५३-२५४।।

१. द. ब. कोऊण ।

महाधिकारान्त मंगलाचरण

सण्णाण-रयण-दीवं लोयालोयप्पयासरण-समत्थं ।
पणमामि सुमइ-सामिं सुमइकरं भव्व-संघस्स ।।२५५।।

एवमाइरिय-परंपरागय-तिलोयपण्णत्तीए भवणवासिय-लोय-सरूव-णिरूवणं पण्णत्ती णाम—

।। तदियो महाहियारो समत्तो ।।

अर्थ :—जिनका सम्यग्ज्ञानरूपी रत्नदीपक लोकालोकके प्रकाशनमें समर्थ है एवं जो (चतुर्विध) भव्य संघको सुमति देने वाले हैं, उन सुमतिनाथ स्वामीको मैं नमस्कार करता हूं ।।२५५।।

इसप्रकार आचार्य-परम्परागत-त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमें भवनवासी-लोकस्वरूप-निरूपण-प्रज्ञप्ति नामक तीसरा महाधिकार समाप्त हुआ ।

गाथानुक्रमणिका

	अधिकार	गाथा
अ		
अइतित्तकडुवकत्थरि	२	३४६
अइवट्टं हि तेहिं	१	१२०
अग्गमहिसीरण ससमं	३	९१
अग्गिकुमारा सव्वे	३	१२२
अग्गीवाहणणामो	३	१६
अचलिद संका केई	३	२०१
अजगज महिस तुरंगम	२	३४
अजगज महिस तुरंगम	२	३०९
अजगज महिस तुरंगम	२	३४७
अजियजिणं जियमयणं	२	१
अज्जखरकरहसरिसा	२	३०७
अट्ठगुणिदेग सेढी	१	१९५
अट्ठछचउदुगदेयं	१	२७९
अट्टत्तालं दलिदं	२	७१
अट्ठत्तालं दुसयं	२	१९१
अट्टत्तीसं लक्खा	२	११५
अट्ठरस महाभासा	१	६१
अट्ठ विसिहासणाणि	२	२३२
अट्ठविहकम्मवियला	१	१
अट्ठविहप्पं साहिय	१	२७०
अट्ठविहं सव्वजगं	१	२१६
अट्ठसगछक्कपणचउ	२	२८७
अट्ठ सेण जुदाओ	१	२०९
अट्ठं सोलस बत्तीसहोंति	३	१५३
अट्ठाणउदिविहत्तो	१	२११
अट्ठाणउदी जोयण	२	१८४
अट्ठाणउदी णवसय	२	१७७
अट्ठाणउदी णवसय	२	१८५
अट्ठाणवदि विहत्ता	१	२६०
अट्ठाणवदि विहत्तं	१	२४५
अट्ठाणं पि दिसाणं	२	५७
अट्ठारस ठाणेसुं	१	१२३
अट्ठारस लक्खाणि	२	१३७
अट्ठावण्णा दंडा	२	२५९
अट्ठावीसविहत्ता सेढी	१	२४३
अट्ठावीसविहत्ता सेढी	१	२४४
अट्ठावीसं लक्खा	२	१२६
अट्ठासट्ठीहीणं	२	९३
अट्ठिसिरारुहिर वसा	३	२१२

	अधिकार	गाथा
अट्ठे हि गुणिदेहिं	१	१०४
अडणउदी बाणउदी	१	२४६
अडवीसं उणहत्तरि	१	२४९
अडवीसं छव्वीसं	३	७४
अड्ढाइज्ज सयाणि	३	१०२
अड्ढाइज्जं पल्लं	३	१७१
अड्ढाइज्जा दोण्णि य	३	१५१
अणंतणाणादि चउक्क ·······	३	२२०
अणुभागपदेसाइ	१	१२
अण्णाणघोरतिमिरे	१	४
अण्णेहि अणंतेहिं	१	७५
अण्णोण्णं अव्भंते	२	३२५
अदिकुणिमसुहमण्णं	२	३४८
अद्धारपल्लछेदे	१	१३१
अप्पमहड्ढियमज्झिम	३	२४
अप्पाणं मण्णंता	२	३००
अब्भंतर दव्वमलं	१	१३
अभुणियकज्जाकज्जो	२	३०१
अयदंबतउरसासय	२	१२
अरिहाणं सिद्धाणं	१	१९
अवरं मज्झिमउत्तम	१	१२२
अवसादि अद्धरज्जू	१	१६०
अवसेस इंदयाणं	२	५४
अवसेससुरा सव्वे	३	१६८
अभिणयसत्ता केई	३	२०३
असुरप्पहुदीण गदी	३	१२५
असुरम्मि महिसतुरगा	३	७८
असुराण पंचवीसं	३	१७७
असुराणमसंखेज्जा	३	१८१
असुरा णागसुवण्णा	३	९
असुरादिदसकुलेसुं	३	१०८
असुरादिदसकुलेसुं	३	१७६
असुरादी भवणसुरा	३	१३१
अस्सत्थसत्तपण्णा	३	१३७
अहवा उत्तरइंदेसु	३	१४७
अहवा बहुभेयगयं	१	१४
अहवा मंगं सोक्खं	१	१५
अंगोवंगट्ठीणं	२	३३९
अंजणमूलं अंकं	२	१७
अंतादिमज्झहीणं	१	९८

आ

	अधिकार	गाथा
आउस्स बंधसमए	२	२९४
आतुरिमखिदी चरिमंग	२	२९३
आदिणिहणेण हीणा	३	३६
आदिणिहणेण हीणो	१	१३३
आदिमसंहणणजुदो	१	५७
आदी अंते सोहिय	२	२१९
आदीओ णिद्दिट्ठा	२	६१
आदी छअट्ठचोद्दस	२	१५८
आदेसमुत्तमुत्तो	१	१०१
आयण्णिय भेरिखं	३	२१५
आरिंदए णिसट्ठो	२	५०
आरो मारो तारो	२	४४
आहुट्ठं रज्जुघणं	१	१८८

	अधिकार/गाथा	
इ		
इगितीसं लक्खाणि	२	१२३
इगतीस उवहि उवमा	२	२११
इच्छे पदरविहीणा	२	५६
इट्ठिदयप्पमाणं	२	५८
इय णायं अवहारिय	१	८४
इय मूल तंतकत्ता	१	८०
इय सक्खापच्चक्खं	१	३८
इह खेत्ते जह मणुवा	२	३५३
इह रयण सक्करावालु	१	१५२
इंगालजाल मुम्मुर	२	३२८
इंदपडिंददिगिंदय	१	४०
इंदपडिदप्पहुदी	३	१११
इंदयसेढीबद्धा	२	३६
इंदयसेढीबद्धा	२	७२
इंदयसेढीबद्धा	२	३०३
इंदसमा पडिइंदा	३	६६
इंदादी पंचण्णं	३	११४
इंदा रायसरिच्छा	३	६५
उ		
उच्छेहजोयणाणि	२	३१६
उड्ढजगे खलु वड्ढी	१	२८०
उड्ढुड्ढं रज्जुघणं	१	२६४
उणवदी तिण्णि सया	२	५६
उणतीसं लक्खाणि	२	८८
उणदालं पण्णत्तरि	१	१६८
उणदालं लक्खाणि	२	११४
उणवण्णभजिदसेढी	१	१७८
उणवण्णा दुसयाणि	२	१८२
उणवीसजोयणेसुं	१	११८
उत्तपइण्णायमज्झे	२	१०२
उत्तमभोगखिदीए	१	११६
उदओ हवेदि पुव्वा	१	१८०
उदहित्थणिदकुमारा	३	१२१
उदहिं पहुदि कुलेसुं	३	१०७
उद्दिट्ठं पंचोणं	२	६०
उद्धियदिवड्ढमुख	१	१४३
उप्पज्जंते भवणे	३	२११
उप्पण्णे सुरभवणे	३	२१४
उप्पहउवएसयरा	३	२०६
उभयेसिं परिमाणं	१	१८६
उवरिमखिदिजेट्ठाऊ	२	२०६
उवरिमलोयाआरो	१	१३८
उववादमारणंतिय	२	८
उवसण्णा सण्णो वि य	१	१०३
उवहिउवमाणजीवी	३	१६६
उस्सेहअंगुलेणं	१	११०
उस्सेहोहि पमाणं	३	५
ऊ		
ऊणपमाणं दंडा	२	७
ए		
एक्कारसलक्खाणि	२	१४५

	अधिकार	गाथा
एकोणसट्ठिहत्था	२	२४१
एक्क ति सग दस सत्तरस	२	३५४
एक्कत्तरिलक्खाणि	३	८५
एक्कत्तालं दंडा	२	२६६
एक्कत्तालं लक्खा	२	११२
एक्कत्तिण्णि य सत्तं	२	२०४
एक्कतीसं दंडा	२	२५२
एक्कदुतिपंचसत्तय	२	३१२
एक्कधणुमेक्कहत्थो	२	२२१
एक्कधणू बे हत्था	२	२४३
एक्कपलिदोवमाऊ	३	१४८
एक्कपलिदोवमाऊ	३	१५६
एक्कपलिदोवमाऊ	३	१६५
एक्करसवण्णगंधं	१	९७
एक्कविहीणा जोयण	२	१६९
एक्कस्सिं गिरिगडए	१	२३६
एक्कस्सिं गिरिगडए	१	२५२
एक्कं कोदंडसयं	२	२६४
एक्कं कोदंडसयं	२	२६५
एक्कं जोयणलक्खा	२	१५५
एक्कंत तेरसादी	२	३९
एक्काहियखिदिसंखं	२	१५७
एक्कारसचावाणि	२	२३६
एक्कासीदी लक्खा	३	८१
एक्केक्क माणथंभे	३	१४०
एक्केक्करज्जुमेत्ता	१	१६२
एक्केक्कस्सि इंदे	३	६२
एक्केक्कं रोमग्गं	१	१२५
एक्कोणचउसयाइं	१	२२९
एक्कोणतीस दंडा	२	२५१
एक्कोणतीसलक्खा	२	१२५
एक्कोणमवणिइंदय	२	६५
एक्कोण्णपण्णदंडा	२	२५७
एक्कोण्णवीसदंडा	२	२४५
एक्कोणवीसलक्खा	२	१३६
एक्कोण सट्ठि हत्था	२	२४१
एक्कोणा दोण्णि सया	१	२३२
एक्को हवेदि रज्जू	२	१७०
एक्को हवेदि रज्जू	२	१७२
एक्को हवेदि रज्जू	२	१७४
एत्तो दलरज्जूणं	१	२१४
एत्तो चउचउहीणं	१	२८२
एत्थावसप्पिणीए	१	६८
एदस्स उदाहरणं	१	२२
एदं खेत्तपमाणं	१	१८३
एदाए बहलत्तं	२	१५
एदाणं पल्लाणं	१	१३०
एदाणं भवणाणं	३	१२
एदाणि य पत्तेक्कं	१	१९९
एदासिं भासाणं	१	६२
एदे अट्ठ सुरिंदा	३	१४३
एदेण पयारेणं	१	१४८
एदेणं पल्लेणं	१	१२८
एदे सव्वे देवा	३	११०
एदेहि दोसेहि	३	२२१
एदेहिं अण्णेहिं	१	५४

	अधिकार/गाथा	
एवज्जिय प्रवसेसे	१	१४६
एवमवसेसखेत्तं	१	१४७
एवं अट्ठवियप्पा	१	२३७
एवं प्रट्ठवियप्पा	१	२५३
एवं अणेयभेयं	१	२६
एवं पण्णरसविहा	२	५
एवं बहुविहदुक्खं	२	३५७
एवं बहुविहरयण	२	२०
एवं रयणादीणं	२	२७१
एवं वरपंचगुरू	१	६
एवं सत्तखिदीण	२	२१६

ओ

ओलगसालापुरदो	३	१३६
ओहिं पि विजाणंतो	३	२४६

क

कच्छुरिकरकचसूई	२	३४५
कणयधराधरधीरं	१	५१
कणयं व णिरुवलेवा	३	१२६
कत्तरि सलिलायारा	२	३२९
कत्तारो दुवियप्पो	१	५५
कदलीघादेण विणा	२	३५६
कम्ममहीए बालं	१	१०६
कररुहकेसविहीणा	३	१३०
कलयलकं भुरीदो	२	३५
कवलसलिलक्कासो	२	३०८
कस्सालपहरभिण्णं	२	३५४

	अधिकार/गाथा	
करितुरयरहाहिवई	१	४३
कंखापिपासणामा	२	४७
कादूण दिव्वपूजं	३	२४२
कापिट्ठ उवरिमंते	१	२०५
कालग्गिरुद्दणामा	२	३५२
कालो रोरवणामो	२	५३
किण्हादितिलेस्सजुदा	२	२९६
किण्हा प्रणीलकाऊ	२	२९५
किण्हा रयणसुमेघा	३	६०
कुलदेवा इदि मण्णिय	३	५४
कुलाहिदेवा इव मण्णमाणा	३	२४१
कूडाण समंतादो	३	५५
कूडोवरि पत्तेक्कं	३	४२
केई देवाहिंतो	२	३६३
केवलणाणतिणेत्तं	१	२८६
केवलणाणदिवायर	१	३३
केसवबलचक्कहरा	२	२९२
कोसदुगमेक्ककोसं	१	२७६
कोहेण लोहेण भयंकरेण	३	२२१

ख

खरपंकप्पब्बहुला	२	९
खरभागो णादव्वो	२	१०
खंदं सयलसमत्थं	१	९५
खीरोवहि जलपूरिद	३	२३३
खे संठियचउखंडं	१	१४५
खेत्त जवे विदफलं	१	२३९
खेत्तं दिवड्ढसयधणु	३	१६४

	अधिकार	गाथा
ग		
गच्छसमे गुणयारे	३	८०
गणरायमंतितलवर	१	४४
गहिरबिलधूममारुद	२	३२१
गामवदि विणासयदे	१	९
गिद्धा गरुडा काया	२	३३८
गिरिकंदरं विसंतो	२	३३२
गुणगारा पणणउदी	१	२४८
गुणजीवा पज्जत्ती	२	२७३
गुणजीवा पज्जत्ती	३	१८४
गुणपरिणदासणं परि	१	२१
गेवेज्ज णवाणुद्दिस	१	१६२
गोउरदारजुदाओ	३	२९
गोमुत्तमुग्गवण्णा	१	२७१
गोसीसमलयचंदण	३	२३६
गोहत्थितुरयसत्था	२	३०५
घ		
घणघाइकम्ममहणा	१	२
घणफलमुवरिमहेट्ठिम	१	१७४
घणफलमेक्कम्मि जवे	१	२२१
घणफलमेक्कम्मि जवे लोओ	१	२४०
घणफलमेक्कम्मि	१	२५७
घम्माए आहारो	२	३४९
घम्माए णारइया	२	१९६
घम्मादीखिदितिदए	२	३६२
घम्मादी पुढवीणं	२	४६
घम्मावंसामेघा	१	१५३

	अधिकार	गाथा
च		
चउकोसेहिं जोयण	१	११६
चउगोउरा ति-साला	३	४३
चउजोयण लक्खाणि	२	१५२
चउठाणेसुं सुण्णा	३	८४
चउठाणेसुं सुण्णा	३	८८
चउतीसं चउदालं	३	२०
चउतीसं लक्खाणि	२	११९
चउतोरणाहिरामा	३	३८
चउदंडा इगिहत्थो	२	२५३
चउदालं चावाणि	२	२५६
चउदुति इगितीसेहिं	१	२२२
चउपासाणि तेसुं	३	६१
चउ मण चउ वयणाइ	३	१९१
चउरस्सो पुव्वाए	१	६६
चउरूवाइं आदि	२	८०
चउविहउवसग्गेहिं	१	५९
चउवीसमुहुत्ताणि	२	२८८
चउवीसवीस बारस	२	९८
चउवीससहस्साहिय	३	७३
चउवीसं लक्खाणि	२	८९
चउवीसं लक्खाणि	२	१३०
चउसट्ठि छस्सयाणि	२	१९२
चउसट्ठि सहस्साणि	३	७०
चउसट्ठी चउसीदी	३	११
चउसण्णा ताओ भय	३	१९०
चउसीदि चउसयाणं	१	२३१
चउहिदतिगुणिदरज्जू	१	२५९

	अधिकार/गाथा			अधिकार/गाथा	
चक्कसरकणयतोमर	२	३३६	चेत्तदुमामूलेसुं	३	१३८
चक्कसर सूल तोमर	२	३१९	चोत्तीसं लक्खाणि	२	१२०
चत्तारिच्चिय एदे	२	९९	चोद्दालं लक्खाणि	२	१०६
चत्तारि लोयपाला	३	६६	चोद्दसजोयणलक्खा	२	१४१
चत्तारि सहस्साणि	३	९६	चोद्दसदंडा सोलस	२	२४०
चत्तारि सहस्साणि	२	७७	चोद्दसभजिदो तिगुणो	१	२५०
चत्तारि सहस्साणि चउ	२	१७५	चोद्दसभजिदो तिउणो	१	२६७
चत्तारो कोदंडा	२	२२५	चोद्दसरज्जुपमाणो	१	१५०
चत्तारो गुणठाणा	२	२७४	चोद्दस जोयण लक्खा	२	१४१
चत्तारो चावाणि	२	२२४	चोद्दसलक्खाणि तहा	२	६०
चमरग्गिममहिसीणं	३	९२	चोद्दस सयाणि छाहत्तरी	२	७८
चमरदुगे आहारो	३	११२	चोद्दस सहस्सजोयण	२	१७६
चमरदुगे उस्सासं	३	११६			
चमरिंदो सोहम्मे	३	१४२	**छ**		
चयदलहदसंकलिदं	२	८५	छक्कदिहिदेक्कणउदी	२	१८६
चयहदमिच्छूणपदं	२	६४	छक्खंडभरहणाहो	१	४८
चयहदमिट्ठाधियपद	२	७०	छच्चिय कोदंडाणि	२	२२७
चामरदुंदुहि पीढ	१	११३	छज्जोयण लक्खाणि	२	१५०
चालीसं कोदंडा	२	२५५	छट्ठमखिदिचरिमिंदय	२	१७८
चालीसं लक्खाणि	२	११३	छण्णउदि णवसयाणि	२	१९४
चालुत्तरमेक्कसयं	३	१०६	छत्तीसं लक्खाणि	२	११७
चावसरिच्छो छिण्णो	१	६७	छद्दव्वणवपयत्थे	१	३४
चुलसीदी लक्खाणं	२	२६	छद्दोभूमुहरुंदा	३	३२
चूडामणिअहिगरुडा	३	१०	छप्पणहरिदो लोओ	१	२०१
चेट्ठंदि जम्मभूमी	२	३०४	छप्पण्णसहस्साहिय	३	७२
चेत्ततरूणं मूले	३	३८	छप्पण्णहिदो लोओ	१	२६१
चेत्तद्दुमत्थलरुंदं	३	३१	छप्पण्णा इगिसट्ठी	२	२१४
चेत्तद्दुममूलेसुं	३	३७	छप्पंचतिदुगलक्खा	२	६७

	अधिकार/गाथा	
छव्वीसंभहियसयं	१	२२८
छव्वीसं चावाणि	२	२४६
छव्वीसं लक्खाणि	२	१२८
छस्सम्मत्ता ताइं	२	२८३
छहि अंगुलेहि पादो	१	११४
छावट्ठिछस्सयाणि	२	१०६
छासट्ठीअहियसयं	२	२६७
छाहत्तरि लक्खाणि	३	८३
छिण्णसिरा भिण्णकरा	२	३३७
छेत्तूण भित्तिं वधिदूण पीयं	२	३६८
छेत्तूणं तसणालिं	१	१६७
छेत्तूणं तसणालिं	१	१७२

ज

जइ विलवयंति करुणं	२	३४०
जगसेढिघणपमाणो	१	६१
जम्मणखिदीण उदया	२	३११
जम्मणमरणाणंतर	२	३
जम्माभिसेयभूसण	३	५७
जलयरकच्छव मंडूक	२	३३०
जस्स असंखेज्जाऊ	३	१७०
जस्सि जस्सि काले	१	१०६
जादीए सुमरणेणं	३	२५२
जादे अणंत णाणे	१	७४
जिणदिट्ठपमाणाओ	३	१०६
जिणपूजा उज्जोगं	३	२२५
जिणोवदिट्ठागमभासणिज्जं	३	२१६
जिब्भाजिब्भगलोला	२	४२
जीवसमासा दो च्चिय	३	१८८
जीवा पोग्गलधम्मा	१	६२
जे केइ अण्णाणतवेहिं	३	२५३
जे कोहमाणमाया	३	२१०
जेत्तियमेत्तं आऊ	३	१६२
जेत्तियमेत्ता आऊ	३	१७५
जे भूदिकम्म मंता	३	२०७
जे सच्चवयणहीणा	३	२०६
जो ण पमाणणयेहि	१	८२
जो अजुदाओ देवो	३	११८
जोणीओ णारइयाण	२	३६५
जोयणपमाणसंठिद	१	६०
जोयणवीससहस्सा	१	२७३

झ

झल्लरिमल्लयपत्थी	२	३०६

ठ

ठावणमंगलमेदं	१	२०

ण

णउदिपमाणा हत्था	२	२४७
णच्चिदविचित्तकेदण	३	२२६
णवणउदिजुदचउस्सय	२	१८०
णवणउदिणवसयाणि	२	१८१
णवणउदिसहियणवसय	२	१८६
णवणउदिजुदणवसय	२	१६०
णव णव अट्ठ य बारस	१	२३३
णव णवदिजुदचदुस्सय	२	१६७

	अधिकार/गाथा	
णवणवदिजुदचदुस्सय	२	१८०
णवदंडा तियहत्थं	२	२३४
णवदंडा बावीसं	२	२३३
णवरि विसेसो एसो	२	१८८
णव लक्खा णवणउदी	२	६१
णवहिदबावीससहस्स	२	१८३
णंदादिओ तिमेहल	३	४४
णाणं होदि पमाणं	१	८३
णाणावरणप्पहुदी	१	७१
णाणाविहवण्णाओ	२	११
णामाणिठावणाओ	१	१८
णावा गरुडगइंदा	३	७६
णासदि विग्घं भेददि	१	३०
णिक्कंता णिरयादो	२	२९०
णिक्कंता भवणादो	३	१६८
णिण्णट्ठरायदोसा	१	८१
णिब्भूसणायुहंबर	१	५८
णियणियइंदयसेढी	२	१६०
णियणियओहीक्खेत्तं	३	१८३
णियणियचरिमिंदयधय	१	१६३
णियणियचरिमिंदयधण	२	७३
णियणियभवणठिदाणं	३	१७८
णिरएसु णत्थि सोक्खं	२	३५५
णिरयगदिआउबंधय	२	४
णिरयणदीए सहिदा	२	२७९
णिरयपदरेसु आऊ	२	२०३
णिरयबिलाणं होदि हु	२	१०१
णिस्सेसकम्मक्खवणेक्कहेदुं	३	२४०
णेरइय णिवास खिदी	२	२
त		
तक्खयवड्ढिपमाणं	१	१७७
तक्खयवड्ढिपमाणं	१	१९४
तक्खयवड्ढि विमाणं	१	२२६
तट्ठाणादोधोधो	३	१७६
तणुरक्खा तिप्परिसा	३	६३
तण्णामा वेरुलियं	२	१६
तत्तो उवरिमभागे	१	१६२
तत्तो दोइदरज्जू	१	१५५
तत्तो य अद्धरज्जू	१	१६१
तत्तो ववसायपुरं	३	२२८
तत्तो तसिदो तवणो	२	४३
तत्थ वि विविहतरुणं	२	३३५
तदिए भुयकोडीओ	१	२५५
तब्बाहिरे असोयं	३	३०
तमकिंदए णिरुद्धो	२	५१
तमभमझसअद्धाविय	२	४५
तम्मि जवे विंदफलं	१	२५६
तम्मिस्ससुद्धसेसे	१	२१२
तसरेणू रथरेणू	१	१०५
तस्स य एक्कम्मि दए	१	१४४
तस्स य जवखेत्ताणं	१	२६८
तस्साइं लहुबाहुं	१	२३५
तस्साइं लहुबाहू	१	२५१
तह अब्भवालुकाओ	२	१३
तह य पहंजणणामो	३	१९

	अधिकार/गाथा	
तं चिय पंचसयाइं	१	१०८
तं पणतीसप्पहदं	१	२३४
तं मज्झे मुहमेक्कं	१	१३६
तं वग्गे पदरंगुल	१	१३२
तं सोधिदूण तत्तो	१	२७८
ताण खिदीणं हेट्ठा	२	१८
ताणअपच्चक्खाणा	२	२७५
ताणमपच्चक्खाणा	३	१८६
ताणं मूले उवरिं	३	४०
तादो देवीणिवहो	३	२२४
तिट्ठाणे सुण्णाणि	३	८२
तिट्ठाणे सुण्णाणि	३	८६
तिण्णि तडा भूवासो	१	२६१
तिण्णि पलिदोवमाणि	३	१५२
तिण्णिसहस्सा छस्सय	२	१७३
तिण्णिसहस्सा णवसय	२	१७६
तिण्णि सहस्सा दुसया	२	१७१
तित्थयर संघपडिमा	३	२०८
तिद्दारतिकोणाओ	२	३१३
तिप्परिसाणं आऊ	३	१५५
तियगुणिदो सत्तहिदो	१	१७१
तियजोयणलक्खाणि	२	१५३
तियदंडा दो हत्था	२	२२३
तियपुढवीए इंदय	२	६७
तिरियक्खेत्तप्पणिधिं	१	२७७
तिवियप्पमंगुलं तं	१	१०७
तिहिदो दुगुणिदरज्जू	१	२५८
तीसं अट्ठावीसं	३	७५
तीसं इगिदालदलं	१	२८३
तीसं चालं चउतीसं	३	२१
तीसं पणवीसं च य	२	२७
तीसं विय लक्खाणि	२	१२४
तुरिमाए णारइया	२	१६६
ते णवदिजुत्त दुसया	२	६२
तेत्तीसब्भहियसयं	१	१६१
तेत्तीसं लक्खाणि	२	१२१
तेदाल लक्खाणि	२	११०
तेरसएक्कारसणव	२	३७
तेरसएक्कारसणव	२	६३
तेरसएक्कारसणव	२	७५
तेरसजोयणलक्खा	२	१४२
तेरह उवही पढमे	२	२१०
तेवण्णा चावाणि	२	२२८
ते वण्णाए हत्थाइं	२	२३९
तेवीसं लक्खाणि	२	१३१
तेवीसं लक्खाणि	२	१३२
तेसट्ठी लक्खाइं	३	८७
ते सव्वे णारइया	२	२८१
तेसिमणंतर जम्मे	३	२००
तेसीदिं लक्खाणि	२	९४
तेसु चउसु दिसासु	३	२७
थ		
थंभुच्छेहा पुव्वा	१	२००
थिरधरियसीलमाला	१	५
थुव्वतो देह वण्णं	२	३०२
थोदूण थुदि	३	२३२

	अधिकार/गाथा	
द		
दक्खिणइंदा चमरो	३	१७
दक्खिणउत्तरइंदा	३	३
दट्ठूण मयसिलंबं	२	३१७
दसजोयणलक्खाणि	२	१४६
दसणउदिसहस्साणि	२	२०५
दसदंडा दोहत्था	२	२३५
दसमंसचउत्थस्स	२	२०७
दसवरिससहस्साऊ	३	११५
दसवाससहस्साऊ	३	१६३
दसवाससहस्साऊ	३	१६७
दससुकुलेसु पुह पुह	३	१३
दहसेलदुमादीणं	२	२३
दंडपमाणंगुलए	१	१२१
दंसणमोहे णट्ठे	१	७३
दारुणहुदासजाला	२	३३४
दिप्पंतरयणदीवा	३	४६
दिसविदिसाणं मिलिदा	२	५५
दीविंदप्पहुदीणं	३	९८
दीवेसु णगिंदेसु	३	२५०
दीवोदहिसेलाणं	१	१११
दुक्खा य वेदणामा	२	४६
दुणयहदं संकलिदं	२	८६
दुगुदाणि दुसयाणि	१	२६५
दुरंत संसार विणासहेदु	३	२२३
दुविहो हवेदि हेदू	१	३५
दुसहस्सजोयणाधिय	२	१६५
दुसहस्समउडबद्ध	१	४६

	अधिकार/गाथा	
देवमणुस्सादीहिं	१	३७
देवीओ तिण्णि सया	३	१०३
देवीदेवसमूहं	३	२१७
देसविरदादि उवरिम	२	२७६
देसविरदादि उवरिम	३	१८७
देह अवट्ठिदकेवल	१	२३
देहोव्व मणो वाणी	२	२९
दो अट्ठसुण्णतिअणह	१	१२४
दो कोसा उच्छेहा	३	२९
दो छव्वारसभाग	१	२८४
दो जोयणलक्खाणि	२	१५४
दोण्णिवियप्पा होंति हु	१	१०
दोण्णि सयाणि अट्ठा	२	२६८
दोण्णिसया देवीओ	३	१०४
दो दंडा दो हत्था	२	२२२
दोपक्खखेत्तमेत्तं	१	१४०
दो भेदं च परोक्खं	१	३९
दोलक्खाणि सहस्सा	२	९२
दोहत्था वीसंगुल	२	२३१
ध		
धम्मदयापरिचत्तो	२	२१७
धम्माधम्मणिबद्धा	१	१३४
धरणाणंदे अहियं	३	१५७
धरणाणंदे अहियं	३	१६०
धरणाणंदे अहियं	३	१७२
धरणिंदे अहियाणि	३	१४६
धादुविहीणत्तादो	३	१३२

	अधिकार	गाथा
पुव्वंतअयवकाया	३	५९
पूजमहाए हेट्ठिम	१	११६
प		
पउमापउमसिरीओ	३	६४
पज्जत्तापज्जत्ता	२	२७७
पडिइंदादिचउण्हं	३	११६
पडिइंदादिचउण्हं	३	१७४
पडिइंदादिचउण्हं	३	१००
पडिइंदादिचउण्हं	३	१३४
पडिमाणं अग्गेसुं	३	१३६
पडुपडहसंखमद्दल	३	२३४
पडुपडहप्पहुदीहिं	३	२४५
पढमधरंतमसण्णी	२	२८५
पढमबिदीयवणीणं	२	१६४
पढमम्हि इंदयम्हि य	२	३८
पढमं दहण्हदाणं तत्तो	३	२२६
पढमा इंदयसेढी	२	६६
पढमादिबितिचउक्के	२	२६
पढमे मंगलकरणे	१	२९
पढमो अणिच्चणामो	२	४८
पढमो लोयाधारो	१	२७२
पढमो हु चमरणामो	३	१४
पणि अग्गमहिसियाओ	३	९५
पणकोसवासजुत्ता	२	३१०
पणणवदिवधियचउदस	१	२६६
पणतीसं दंडाइं	२	२५४
पणतीसं लक्खाणि	२	११८
पणदालहदारज्जू	१	२२४
पणदालं लक्खाणि	२	१०५
पणबीससहस्साधिय	२	१३५
पणबीससहस्साधिय	२	१४७
पणसट्ठी दोण्णिसया	२	६८
पणहत्तरिपरिमाणा	२	२६२
पणिधीसु आरणच्चुद	१	२०७
पणुवीसजोयणाणि	३	१८०
पणुवीससहस्साधिय	२	१११
पणुवीसं लक्खाणि	२	१२६
पण्णरसहदा रज्जू	१	२२३
पण्णरसं कोदंडा	२	२४२
पण्णरसेहिं गुणिदं	१	१२४
पण्णारसलक्खाणि	२	१४०
पण्णासब्भहियाणि	२	२६९
पत्तेक्कं इंदयाणं	३	७१
पत्तेक्कमद्धलक्खं	३	१६१
पत्तेक्कमाऊसंखा	३	१७३
पत्तेक्कमेक्कलक्खं	३	१५०
पत्तेक्कमेक्कलक्खं	३	१५८
पत्तेक्कं रुक्खाणं	३	३३
पत्तेयं रयणादी	२	८७
पददलहदवेकपदा	२	८४
पददलहिदसंकलिदं	२	८३
पदवग्गं चयपहदं	२	७६
पदवग्गं पदरहिदं	२	८१
परमाणूहिं अणंता	१	१०२
परबंधणप्पसत्तो	२	३१२
परिणिक्कमणं केवल	१	२५

	अधिकार/गाथा	
परिवारसमाणा ते	३	६८
परिसत्तयजेट्ठाऊ	३	१५४
पलिदोवमद्धमाऊ	३	१५९
पल्लसमुद्दे उवमं	१	९३
पहुदो बवेहिं लोओ	१	२२०
पंकपहापहुदीणं	२	३६४
पंकाजिरो य दीसदि	२	१९
पंचच्चिय कोदंडा	२	२२६
पंचमखिदिणारइया	२	२००
पंचमखिदिपरियंतं	२	२८६
पंचमहव्वयतुंगा	१	३
पंचमिखिदिए तुरिमे	२	३०
पंच य इंदियपाणा	३	१८९
पंच वि इंदियपाणा	२	२७८
पंचसयरायसामी	१	४५
पंचसु कल्लाणेसुं	३	१२३
पंचादी अट्ठचयं	२	६९
पंचुत्तर एक्कसयं	१	२६३
पावं मलं त्ति भण्णइ	१	१७
पाविय जिणपासादं	३	२३०
पावेणं णिरयबिले	२	३१४
पासरसक्कसद्दधुणिं	३	२४९
पीलिज्जंते केई	२	३२४
पुढमीए सत्तमिए	२	२७०
पुण्णावसिट्ठबलप्पहु	३	१५
पुण्णं पूदपवित्ता	१	८
पुत्तं कलत्तं सजणम्मि मित्तं	२	३७०
पुव्ववण्णिदखिदीणं	१	२१५
पुव्वं बद्धसुराऊ	२	३५०
पुव्वं व विरचिदेणं	१	१२६
पुव्वावरदिब्भाए	२	२५
पुव्विल्लयरासीणं	२	१६१
पुव्विलाइरिएहिं उत्तो	१	२८
पुव्विलाइरिएहिं मंगं	१	१६
पुह पुह सेसिंदाणं	३	६६
पूजाए अवसाणे	३	२३९
पूरंति गलंति जदो	१	९९
पेच्छिय पलायमाणं	२	३२३
फ		
फालिज्जंते केई	२	३२६
ब		
बत्तीसट्ठावीसं	२	२२
बत्तीसं तीसं दस	३	७६
बत्तीसं लक्खाणि	२	१२२
बम्हुत्तरहेट्ठुवरिं	१	२१०
बहुविहपरिवारजुदा	३	१३३
बंभयवगमो असारग्ग	२	५४
बाणउविजुत्तदुसया	२	७४
बाणासणाणि छच्चिय	२	२२८
बादालहरिदलोओ	१	१८२
बारसजोयणलक्खा	२	१४३
बारसजोयणलक्खा	२	१४४
बारसदिणेसु जलपहु	३	११३
बारस मुहुत्तयाणि	३	११७
बारस सरासणाणि	२	२३७

	अधिकार	गाथा
बारस सरासणाणि	२	२३८
बारस सरासणाणि	२	२६१
बावण्णुवही उवमा	२	२१२
बावीसं लक्खाणि	२	१३३
बाहत्तरि लक्खाणि	३	५२
बाहिरछब्भाएसुं	१	१८७
बाहिरमज्झब्भंतर	३	६७
बिदियादिसु इच्छंतो	२	१०७
बेकोसा उच्छेहा	३	२८
बेरिक्कूहिं दंडो	१	११५
भ		
भवणसुराणं अवरे	३	१८५
भवणं वेदीकूडा	३	४
भवणा भवणपुराणि	३	२२
भवणेसु समुप्पण्णा	३	२५१
भव्वजणमोक्खजणणं	३	१
भव्वजणाणंदयरं	१	८७
भव्वाण जेण एसा	१	५४
भव्वाभव्वा पंचहि	३	१६४
भंभामुइंगमद्दल	३	५०
भावणणिवासखेत्तं	३	२
भावणलोयस्साऊ	३	६
भावणवेंतरजोइसिय	१	६३
भावसुदं पज्जाएहिं	१	७१
भावेसुं तियलेस्सा	२	२८२
भिंगारकलसदप्पण	१	११२
भिंगारकलसदप्पण	३	४८
भिंगारकलसदप्पण	३	२३५

	अधिकार	गाथा
भीदीए कंपमाणा	२	३१५
भुजकोडीवेदेसुं	१	२१८
भुजपडिभुजमिलिदद्धं	१	१८१
भूमीए मुहं सोहिय	१	१६३
भूमीअ मुहं सोहिय	१	१७६
भूमीअ मुहं सोहिय	१	२२५
भूसणसालं पविसिय	३	२२७
म		
मघवीए णारइया	२	२०१
मज्जं पिबंता पिसिदं	२	३६६
मज्झम्हि पंचरज्जू	१	१४१
मज्झिमजगस्स उवरिम	१	१५८
मज्झिमजगस्स हेट्ठिम	१	१५४
मज्झिमविसोहिसहिदा	३	१९६
मणहरजालकवाडा	३	६०
मरणे विराहिदम्हि य	३	२०५
महतमपहाअ हेट्ठिमअंते	१	१५७
महमंडलिया णामा	१	४७
महमंडलियाणं अद्ध	१	४१
महवीरभासियत्थो	१	७६
महुमज्जाहाराणं	२	३४३
मंगलकारणहेदू	१	७
मंगलपज्जाएहिं	१	२७
मंगलपहुदिच्छक्कं	१	८५
मंदरसरिसम्मि जगे	१	२३०
मंसाहाररदाणं	२	३४२
माणुस्स तेरिच्छभवम्हि	३	२१८
मायाचारविवज्जिद	३	२४४

	अधिकार	गाथा
मांहिद उवरिमंते	१	२०४
मुरजायारं उड्ढं	१	१६६
मुहभूसमासमद्धिअ	१	१६५
मेघाए णारइया	२	१९८
मेरुतलादो उवरिं	१	२८१
मेरुसमलोहपिंडं सीदं	२	३२
मेरुसमलोहपिंडं उण्हं	२	३३
मेरुसरिच्छम्मि जगे	१	२२७
र		
रज्जुघणद्धं णवहद	१	१९०
रज्जुघणा ठाणदुगे	१	२१३
रज्जुघणा सत्तच्चिय	१	१८९
रज्जुस्स सत्तभागो	१	१८४
रज्जुए सत्तभागं	१	१६६
रज्जूवो तेभागं	१	२४१
रयणप्पह अवणीए	२	१०८
रयणप्पहचरमिंदय	२	१६८
रयणप्पहपहुदीसुं	२	८२
रयणप्पहपुढवीए	३	७
रयणप्पहक्खिदीए	२	२१८
रयणप्पहावणीए	२	२७२
रयणाकरेक्कउवमा	३	१४५
रयणादिछट्ठमंतं	२	१५९
रयणादिणारयाणं	२	२८६
रयणुज्जल दीवेहिं	३	२३८
रोगजरापरिहीणा	३	१२८
रोसमए जेट्ठाऊ	२	२०६

	अधिकार	गाथा
ल		
लक्खणवंजणजुत्ता	३	१२७
लक्खाणि अट्ठ जोयण	२	१४८
लक्खाणि पंच जोयण	२	१५१
लज्जाए चत्ता मयणेण मत्ता	२	३६६
लद्धो जोयणसंखा	२	१६२
लोयबहुमज्झदेसे	२	६
लोयंते रज्जुघणा	१	१८५
लोयायासट्ठाणं	१	१३५
लोयालोयाण तहा	१	७७
लोहकडाहावट्ठिद	२	३२७
लोहकोहभयमोहबलेणं	२	३६७
लोहमयजुवइपडिमं	२	३४१
व		
वइतरणी सलिलादो	२	३३१
वइरोअणो य धरणाणंदो	३	१८
वक्कंत अवक्कंता	२	४५
वच्चदि दिवड्ढरज्जू	१	१५६
वण्णरसगंधफासे	१	१००
वण्णरसगंधफासे	३	२१३
वयवग्घतरच्छसिगाल	२	३२०
वररयणकंचणमये	३	२४७
वररयणमउडधारी	१	४९
वररयणमउडधारी	३	१२६
वरविविहकुसुममाला	३	२३७
ववहाररोमरासिं	१	१२६
ववहारुद्धारद्धा	१	९४
वंदणभिसेयणच्चण	३	४६

	अधिकार/गाथा	
वंसाए णारइया	२	१९७
वाववरुद्धक्खेत्तै	१	२८५
वायंता जयघंटा	३	२१६
वालेसुं दाढीसुं	२	२६१
वासट्ठी कोदंडा	२	२६०
वासस्स पढममासे	१	६६
वासीदिं लक्खाणं	२	३१
बासौ जोयणलक्खो	२	१५६
विउलसिलाविक्खाले	२	३३३
विगुणियछक्खउसट्ठी	२	२३
विमले गोदमगोत्ते	१	७८
विरिएण तहा खाइय	१	७२
विविहत्थेहिं अणंतं	१	५३
विविहरतिकरणभाविद	३	२४३
विविहवररयणसाहा	३	३४
विविहवियप्पं लोयं	१	३२
विविहंकुरचेंचइया	३	३५
विसयासत्तो विमदी	२	२९८
विसुद्धलेस्साहि सुराउबंधं	३	२५४
वित्थाणं लोयाणं	१	२४
विंदफलं संमेलिय	१	२०२
विंसदिगुणिदो लोओ	१	१७३
वीसए सिखासयाणि	२	२४६
वेणुवेणुधारिणो पंचदलं	३	१४६
वेदीणब्भंतरए	३	४१
वेदीणं बहुमज्झे	३	३९
वोच्छामि संयलभेदे	१	९०

स

	अधिकार/गाथा	
सक्करवालुवपंका	२	२१
सक्खापच्चक्खपरं	१	३६
सगजोयणलक्खाणि	२	१४९
सगतीसं लक्खाणि	२	११६
सगपणचउजोयणयं	१	२७४
सगपंचचउसमाणा	१	२७५
सगवण्णोवहि उवमा	२	२१३
सगवीसगुणिदलोओ	१	१६८
सगसगपुढविगयाणं	२	१०३
सट्ठाणे विच्चालं	२	१८७
सट्ठाणे विच्चालं	२	१६५
सट्ठीजुदमेक्कसयं	३	१०५
सट्ठी तमप्पहाए	२	७६
सण्णाणरयणदीवं	३	२५५
सण्णिअसण्णीजीवा	३	२०४
सण्णी य भवणदेवा	३	१९५
सत्तघणहरिदलोयं	१	१७९
सत्तच्चिय भूमीओ	२	२४
सत्तट्ठणवदसादिय	३	५६
सत्तट्ठाणे रज्जू	१	२६२
सत्तितिछदंडहत्थंगुलाणि	२	२१७
सत्तमखिदिजीवाणं	२	२१५
सत्तमखिदिणारइया	२	२०२
सत्तमखिदिबहुमज्झे	२	२८
सत्तमखिदीअ बहले	२	१६३
सत्त य सरासणाणिं	२	२२१
सत्तरसं चावाणिं	२	२४४

	अधिकार/गाथा			अधिकार/गाथा	
सत्तरसं लक्खाणि	२	१३८	सव्वे असुरा किण्हा	३	१२०
सत्तरि हिद सेढिघणा	१	२१६	सव्वे छण्णाणजुदा	३	१९२
सत्त विसिरवासणाणि	२	२३०	सव्वेसिं इंदाणं	३	१३५
सत्तहदबारसंसा	१	२४२	सव्वेसु इंदेसु	३	१०१
सत्तहिददुगुणलोगो	१	२३४	सहसारउवरिमंते	१	२०६
सत्ताहियवीसेहिं	१	१९७	संखातीदसहस्सा	३	१८२
सत्ताण उदी हत्था	२	२४८	संखातीदासेढी	३	१४४
सत्ताणउदी जोयण	२	१९३	संखेज्जमिदयाणं	२	९५
सत्ताणीया होंति हु	३	७७	संखेज्ज रुंद भवणेसु	३	२६
सत्तावीसं दंडा	२	२५०	संखेज्जरुंदसंजुद	२	१००
सत्तावीसं लक्खा	२	१२७	संखेज्जवासजुत्ते	२	१०४
सत्तासीदी दंडा	२	२६३	संखेज्जाऊ जस्स य	३	१६९
सत्थादिमज्भअवसाण	१	३१	संखेज्जा वित्थारा	२	९६
सत्थेण सुतिक्खेणं	१	९६	ससारण्णवमहणं	२	३७१
सबलचरित्ता केई	३	२०२	साणगणा एक्केक्के	२	३१८
समचउरस्सा भवणा	३	२५	सामण्णगब्भकदली	३	५८
समयं पडि एक्केक्कं	१	१२७	सामण्णजगसरूवं	१	८८
समवट्टवासवग्गे	१	११७	सामाण्णं सेढिघणं	१	२१७
सम्मत्तरयणजुत्ता	३	५३	सामण्गे बिंदफलं	१	२३८
सम्मत्तरयणपव्वद	२	३५८	सामण्णे बिंदफलं	१	२५४
समत्तरहियचित्तो	२	३६१	सायर उवमा इगिदुति	२	२०८
सम्मत्तं देसजमं	२	३५९	सायारअणायारा	२	२८४
सम्मत्तं सयलजमं	२	३६०	सावण बहुले पाडिव	१	७०
सम्माइट्ठी देवा	३	१९९	सासदपदमावण्णं	१	८६
सयकविरूऊणाद्ध	२	१६६	सिकदाणणासिपत्ता	२	३५१
सयणाणि आसणाणि	३	२४८	सिद्धाणं लोगो त्ति य	१	८९
समलो एस य लोओ	१	१३६	सिरिदेवी सुदवेवी	३	४७
सव्वे असंजदा तिट्ठसणा	३	१९३	सिंहासणादिसहिदा	३	५१

	अधिकार/गाथा	
सीमंतगो य पढमो	२	४०
सीहादिसंजुत्ताणं	३	१२४
सिंहासण छत्तत्तय	३	२३१
सुदणाणभावणाए	१	५०
सुरखेयरमणहरणे	१	६५
सुरखेयरमणुवाणं	१	५२
सूवरवणग्गिसोणिद	२	३२२
सेढिपमाणायामं	१	१४९
सेढीअसंखभागो	३	१९७
सेढीए सत्तभागो	१	१७०
सेढीए सत्तभागो	१	१७५
सेढीए सत्तंसो	१	१६४
सेदजलरेणुकद्दम	१	११
सेदरजाइमलेणं	१	५६
सेसाओ वण्णणाओ	३	१४१
सेसाणं इंदाणं	३	९७
सोक्खं तित्थयराणं	१	४९

	अधिकार/गाथा	
सोलसजोयणलक्खा	२	१३९
सोलस सहस्समेत्ता	३	९३
सोलससहस्समेत्तो	३	८
सोलसहस्सं छस्सय	२	१३४
सोहम्मीसाणोवरि	१	२०३
सोहम्मेदलजुत्ता	१	२०८
ह		
हरिकरिवसहखगाहिव	३	४५
हाणिचयाणपमाणं	२	२२०
हिमइंदयम्मि होंति हु	२	५२
हेट्ठादो रज्जुघणा	१	२४७
हेट्ठिममज्झिमउवरिम	१	१५१
हेट्ठिमलोएलोओ	१	१६६
हेट्ठिमलोयाआरो	१	१३७
हेट्ठोवरिदं मेलिद	१	१४२
होंति णपुंसयवेदा	२	२८०
होंति पयण्णयपहुदी	३	८९

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
११	१४	अभ्युदय	अब्भुदय
१३	१७	वाण	बाण
१४	४	यिसय	विसय
१६	६	भव्य	भव्व
२१	२१	किरण	किर ण
२३	२०	आठ-आठ गुणित रथरेणु	आठ-आठ गुणित क्रमशः रथरेणु
२४	१५	उस्सेहस्य	उस्सेहस्स
२६	७	चौथे भाग से अर्थात् अर्द्ध व्यास के वर्ग से परिधि को	चौथे भाग से परिधि को
२७	११	कर्मभूमि के बालाग्र, मध्यम भोगभूमि के बालाग्र	कर्मभूमि के बालाग्र, जघन्य भोगभूमि के बालाग्र, मध्यम भोग-भूमि के बालाग्र
५७	६	झ झ``	झ झ` झ``
५८	५	च च``	च च` च``
५९	१३	३ ५/९ ८	३ ०/९ ८
८४	गाथा २३४	संदृष्टि गाथा के बीच में दी गई है, उसे गाथा के बाद पढ़ना चाहिए।	

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
८६	२	गिरिगडरा	गिरिगडए
८७	१२	ऊर्ध्वायित	ऊर्ध्वायित
९०	३	४	विशेषार्थ ४
९३	१६	३८१	३८१
९५	७	९२	९२/९
१०९	११	९५/६ घनराजू घनफल	१५/६ घनराजू घनफल
११४	११	ब्रह्मलोक के	ब्रह्मलोक से
१२१	१	रज्जुस्सेधेण	रज्जूस्सेधेण
१२२	७	रज्जुस्सेधेण	रज्जूस्सेघेण
१२५	२	ब्रह्मस्वर्ग	ब्रह्मस्वर्ग
१२८	६	बाहल्ल	बाहल्लं
१४८	७	पर्यन्त के बिल	पर्यन्त के सम्पूर्ण बिल
१४८	१०-११	पृथिवी के शेष बिलों के एक बटे चार भाग से	पृथिवी के शेष एक बटे चार भाग बिलों से
१८२	१०	इन्द्रककों का	इन्द्रकों का
१८५	गाथा १३१	टिप्पण २. द. पुस्तक एव के स्थान पर	'ब प्रतौ नास्ति' पढ़ना चाहिए।
२१३	संदृष्टि का अन्तिम कॉलम	प्रस्थान	परस्थान
२१५	१८	३।	३।
२२०	१६	बिलों की भी आयु	बिलों में भी आयु
२४२	१०	संयुक्त हैं।	संयुक्त होते हैं।

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
२४५	गाथा २८९ की संदृष्टि का शुद्ध मुद्रित रूप इस प्रकार है—		
	—२+ १ रि[१२] | ६३ रि | ५० रि | ८ रि | ४ रि | ३ रि | २ रि		
२४६	१७	आगम का वर्णन	आगमन का वर्णन
२४८	१३	समझता,	समझता है,
२४९	३	मुगलिका, मुद्द्गर	मुद्गलिका, मुद्गर
२५०	गाथा ३११ की संदृष्टि	२००००	२०००
२५१	१	(४००० × ५) = २०००० कोस अथवा ५००० योजन	(४०० × ५) = २००० कोस अथवा ५०० योजन
२५६	३	फल-पूंजा	फल-पुंजा
२६५	२	भव्य	भव्व
२६५	१३	प्रमाणं	पमाणं
२७६	४	१९०८ और २१५९ में तथा पाँचवें अधिकार की	१९३२ और २१८३ में तथा छठे अधिकार की
२८०	१५	कुडाए	कूडाए
२८२	गाथा सं० ६३ के बाद गाथा क्रम संख्या ६४ लगना छूट गया है और ६५ से २५५ तक की संख्यायें लग गई हैं। अतः गाथा सं० ६३ को ही ६३-६४ समझें ताकि अन्य सन्दर्भ सही समझे जा सकें।		
२९६	१७	पारिषादिक	पारिषदादिक

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
३१०	२	भूदाणंदस्य	भूदाणंवस्स
३२४	६	तर्थंकर	तीर्थंकर
३२६	१	विभगज्ञान	विभंगज्ञान
३२७	४	लिम्ग	लिंग
३३१	६	दिव्य	दिव्व
३३३	६	केइं	केई